शरीरविज्ञान दर्शन

एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र

एक योगी की प्रेमकथा

प्रेमयोगी वज्र

शरीरविज्ञान दर्शन

एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)

लेखक: प्रेमयोगी वज्र

२०१७

पुस्तक-परिचय~

यह पुस्तक, पुराणों से मिलते-जुलते रूप में, आध्यात्मिक-वैज्ञानिक प्रकार का अपूर्व उपन्यास है। यह एक आध्यात्मिक-भौतिक प्रकार की मिश्रित कल्पना पर आधारित है। यह हमारे शरीर में प्रतिक्षण हो रहे भौतिक व आध्यात्मिक चमत्कारों पर आधारित है। यह दर्शन हमारे शरीर का वर्णन आध्यात्मिकता का पुट देते हुए पूरी तरह से चिकित्सा विज्ञान के अनुसार करता है। इसीलिए यह आम जनधारणा के अनुसार नीरस चिकित्सा विज्ञान को बाल -सुलभ सरल व रुचिकर बना देता है। यह पाठकों की हर प्रकार की आध्यात्मिक व भौतिक जिज्ञासाओं को शाँत करने में सक्षम है। यह सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक स्तर की स्थूलता व सूक्ष्मता को एक करके दिखाता है, अर्थात यह द्वैताद्वैत की ओर ले जाता है। यह दर्शन एक उपन्यास की तरह ही है, जिसमें भिन्न-२ अध्याय नहीं हैं। प्रेमयोगी वज्र ने इसे किसी पर आधारित करके नहीं , अपितु अपने ज्ञान, अनुभव व अंतरात्मा की प्रेरणा से रचा है; यद्यपि बाद में स्वयं ही उन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित प्रतीत हुआ, जिन पर पहले की बनी हुई बहुत सी रचनाएं विद्यमान हैं। इस दर्शन में मानवतावादी राष्ट्रीयता भी कूट-२ कर भरी हुई है। यह दर्शन कर्मयोग, तंत्र, अद्वैत, द्वैताद्वैत व अनासक्ति के आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित है। इस दर्शन में ताओवाद का सिद्धांत और कनफ्यूशियस का मानवतावादी प्रशासन भी समाया हुआ है। यह दर्शन वास्तव में लगभग २० वर्षों के दौरान एक -२ करके विभिन्न विचारों व तर्कों को इकट्ठा करके तैयार हुआ, जिनके साथ प्रेमयोगी वज्र का लंबा व व्यस्त जीवन-अनुभव भी जुड़ता गया। इसीसे यह दर्शन जीवंत व प्रेरणादायक प्रतीत होता है। प्रेमयोगी वज्र ने वैसे तो इसे अपने लाभ के लिए अपने निजी दर्शन के रूप में निर्मित किया था, परन्तु इसके अभूतपूर्व प्रभाव को देखते हुए इसे सार्वजनिक करने का निर्णय बाद में लिया गया। प्रेमयोगी वज्र को इस दर्शन से सम्बंधित वस्तुओं को अपने यात्रा -थैले (commute bag) में डालने की आदत पड़ गई थी, क्योंकि उससे उसे एक दिव्य, प्रगतिकारक व सुरक्षक शक्ति अपने चारों ओर अनुभव होती थी। इसका अर्थ है यह है कि शविद (शरीरविज्ञान दर्शन) को पुस्तक-रूप में अथवा ई-रीडिंग डीवाईसीस पर डाउनलोडिड-रूप (downloaded form) में सदैव साथ रखने से तांत्रिक लाभ की संभावना है। इस दर्शन से प्रेमयोगी वज्र का अध्यात्म व भौतिकता को जोड़ने का लम्बा स्वपन पूरा होता है। प्रेमयोगी वज्र को पूर्ण विश्वास है कि इस दर्शन की धारणा से मुक्ति प्रत्येक मानवीय स्थिति में पूर्णतया संभव है। ऐसा ही अनुभव प्रेमयोगी वज्र को भी हुआ था, जब शविद के पूरा हो जाने पर वह खुद ही कुण्डलिनीयोग के उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित हो गया और कुछ अभ्यास के उपरान्त उसकी कुण्डलिनी, उसके मस्तिष्क में अचानक से प्रविष्ट हो गई, जिससे उसे क्षणिक समाधि का अनुभव हुआ। अपने क्षणिकात्मज्ञान के बाद जब प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी इड़ा नाड़ी (अनुभवात्मक) में सत्तासीन हो गई थी, तब इसी दर्शन की सहायता से उसने उसका प्रवेश पिंगला नाड़ी (कर्मात्मक) में करवा कर उसे संतुलित किया। यह दर्शन सभी के लिए लाभदायक है; यद्यपि स्वास्थ्य व शरीर से सम्बंधित, सुरक्षा से सम्बंधित, कठिन परिश्रमी, उद्योगी, मायामोह में डूबे हुए, अनुशासनप्रिय, भौतिकवादी, वैज्ञानिक, समस्याओं से घिरे हुए लोगों के लिए, तथा धर्म, मुक्ति, मानवता, विज्ञान व कैरियर के बारे में भ्रमित लोगों के लिए तो अत्यंत ही लाभदायक है। प्रेमयोगी वज्र को कुण्डलिनी के बारे में हर जगह भ्रम की सी स्थिति दिखी। यहाँ तक कि प्रेमयोगी वज्र स्वयं भी तब तक भ्रम की स्थिति में रहा,

जब तक उसने कुण्डलिनी को साक्षात व स्पष्ट रूप में अनुभव नहीं कर लिया। अतः कुण्डलिनीजिज्ञासुओं के लिए तो यह पुस्तक किसी वरदान से कम नहीं है। मूलरूप में शविद संस्कृत भाषा में लिखा गया था, परन्तु आम पाठकों के द्वारा समझने में आ रही परेशानियों व किन्डल केडीपी द्वारा वर्तमान में संस्कृत भाषा को सपोर्ट न किए जाने के कारण उसे इसका अनुवाद करना पड़ा। यह अन्य मिथक साहित्यों से इसलिए भी भिन्न है, क्योंकि यह मिथक होने के साथ-२ सत्यता से भी भरा हुआ है, अर्थात एक साथ दो भावों से युक्त है (two in one), बहुत कुछ पौराणिक साहित्य से मिलता-जुलता। इसे पढ़कर पाठकगण चिकित्सा विज्ञान के अनुसार, शरीर की पूरी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं; वह भी रुचिकर, प्रगतिशील व आध्यात्मिक ढंग से। इस पुस्तक में प्रेमयोगी वज्र ने अपने अद्वितीय आध्यात्मिक व तांत्रिक अनुभवों के साथ अपनी सम्बन्धित जीवनी पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है। इसमें जिज्ञासु व प्रारम्भिक साधकों के लिए भी आधारभूत व साधारण कुण्डलिनीयोग -तकनीक का वर्णन किया गया है। आधारभूत यौनयोग पर भी सामाजिकता के साथ सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है। प्रेमयोगी वज्र ने इसमें अपने क्षणिकात्मज्ञान (glimpse enlightenment) व सम्बंधित परिस्थितियों का भी बखूबी वर्णन किया है। प्रेमयोगी वज्र ने विभिन्न धर्मों , वेदों, पुराणों, उपनिषदों, दर्शनों व अन्य धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन किया है , मूल भाषाओं में; अतः अत्यावश्यकतानुसार ही शविद (शरीरविज्ञान दर्शन) से जुड़े हुए उनके कुछेक विचार-बिंदु भी इस पुस्तक में सम्मिलित किए गए हैं। इस पुस्तक में शरीर में हो रही घटनाओं का, सरल व दार्शनिक विधि से वर्णन किया गया है।

प्रेमयोगी वज्र एक आध्यात्मिक रहस्यों से भरा हुआ व्यक्ति है। वह आत्मज्ञानी (enlightened) है, व उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसने प्राकृतिक रूप से भी योगसिद्धि प्राप्त की है, व कृत्रिमविधि अर्थात कुण्डलिनीयोग के अभ्यास से भी। उसके आध्यात्मिक अनुभवों को लेखक ने पुस्तक में , उत्तम प्रकार से कलमबद्ध किया है। जो लोग योग के पीछे छिपे हुए मनोविज्ञान को समझना चाहते हैं, उनके लिए यह पुस्तक किसी वरदान से कम नहीं है। इस पुस्तक में स्त्री -पुरुष संबंधों का आधारभूत सैद्धांतिक रहस्य भी छिपा हुआ है। यदि कोई प्रेमामृत का पान करना चाहता है, तो इस पुस्तक से बढ़िया कोई भी उपाय प्रतीत नहीं होता। इस पुस्तक में सामाजिकता व अद्वैतवाद के पीछे छिपे हुए रहस्यों को भी उजागर किया गया है। वास्तव में यह पुस्तक सभी क्षेत्रों का स्पर्श करती है। अगर कोई हिन्दुवाद को गहराई से समझना चाहे , तो इस पुस्तक के समान कोई दूसरी पुस्तक प्रतीत नहीं होती। यदि दुर्भाग्यवश किसी का पारिवारिक या सामाजिक जीवन समस्याग्रस्त है , तो भी इस पुस्तक का कोई मुकाबला नजर नहीं आता। यह पुस्तक साधारण लोगों (यहाँ तक कि तथाकथित उत्पथगामी व साधनाहीन भी) से लेकर उच्च कोटि के साधकों तक , सभी श्रेणी के लोगों के लिए उपयुक्त व लाभदायक है। उपन्यास के शौकीनों को भी यह पुस्तक रोमांचित कर देती है। एक बार पढ़ना शुरु करने के बाद पाठकगण तब तक पीछे मुड़कर नहीं देखते, जब तक कि पुस्तक को पूरा नहीं पढ़ लेते। इसको पढ़कर पाठक गण अवश्य ही अपने अन्दर एक सकारात्मक परिवर्तन महसूस करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुस्तक में मानव जीवन का सार व रहस्य छिपा हुआ है। आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक पाठकों की अपेक्षाओं पर बहुत खरा उतरेगी।

इस पुस्तक की सामग्री को उचित सोच-विचार के उपरांत, सर्वोत्तम क्रम में रखा गया है। इसलिए, बीच में बिना कुछ छोड़े, इसे प्रारम्भ से अंत तक यथावत क्रम में ही पढ़ना अधिक लाभदायक रहेगा। लेखक ने क्वोरा (quora) में लिखी गई २०१८ की अपनी पोस्टों (posts) से भी बहुत सी आवश्यक जानकारियाँ इकट्ठी करके, इस पुस्तक में डाली हैं। लेखक को इनके लिए,

क्वोरा (सर्वप्रसिद्ध प्रश्नोत्तरी वैबसाईट) के द्वारा “शीर्ष लेखक २०१८” (top writer 2018) के सम्मान से भी सम्मानित किया गया है।

लेखक परिचय~

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष 1975 में भारत के हिमाचल प्रान्त की वादियों में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन, दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती , जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट demystifyingkundalini.com पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे , जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से “शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)” पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण 25 सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे , और इस पुस्तक को अच्छा (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार -प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति प्राकृतिक रूप से / प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से / कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली, जबकि कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें~

https://demystifyingkundalini.com/

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)~

सर्वप्रथम यह पुस्तक श्री भोले महादेव को समर्पित है , जो कि तंत्रशास्त्र के आदि गुरु हैं। तदनंतर यह पुस्तक प्रेमयोगी वज्र के पूज्य पितामह श्री/गुरु/उन्हीं वृद्धाध्यात्मिक पुरुष को समर्पित है, जो कि एक महान व व्यावहारिक कर्मयोगी थे, और तंत्रप्रवर्तक महादेव के अवतार प्रतीत होते थे। साथ में, वैश्विक योग दिवस (world Yoga day) का प्रभाव भी दोनों ही दिव्य पुरुषों के साथ जुड़ा हुआ है। फिर यह पुस्तक भारत माता के पूज्य चरणों में समर्पित है। अंत में यह पुस्तक भारतीय सेना को समर्पित है।

प्रेमयोगी वज्र के पितामह प्राचीन भारत की समृद्ध परम्परा के एक जीवंत व ज्वलंत उदाहरण थे। सात्विक तंत्र दर्शन तो उनके स्वभाव में ही विद्यमान था। जातिवाद व कर्मवाद जैसी धार्मिक कुरीतियों से ऊपर उठकर उन्होंने एक विस्तृत परिपेक्ष्य के साथ समाज का अवलोकन किया। वे आत्मज्ञानी थे। अपने जीवन में वे एक क्षण के लिए भी कर्महीन नहीं दिखे। वे हर परिस्थिति में अपने लिए कुछ न कुछ काम ढूंढ ही लेते थे। वे एक साधारण स्तर के वैदिक पुरोहित थे, जो कि लोगों के घरों में कर्मकांड करते थे। उनके यजमानों में ज्यादातर रूप से तथाकथित पिछड़े वर्ग के लोग होते थे , जो उनके द्वारा किए हुए धार्मिक कर्मकांडों से बड़ी भारी तृप्ति महसूस करते थे , क्योंकि वे आध्यात्मिक गतिविधियाँ उनके कर्मक्लेशों से मरणासन्न जैसे चित्त पर मानो मरहम-पट्टी का काम करती थीं। वे बिना मांगे मिली हुई दक्षिणा से ही संतुष्ट हो जाया करते थे। जब कर्मकान्ड आदि के काम नहीं मिलते थे , तब अपनी थोड़ी सी भूमि में बतौर किसान काम कर लिया करते थे। इस तरह से आर्थिक तंगी के बावजूद भी हमेशा उमंग व संतुष्टि से भरे होते थे। वे हर चीज की खिफायत करते थे, और बर्बादी के सख्त खिलाफ थे। बड़ा परिवार होने के कारण उन पर जिम्मेदारियां भी बहुत थीं, फिर भी उन्होंने सात्विक व सामान्य जीवन का परित्याग कभी नहीं किया। उनके मुख पर एक सूर्य के जैसी कांति सदैव रहती थी। उनके कंधे पर जनेऊ , माथे पर तिलक, सिर पर शिखा व कमर में मेखला आदि ब्राम्हणोचित चिन्ह हमेशा विद्यमान रहते थे। वे धोती -कुर्ता पहनना अधिक पसंद करते थे , विशेषतः धार्मिक अवसरों व क्रियाकलापों के समय। वे सुबह ब्रम्हमुहूर्त में ही लगभग ४-५ बजे के बीच उठ जाया करते थे। फिर पूजा के सामान व कमरे की साफ-सफाई करते थे। थोड़ा उजाला होने पर प्रातःभ्रमण के लिए बाहर निकल जाते और दान्तुन आदि भी रास्ते में ही कर लेते थे। फिर स्नानादि के बाद पूजाघर की चौकी में रखी हुई गणपति , शिव, नारायण आदि की कुछ धातु से बनी छोटी -२ मूर्तियों को नहलाकर उनका विविध उपचारों से पूजन करते। वे निश्चित समय पर दोनों कालों की संध्या जरूर करते। एक समय की वैदिक संध्या लगभग एक घंटे की होती थी। संध्या के बाद वे बहुत ही शाँत , प्रसन्न, प्रफुल्लित व तनावरहित प्रतीत होते थे। वे सुबह-शाम की संध्या के बाद अपनी पूज्य व वृद्ध माता जी के समक्ष पुराणों की कथाएँ पढ़ते थे , जिन्हें सुनने कई बार घर के अन्य सदस्य भी बैठ जाया करते थे। समय होने पर तो वे जब कभी भी पुराण पढ़ लिया करते थे। उनका कहना था कि पुराणों को नियमित रूप से पढ़ने से अनायास ही आत्मज्ञान हो जाता है। उन्हें इस बात पर काफी हैरानी होती थी कि क्योंकर उन्हें बचपन से ही पुराणों को पढ़ने की आदत नहीं पड़ी। वे उस समय के दूरदर्शन के नए-२ बने व प्रदर्शित रामायण-महाभारत आदि धार्मिक धारावाहिकों को देखकर कहते थे कि उनसे कई गुना अधिक आनंद तो सीधा मूल ग्रंथों को पढ़कर मिलता है। इसीलिए वे हमें भी पुराण पढ़ने के लिए प्रेरित करते रहते थे। प्रेमयोगी वज्र को उनकी संगति में समय बिताने का कुछ समय तब मिला, जब प्रेमयोगी वज्र कर्मकांडों व कृषि के मामलों में उनकी चंद सहायता करने लगा। उस दौरान प्रेमयोगी वज्र ने अपनी अत्यधिक आध्यात्मिक प्रगति अनुभव की। प्रेमयोगी वज्र उनके बगल वाले कमरे में विज्ञान विषय पढ़ रहा होता था , और वे पुराणों को पढ़ रहे होते थे। प्रेमयोगी वज्र आध्यात्मिक-वैज्ञानिक बन गया और वे वैज्ञानिक-अध्यात्मविद। दोनों में वैज्ञानिक व आध्यात्मिक अंतर्दृष्टियां एकसाथ विकसित हो गईं। परस्पर विपरीत दिखने वाले क्षेत्रों के बीच में यह एक अच्छा सहयोग व समझौता था , जो पूरे संसार की शान्ति के लिए एक अच्छा उदाहरण था। भौतिकता के बीच में आध्यात्मिकता का ऐसा तड़का लगता रहा कि प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी कभी भी उसके शरीर के सर्वोच्च चक्र से नीचे उतरी ही नहीं , अर्थात प्रेमयोगी वज्र निरंतर समाधि-अवस्था में स्थित रहा। एक बार तो क्षणमात्र के लिए आत्मज्ञान को छूकर वापिस लौट आई। वे उस बात को संकेत मात्र से ही समझ गए थे , और उसका पूरा श्रेय सात्विक व वैदिक परिवेश, विशेषकर पुराणों के प्रतिदिन के अभ्यास को दिया। बात काफी हद तक सही भी थी, यद्यपि प्रेमयोगी वज्र उस आध्यात्मिकता व भौतिकता के मिले-जुले रूप को अधिक श्रेय देता है।

वास्तव में आत्मज्ञान भौतिक/वैज्ञानिक/पाश्चात्य व आध्यात्मिक/हिन्दुवादी/भारतीय, दोनों प्रकार की अंतर्दृष्टियों की संतुलित रूप में अपेक्षा रखता है। यह प्रेमयोगी वज्र का सौभाग्य था कि उसे घर पर ही सद्गुरु-सदृष संगत मिल गई थी। उनका रौब भी बहुत होता था, यद्यपि वह सात्विक व दूसरों के त्वरित व प्रत्यक्ष लाभ के लिए होता था । साथ में वह स्वार्थ -अहंकार के भाव से भी रहित होता था , इसीलिए अखरता नहीं था, अपितु अच्छा लगता था। यहाँ तक कि दूरदराज के अजनबी व शराबी-जुआरी आदि उत्पथगामी लोग भी उनके चेहरे के तेज से तितर-बितर हो जाया करते थे, और कुछ समय के लिए गलत काम करना जैसे भूल से जाते थे। वैदिक क्रियाकलापों के कारण ही वे द्वैताद्वैत व अनासक्ति से संपन्न थे। उनकी तरह का

आश्चर्यमयी व्यक्तित्व प्रेमयोगी वज्र को कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन पूर्ण स्वाभिमान व स्वावलंबन के साथ बिताया तथा वैसा ही उदाहरण उन्होंने स्वर्गारोहण के समय भी प्रस्तुत किया, जब चिकित्सक के कहने पर भी उन्होंने अन्य पुरुषों के असृक् पर आश्रित रहने की अपेक्षा अपनी मुक्ति को श्रेयस्कर जानकर, उसे सहर्ष स्वीकार किया।

मैं अपने सहपाठियों, सहव्यवसायिओं, ज्ञातिजनों, परिवारजनों, मित्रों, शिक्षकों/गुरुजनों व अन्य विस्मृत जनों-जीवों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकटीकरण में, किसी भी रूप में मुझे सहयोग दिया है। साथ में, मैं डॉ० भीष्म शर्मा जी का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरे माध्यम से प्रकट होने वाले शरीरविज्ञानदर्शन के लिए, मुझे शरीरविज्ञान से सम्बंधित जानकारियाँ उपलब्ध करवाईं।

लेखन कला एक श्रेष्ठतम कलाओं में वर्णित की जाने योग्य कला है, क्योंकि यह मस्तिष्क को या विचारों को अनासक्ति के साथ अभिव्यक्त करती है, जिससे कि अद्वैत का अनुभव होता है, और फलस्वरूप आत्मशान्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार शुद्ध जल सर्वत्र ही शुद्धीकरण करता है, उसी प्रकार सबसे छोटी और स्वतन्त्र देह, जो देहपुरुष के नाम से विख्यात है, वह सजीवपुरुष भी जीवों का विकास करके सर्वत्र आनंद को बढ़ाता है। इससे देहपुरुष आनंदरूप ही सिद्ध होता है। देहसमाज पूर्ण व युक्तियुक्त कर्मठता के साथ, तथा अद्वैत के साथ व्यवहार करता है।

इससे सिद्ध होता है कि मानव का वास्तविक विकास देहपुरुष की तरह अनासक्तिमय , युक्तियुक्त व सर्वहितकारी कर्मों के साथ होता है , अन्यथा नहीं, क्योंकि आसक्ति के साथ लाख उपाय करने पर भी सर्वहितकारिता संभव नहीं हो पाती। वेद का साररूप जो ब्रम्हज्ञान है , वह अनासक्ति से ही उत्पन्न होता है, तथा यह अनासक्ति शरीरविज्ञान दर्शन से सबसे अधिक सुलभ है। इससे सिद्ध होता है कि देहपुरुष वेदज्ञ होते हैं , तथा देहसमाज एक सर्वजनमुक्त समाज है, इसलिए पूर्ण है।

अपनी सत्ता के प्रति आकर्षण सजीव और निर्जीव, दोनों प्रकार के जगत का स्वभाव है। निर्जीव पदार्थ घटना के बाद ही अपनी सत्ता की रक्षा के लिए प्रयास करते हैं, क्योंकि उनमें उस घटना का संकेत करने वाले मन , बुद्धि, विचार आदि तत्त्वों का, अर्थात अंतःकरण का अभाव होता है, उदाहरणतः जैसे गदा के प्रहार के बाद शिला बिखर जाती है , परन्तु सजीव पदार्थ पुराने अनुभव के स्मरण से, श्रवण से व पठन से या बुद्धि द्वारा विश्लेषण करने के उपरांत उत्पन्न अनुमान से घटनाकारक व उस घटना के परिणाम का मन में ध्यान करके और फिर बुद्धि द्वारा निश्चय करके अपनी सत्ता की रक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए, गदायुद्ध से अनभिज्ञ पुरुष गदा का प्रहार सहने से पहले ही भाग जाता है, परन्तु गदायोद्धा गदा को गदा से, हाथ से या पैर से रोकने में स्मर्थ होता है , इसलिए वहीँ ठहरता है, केवल आपातकालीन स्थिति में ही भागता है। निर्जीव शिला अत्यधिक सटीकता, पूर्वनिर्दिष्टता व विज्ञानाधारित सामान्यसाधारण नियमों के साथ अपनी रक्षा करती है, पर सजीव गदयोधा अपने मस्तिष्क द्वारा निर्दिष्ट अनेक प्रकार के देहसंचालन से अतिरिक्त सुरक्षा प्राप्त करता है। देहपुरुष भी पूर्णतः सजीव की तरह ही अपने मस्तिष्क की क्रियाशीलता को प्रदर्शित करता है, परन्तु वह सजीव पुरुषों की तरह इससे आत्मबद्ध नहीं होता, जिससे कि वह अद्वैतपूर्ण, अनासक्त, अपरिवर्तनशील व जीवन्मुक्त पुरुष ही सिद्ध होता है, स्थूल पुरुष की तरह जीवनचर्या होने के परिपेक्ष्य से। अतः देहपुरुष पुरुषोत्तम स्वरूप ही है। अद्वैतभाव से सम्पन्न पुरुष भी देहपुरुष की ही तरह सभी ईश्वर - निर्दिष्ट मानवसेवारूपी कर्मों को अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए ही करता है, सुख-प्राप्ति के लिए नहीं, क्योंकि उसमें अद्वैत से सिद्ध निर्विकल्प आत्मानंद स्वयं ही विद्यमान होता है। पुरुष शब्द यहाँ साधारण, स्थूल मनुष्य का द्योतक है। देहपुरुष की तरह क्रियाशील होने पर भी अद्वैत की अवस्था केवल चिदाकाशात्मा से ही संभव है , क्योंकि संकल्प सदैव चिदाकाश के अंश होते हैं। देहपुरुष और पुरुष , दोनों पूरी तरह से एकरूप ही हैं , केवल एक काल्पनिक भिन्नता के साथ, वह यह कि देहपुरुष अनासक्त धारणा से सम्पन्न हैं, और पूर्णचेतन है, परन्तु पुरुष आसक्तधारणा से सम्पन्न है, इसलिए वह पूर्ण चेतना को भूला हुआ , अल्पचेतना से युक्त है। कर्म के साथ -२ मन के भाव भी बदलते रहते हैं। भावों को बिना किसी व्यवधान के बनने देना चाहिए। हमें तो केवल देहपुरुष के ध्यान से उन भावों-अभावों के प्रति अनासक्त अर्थात द्वैताद्वैत-संपन्न होना है। इसका अर्थ है कि हमें केवल साक्षीभाव से स्थित रहना है। कर्म व भाव एक-दूसरे के आश्रित रहते हैं। जब हम भावों को अधिक उच्च बनाए रखने का या उन्हें बदलने का प्रयत्न करते हैं , तब उनसे जुड़े हुए कर्म दुष्प्रभावित हो जाते हैं। प्राचीन शास्त्रों में अनासक्ति शब्द का प्रयोग कम ही दिखाई देता है। वहाँ राग -द्वेष को नष्ट करने पर जोर दिया गया है। राग-द्वेष के अभाव को ही अनासक्ति कहते हैं। योगवासिष्ठ में लिखा है कि मन से किया हुआ काम ही कर्म कहलाता है, जिससे बंधन होता है, अतः सभी कर्म शरीर से करने चाहिए, मन से नहीं। वैसे मन के बिना काम हो ही नहीं सकते, अतः मनोहीनता का अर्थ उसमें बिना आसक्ति वाला (रागरहित) या द्वैताद्वैत वाला मन ही है, जिसकी सिद्धि हमने शविद के माध्यम से की है। उस पौराणिक ग्रन्थ में भी अनासक्ति पर बहुत जोर दिया गया है, अतः शविद के सिद्धांत की पुष्टि हो जाती है। योगवासिष्ठ ग्रन्थ में ही तंत्रविज्ञान की पुष्टि करते हुए भी लिखा गया है कि जिस तत्परता के साथ अज्ञानी लोग कर्म करते हैं, उसी तत्परता के साथ ज्ञानी लोग भी करें। यहाँ पर ज्ञानी का अर्थ शविद आदि की अद्वैतवृत्ति को धारण करने वाला ही है।

देहदेश में सर्वोत्कृष्ठ कर्मविभाजन होता है। सभी देहपुरुष समूहों में ही कार्य करते हैं , अकेले नहीं। कोई पुरुषसमूह सम्पूर्ण देहदेश में अन्न को ढोता है, सभी देहपुरुषों के भोजन के लिए। कोई समूह देहदेश के किसानों द्वारा उत्पादित अन्न के अपाच्य अंश को पशुपालकों के लिए उपलब्ध कराता है ; जिनके घोड़े, हाथी, गाय आदि समस्त पालतु पशु समस्त देहदेश के लिए दूध, वस्त्र आदि अनेक वस्तुएँ, तथा मनोरंजन, यातायात आदि अनेक सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं। इससे स्वच्छता विभाग भी लाभान्वित होता है। कोई देहदेश विकसित होता है , कोई विकासशील। अपने नष्ट होने से पूर्व ही मातृदेश अपने जैसे पुत्रदेशों का निर्माण कर लेते हैं। मातृदेश के अनुसार ही कोई देश मूढ़ शासक वाला , कोई कुशाग्रबुद्धि-युक्त शासक वाला होता है। यद्यपि कुछ देश अपने बलबूते पर भी विकसित बन जाते हैं। देहदेश में भी अधिकारियों या शिक्षकों की एक दीर्घ परंपरा विद्यमान होती है। वहाँ पर

सभी उच्च लोग अपने से अधिक उच्च लोगों से सीखते हैं। सर्वोच्च शिक्षक अति सुरक्षित, सर्वसुविधाओं से सम्पन्न व वातानुकूलित नगरी में निवास करते हैं। कई बार समाज के लिए अहितकर उच्च आदेश का उसके अनुसरक पालन भी नहीं करते हैं।

कुछ पुरुष देहदेशसीमा पर तैनात होकर, अवैध प्रवेश की रोकथाम के लिए कंटीली तारों की दीवार व अन्य सीमा-भित्तिओं का निर्माण करते रहते हैं। एक समूह का कार्य अवैध रूप से प्रविष्ट बाह्य शत्रुओं का संहार करना होता है। मुख्य राजद्वार से वैधरूप से प्रविष्ट मित्र पुरुषों के लिए देहदेश के सीमाप्रांत में, मुख्य राजमार्ग के निकट, देश-सेवा का अवसर प्रदान किया जाता है, जिसके बदले में वे देहदेश के आवश्यकताधिक संसाधनों के साथ जीवनयापन करते हैं, और साथ में देहदेश का संरक्षण भी प्राप्त करते हैं। कुछ लोग कृषक हैं, जो सम्पूर्ण देश के लिए विविध प्रकार के अन्न उगाते हैं। कुछ विद्यार्थी आधारभूत शिक्षाप्राप्ति के उपरांत चिकित्साशिक्षा में उपाधि ग्रहण करके रोगियों की चिकित्सा करते हैं। एक संगठन शिल्पकारों का होता है ; जो कि मार्ग, ग्राम, नगर अदि संरचनाओं का निर्माण व उनकी क्षतिपूर्ति करता रहता है। ईश्वर की सृष्टि रचने की इच्छा की तरह ही देहपुरुष की इच्छा भी मानव के सर्वोत्तम लाभ के लिए कर्म से भरी हुई होती है, जिससे देहसृष्टि का सञ्चालन होता है। इससे सिद्ध होता है कि देहपुरुष ईश्वररूप ही होते हैं।

वास्तव में देहदेश के सभी विभाग उसके जन्म के साथ ही बन जाते हैं, क्योंकि एक के भी अभाव के बिना देहदेश का सञ्चालन संभव नहीं। समय के साथ, धीरे-धीरे संसाधनों की वृद्धि से वे पूर्वनिर्मित विभाग ही सुदृढ़ होते रहते हैं , अनावश्यक नए विभागों को खोलने की बजाय। कई विभाग अति क्रियाशील होते हैं, इसलिए उनके पुरुष अत्यधिक निष्ठा के साथ अनासक्ति का आचरण करते हैं, तथा थोड़े से विश्रामकाल में भी वे अद्वैतसाधना करते रहते हैं, जिससे कि उनकी सारी थकान दूर हो जाए और मन में शाँति छा जाए। सभी देहपुरुष पूजा , योग, संध्या-वंदन आदि आध्यात्मिक क्रियाएं नियमित रूप से करते रहते हैं। इन्हीं के प्रभाव से तो वे कर्मबंधन से बचे रहकर सदैव द्वैताद्वैत व अनासक्ति से संपन्न रहते हैं। देहदेश में सदैव नवजात उत्पन्न होते रहते हैं, जो प्रतिक्षण हो रही मृत्यु से बने रिक्त स्थानों की पूर्ति करते रहते हैं। वे नवजात प्रिय, सुकोमल व सुन्दर होते हैं, पर कार्य करने में अकुशल होते हैं। सम्पूर्ण देश पूरी तत्परता व सुरक्षा के साथ उनका पालन पोषण करता है। बाल्यकाल में वे साधारण शिक्षकों व परिवारजनों से खाना, पीना, चलना, हँसना, खेलना, पढ़ना, लिखना अदि सरल विद्याएँ सीखते हैं। कुछ बड़े होने पर, विशेष प्रशिक्षक उन्हें विशेष पुस्तकों के सहयोग से जटिल विद्याएँ सिखाते हैं, तथा उनके वंश, गोत्रादि के अनुसार किसी एक विशेष विद्या में विशेष दक्षता प्रदान करते हैं , जिससे कि कर्मविभाजन व उत्कृष्ठ कार्यदक्षता कायम रहती है।

देहपुरुष अनेक प्रकार के क्रीड़ा-करतबों को भी प्रदर्शित करते हैं, जिनमें एक क्रीडा पुरुषों के युद्धाभ्यास जैसी होती है। अगर देहसमाज के इतना जटिल होने पर भी देहपुरुष पूर्ण रूप से अनासक्त रह सकते हैं, तो पुरुष क्यों नहीं रह सकते, जबकि पुरुषों का स्थूल समाज अपेक्षाकृत साधारण होता है। वैसे देहपुरुषों के ध्यान से पुरुष अनासक्ति को अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। यही शरीरविज्ञानदर्शन का सार है। शरीरविज्ञाननदर्शन से जब पुरुष-रूपी जीवात्मा कुछ निर्मल हो जाता है, तो वह अनायास ही उच्च साधना की ओर अग्रसर हो जाता है। गूढ़ चिंतन से प्रतीत होता है कि देहपुरुष पर्वत , नदी, वायु आदि जड़ पदार्थों की तरह स्वयं ही चलायमान हैं, परन्तु साथ में वे मनुष्य की तरह भी व्यवहार करते हैं, जिससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनके अन्दर मनुष्य के जैसा मन है, पर वो उसमें मनुष्य की तरह आसक्त नहीं होते, अर्थात हमेशा अद्वैत भावना को धारण किए रहते हैं। वैसे पुरुष भी अनेक बाह्य पदार्थों के बल से अनासक्ति प्राप्त करते हैं, जैसे कि माँस, मदिरा, नशीले पदार्थ आदि-आदि; यद्यपि ये क्षणिक व सापेक्ष अनासक्ति प्रदान करते हैं, और साथ में शरीर के लिए हानिकारक होते हुए पापकर्म की ओर भी प्रवृत्त कर सकते हैं। शुद्ध भावनाओं व संकल्पों से भी अनासक्ति प्राप्त की जाती है; जैसे कि प्रेम , भ्रमण, व्यायाम, क्रीड़ा, कला, संगीत आदि-आदि से, परन्तु व्यावहारिक अनासक्ति का सर्वोत्तम उपाय शविद अर्थात शरीरविज्ञानदर्शन ही है, क्योंकि इसके बल से साँसारिक कार्यों में पूर्ण व्यस्तता के बावजूद भी अनासक्ति विद्यमान रहती है। इसके सहयोग से तो अनासक्ति उतनी ज्यादा उत्पन्न होती है , जितनी ज्यादा साँसारिक काम-काज की उलझनें होती हैं। यदि अनासक्तिकारक मानवीय व साँसारिक गतिविधियों के साथ शविद का भी आश्रय लिया जाए , तो उच्च कोटि की अनासक्ति अनायास ही उत्पन्न होती है। वास्तव में सारी पृथ्वी ही अनासक्तिकारक है, क्योंकि उसकी सभी घटनाओं में एक क्रमबद्धता और धैर्य सा होता है , जिस तरह कि ज्ञानी में होता है। अज्ञानी की तरह या अन्य ग्रह-नक्षत्रों की तरह उसमें अस्त-व्यस्तता नहीं होती। इसलिए कह सकते हैं कि पृथ्वी एक अद्वैतज्ञाननिष्ठ, महास्थूल पुरुष है, और हम सभी पुरुष उसके देहपुरुष हैं। देहपुरुष के अनुसरण से या अन्य किसी उपाय से, अद्वैत की भावना से ही जगत और ब्रम्ह, दोनों की सिद्धि होती है। संकल्पों को रोककर संकल्प नष्ट नहीं होते, अपितु इससे संकल्प अज्ञानकलारूपी सूक्ष्मरूप धारण करते हैं , और उपयुक्त समय पर पुनः स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं। देहपुरुष के चिंतन से उत्पन्न आसक्तिरहित मानवीय आचरण से भौतिकवादी और उत्पथगामी भी लाभान्वित होते हैं। जो कर्म शविद -अज्ञानियों के

लिए बंधनकारी हैं, वही कर्म शविद-ज्ञानियों के लिए मुक्तिकारी होते हैं। योगवासिष्ठ ग्रन्थ में लिखा है कि वास्तव में कर्मरूपी या जगतरूपी नदी दोनों दिशाओं में बहने वाली विचित्र नदी के समान है, जो दृष्टिकोण व विधि के अनुसार नीचे की ओर भी बहा सकती है, व ऊपर की ओर भी चढ़ा सकती है। चित्तवृत्ति के भाव-अभाव देहपुरुषों में भी प्रतिक्षण चलते रहते हैं, पर वे उनसे अनासक्ति के कारण अप्रभावित व समरूप बने रहते हैं, परन्तु आसक्ति के कारण पुरुष उनसे प्रभावित होकर समता को त्याग देते हैं, जो कि परम दुःख का कारण है। देहपुरुष ईश्वररूप ही हैं। इसका प्रमाण है, शास्त्रों-पुराणों के वचन। शास्त्रों में सभी बातें घुमा-फिरा कर कही गई हैं, ताकि दिमाग पर जोर पड़े और कुण्डलिनी जागृत होए। उनमें कहा गया है कि ईश्वर न तो भावरूप है, न अभावरूप है, दोनों भी है,और दोनों भी नहीं है। अगर हम ध्यान से सोचें तो ऐसी विचित्र स्थिति केवल तभी संभव है , यदि सभी साँसारिक कार्य युक्तियुक्त ढंग से व अनासक्ति के साथ किए जाएं। पूरी निष्ठा के साथ ऐसा करने वाले तो केवलमात्र देहपुरुष ही प्रतीत होते हैं।

आजकल महान उद्योगपति भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे आसक्तिपूर्ण ढंग से कार्य करते हैं, परन्तु वे यह नहीं देखते कि देहपुरुष तो उनसे भी बड़े उद्योगपति हैं, पर वे तो अपने सभी काम अनासक्ति के साथ करते हैं। अतः आज शरीरविज्ञानदर्शन का अध्ययन व अनुकरण अत्यावश्यक है। क्योंकि हम सृष्टि-विस्तार की देहपुरुष की इच्छा को पूरा करने के लिए ही संलग्न हैं , उसके सेवक की तरह, अतः जिस प्रकार एक आज्ञाकारी सेवक स्वामी को प्रतिक्षण मन में धारण करके ही सर्वथा आचरण करता है, उसी प्रकार हमें भी अपने पूर्वज देहपुरुषों को मन में धारण करके आचरण करना चाहिए। वास्तव में सभी पुरुष न्यूनाधिक रूप से देहपुरुष का ही अनुसरण करते हैं, क्योंकि देवप्रकृति व असुरप्रकृति, दोनों ही प्रकार के पुरुष अनासक्ति से ही कुछ स्थायी आनंद प्राप्त कर सकते हैं, यद्यपि देवों के द्वारा प्रयुक्त होने वाली अनासक्ति-प्राप्ति की विधियाँ अहिंसक होती हैं, जबकि असुरों द्वारा प्रयुक्त विधियाँ हिंसक होती हैं। असुर पुरुष माँस, मदिरा, देहक्षायी-यौनसंसर्ग, अन्य हानिकर व्यसनों व छः मानसिक दोषों के सहयोग से अनासक्ति प्राप्त करते हैं; परन्तु देवता लोग क्रीड़ा, भ्रमण, व्यवसाय, कला, विद्या, ज्ञान, विज्ञान, सत्कर्म व अन्य अहिंसक मानवीय गुण-कर्मों से; तथा प्रेम, सत्संग व धर्म अदि देवीय भावों से अनासक्ति-जन्य चिरस्थायी आनंद प्राप्त करते हैं। यद्यपि शक्ति-उपासक कुछ अपवाद हो सकते हैं। यद्यपि असुर व पशु अत्यंत आनंद को प्राप्त कर सकते हैं, पर शाश्वत आनंद तो केवल देव प्रकृति के लोग ही प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनमें हिन्सादि से उत्पन्न होने वाली आत्म-ग्लानि नहीं होती, वैसे तो कालांतर में शाक्त लोग भी अनायास ही देवों का अनुकरण करने लग जाते हैं। अधिकाँश पुरुष सबसे पहले स्थूल संसार को ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों से आसक्ति के साथ ग्रहण करते हैं, फिर इस श्रम से थक जाने के कारण चित्तवृत्ति से हीन हो जाते हैं, और आत्म-अन्धकार में डूब जाते हैं, अतः कुछ विश्राम करते हैं। विश्रामोपरांत कुछ स्फूर्ति प्राप्त करने पर वे पुनः चित्तवृत्तियों को अनुभव करने लग जाते हैं, जिनमें वे अन्धकार के भय के कारण पुनः आसक्ति नहीं करते। इससे वे कुछ भौतिक प्रगति के साथ कुछ आत्मप्रकाश प्राप्त करते हैं, परन्तु उस भौतिक तरक्की में पुनः आसक्त हो जाते हैं, और पुनः आत्मा के अन्धकार को अनुभव करने लगते हैं। इस प्रकार यह बंधनचक्र चलता रहता है, जिसमें वे कुछ प्रकाश व कुछ अन्धकार के मध्य ही झूलते रहते हैं, और परम प्रकाश प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे लगातार अनासक्ति को जारी नहीं रखते।

हास्य-विनोद से भी अनासक्ति का उदय होता है, क्योंकि इनके प्रति सत्यत्व बुद्धि नहीं होती। वास्तव में यदि अद्वैत दृष्टिकोण का प्रयोग किया जाए, तो पूरी निष्ठा व गुणवत्ता से किए गए साधारण कार्य भी मजबूत अनासक्ति पैदा करते हैं, जेसे कि पर्वतारोहण, नौका-चालन, युद्ध आदि साहसिक कार्य तथा कला, विद्या, पठन, लेखन, क्रीड़ा अदि सरल कार्य। संसार में कुरूपता अनासक्ति प्रदान करने के लिए ही बनी है। कर्म व आचरण की आसक्तिमय विधि संक्रामक रोग की तरह पूरे समाज में फैली है, जिसका समूल नाश इस दर्शन से ही संभव है। जैसे पुरुष-समाज अनेक प्रकार व अनेक स्तरों के होते हैं, उसी प्रकार देहपुरुष-समाज भी। जैसे पुरुष-समाजों में परिवार, ग्राम, देश, पृथ्वी आदि अनेक प्रकार के समाज हैं, उसी प्रकार देहपुरुष-समाजों में भी हैं, यद्यपि नाम भिन्न-भिन्न हैं। देहपुरुष की मुक्ति के लिए अनासक्ति अनिवार्य नहीं है, क्योंकि उसने कभी आसक्ति की ही नहीं। क्योंकि उसमें व्यक्त व अव्यक्त संकल्पों का अभाव होता है, अतः आसक्ति किससे करेगा व अनासक्ति किससे? इसलिए वह सदामुक्त है। क्योंकि पुरुष देहपुरुष की तरह संकल्पों के अभाव के साथ काम नहीं कर सकता, संकल्पों व कर्मों के एक दूसरे पर आश्रित होने के कारण , अतः उसके लिए संकल्पों के प्रति अनासक्ति ही एकमात्र उपाय है, मुक्ति के लिए, क्योंकि व्यक्ताव्यक्त संकल्पों के प्रति अनासक्ति उनके अभाव के समतुल्य ही है। अतः सिद्ध होता है कि अनासक्त पुरुष व सर्वसाधारण देहपुरुष, दोनों एकरूप ही हैं। जैसे सूक्ष्म पशुओं ने अपने क्रमिक विकास से देहपुरुष की रचना की , जिसने फिर अपने फले-फूले वंश के कर्मविभाजन से देहसमाज को रचा; उसी प्रकार स्थूल पशुओं ने स्थूल पुरुष की रचना की , जिसने फिर अपने समाज को रचा। जैसे सूक्ष्म पशु की इन्द्रियाँ खासकर मस्तिष्कगत, निम्न कोटि की होती हैं, जिससे वे देहसमाज के निर्माण में अक्षम होते हैं; उसी प्रकार स्थूल पशु भी इन्द्रिय-न्यूनता के कारण स्थूल समाज के निर्माण में अक्षम होते हैं। आश्चर्य तो यह है कि देहसमाज में सभी पुरुष और साथ में सभी पशु भी मुक्त हैं , पर स्थूल समाज में केवल विरले पुरुष ही मुक्त होते हैं। स्थूल पुरुष की मुक्ति के लिए उसके द्वारा संकल्पों के प्रति अनासक्ति आवश्यक होती है , जो स्थूल पशुओं के लिए

करना असंभव है, क्योंकि उनमें बुद्धि का अभाव होता है। स्थूल पुरुष के जैसा चेतन जीव ही देहपुरुष की तरह चेतना -विकास के लिए कर्म कर सकता है, जड़ नहीं। साथ में, देहपुरुषों में संकल्प भी नहीं होते हैं। अतः सिद्ध होता है कि देहपुरुष मूल चिदाकाश रूप ही हैं।

नियमबद्धता से भी अनासक्ति उत्पन्न होती है, क्योंकि नियम के अंतर्गत कर्म में आसक्ति को पैदा करने वाली स्वार्थ बुद्धि व बेचैनी नहीं होती। इसी प्रकार, ज्योतिष-निर्दिष्ट व लोकहितार्थ कर्म के बारे में भी समझ लेना चाहिए। चित्तवृत्तियाँ चिदाकाश की तरह चिन्मय व प्रकाशमान होती हैं। इनके प्रकाश व चिन्मयता को लुप्त नहीं किया जा सकता। अतः देहपुरुष की तरह अद्वैत तभी संभव है , जब पुरुष अपनी आत्मा को अन्धकार -विहीन व जड़ता-विहीन करे, अर्थात आत्मरूप से चिदाकाश बने। परीक्षा केवल कठिनाइयों में ही होती है। ऐसे तो सुख -सुविधाओं के बीच में बहुत से लोग अद्वैतवादी होने का दावा करते हैं, परन्तु जब उनके ऊपर मुसीबत आती है, तब उनका अद्वैत हवा में फुर्र हो जाता है, और वे चीखने-चिल्लाने लग जाते हैं। यदि कोई कठिनाइयों के बीच में भी अद्वैत को धारण करके रखे , तो उसका कुण्डलिनीजागरण तय है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो वही हुआ था। आजकल के भौतिककयुग में, इस प्रकार का शक्तिशाली अद्वैत केवल शविद जैसे बलवान व वैज्ञानिक शास्त्र से ही सहजता से संभव है।

जिस प्रकार स्थूल देश की सीमा दुर्गम होती है, और वहाँ पर कम जनसँख्या व कम संसाधन होते हैं, उसी प्रकार की स्थिति देहदेश की सीमा पर भी होती है। देहपुरुषों के द्वारा कर्मविभाजन कार्य की उत्कृष्ठता के लिए होता है , तथा साथ में इससे कर्मों-संकल्पों के बवंडर से उत्पन्न रजोगुण व तमोगुण का निवारण भी होता है। अनासक्ति से प्रथमतः तो भौतिक पतन प्रतीत होता है , परन्तु तनिक अभ्यास होने पर तीव्र उन्नति का अनुभव होता है , भौतिक भी व आध्यात्मिक भी। देहपुरुष के ध्यान से अद्वैत की वृत्ति पैदा होती है, जो चित्त को नियंत्रण में रखती है। इसके अभाव में संकल्प अनियंत्रित रूप से स्फुरित होते रहते हैं, जिससे क्षणिक व अनावश्यक भौतिक विकास होता है, और साथ में पापकर्म भी होते हैं। अनियंत्रित चित्त से कुण्डलिनी का पतन भी होता है। इस बात से अनभिज्ञ पुरुष अज्ञान की महिमा का गायन करते हैं। शंकालु पुरुष यह वितर्क भी करते हैं कि जैव रसायन ही देहपुरुषों से कर्म करवाते हैं, और उनकी अपनी बुद्धि नहीं होती , परन्तु वे स्वयं भी तो किसी न किसी की प्रेरणा या आदेश से ही कर्म करते हैं। शब्द भी तो कर्मप्रेरक वायु ही है, दृश्य भी कर्मप्रेरक प्रकाश ही है, तथा संकल्प भी तो कर्मप्रेरक विद्युत-स्पंद ही है। जिस प्रकार दैहिक समस्याएँ देहपुरुषों को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं, उसी प्रकार स्थूल समाज की समस्याएं पुरुष को। जैसे देहपुरुष समस्याओं से मुंह नहीं मोड़ते, परन्तु उनका हल करते हैं, उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष भी। देहपुरुषों की अद्वैतयुक्त क्रियाशीलता नवजात पुरुषों में सर्वाधिक होती है , इसीलिए वे शरीरविज्ञानदर्शन के जीवंत रूप होते हैं, तभी तो परम प्रिय लगते हैं। इन सभी बातों से सिद्ध होता है कि जिस तरह देहपुरुष के सञ्चालन के लिए बंधनयुक्त जीवात्मा की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार स्थूल पुरुष के लिए भी नहीं होती। अल्प बुद्धि वाले लोग इस बात को मानते हैं कि आत्मज्ञान की अवस्था में कर्म नहीं हो सकते। अगर ऐसा है तो देहपुरुष इतने कर्मठ क्यों होते हैं , क्योंकि वे तो सदैव आत्मज्ञान से सम्पन्न होते हैं। वास्तव में रजोगुण से केवल पुरुष ही बद्ध होते हैं, क्योंकि रजोगुण के बवंडर में अद्वैतज्ञान की वृत्ति गायब हो जाती है। इसीलिए सुबह-साँय के शाँत समय में साधना करने के लिए कहा जाता है। चूंकि देहपुरुष संकल्पों को अनुभव ही नहीं करते हैं, अतः उन्हें ज्ञानवृत्ति की भी आवश्यकता नहीं होती।

जब भी मन में उत्तेजना या व्यर्थ संकल्पों का बखेड़ा खड़ा हो , तभी मन को अद्वैतमय देहपुरुषों की भावना से शाँत करें। जब ही मन में अवसाद आए, तभी अपने को देहपुरुष की तरह अनोखे शून्य की तरह समझें, जो न तो भावरूप हैं, और न ही अभावरूप। देहपुरुषों में जब संकल्पों का ही भाव नहीं है, तो अभाव कहाँ से होगा? अतः उनके मन में जब उत्तेजना ही नहीं , तो अवसाद कहाँ से होगा? हर्ष के अभाव में विषाद कैसा? जब उनमें मनस्कता ही नहीं होती, तो अमनस्कता का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता। सब कुछ करते हुए भी वे कर्ता नहीं हैं, तो अकर्ता या निकम्मे कैसे हो सकते हैं?

देहपुरुष अपने देहसमाज के हित के लिए देहदेश की सभी समस्याओं का चक्षु आदि इन्द्रियों से गहनता से अनुभव करते हैं , फिर मन से उसके निराकरण की रूपरेखा बनाते हैं। अपनी बुद्धि से उसका विश्लेषण करके एक निर्णय पर पहुँचते हैं, फिर निर्णय के अनुसार सबसे उपयुक्त योजना बनाते हैं। अंत में, योजना को अपनी अद्वितीय कर्मठता व हस्त-पाद आदि कर्मेन्द्रियों के सहयोग से क्रियान्वित करते हैं। अपनी कर्तव्यपरायणता में वे पुरुषों से कहीं ज्यादा कुशल होते हैं, क्योंकि उनकी शक्ति व्यर्थ संकल्पों के रूप में बर्बाद नहीं होती, क्योंकि वे आत्मानंद से पूर्ण होते हैं। आत्मज्ञान से रहित पुरुष व्यर्थ संकल्पों का उपयोग आनंद प्राप्ति के लिए करते रहते हैं। देहपुरुष कर्तव्यपूरक संकल्पों को ईश्वर की सृष्टि-विकास की दिव्य इच्छा को पूर्ण करने के लिए ही धारण करते हैं, स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं, अतः वे महान प्रभुभक्त भी सिद्ध होते हैं।

देहपुरुष पुरुषों द्वारा किए जाने वाले सभी कर्मों को करते हैं। उदाहरण के लिए, वे बोलते हैं, लिखते हैं, पढ़ते हैं, चलते हैं, बढ़ते हैं, खेलते हैं, अभ्यास करते हैं, स्मरण रखते हैं; आदेश देते हैं, व पालन करते हैं; विवाह करते हैं, युद्ध करते हैं, स्पर्धा करते हैं; गठजोड़ बनाते हैं, व तोड़ते हैं; खाते हैं, पीते हैं, साँस लेते हैं, मलोत्सर्जन करते हैं, घुमते-फिरते हैं, बीमार होते हैं; आसक्त व अनासक्त होते हैं; मरते हैं, व पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं; परिवर्तित होते हैं,

संगठन बनाते हैं, आत्मदाह करते हैं, एकांतवास करते हैं, विद्रोह करते हैं, सोते हैं, योग करते हैं, और संगदोष से भी प्रभावित होते हैं। उनकी जीवनचर्या पूरी तरह से पुरुष के ही सदृश है। देहपुरुष अवश्य ही पूर्ण हैं। यदि वे पुरुषों की तरह अपूर्ण होते, तो उन्हीं की तरह आनंद के लिए संकल्पों पर आश्रित होते, जिससे कि देहजगत के कार्य अत्यंत सटीकता से नहीं होते और देहदेश अर्थात जीवों का अस्तित्व ही संभव नहीं होता। देहजगत के सञ्चालन के लिए स्थूलजगत की अपेक्षा कहीं ज्यादा सटीकता व अनुशासन की जरुरत होती है, जो कि संकल्पों के प्रति आसक्ति से कतई भी संभव नहीं है।

क्योंकि आसक्ति ने ही पुरुष के आत्मा की चेतना को भुलवा दिया है , अतः अनासक्ति ही उसे वापिस पुनः स्मरण करा सकती है। यह अनासक्ति देहपुरुष से सीखने योग्य है। कर्म करने की गति मध्यम ही होनी चाहिए, क्योंकि अति तीव्रता से अद्वैतमय देहपुरुष का चिंतन नहीं हो पाता और अति मंदता से वे संकल्प ही उत्पन्न नहीं होते, जिनसे कि अद्वैत सार्थक होता है। जब संकल्प ही नहीं होंगे, तो कैसे अद्वैत होए ओर कैसे अनासक्ति? अद्वैत भी दो स्तरों वाला होता है। प्रथम स्तर में सभी भावों के बीच अद्वैत होता है , और द्वितीय स्तर पर भाव और अभाव के बीच। देहपुरुष इन दोनों स्तरों के अद्वैत से संपन्न होते हैं।

देहपुरुष के द्वारा बात करना भी संकेत करने का ही एक रूप है। वे विभिन्न प्रकार के संकेतों से आपस में बात करते हैं। जिस प्रकार एक विशेष प्रकार के शब्द एक विशेष प्रकार का कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं , उसी प्रकार संकेत भी। उदाहरण के लिए, उग्र देहपुरुषों से त्रस्त नागरिक देहपुरुष उनको मरवाने के लिए उनकी गुप्त सूचना संकेतों के द्वारा रक्षा विभाग को भेजते हैं। इसी प्रकार संकेतों से ही क्षुधापीड़ित देहपुरुष देहराजा के समक्ष अन्न हेतु संकेतरूपी प्रार्थनापत्र भेजते हैं, जो कि उसे पाकर फिर अपनी मंत्री परिषद् में वह प्रस्ताव रखता है। खाद्यान्न से सम्बंधित मंत्री फिर अनेक अधिकारी पुरुषों की उचित श्रृंखला के माध्यम से कृषक देहपुरुषों को अन्न के उत्पादन हेतु संकेतरूप में आदेश देता है। केवल मुख्य आदेश ही राजा के द्वारा दिया जाता है, इससे सम्बंधित अन्य सभी व्यवस्थाएं मंत्रियों व अधिकारियों के विभिन्न स्तर व श्रेणी के समूहों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं। यही प्रणाली स्थूलदेश में भी दिखाई देती है। यह विचित्र है कि देहदेश का मंत्रीदल अपने कर्मों का अनुभव नहीं करता , परन्तु देहदेश का राजा, जो पुरुष या जीवात्मा नाम से संबोधित किया जा रहा है, वह उन सभी कर्मों का अनुभव करता है, जिनके प्रति आसक्ति से वह बद्ध हो जाता है। यह प्रत्यक्ष है कि पुरुष उस अनुभव का निवारण नहीं कर सकता, परन्तु वह उसके प्रति आसक्ति का निवारण तो कर ही सकता है। आसक्ति का निवारण देहपुरुष के ध्यान से होता है।

अब देहपुरुष के लेखन के बारे में कहते हैं। देहदेश के सैनिकों की एक विशिष्ट श्रेणी एक विशेष प्रकार की स्याही का प्रयोग करके एक गुप्त व सूक्ष्म प्रार्थना पत्र को बड़ी चतुराई से आक्रमणकारी शत्रु के ऊपर चिपका देती है , जिसको पढ़कर निशानेबाज देहसैनिकों की एक अन्य विशिष्ट श्रेणी उन उग्रवादियों को पहचानकर मार देती है। वाहक देहपुरुष और सैनिकदेहपुरुष वैसे ही भ्रमणशील होते हैं, जैसे कि उनके समकक्ष पुरुष, क्योंकि उनके कर्मों का स्वभाव तीव्रता वाला होता है। सैनिकदेहपुरुष संपूर्ण देहदेश को बाहरी शत्रुओं और भीतरी देशद्रोहियों से बचाने के लिए हर समय व सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। उनकी छोटी सी भी असावधानी से समग्र देहदेश नष्ट भी हो सकता है , अतः उनके शारीरिक व मानसिक अंग पूर्णतया स्वस्थ होते हैं। उनकी व्यावसायिक कार्यप्रणालियाँ भी बहुत जटिल होती हैं। उनका आपसी संवाद भी लाजवाब होता है। उनके साथ-साथ ही शिल्पकार वर्ग के देहपुरुष भी अनेक कामगार देहपुरुषों के साथ चले रहते हैं, जो कि दुर्घटना के दौरान मौके पर पहुँच कर मुरम्मत वगैरह का काम करते रहते हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि देहपुरुष उपरोक्त सभी काम अनासक्ति व अद्वैत के साथ सम्पन्न होकर करते हैं। शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित रहकर भी देहपुरुष सर्वोत्तम कर्मठता दिखाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वे महान कर्मयोगी होते हैं। जो-जो काम देहपुरुष करते हैं, वो-२ सभी काम पुरुष भी वैसे ही करते हैं। जो-२ अवस्थाएँ देहपुरुष धारण करते हैं, वो-२ सभी अवस्थाएँ पुरुष भी वैसी-२ ही धारण करते हैं, फिर केवल पुरुष ही अपने को कर्ता-भोक्ता क्यों मानते हैं? देहपुरुष तो मानते नहीं।

इस पुस्तक में कर्मयोगी देहपुरुषों का व कुण्डलिनीयोग का वर्णन इसलिए साथ-२ किया गया है, क्योंकि कर्मयोग व कुण्डलिनीयोग दोनों एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं, न कि विरोधी। दोनों साथ-२ चलते हैं, व एक-दूसरे को बल देते रहते हैं। परिस्थिति के अनुसार दोनों के बीच का अनुपात बदलता रहता है। यदि कर्म का प्रभाव प्रधान हो , तो कर्मयोग मुख्य होता है, जबकि कुण्डलिनीयोग गौण होता है। यदि विविधपरिस्थितिवश कर्म करने का अवसर कम ही उपलब्ध हो, तो कुण्डलिनीयोग मुख्य और कर्मयोग गौण हो जाता है।

देहपुरुष भी पुरुष की तरह ही बढ़ते भी हैं। उनके नवजात सबसे तेजी से बढ़ते हैं। उन्हें अत्यधिक आहार की आवश्यकता होती है , इस कारण से, परन्तु उनके पेट का आकार बहुत छोटा होता है। इसलिए वे अपने पिता आदि वयोवृद्ध देहपुरुषों की भांति सामाजिक कार्य नहीं कर सकते। वे तो केवल अपने भारी भरकम भोजन को दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा करके खाते रहते हैं। कर्म करने के लिए उनके द्वारा की जाने वाली बार-बार की चेष्टा

क्रीड़ा ही कही जाएगी, क्योंकि वे चेष्ठाएं अधिकाँशतः निष्प्रभावी ही होती हैं। व्यस्क पुरुष उनका पालन-पोषण उत्तम विधि से करते हैं। उनको समस्त सुख-सुविधाओं से संपन्न, अन्न-जल से पूर्ण व उग्रपंथियों से मुक्त अन्तःपुरों में सुरक्षित रखा जाता है। वहाँ पर बाहरी क्लेषप्रद वातावरण का प्रभाव नहीं होता। इस प्रकार ऐसे गुप्त व सुरक्षित स्थानों पर उनका अति स्नेह से लालन -पालन किया जाता है। ज्यादातर व्यस्क देहपुरुष काम के दबाव के कारण कुछ कलिष्ट जैसे रहते हैं। वे भोजन के प्रति उतने उत्सुक नहीं रहते , क्योंकि उनके शरीर पूर्ण विकसित अवस्था में होते हैं, जिन्हें भोजन केवल क्षति-पूर्ति व कर्म-शक्ति की प्राप्ति के लिए ही चाहिए होता है। यद्यपि सैनिकदेहपुरुष बहुभक्षी होते हैं, युद्धादि के समय तो और भी ज्यादा, अतः उनके लिए अत्यधिक मात्रा में अन्न-भंडारण की विशेष व्यवस्था रखनी पड़ती है।

देहपुरुष के शरीर में भी पुरुष की ही तरह निरंतर क्षति होती रहती है , जैसे कि विभिन्न अंगों की दुर्बलता, उनका भंग होना और उनमें कमजोरी आना आदि-२। खाए हुए अन्न से वे अपनी समस्त जीवन प्रणालियों को जीवित व गतिमान रखते हैं , जैसे कि श्वास-प्रश्वास, बोलना, लिखना, चलना, पढ़ना आदि-आदि।

जब भी मोह का अनुभव हो, तो उसी समय मोहरहित देहपुरुषों का स्मरण करना चाहिए। इसी प्रकार मदाप्लावित निजावस्था अनुभव होने पर भी एक नजर उनकी ओर भी घुमा लेनी चाहिए। ईर्ष्या उत्पन्न होने पर देखें कि कैसे सामान्य देहपुरुष वातानुकूलित भवनों में काम करने वाले देहपुरुषों से ईर्ष्या नहीं करते। अकर्मकता व कर्तव्यच्युति की संभावना होने की अवस्था में उन कर्मठ व कर्तव्यपरायण देहपुरुषों के बारे में जरा सोचें। मन के चंचल व विचलित होने पर शाँत मन के धनी देहपुरुषों की मन ही मन प्रशंसा करें। इसी तरह उत्तेजना , अवसाद व अन्य मानसिक दोषों तथा शारीरिक दोषों को उनके चरित्र-चिंतन से प्राप्त शक्ति से नष्ट करें।

देहसमाज के शत्रु बने हुए कुछ सूक्ष्मपुरुष कम बलशाली होते हैं, अतः देहसमाज की हानि करने में अस्मर्थ होते हैं। वे समाजबाह्य पुरुषों की तरह , देहदेश के बाहर अकेले में जीवनयापन करते रहते हैं। जब वे देहसमाज में अवैध रूप से प्रविष्ट होते हैं, तब देहदेशसैनिक उनको मारने वाला युद्धाभ्यास करते हैं। इससे वे भविष्य में महान बलशाली शत्रुओं को भी खदेड़ देते हैं। सूक्ष्मपुरुष यहाँ पर देहपुरुष का पर्यायवाची है, क्योंकि उसे नंगी आँख से नहीं पर विशेष यन्त्र से देखा जा सकता है। इसी प्रकार सूक्ष्म समाज देहसमाज का पर्यायवाची है। वास्तव में देहपुरुष के सभी काम क्रीड़ारूप ही हैं , अनासक्ति के कारण।

सूक्ष्मपुरुष के शरीर में भी पुरुषशरीर की ही तरह विभिन्न अंग भी होते हैं, जो कि उसी की तरह उसके मस्तिष्क के द्वारा नियंत्रित होते हैं। उसके देहसमाज के अन्दर भी बहुत से देहपुरुष निवास करते हैं, जिनके बीच में कुछ शरणार्थी भी होते हैं, जो कि उग्रपन्थियों के द्वारा भगाए हुए होते हैं। वे शरणार्थी कृतज्ञता दर्शाने के लिए कई कठिन कार्य करते हैं, जैसे कि अग्निकुंड का सञ्चालन। कइयों ने किसानों को अपने देश में शरण दी हुई होती है। वे किसान अपने स्वामीदेश के लिए खाद्यान्नों का भरपूर उत्पादन करते हैं। ये सभी देहपुरुषांतरपुरुष भी देहपुरुष की ही तरह अद्वैतनिष्ठा के साथ कर्म में लगे रहते हैं। इनके देहसमाज के अन्दर भी एक अन्य जनसमूह विद्यमान होता है, जिसके लोग भी देहपुरुष की तरह ही अपने अधिष्ठाता देहपुरुष की प्रीति के लिए अनासक्ति के साथ कर्म व व्यवहार में लगे रहते हैं। इन सभी प्रकार के पुरुषों में केवलमात्र स्थूलपुरुष ही अनेकरूप , आसक्त, अपूर्ण व चिदाकाशांशरूप होते हैं। अन्य सभी पुरुष तो अद्वैतरूप, अनासक्त, पूर्ण व चिदाकाशरूप होते हैं। इन सभी पुरुषों में देहपुरुष ही हमारे निकटतम व सर्वश्रेष्ठ भी है, क्योंकि स्थूल दृष्टि से वह हम पुरुषों के सर्वाधिक समकक्ष होता है, तथा आत्मदृष्टि से अन्य सभी पुरुषों के।

वैसे तो हमेशा ही शविद लाभदायक है, पर काम, क्रोध आदि मानसिक विकारों के प्रभावकाल में तो यह अत्यधिक लाभकारी होता है।

सौरमंडलदेह में भी ग्रह-नक्षत्र आदि देहपुरुष विद्यमान रहते हैं, जो सदैव सूर्यरूपी हृदय की या मस्तिष्क की परिक्रमा , अर्थात आज्ञापालन करते रहते हैं, क्योंकि यदि वे परिक्रमा का अपना दायित्व त्यागते हैं , तो स्वयं सूर्य के द्वारा क्रोधरूपी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से दण्डित किए जाने का डर उन्हें सताता रहता है। यदि वे यह कर्म छोड़कर, दंड से बचते हुए दूर भाग जाएं, तो सूर्य के बिना वैसे ही अव्यवस्थित , निरर्थक व निर्जीव हो जाएंगे, जैसे दिमाग के बिना शरीर।

अब पृथ्वीदेह के बारे में कहते हैं। नदियाँ इसकी रक्तवाहिनियाँ हैं , जो अपने देहदेश की वृद्धि के लिए समस्त पोशकतत्त्वों को लाती हैं , तथा अपशिष्टों को ले जाती हैं। पृथ्वी -देहदेश के पशु इन अपशिष्टों से अपने व अन्य समस्त पुरुषों के लिए पोशकतत्त्वों व खाद्यान्नों का संश्लेषण करते हैं। इसके गंध, रूप, शब्द अदि संदेशवाहक गुण, इसके स्नायुतंत्ररूप और उसमें कार्य करने वाले घटक , उसके देहपुरुष हैं; जिस तरह से सृष्टिदेह के संदेशवाहक, नारदमुनि हैं। इसके सभी जीव भी इसके देहपुरुष हैं। पर्वत आदि उच्च भूमियाँ व पत्थर आदि पदार्थ इसकी अस्थियाँ हैं। मिट्टी इसका माँस है। इसके वृक्ष व जीवाणु, देहपुरुष के अन्दर विद्यमान उन शरणार्थी पुरुषों की तरह हैं, जो कि उद्योगों में अनेक महत्त्वपूर्ण पदार्थों का निर्माण करते हैं।

इसकी वायु का स्पंदन इसका श्वास-प्रश्वास है, जिससे कि इसके अंतर्गत विद्यमान सभी पुरुषों को ऑक्सीजन मिलती है। सूर्य , अग्नि व इसके अपने देहपुरुषों के क्रियाकलापों से इसमें गर्मी उत्पन्न होती है। इससे इस स्वस्थ पृथ्वीदेह का तापमान स्वस्थ पुरुष की भांति स्थिर बना रहता है। इससे इसके देहपुरुष स्फूर्ति व दक्षता के साथ कार्य करते रहते हैं। आजकल विभिन्न प्रदूषणों से क्लिष्ट भूदेह ज्वर की हालत में है। अपनी अत्यधिक क्रियाशीलता से इसके देहपुरुष इसका शारीरिक तापमान बढ़ा रहे हैं। यदि समय रहते इस ज्वर की चिकित्सा नहीं की गई, तो शीघ्र ही इसके देहपुरुषों का जीवन दूभर हो जाएगा। वैसे तो थोड़े समय के लिए उत्पन्न ज्वर जरूरी होता है , क्योंकि यह आक्रान्ता शत्रुओं को हतोत्साहित करता है। परन्तु ज्वर का लगातार बने रहना हानिकारक होता है। पृथ्वीदेह के सिंह आदि व अन्य मूढ़ पुरुष इसकी पुरुषसंख्या को नियंत्रण में रखते हैं , तथा साथ में महामारियों को भी रोकते हैं। जिस प्रकार स्थूलदेह के स्वास्थ्य के लिए वातपित्तकफ़ आदि का संतुलन आवश्यक है , उसी प्रकार पृथ्वीदेह के लिए भी। पृथ्वीदेह में इसको संतुलित करने वाले वैद्य समाजसुधारक कहलाते हैं।

अब मानवीय स्थूलदेह पर लौटते हैं। देहपुरुषों की सभाएं भी होती हैं। उनका अतितीव्रता से आपसी संवाद ही उनकी सभा है। एक सभा में देहकिसान पानी की कमी का मुद्दा उठाते हैं। उनके साथ ही दुसरे देहपुरुष भी जल की कमी से उत्पन्न शक्तिहीनता ; पाचन, मलनिष्कासन, श्वसन और परिवहन आदि सभी कार्यप्रणालियों में रूकावट का बखान करते हैं। सभी पुरुषों ने इन बातों का अनुमोदन किया। जलमंत्री ने यह बात राजा के समक्ष रखी। फिर राजा ने बड़े देश से जल को आयात करने का आदेश दिया। जल से भरी गाड़ियाँ देहदेश को पानी उपलब्ध करा कर लौट गईं। ऐसा तब तक किया गया, जब तक कि वर्षा नहीं हो गई। वर्षा होने पर वर्षा का जल सीधे तौर पर ही देहदेश को उपलब्ध हो गया। फिर जल का दूर देशों से आयात रुकवा दिया गया। सिंचाई एवं जनस्वास्थ्य विभाग द्वारा निर्मित नालियों व जलकुंडों में पर्याप्त जल प्रवाहित होने लगा , जिससे सभी देहपुरुष जलस्रोतों से भरपूर व तुष्ट हो गए। कभी-२ अतिवृष्टि होने पर जलविभाग के देहपुरुष पूरी दक्षता से जल को नदियों के रास्ते देहदेश से बाहर कर देते हैं, जिससे बाढ़ जैसी हालत पैदा नहीं होती। इसी प्रकार अनावृष्टि के दौरान नदी -नालों के जल को शोधन करने के उपरांत यन्त्र आदि की शक्ति से देहदेश के पुनः उपयोग हेतु चढ़ाया जाता है। जिस प्रकार देहसमाज की सभी क्रियाएं व अवस्थाएँ ईश्वरेच्छा के साथ होती हैं , उसी प्रकार स्थूलसमाज की भी होती हैं। स्थूलपुरुष यदि इस बात को समझें, तो उन्हें बंधन होने का कोई भी कारण नहीं है।

देहपुरुषों में स्मरण की वृत्ति यही है, जो वे मानवीय कर्मों को दक्षता के साथ पुनः-२ करते रहते हैं, यद्यपि अनासक्ति के साथ। कर्मविधि के स्मरण से ही देहपुरुष आवश्यकता के अनुसार भिन्न -२ उत्पादों का उत्पादन करते रहते हैं , तथा भिन्न-२ कार्यों को पहले की तरह ही करते रहते हैं। एक देहसैनिकों की श्रेणी तीव्र स्मरणशक्ति से संपन्न होती है। इसके सैनिक पुराने दुश्मनों को और उनको परास्त करने की नीति को जीवनपर्यंत स्मरण रखते हैं।

देहदेश में शासनपरंपरा अति उत्तम होती है। वहाँ पर प्रत्येक विभाग के ऊपर एक विभागाध्यक्ष पुरुषों का समूह नियंत्रण रखता है। वातानुकूलित कक्ष में काम करने वाले, यातायात विभाग के अध्यक्ष पुरुष, ऊर्जाचालित वाहकयंत्रों को चलाने व नियंत्रित करने के लिए वाहनचालक देहपुरुषों को आदेश देते हैं। यन्त्र में दोष उत्पन्न होने पर अभियंता देहपुरुष शीघ्रता से वहाँ पहुँचते हैं , और उन दोषों का निराकरण करते हैं। देहदेश में कार्यकर्ताओं का समूह इसीलिए बनाया जाता है , ताकि संगठित शक्ति प्राप्त हो , एक पुरुष के द्वारा की जा सकने वाली मनमानी का निवारण हो और लोकतंत्र स्थापित हो। उसी विभाग के कुछ पुरुष स्थानीय जनता के सहयोग से, वहाँ की सड़कों व अन्य मार्गों को आवश्यकता पड़ने पर चौड़ा भी करते रहते हैं, खासकर तब, जब देहदेश के उस भाग से अन्न, वस्त्र आदि वस्तुओं व विभिन्न कार्यकर्ता पुरुषों की अधिक आपूर्ति के लिए सत्यापित मांगपत्र प्राप्त होता है। ऐसा तब भी होता है, जब उस क्षेत्र में यन्त्र आदि अन्तःसंरचनाओं का तथा उद्योग, भवन आदि बाह्यसंरचनाओं का काम तीव्रगति से चल रहा होता है। ऐसा युद्ध आदि के समय भी होता है। देहदेश के नीतिनिर्माता व नीतिनियंता देहपुरुषों के समूह, अपने-२ कार्यों के अनुसार, पृथक-२ भवनों में रहते हैं। ये भवन शाँत, मनोरम व स्वच्छ स्थान पर बने होते हैं। ये भवन वातानुकूलित, स्वच्छ व विविध साधनों से सम्पन्न होते हैं। देहदेश के अधिकारी व मंत्री लोग यहाँ पर वातावरणीय व पारिवारिक विघ्नों से अछूते रहते हुए , शान्ति के साथ निवास करते हैं। सभी भवन साथ-२ व एक ही सीमांकित क्षेत्र में बने होते हैं। इससे इनमें आपसी संवाद बेहतर होता है , जिससे देहदेश को सुचारु रूप से चलाने में मदद मिलती है। स्थूलदेश में भी तो ऐसा ही होता है, अधिकाँशतः। वास्तव में सभी देहपुरुष अनासक्ति के कारण आत्मरूप से सदैव अद्वयचिदाकाशरूप ही हैं , अतः आत्मरूप से सदैव शाँत हैं। देहदेश के अधिकारियों व मंत्रियों में उपलक्षित उपरोक्त शाँति तो केवल उनके शरीर और मन के संदर्भ में ही है।

स्थूलदेश की वाहकलौहश्रृंखला की तरह ही देहदेश में भी यन्त्रशक्ति से चलने वाली एक विशेष प्रकार की द्रवश्रृंखला विद्यमान होती है। इसके द्रवनदी के द्रव के धीमा होने पर तथा इसके मार्ग के संकरा होने पर इसके अन्दर तैरते हुए जीवनतत्त्व स्वतः रूप से बाहर निकलते रहते हैं , तथा

देहदेश के अपशिष्ट पदार्थ अन्दर घुसते रहते हैं। वे जीवनतत्त्व देहदेश में सर्वत्र फैलते हुए , देहदेश को जीवित व चलायमान रखते हैं। पदार्थबहुल क्षेत्रों से जीवनतत्त्व पदार्थ नदी के अन्दर भी प्रविष्ट होते रहते हैं। इस नदी के अन्दर देहदेशसैनिक भी बहाकर ढोए जाते रहते हैं , जो युद्धग्रस्त क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार बाहर कूदते रहते हैं। उग्रपन्थियों को निपटाकर वे सैनिक दूसरे स्थानीय मार्गों से उग्रपन्थियों को ढूँढते व मारते हुए, प्रवेश वाले मार्ग से अलग एक अन्य राजमार्ग से लौटते हुए, वापिस मुख्य राजमार्ग में पहुँच जाते हैं।

देहदेश में एक पृथक ऊर्जाविभाग भी विद्यमान होता है। इसके ऊर्जागृह , नियामक यन्त्र व कर्मचारी संपूर्ण देश में प्रचुरता से व्याप्त होते हैं। पृथ्वीदेश से ईंधन को आयात करके देहदेश के असंख्य अग्निकुंड रात-दिन नियंत्रित रूप से जलते रहते हैं। ये अग्निकुंड स्थूलदेश के तापविद्युतयंत्रों की तरह ही होते हैं। इनसे प्राप्त ऊष्मा व शक्ति से देहदेश के संपूर्ण क्रियाकलाप चलायमान रहते हैं। आवश्यकता से अधिक ऊर्जा ऊर्जाभंडारण करने वाले यन्त्र में इकट्ठी कर ली जाती है, ताकि भविष्य में काम आए। वास्तव में देहसमाज की सभी क्रियाएं भंडारित करके रखी गई स्वच्छ ऊर्जा से ही संपन्न होती हैं, सीधी ऊर्जा से नहीं। यद्यपि स्थूलदेश में भी ऐसा ही होता है, पर वहाँ पर भंडारित ऊर्जा करोड़ों वर्ष पुरानी है, इसलिए अस्वच्छ है। वहाँ पर कुछ स्वच्छ ऊर्जा भी भंडारित की जाती है, यद्यपि बहुत सीमित मात्रा में। ऐसा ऊर्जा-भंडारण स्थूलदेश को देहदेश से सीखना चाहिए।

सभी देहपुरुष अपने प्रति किए गए सभी उच्च आदेशों को भली भांति पालते हैं, यद्यपि कई बार जो देहपुरुष देहदेशद्रोही हो जाते हैं, वे पालन नहीं करते, अथवा गलत ढंग से पालन करते हैं। यदि देहदेश -हानिकर आदेश उन्हें प्राप्त हो जाए, तो कुछ सभ्य देहपुरुष कई बार उनका पालन नहीं भी करते। कई बार बुद्धिभ्रम से भी वे सभी हानिकारक आदेशों का भी पालन करते हैं।

कई बार देहपुरुष कमजोर व बीमार हो जाते हैं। कई बार युद्ध की स्थिति होती है। कई बार देहदेश बहुत तेजी से प्रगति कर रहा होता है। इन सभी अवस्थाओं में अन्न की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः राष्ट्रपति की आज्ञानुसार , कृषि व पशुपालन विभाग का प्रबंधनिदेशालय देहदेशकृषकों को प्रचुर मात्रा में अन्न के उत्पादन का आदेश जारी करता है। साथ में , राष्ट्रपति या राजा के द्वारा अन्य पदार्थों को छोड़कर विदेशों से प्रचुर मात्रा में खाद्यान्न ही खरीदा जाता है , बेशक उसके लिए अधिक मूल्य ही क्यों न चुकाया जाए। खाद्यान्न के लिए आयात शुल्क भी घटा लिया जाता है। देहदेश के राष्ट्रपति अर्थात जीवात्मा का काम तो केवल विशेष परिस्थितियों को अनुभव करना ही है , जैसे कि आयात-निर्यात, विदेशनीति तथा अपने देश के विकास-पतन के सम्बन्ध में आदि-२। राष्ट्राध्यक्ष का विकास तभी होता है, यदि वह अनासक्तिपूर्ण दृष्टिकोण धारण करे व देहदेश के हित में काम करे। राजा का पतन तब अवश्यम्भावी है, जब वह आसक्तिमय दृष्टिकोण को धारण करता है, तथा देहदेश के विरुद्ध आचरण करता है। स्थूलदेश में भी तो ऐसा ही होता है। उसका कार्य केवल यही है कि वह अपने देहदेश के कर्मचारियों व जनता के सहयोग से विदेशरूपी अन्य देहदेशों से वस्तु-सेवायें प्राप्त करे तथा बदले में उन्हें भी ये प्रदान करे। विदेहदेशों से आयात की गई साधारण वस्तुएँ देहदेश द्वारा विकसित की जाती हैं, और उसके अपने परिचालन के लिए उपयोग में लाई जाती हैं।

देहदेश की अन्तरंग कार्यप्रणालियाँ तो मंत्रियों व अधिकारियों के द्वारा स्वतः चलाई जाती हैं , राष्ट्राध्यक्ष तो केवल उनकी गति ही बढ़ा सकता है। वह ऐसा प्रेम से भी कर सकता है, और दंड देकर भी, यद्यपि प्रेम वाली विधि बेहतर होती है। देहदेश में केवल राजा ही आत्मबंधन को प्राप्त होता है , आसक्ति के साथ देहदेश की परिस्थितियों को अपने अन्दर अनुभव करने के कारण। देहदेश के अन्य सभी पुरुष सदामुक्त होते हैं।

जब देहदेश में शीतऋतु आती है, तब सीमा पर तैनात शीतसंवेदी पुरुष इसकी सूचना विशेष अधिकारीगणों को देते हैं, जो कि फिर तापकयंत्रों को प्रज्वलित करने का व ठंडी हवाओं को अन्दर प्रविष्ट कराने वाले सीमाक्षेत्रों को दीवार आदि से ढकने का आदेश देकर देहपुरुषों की रक्षा करते हैं। अत्यधिक शीत होने पर राजा को भी सूचित कर दिया जाता है , जो फिर खाद्यान्न के आयात को बढ़ाता है , जिससे देहपुरुष अधिक अन्न खाकर, शारीरिक श्रम व व्यायाम के द्वारा अपने शरीर के तापमान को बनाए रखते हैं। राजा जी सीमा की दीवारों को, और अधिक ऊंचा व पक्का करवा देते हैं। पुरुषों की तरह ही देहपुरुष भी ऋतु के अनुसार अपने वस्त्र आदि बदलते रहते हैं, ताकि अपने शरीर का तापमान आरामदायक बना कर रख सकें। पुरुष की तरह ही देहपुरुष भी देहदेश के सभी कार्य करने में स्मर्थ होते हैं , परन्तु वे केवल एक काम में ही विशेषज्ञता अर्जित करते हैं , जिससे कि कार्य में दक्षता आए। वे विशेषज्ञता को आवश्यकता, स्थान, समय व समस्या के अनुसार हासिल करते हैं; यद्यपि एक बार विशेषज्ञ हो जाने पर, विशेषज्ञता का विषय अधिकाँशतः नहीं बदलते। वे यह विशेषज्ञता पुरुषों की तरह ही, उच्चतर सत्ता के लोभ में ही हासिल करते हैं।

यदि देहपुरुष बद्धपुरुष की तरह प्रवृत्ति में भाव व निवृत्ति में अभाव महसूस करते, तो वे प्रवृत्ति में आसक्त हो जाते, जिससे देहसमाज में नियमबद्ध सुव्यवस्था नहीं होती। प्रकारांतर से यह भी कह सकते हैं कि देहपुरुष आत्मा के स्थिर आनंद को काल्पनिक लहरें प्रदान करने के लिए ही मन को स्वीकार करते हैं, यद्यपि वे मन में आसक्त नहीं हो जाते। इससे वे न तो अभाव के कुँए में गिरते हैं , और न ही अपनी कर्तव्यपरायणता का परित्याग

करते हैं। पुरुष भी कभी ऐसा ही था, पर कालान्तर में आसक्ति के कारण वह अभाव के गर्त में गिर गया और खाली कर्तव्यपरायणता ही उसकी झोली में बची रही।

निवृत्ति में अद्वैत का बहुत कम महत्त्व होता है, क्योंकि जिसके द्वारा जितनी ज्यादा अनासक्ति के साथ जितनी ज्यादा मानवीय प्रवृत्ति प्रदर्शित की जाती है, उतनी मात्रा में ही उसमें अद्वैत उत्पन्न होता है। यह देहसमाज विलक्षण है। कामयुक्त क्रियाओं में भी निष्कामता, क्रोध में भी क्रोधहीनता, लोभ की लीला में लोभ का अभाव, मोह के नाटक में मोहहीनता, मदयुक्त आचरण में मदहीनता व ईर्ष्या के साथ भी ईर्ष्याराहित्य। ऐसे सभी विरुद्ध आचरण केवल अनासक्ति व अद्वैत के साथ ही एकसाथ संभव हैं। अनासक्ति के साथ वे सुख की कामना भी करते हैं, क्योंकि उसी के लिए तो वे भौतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए विभिन्न कार्य करते रहते हैं। देहसैनिक देहोग्रवादियों व देहविद्रोहियों के ऊपर क्रोधित भी होते हैं, यद्यपि अद्वैत को त्यागे बिना। फिर उनको नष्ट करने के लिए, इसी तरह रजोगुण को भी स्वीकार करते हैं।

लोभ व मोह के निर्वचन में, देहदेश की राजकुमारी के साथ विवाह के लिए, बहुत से देहवीरपुरुष राजमहल के सैनिकों से युद्ध करते हैं, और मारे जाते हैं। केवल एक ही वीर विवाह करने में स्मर्थ होता है। जीवित बचे हुए कुछ वीर राजकुमारी के दिव्य रूप -सौन्दर्य को भुला नहीं पाते और मोहजनित ग्लानि से आत्महत्या कर लेते हैं। कुछ वीर देहदेश से बाहर खदेड़ दिए जाते हैं। कुछेक अपरिचित देहदेश में अपने को जीवित रखने में अक्षम पाते हैं, और बाहर भाग जाते हैं। फिर बाहर के जंगली इलाके में असामाजिक व हिंसक सूक्ष्मपुरुषों के द्वारा मारे व खा लिए जाते हैं।

किसी समय देहदेश के सैनिक चतुर सूक्ष्मशत्रुओं के द्वारा गुमराह कर दिए जाते हैं। इससे वे मदोन्मत्त होकर देहदेशभक्तों व नैष्ठिक पुरुषों को मारने लग जाते हैं। यह तब तक चलता रहता है, जब तक कि देहदेश के महाराजा संघर्षस्थान पर प्रचुर संसाधनों व मध्यस्थों को भेजकर संघर्षविराम नहीं करवा देते। कई बार ईर्ष्या के वशीभूत होकर, कोई देहपुरुषों का संगठन देशहितकारी कर्म नहीं करता, अपितु संपूर्ण देहदेश के लिए आबंटित भोगों का स्वयं ही प्रचुरता से उपभोग करने लग जाता है, और साथ में बर्बाद भी बहुत करता है। ऐसे आलसी देहपुरुष अपने वंश को तीव्रता से बढ़ाते हैं। इससे असंख्य सामाजिक देहपुरुष कमजोर व रोगी हो जाते हैं, और बहुत से मर भी जाते हैं।

जिस प्रकार स्थूल समाज में महिलाएँ कार्यदक्षता और स्फूर्ति के मामले में पुरुषों से कमजोर होती हैं, उसी प्रकार देहसमाज में भी होती हैं। वहाँ भी इनका मुख्य कार्य प्रजनन से सम्बंधित ही होता है। जब देहदेश के किसी भाग में कार्यक्षम पुरुषों की कमी महसूस होती है , तभी उस भाग की स्त्रियाँ उस क्षेत्र के पुरुषों के द्वारा प्रजनन के लिए उत्तेजित की जाती हैं। तब उत्तम, सुरक्षित व बहुत से भोगों से भरे-पूरे अन्तःप्रकोष्ठों में पाली गई वे महिलाएँ नवजातों को जन्म देती हैं।

देहसंसार में प्रतिदिन संघर्ष चला रहता है, यद्यपि कई बार भीषण संग्राम भी हो जाता है। देहदेश को दूसरे देशों से विभाजित करने वाली सीमा कान्टेदार तारों से बंधी होती है। जब प्रतिकूल वातावरण से या प्रचंड उग्रवादियों के द्वारा यह तार किसी स्थान पर तोड़ -मरोड़ कर या काट कर नष्ट कर दी जाती है, तब अनेक उग्रवादी वहाँ से अन्तःक्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। गृहयुद्ध के समय व देहदेश में फैली अव्यवस्था के समय , बाहरी शत्रुओं के आक्रमण अक्सर सफल भी हो जाते हैं। देहदेश में एक सैनिकश्रेणी उन सूक्ष्मशत्रुओं को बन्दूक आदि अस्त्रों से मारती है , फिर उसके सैनिक शत्रुओं के शवों में से कुछेक को त्रितीयश्रेणी के देहसैनिकों के समक्ष प्रस्तुत करती है, पोस्टमोरटम व अन्य निरीक्षणों के लिए। फिर परीक्षणों से प्राप्त जानकारियों के अनुसार, त्रितीय श्रेणी के सैनिक उस विशेष जाति के उग्रवादियों के लिए, विशेष संकेतों से युक्त विशेष वस्त्रों व कवचों का उत्पादन करते हैं। ये वस्त्र व कवच उग्रवादियों के लिए हितकारी, आरामदायक व अतिप्रिय होते हैं, इसलिए वे इन्हें सहर्ष पहन लेते हैं। उन संकेतों को लक्ष्य बनाकर ही द्वितीय श्रेणी के सैनिक उनको अपनी बंदूकों का निशाना बनाते हैं। इस प्रकार की क्रिया व संरचना बहुत ज्यादा त्रुटिरहित होती है , क्योंकि इससे निर्दोष देहजनता का बचाव हो जाता है। यह व्यवस्था स्थूलदेश की गुप्तचरव्यवस्था की तरह ही होती है। तब तक काश्तकार देहपुरुष भी तेजी से वहाँ पहुँच जाते हैं, जो नई तारें लगाकर, तार की बाड़ को पहले के जैसा अखंड बना देते हैं, यद्यपि वह तार-तंतु पहले वाले मूलतंतु के जैसा व उच्च कोटि का नहीं होता है, फिर भी काम चल पड़ता है। स्थूलदेश में भी तो ऐसा ही देखा जाता है , अक्सर। स्थूलसंग्राम की तरह ही सूक्ष्मसंग्राम में भी महान जनहानि, विशेषतः सैनिकहानि होती है, जिसे पूरा करने के लिए सूक्ष्म सैनिकस्त्रियाँ सैनिकगुणसंपन्न पुत्रों को तीव्र वेग से पैदा करती हैं। बाल्यकाल में वे भी बालसुलभ चंचलता, कोमलता व अनुभवहीनता के कारण युद्ध करने में अक्षम जैसे ही होते हैं। देहराष्ट्रीयसेना में युवावस्था के उपरांत नवनियुक्त सैनिकपुत्रों के लिए, सैनिकप्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। अनुभवी, सेवानिवृत्त व वृद्ध सैनिकों के द्वारा भी विकट परिस्थितियों में अपना योगदान दिया जाता है। देहदेश में कमांडो नामक, अति त्वरित कार्यवाही करने वाले सैनिक भी होते हैं, जो छोटे व हल्के शरीर वाले होते हैं, यद्यपि हृष्ट-पुष्ट व फुर्तीले बहुत होते हैं।

वास्तव में, देहदेश में कोई भी पुरुष बेरोजगार नहीं होता, क्योंकि वहाँ पर जनसंख्यापूरक पुरुषों के लिए भी बेरोजगारी भत्ता, अर्थात सभी जीवनयापन की सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाती हैं। इससे किसी भी देशवासी को, पेट के लिए असामाजिक कार्य नहीं करने पड़ते, जिससे देशव्यवस्था सर्वोत्तम बनी रहती है। वहाँ पर कुछ भी काम न करने वाले और सिर्फ खाना खाने वाले पुरुषों को भी कर्मठ माना जाता है, क्योंकि वे भी तो उपभोग के द्वारा देहदेश की व्यवस्था को चला रहे होते हैं। ऐसा केवल अनासक्ति से ही संभव है, अन्यथा मेहनती पुरुष उनके विरुद्ध विद्रोह करने लग जाते। काश कि ऐसी अनासक्ति और अहंकारहीनता स्थूलपुरुषों में भी होती। जिन देहपुरुषों को बेरोजगारी भत्ता (unemployment allowance) मिलता है, वे देहदेश के साथ सदैव जुड़े हुए रहते हैं, और तप, योग, भक्ति आदि के अभ्यास से अपनी आत्मा में ही संतुष्ट रहते हैं। परन्तु दूसरी ओर बहुत से बेरोजगारी भत्ता पाने वाले स्थूलपुरुष, कई बार अपनी आत्मा से संतुष्ट न होकर अपने राष्ट्र के विरुद्ध हो जाते हैं, और बहुत से असामाजिक कार्यों के साथ जुड़ जाते हैं।

कई बार उग्र आक्रमण के समय, संपूर्ण देहदेश में व खासकर युद्ध-प्रभावित क्षेत्रों में अग्नि जला दी जाती है। इससे ठण्ड व अन्धकार के आदी सूक्ष्मशत्रु हतोत्साहित हो जाते हैं। देहसैनिक परमवीर होते हैं, ठीक भगवान हनुमान की तरह, क्योंकि वे अपने नाश के भय से युद्ध से कभी पीछे नहीं हटते। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि अनासक्ति के कारण वे अपनी देह के नष्ट होने पर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, अपितु उन्हें स्वर्ग अर्थात मोक्ष ही प्राप्त होता है। स्थूलवीरसैनिकों को भी तो इसी तरह मोक्ष या स्वर्ग का मिलना बताया गया है।

देहपुरुषों का चिंतन सर्वश्रेष्ठ चिंतन है, क्योंकि यह अनासक्ति को उत्पन्न करता है। पूर्वोक्त आक्रान्ता शत्रु देहदेश के औद्योगिक, जनसंख्याबहुल, अतिक्रियाशील, समृद्ध व सुकोमल अन्तःस्थानों पर कब्ज़ा करना चाहते हैं। ऐसा करने के लिए वे अनेक मार्गों का विध्वंस करते हुए आगे बढ़ते हैं। इससे उन मार्गों से वस्तु-सेवा प्राप्त करने वाले क्षेत्रनिवासियों, वहाँ पर पहुंचे सैनिकों व स्थानीय सुरक्षाबलों की खाद्यजल-आपूर्ति बाधित हो जाती है। वे लघु मार्गों से चहुँ ओर फैलते हुए, असंख्य निर्दोष देहपुरुषों को मारते हैं। देहदेशवासियों के लिए निर्दिष्ट भोगों को वे स्वयं भोगते हुए, अपनी जनसँख्या को तीव्रता से बढ़ाते रहते हैं, तथा उन अपनी नवजात संतानों को भी युद्ध के लिए प्रशिक्षित करते रहते हैं। आगे बढ़ते हुए वे असंख्य भवन, सरोवर, उद्योग आदि संरचनाओं को नष्ट करते जाते हैं। इस तरह वे दुष्ट सूक्ष्म आक्रमणकारी पुरुष पूरे देश को व मुख्यतया प्रभावित क्षेत्र के जनजीवन को नष्ट करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ते।

इस तरह का देवासुर संग्राम हर स्थान पर प्रतिक्षण चला रहता है। और तो और, पुरुष के मस्तिष्क में विद्यमान भावों के बीच में भी यह युद्ध निरंतर जारी रहता है। एक ही अनुभव कभी राक्षस, तो कभी देवता बन जाता है। जब वह अनुभव भौतिक रूप में होता है, तो वह राक्षस होता है, क्योंकि वह पुरुष को देहपुरुष-रूपी परमात्मा से दूर ले जाता है। वही अनुभव जब शुद्ध मानसिक बन जाता है, तो वही देवता बन जाता है, क्योंकि वह देहपुरुष की ओर ले जाता है। योगी लोग अनुभव को देवरूप बनाने के लिए योग, समाधि आदि का आश्रय लेते हैं। भोले लोग अनुभव को राक्षसरूप में ही स्वीकार करते हैं। अनुभव के ये दोनों रूप एक-दूसरे से घृणा करते हैं। यही हर स्थान पर होने वाले देवासुर संग्राम का मुख्य कारण है। इसीलिए भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों पक्षों को एकसाथ सिद्ध करने के लिए और उनके बीच के संघर्ष से बचने के लिए शविद का द्वैताद्वैत का मध्यमार्ग ही सर्वोत्तम है।

कुछ चालाक सूक्ष्मशत्रु देहदेश को एकदम से नष्ट नहीं करते, बल्कि बड़ी चतुराई से उसका लम्बे समय तक उपभोग करते रहते हैं। अत्यंत मूर्ख व पापपूर्ण शत्रु तो बड़ी तेजी से ब्रम्हास्त्रों या परमाणु अस्त्रों के साथ पर्वतों को तोड़ते हुए, जलाशयों व अन्नभंडारों को अपने अपशिष्ट पदार्थों से भरकर दुर्गन्धयुक्त करते हुए आगे बढ़ते हैं। जो कुछ भी धन-जन उन्हें दिख जाए, वे उसे नष्ट कर देते हैं। इससे संपूर्ण देहदेश शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। वास्तव में, ऐसे सूक्ष्मशत्रु बहुत तेज, बहुत निष्ठुर व मायावी होते हैं; अतः देहसैनिक उनका प्रतिकार नहीं कर सकते और शीघ्र ही घुटने टेक देते हैं। प्रायः ऐसे मौकों पर उच्च तकनीकी से युक्त विदेशी सहायता प्राप्त की जाती है। यह सहायता भी तभी कारगर रहती है, यदि अत्यधिक विनाश से पहले व प्रारम्भ में ही, बिना देरी किए प्रयोग में लाई जाए।

देहपुरुष के जैसी पूर्णस्वरूपता प्राप्त करने के लिए अनेक विधियाँ प्रचलित हैं, और सभी विधियों में देहपुरुष की तरह ही अनासक्तियुक्त आचरण की अनुशंसा की गई है। अन्य मार्गों पर दौड़ते-फिरते हुए हम साधना का असली उद्देश्य, अर्थात देहपुरुष की तरह अनासक्त व अद्वैतमय बनना भूल जाते है। अतः शविद पर भी लगातार नजर रखना अति आवश्यक है।

देहपुरुष ही ब्रम्हा होता है। वह अकेला ही संपूर्ण देहब्रम्हांड को रचता है, जिसमें विविध प्रकार के पर्वत, मार्ग, सरोवर, जीव, उद्यान, खेत, वन, नदियाँ व समुद्र विद्यमान होते हैं। वह इसके वायु, अग्नि आदि पांच महाभूतों की रचना करता है। वह इसके अन्दर विद्यमान रूप आदि पञ्चतन्मात्राओं,

हस्त आदि पञ्चकर्मेन्द्रियों तथा चक्षु आदि पञ्चज्ञानेन्द्रियों की रचना करता है। उसके मन में अनेक रूपाकारों से युक्त विविध देहब्रम्हांडों के सूक्ष्मरूप विद्यमान रहते हैं, जिनके अनुसार ही वह उनके चित्र-विचित्र स्थूल रूपों की रचना करता है। वही उस देहब्रम्हांड का पालन करते हुए नारायण बन जाता है, सभी देहपुरुष जिसके अवताररूप ही हैं। इस देहब्रम्हांड के मध्य भाग में महान यज्ञ प्रतिक्षण चलता रहता है, जिसकी विशाल अग्नि में समर्पित की गई आहुतियों से इसके सभी देवी-देवता सदैव तृप्त होते रहते हैं। सभी देहपुरुष इस देहब्रम्हांड के देवरूप ही होते हैं, उनकी जीवनमुक्तता के कारण। जब इस देहब्रम्हांड की आयु पूरी होने पर यह कृषकाय हो जाता है, तब वही परमपुरुष, महादेव के रूप में प्रकट होकर, अपने रुद्रगणों के साथ अपनी क्षुधानिवृत्ति के लिए इसका संहार व भक्षण करने लग जाते हैं। अंत में वे भी इसके साथ ही चिदाकाश में विलीन हो जाते हैं। जैसे ईश्वर अन्दर से एकरूप होकर भी, बाहर से देशकाल के अनुसार भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं का रूप ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार देहपुरुष भी अन्दर से एक ही पुरुषोत्तमरूप हैं, परन्तु बाहर से देशकाल के अनुसार विभिन्न आश्चर्यमय रूपों को ग्रहण करके, अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा व लगन के साथ करते रहते हैं, और जीवों को जीवन प्रदान करते रहते हैं। अतः देहपुरुष, सूक्ष्मदेव व देहदेव आदि सभी शब्द पर्यायवाची हैं। देहपुरुष देवताओं की तरह ही कर्मप्रधान, अनासक्त, अद्वैतमय व जीवन्मुक्त होते हैं। वेदों में भी इसी तरह से सम्पूर्ण शरीर में, विशेषतः धेनु-शरीर में देवों का वास बताया गया है। हिन्दू लोकधारणा में यह भी आता है कि हनुमान जी ने अपनी छाती को फाड़कर, वहाँ पर श्रीराम व माता सीता के दर्शन कराकर, संसार को अपनी भक्ति का प्रमाण दिया था। वास्तव में, वह आख्यान भी देहपुरुष की सत्ता को ही प्रमाणित करता है। देवों की तरह ही देहपुरुष भी जीवों को जीने का आधार प्रदान करते रहते हैं। श्वसनतंत्र में उपस्थित देहपुरुष वायुदेवरूप ही हैं। इसी तरह देहजल का नियमन करने वाले देहपुरुष वरुणदेवरूप ही हैं। नेत्रस्थित देहपुरुष सूर्यदेवरूप ही हैं।

पुराणों में अनेक स्थानों पर देहब्रम्हांड का वर्णन किया गया है। वहाँ पर ब्रम्हांड का, समकेंद्रीय व वलयाकार द्वीपों के समूह के रूप में जो वर्णन आता है, वह वास्तव में हमारे शरीर का ही वर्णन होता है, क्योंकि "यत्पिण्डे तत्ब्रम्हान्डे" के अनुसार, जो कुछ भी ब्रम्हांड में है, वह सभी कुछ इस शरीर में भी उसी रूप में विद्यमान है। उन्हीं वलयाकार द्वीपों की तरह ही, हमारे शरीर में भी जैव-तत्त्वों की विभिन्न परतें (चर्म, मज्जा, झिल्ली, अंग आदि) होती हैं। सभी द्वीपों के केंद्र में, ऊंचा उठा हुआ जो सुमेरु पर्वत है, वह हमारा मस्तिष्क ही है। उस पर्वत पर, जिन सृष्टि-नियंत्रक देवताओं का वास बताया गया है, वे इस शरीर के मस्तिष्क में स्थित, देहनियंत्रक देहपुरुष ही तो हैं।

स्थूलपुरुष की तरह ही सभी देहपुरुष भी अपनी भलाई व विकास के लिए ही सदैव संलग्न रहते हैं, अतः देहदेश की भलाई व विकास स्वयं ही होता रहता है, क्योंकि एक स्वस्थ समाज में सभी की उन्नति एक-दूसरे से जुड़ी हुई होती है। अंतर बस इतना सा ही है कि ज्यादातर स्थूलपुरुष अपनी-पराई तरक्की व भलाई को देहपुरुषों की तरह भली भांति नहीं समझ पाते, अर्थात अहंकार-ईर्ष्या कर बैठते हैं।

समाजबाह्य सज्जनपुरुषों की तरह या पाले गए पशुओं की तरह ही, देहपुरुषों के बहुत से मित्रगण भी देहदेश के बाहर सुखपूर्वक घूमते रहते हैं, और वे अपनी भलाई के साथ ही देहदेश की भी भलाई करते रहते हैं। विपरीततः, कुछेक असामाजिक व दुष्ट सूक्ष्मपुरुष तो केवल अपनी ही भलाई में लगे रहते हैं। कुछ तो देहदेश को हानि पहुंचाने का भी काम कर देते हैं। ऐसे सूक्ष्मपुरुष भी अनेक स्थूलपुरुषों की तरह ही, अपनी पूर्ण व वास्तविक भलाई से अनभिज्ञ होते हैं। वे ज्यादातर दुर्जन, कुपोषित, अनियमित, स्वच्छतारहित, कुप्रबन्धी व फिजूलखर्ची करने वाले देहदेशों को ही परेशान करते हैं। यह उसी प्रकार घटित होता है, जिस प्रकार स्थूलशत्रु भी संसाधनविहीन, कुप्रबन्धी, अस्त-व्यस्त, अपव्ययी, अनियंत्रित, अनियमित, गृहयुद्ध/समस्याओं से घिरे हुए स्थूलराष्ट्रों को ही ज्यादातर रूप से अपना निशाना बनाते हैं।

देहपुरुष के चित्र, प्रतिमाएं व मूर्तियाँ आदि भी देवताओं की तरह ही दिव्यमानव का रूप धरे हुए होती हैं। शविद -आचारों में, शविद-सहित शरीरविज्ञान का अध्ययन, इसके दार्शनिकों का सान्निध्य; देहपुरुषों की तरह ही अनासक्ति व अद्वैत से पूर्ण आचार-विचार, देहपुरुषों का मनन-चिंतन आदि मुख्य हैं। सुगम व लयबद्ध संस्कृत मन्त्र इसीलिए बनाए गए हैं, ताकि वे स्वयं ही मुख से, प्रसन्नता व प्राणवायु के साथ प्रस्फुटित होते रहें तथा प्रकाशमान कुण्डलिनी (देहपुरुष) पर भी निरंतर ध्यान बना रहे, जिससे मन्त्र की शक्ति भी कुण्डलिनी को मिलती रहे। वास्तव में जो कुछ भी हम देवता, इष्ट व भूखे-प्यासे आदि को अन्न, जल, वस्त्र, द्रव्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान कर रहे होते हैं; उससे, प्रदान करने वाले की कुण्डलिनी को वे सभी वस्तुएँ प्राण के रूप में उपलब्ध होती रहती हैं, जिससे वह पुष्ट हो जाती है। इसी तरह, देव-मूर्तियों की पूजा आदि के समय, हाथों आदि की क्रियाशीलता को भी कुण्डलिनीपोषण में सहायक माना जा सकता है। जैसे हाथों या पैरों से चलाए जाने वाले यंत्रों से बिजली बनती है, जो फिर जगत को प्रकाशित करती है; उसी तरह सभी इन्द्रियों से बनने वाली मानसिक बिजली से प्रकाशित होती हुई कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए। प्राणवायु की तरह ही, आँखों की एकाग्र दृष्टि भी कुण्डलिनी को पुष्ट करती है। आँखों को सूर्य का रूप दिया गया है। इसलिए जहाँ पर भी दृष्टि जाती है, वहाँ पर

विद्यमान वस्तु-भावों को वे प्रकाशित कर देती हैं। अतः ऐसा ध्यान करना चाहिए कि आँखों का तेज कुण्डलिनी को प्रकाशित करते हुए, उसे देदीप्यमान कर रहा है।

कोई भी व्यक्ति अपनी पूजा-अर्चना स्वयं नहीं कर सकता। कुण्डलिनी व्यक्ति की अपनी आत्मा के रूप में होती है। अतः उसे किसी भौतिक मूर्ति के ऊपर आरोपित करना पड़ता है, उसकी पूजा करने के लिए। देव गणेश की मूर्ति ऐसे आरोपण के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होती है, क्योंकि वह अन्य आकर्षक देव-मूर्तियों की तरह, ध्यान-प्रक्रिया में अधिक बाधा उत्पन्न नहीं कर पाती, विशेषतः नए-नवेले साधकों के मामले में। गणेश की मूर्ति जड़ प्रतिमाओं व चेतन मानवरूप के बीच की अवस्था है, अतः इन दोनों के गुण लिए हुए होती है।

देहदेश में वर्णित युद्ध में, देहशत्रुओं के प्रतिकार के लिए देहरक्षक भी अपने हाथों में अस्त्र -शस्त्र धारण करके; अश्व, रथ आदि जीववाहनों पर व स्वचालितयन्त्ररूपी वाहनों पर आरूढ़ होकर; अपने सुरक्षित व भोगविलास से संपन्न अन्तःस्थानों से बाहर निकलकर, विभिन्न मार्गों का आश्रय लेकर, शत्रुओं द्वारा अधिगृहीत सीमाक्षेत्रों की ओर प्रस्थान कर देते हैं। उनके साथ अनेक प्रकार की खाद्य , पेय, अस्त्र, शस्त्र, औषधि आदि वस्तुएँ; पाचक, वैद्य, नाई, सफाईकर्ता आदि सभी सेवक-सहायक भी उन्हीं की तरह, अनेकविध वाहनों पर आरूढ़ कराए जाकर साथ ले जाए जाते हैं। घने जंगलों के बीच में शत्रुओं को देखकर बहुत से सैनिक छोटे-२ रास्तों से होकर, खुले जंगलों के समीप पहुँच जाते हैं, और गाड़ियों से उतरकर पैदल ही अन्दर घुस जाते हैं, क्योंकि वहाँ गाड़ियों को चलाने के लिए चौड़े रास्ते नहीं होते। बीहड़ सीमावर्ती क्षेत्र होने के कारण वहाँ चौड़े रास्ते बनाना मुश्किल होता है। वहाँ पर बेलों, वृक्षों, घास, चट्टानों, गुफाओं, पर्वतों, सरोवरों व नदी-तटों पर डर के मारे छिपे हुए शत्रुओं को ढूंढकर, उनके साथ अनेक युक्तियों से युद्ध करते हैं। वे एक दूसरों को मुष्टिका, गदा, तलवार, डंडे, पत्थर, आग, रसायन, बन्दूक, तोप आदि अस्त्र-शस्त्रों से और अन्य किन्हीं भी उपलब्ध घातक सामग्रियों से मारने लग जाते हैं। देहपुरुषों के प्रहार से मरे हुए शत्रुओं को निकटस्थ की ही किसी दाहसंस्कार -भूमि में ले जाया जाता है, और यथाप्रचलित लौकिक रीति के अनुसार भस्म कर दिया जाता है। उनके सूक्ष्म अवशेष भूमि में मिलकर देहदेश की मिट्टी की पोषकता को बढ़ाते हैं। देहदेशयुद्ध में जीवित बचे हुए सैनिक कुछ समय के लिए संघर्ष को भुलाते हुए व थकान को मिटाते हुए, दूसरे ही आनंदमय व मनोहर मार्गों से आनंद उठाते हुए, वापिस अन्तःपुर को लौट जाते हैं। सीमासुरक्षाबल के जवान वहीँ ठहरे रहते हैं, ताकि वे छोटे-मोटे शत्रुओं को चुनौती देते रहें व आवश्यकता पड़ने पर केंद्रीय सुरक्षा बल को अपनी मदद के लिए बुला सकें।

कभी-कभार बहुत से सूक्ष्मशत्रु छद्मवेष धारण करके, थके हुए देहसैनिकों को ठगते हुए, उनके प्रहार से बच निकलते हैं। वे फिर जंगल के बीच तेजी से भागते हुए छोटे-२ मार्गों के अन्दर घुस जाते हैं, और फिर आगे का रास्ता आसानी से ढूंढ लेते हैं। इस तरह से वे राजमार्गों में प्रविष्ट हो जाते हैं। वहाँ पर भी शत्रुओं की टोह लेने के लिए घूमते हुए सैनिकों के समूहों द्वारा, उनमें से बहुत से मार दिए जाते हैं। कई बार कुछेक शत्रु उनसे भी भाग निकलते हैं, और अन्तःपुरों में प्रवेश कर बैठते हैं। वहाँ पर पैनी नजर रखने वाले द्वारपालों की लम्बी -चौड़ी श्रृंखलाओं व प्रचंड सुरक्षा व्यवस्था के द्वारा भस्मीभूत कर दिए जाते हैं, अन्यथा वे अन्तःपुरों को भीषण हानि पहुंचाते हैं, जिससे कि देहदेश के अस्तित्व पर ही खतरा पैदा हो जाता है।

देहदेश की तरह ही, स्थूलसृष्टि के अंतर्गत, स्थूलदेशों के अन्दर भी घुसपैठ होती रहती है। उदाहरण के लिए, कई बार पड़ौसी आकाशगंगादेहदेशों से अनेक देहपुरुष, अपने मूलदेहदेशों में फैली अव्यवस्था से परेशान होकर, नई आकाशगंगादेहदेश में प्रविष्ट होकर शरण लेते रहते हैं।

वास्तव में जब बहुत सारे देहपुरुष संसाधनों के अभाव से अशाँत व क्लांत हो जाते हैं , अथवा उनका राजा अपने देहदेश के प्रति समुचित ध्यान नहीं दे पाता, तभी देहसैनिकों में उतना दम-ख़म नहीं रहता कि वे पूरी सतर्कता बरते, जिससे फिर सीमा के निकट घूमते हुए शत्रुओं को अन्दर घुसने का मौका मिल जाता है। कई बार छद्मयोद्धा जाति के शत्रु सैनिकों के जैसी ही वेशभूषा धारण करके , देहदेश में सुरक्षित टिके रहते हैं। वे लम्बे समय तक देहदेश को धीरे-धीरे हानि पहुंचाते रहते हैं। देहपुरुष उनसे नाराज होते हुए भी, स्वजनमोह की तरह ही उनके प्रति मोह से ग्रस्त हो जाते हैं, और उन्हें बहिष्कृत नहीं कर पाते। अपने शरणदायक देहदेश के संसाधनों से सुसज्जित होकर उन शत्रुओं की संतानें , स्वामी देहदेश से बाहर निकलकर भी लम्बे समय तक दूसरे देहदेश पर आक्रमण करने का अवसर ढूंढती रहती हैं। कई बार बाहर के दुर्गम इलाकों में भोजन-पानी की कमी से वे शीघ्र ही मर भी जाते हैं। कुछ देशद्रोही देहपुरुष भी उन असामाजिक व पापी, विदेशी सूक्ष्मपुरुषों का पोषण व रक्षण करते रहते हैं। वे छद्मशत्रु देहदेश के संसाधनों से तृप्त होते हुए, अपनी जनसँख्या को तीव्रता से बढ़ाते हैं, और कई बार देहदेश के बाहर घूमते हुए शत्रुओं के लिए भी उन संसाधनों को प्रेषित करवाते हैं। जब इस प्रकार से व अन्य अनेक कारणों से देहदेश के संसाधन और देहपुरुष दोनों ही क्षीण हो जाते हैं, तब दुरस्त मौकों का फायदा उठाने वाले उन ऊटपटांग देहपुरुषों की संख्या एकदम से बढ़ जाती है। वे फिर पूर्वोक्त रीति के अनुसार ही प्रचंड युद्ध का ऐलान कर देते हैं , जिससे कि अनेक देहपुरुष भी मारे जाते हैं। ऐसी अवस्था में महान क्रांति या गृहयुद्ध पूरे देश में फैल जाता है , जिसमें सभी देहसैनिक अपनी पूरी शक्ति के साथ निर्मम बन चुके

उन मित्रवेषधारी शत्रुओं से युद्ध करते हैं, और अंत में उनको मार देते हैं। बचे-खुचे देहशत्रुओं को देहदेश से बाहर निकाल देते हैं। उनका पोषण करने वाले बहुत से स्वदेशी देहपुरुष भी मृत्युदंड से दण्डित किए जाते हैं।

कई बार इसका उल्टा घटित हो जाता है, अर्थात देहदेश के अत्यधिक कमजोर हो जाने पर शत्रु सम्पूर्ण देश को नष्ट कर देते हैं , जिसके बाद नए देहदेश के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अनगिनत यन्त्र, उद्योग व महल-चौबारे बनाए जाते हैं। नए मार्ग व जल-नियमन के लिए नहरें-तालाब आदि खोदे जाते हैं। जंगल पुनः से विकसित हो जाते हैं। भूमियों को आकार व प्रकार दिया जाता है। कहीं पर पर्वत तो कहीं पर समुद्र जैसी संरचनाएँ विकसित हो जाती हैं। विद्युत, संचार, ऊर्जा आदि सभी प्रकार के प्रशासन-विभाग पुनः प्रतिष्ठित कर दिए जाते हैं। अपशिष्टों का शोधन व निष्कासन करने वाली प्रणाली पुनः विकसित हो जाती है। इसी तरह, गृहोपयोग के बाद बचे हुए दूषितजल का पुनः प्रयोग करने वाली प्रणाली भी विकसित की जाती है। नए कुँए व बावलियां भी खोदी जाती हैं। दूसरे देशों से नए पालतु पशु मंगवाए जाते हैं, और जीवनयापन हेतु पाले जाते हैं। देहदेश का सारा सामाजिक ताना-बाना शुरु में ही पूरी तरह से विकसित हो जाता है , बाद में तो वह जनसँख्या वृद्धि के अनुसार आकार व विस्तार में ही बढ़ोत्तरी करता है, बस। नया राष्ट्राध्यक्ष शासन-बुद्धि से अपरिपक्क होता है, अतः वह राष्ट्रसंचालन की विधियाँ पड़ौसी राष्ट्राध्यक्षों से सीखता है, मात्र देखकर ही, अथवा विधिपूर्वक भी। कभी-कभार राजा की बुद्धिहीनता व अनुभवहीनता से समग्र सूक्ष्मराष्ट्र ही नाश के प्रति अग्रसर हो जाता है। पूर्ववत , विभिन्न श्रेणियों के साथ नई सेना बनाई जाती है, जिसमें विभिन्न नौजवान उपयुक्तता के अनुसार नियुक्त व प्रशिक्षित किए जाते हैं। मंत्रीगणों व सभासदों के साथ विचार-विमर्श के उपरांत ही नई विदेशनीति निर्धारित की जाती है। पड़ौसी देहराष्ट्रों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाए जाते हैं। साथ में , पड़ौसी देहदेशों से सावधान भी रहना पड़ता है, क्योंकि वे अधिक शक्तिशाली व परिपक्क होते हैं। विभिन्न विभागों में कर्मचारियों की नई नियुक्तियां देश, काल व योग्यता के अनुसार, तीव्रता के साथ की जाती हैं। लोगों की कमी को पूरा करने के लिए जनसँख्या तेजी से बढ़ाई जाती है। नए व कम अनुभवी लोगों की बहुलता के कारण नया देहदेश सुकोमल व अस्थिर होता है। देहदेश के पुनर्विकास के लिए देहपुरुषों की उत्पादकता व कर्मठता चरम पर होती है , और साथ में लोक-लुभाविनीं भी। ऐसी जनव्यस्तता के कारण देहदेश कई बार शत्रुओं से आसानी से ग्रस्त हो जाता है। शत्रुओं का मुकाबला करते हुए देहदेश का विकास कुछ समय के लिए ठहर सा भी जाता है। कई बार देहदेश की व्यस्तता , प्रतिकूल वातावरण, तनाव आदि हालातों के अनुरूप उसे समुचित पोषण, व्यायाम व जीवनचर्या आदि जरूरी जीवनतत्त्व नहीं मिल पाते। इससे शत्रु और अधिक प्रबल हो जाते हैं , तथा उस के विभिन्न भागों को क्षति पहुँचाने लग जाते हैं। विशेषतया सीमाक्षेत्र के भूभाग अधिक दुष्प्रभावित होते हैं। कभी सूक्ष्मशत्रु समुद्रमार्ग से आक्रमण कर देते हैं, और देहदेश की नदी के प्रवाह के विरुद्ध तैरकर या सूक्ष्म जलयानों में सवार होकर , देहदेश के मुख्य दूषितजलशोधक यन्त्र तक पहुँच बना लेते हैं , तथा उसे दुष्प्रभावित करते हैं। इससे समस्त देहदेश जहरीले पानी से विषाक्त हो जाता है , और वहाँ की जनता त्राहि-त्राहि करने लग जाती है। साथ में, जल में घुले हुए खनिज आदि लाभदायक पदार्थों को भी वे त्रुटियुक्त शोधकयन्त्र बचा नहीं पाते , जिससे वे नदी से होते हुए, देहदेश के बाहर निकलकर बर्बाद हो जाते हैं। कुछ सूक्ष्मशत्रु हाईटेक (hightech) होते हैं, जो वायुयान में सवार होकर, आकाशमार्ग में मंडराते हुए, विमानसहित ही मुख्य राजद्वारों से देहदेश के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। वे दूसरे देहदेश के जेट -यान (jet-plane) को बंधक बना लेते हैं, और विमानचालकों का अपहरण करके, उनसे विमान को मनोवांछित दिशा में उड़वा कर, उससे शत्रुदेश की तबाही प्रारम्भ कर देते हैं।

इसी तरह, कई बार देहदेश की सीमाओं के मुख्यद्वारों पर भ्रष्ट पहरेदारों की लापरवाही व अन्य कारणों से सूक्ष्मशत्रु देहदेश के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। फिर देहसैनिकों की निगाहों से बचकर या उन्हें युद्ध में हराकर, वे देहदेश का विनाश करना शुरु कर देते हैं। कभी समुद्रतट पर आक्रमण करके जलयानों के मार्ग में रुकावट पैदा करते हैं, जिससे देहदेश का आयात-निर्यात बाधित व दुष्प्रभावित हो जाता है। कई बार कोयला, पैट्रोल आदि ऊर्जा के स्रोतों के आयात-निर्यात का मुख्य द्वार खुला रह जाता है। यह स्थिति देहदेश के पुरुषों के तनाव में होने से अक्सर पैदा होती है। ऐसी हालत में वे सूक्ष्मशत्रु सीमा के निकट स्थित ऊर्जासंयंत्रों को भयंकर क्षति पहुंचाते हैं। वे ऐसा धूम्रविस्फोटकों से करते हैं , या ऑक्सीजन के प्रवाह में रुकावट डालकर। कई बार वे अन्य मुख्य द्वारों से प्रविष्ट होकर , सीमा के निकट स्थापित दूरसंचारयंत्रों को अपना निशाना बनाते हैं। इससे प्रभावित देहदेश अन्य देहदेशों व स्थूलदेश से अलग-थलग पड़ जाता है, जिसके कारण सूचनाओं की कमी से महान हानि भी कई बार हो जाती है। कई बार अग्नि, जल, वायु व पशु आदि के द्वारा भग्न सीमाभित्ति की लम्बे समय तक भी मुरम्मत नहीं की जाती , जिससे शत्रु आसानी से अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। कई बार ठोक-मरम्मत करने में स्वदेशी तकनीकों के असफल होने पर, विदेशों से भी तकनीकें आयात की जाती हैं। कई बार देहदेशप्रेमी पुरुषों के द्वारा प्रारम्भ में उनका विरोध किया जाता है, परन्तु कालान्तर में लाभ प्रकट हो जाने पर मान भी जाते हैं, यद्यपि तनिक संकोच के साथ। छोटी-मोटी मुरम्मतों के असफल होने पर कई बार संपूर्ण प्रणाली ही, जैसे कि अन्नभंडारणप्रणाली या जलशोधनप्रणाली आदि भी आयातित की जाती है। देहपुरुषों के द्वारा वह

विदेशी प्रणाली पूर्णतया बहिष्कृत कर दी जाती है। आन्दोलन के अति उग्र हो जाने पर देहपुरुषों को खासकर देहसैनिकों को शाँत करने का काम किया जाता है। बैठकों के दौर चलते हैं। देहपुरुषों के नेताओं के साथ राष्ट्राध्यक्ष के द्वारा गुप्त मंत्रणाएं करवाई जाती हैं। कई बार विदेशियों की मध्यस्थता भी स्वीकार की जाती है, यद्यपि उसके दुष्प्रभाव अलग होते है, वैसे विद्रोह से तो कम ही होते हैं। दोनों पक्ष संतुष्ट हो जाने पर शाँत हो जाते हैं , और राष्ट्राध्यक्ष भी चैन की साँस लेता है। कई बार अपनी अत्यधिक दीन -हीन दशा में, देहदेश किसी विदेशी को अपने देश का शासन चलाने के लिए आमंत्रित भी करता है, यद्यपि देश की कमान वास्तविक राजा के पास ही रहती है। वैसे धीरे -धीरे बढ़ते हुए जनविद्रोह के कारण वह विदेशी शासन अस्थायी ही होता है।

वैसे तो शविद सभी के लिए है, परन्तु उत्पथगामियों के लिए तो यह अत्यंत लाभदायक है, क्योंकि इससे अनायास और अतिशीघ्र ही सद्बुद्धि प्राप्त होती है। जिस प्रकार स्थूलसमाज में कुछ थोड़ा सा प्रारम्भिक विकास हो जाने पर ही वहाँ का राजा चुन लिया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्मसमाज में भी होता है। कुछ सूक्ष्मशत्रुओं की गहरी चालाकी को देखिए कि कैसे वे देहदेश को धीरे -धीरे हानि पहुंचाते हुए, उसकी प्रचंड सुरक्षापंक्तियों को उत्तेजित नहीं करते। जिस प्रकार स्थूलदेश के जमाखोर प्रकार के असामाजिक लोग अपने समाज को वंचित रखते हुए, भारी मात्रा में खाद्य पदार्थों को छिपाकर रख लेते हैं; उसी प्रकार असामाजिक सूक्ष्मपुरुष भी अन्नभंडारों में विष फैलाकर सारे अन्न को अपने भविष्य के प्रयोग के लिए सुरक्षित कर देते हैं। जो कर्मठ व उद्योगी किस्म के लोग हैं, उनके लिए कर्म से भिन्न आध्यात्मिक साधना करना मुश्किल होता है, अतः उनके लिए अपने जनजीवन व देहपुरुषों के जनजीवन के बीच की समानता का चिंतन ही पर्याप्त व सर्वश्रेष्ठ भी है। अपने जीवन और देहपुरुष के जीवन की समकक्षता के ध्यान से आनंदमय निद्रा प्राप्त होती है, व रक्तचाप भी नियंत्रित होता है, क्योंकि इसके ध्यान से तनावहीनता, मन की स्थिरता, अनासक्ति, निरहंकारता व अद्वैत आदि दैवीयगुण स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवद्गीता की एक उक्ति है, “स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्"। इसका तात्पर्य यह है कि इस धर्म का थोड़ा सा भी किया हुआ अनुकरण, जीवन-मरण के महान भय से मुक्ति प्रदान करता है। यह धर्म कोई विशेष नहीं, अपितु देहपुरुष की तरह अनासक्ति का ही है। इसका एक अर्थ यह भी है कि दंतमंजन, स्नान आदि साधारण सी दिखने वाली लौकिक क्रियाओं को भी यदि देहपुरुष की भांति ही मानसिक जागरूकता , अनासक्ति व अद्वैत के साथ किया जाए, तो भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है। कई बार देहदेश शत्रुदेशों से कुछेक उदार, कम आक्रामक व धार्मिक सूक्ष्मशत्रुओं को अपने देश में बहला-फुसला कर ले आता है , और उनकी खूब सेवा करता है। वे लोग शत्रु की युद्धनीति को जानने वाले होते हैं , अतः सेवा से प्रसन्न होकर देहसैनिकों के साथ सम्मिलित युद्धाभ्यास के लिए उकसावे में आ जाते हैं। ये सभी सूक्ष्म -उग्रवादी वैसे तो व्यवस्थित देहदेशों के स्थायी निवासी नहीं होते, अपितु असामाजिक जनजातीय समूहों से सम्बंधित होते हैं। फिर एक गूढ़ युद्ध -नीति के तहत इन सूक्ष्मशत्रुओं को पूरे देहदेश पर आक्रमण करने का अवसर प्रदान किया जाता है। वे अपने शरणदायक देहदेश के खिलाफ खुलकर लड़ भी नहीं पाते। इसी तरह के मौके व बहाने की उम्मीद में बैठे देहदेशसैनिक उन्हें शीघ्र ही अपने चक्रव्यूह में फंसाकर नष्ट कर देते हैं , वह भी बिना किसी जन -धन की स्पष्ट हानि के। ऐसा करके देहदेशसैनिक उस विशेष जाति के देहदेशशत्रु की पूरी युद्धनीति को व्यावहारिकता के साथ समझ जाते हैं , और भविष्य में हमेशा के लिए या कुछ समय के लिए उनसे निश्चिन्त हो जाते हैं। कुछ देहासुर अर्थात देहदेशशत्रु बहुत चालाक होते हैं। वे अपनी संभावित हार को देखकर देहदेवों अर्थात देहपुरुषों के समक्ष नतमस्तक होकर युद्ध को टाल देते हैं। वे झूठ -मूठ ही देहदेवों की प्रशंसा करते हुए घोर तपस्या का ढोंग करने लग जाते हैं। जैसे ही देहदेवता कुछ शिथिल पड़ जाते हैं, वैसे ही वे छल से देवताओं को मारना शुरु कर देते हैं। देहदेव तब तक मार खाते रहते हैं , जब तक कि देहस्वर्ग का इंद्र मिथ्या अहंकार को छोड़कर देहसृष्टि के नारायण की शरण नहीं ले लेता। तब नारायण के सान्निध्य से प्राप्त शक्ति -स्फूर्ति से अनासक्त, अनुशासित व स्वस्थ हो जाता है, जिससे संपूर्ण देहस्वर्ग भी वैसा ही हो जाता है। उसकी देवसेना भी फिर शीघ्र ही असुरों पर विजय प्राप्त कर लेती है।

वैसे तो देहराजा के अनुभव के बिना व उच्चाधिकारियों के हस्तक्षेप के बिना ही निम्न स्तर की गतिविधियाँ व मुठभेड़ें देहदेश में हमेशा ही चलती रहती हैं, परन्तु इन सीमित क्षेत्रों की गतिविधियों से शत्रु के खिलाफ वह महान व स्थायी प्रतिरोध उत्पन्न नहीं होता , जो योजनानिर्मित व संपूर्णदेशीय युद्ध से होता है। प्रबल शत्रुओं के साथ युद्ध में अधिकाँश देश नष्ट हो जाते हैं, यदि उनके पास विदेशी अस्त्र न हों तो। उच्च तकनीकों से युक्त विदेशी अस्त्रों से सुसज्जित, कुछेक देहदेश ही उन्हें जीत सकते हैं। विरले देश ही बाहरी सहायता के बिना ही अपनी दृढ़ता व अदम्य साहस से जीत हासिल कर पाते हैं। स्थूलदेशों में भी तो प्रायः ऐसा-वैसा ही कुछ देखा जाता है।

देहदेश की सुरक्षा के लिए मुख्यतः तीन प्रणालियाँ कार्य करती हैं। प्रथम स्तर की प्रणाली में सामान्य -साधारण शत्रु-अवरोधक वस्तुएँ जैसे कि सीमा-भित्ति, शत्रु की सूचना देने वाले यंत्र व शत्रु को मारने वाले साधारण सुरक्षाकर्मी मुख्यतया विद्यमान होते हैं। यह सभी कुछ , स्थूलदेश की सीमा-

बाड़ व पहरेदारों की तरह ही है। दूसरे स्तर की सुरक्षा-पंक्ति में संपूर्ण देहदेश में साधारण सैनिक घूमते रहते हैं, जो वक्त पड़ने पर आक्रमण वाले स्थान पर इकट्ठा होकर, मद से भरे हुए सूक्ष्मशत्रुओं का पल भर में ही , बड़ी सटीकता व तेजी से वध कर देते हैं। स्वदेशी पुरुषों को वे उस समय तनिक भी हानि नहीं पहुँचने देते। क्योंकि स्थूलपुरुष आत्मपूर्ण नहीं होते, इसीलिए निर्दोष देहपुरुषों के रक्षण में कई बार उतने स्मर्थ नहीं हो पाते, अतः कई बार उन्हें सिर्फ शत्रुओं को कैद करने का ही आदेश प्राप्त होता है। मृत्युदंड देने या न देने का फैंसला लम्बे सोच -विचार के बाद न्यायालय द्वारा दिया जाता है। स्थूलदेश की ही तरह, देहदेश में भी प्रथम रक्षापंक्ति के अर्धसुरक्षाकर्मी व सीमासुरक्षाकर्मी कम शक्ति वाले होते हैं , अतः छल करते हुए, शत्रुनाशक विषैले खाद्य व पेय पदार्थों को उनके समक्ष फैलाते रहते हैं। कवच या बुलेटप्रूफ जैकेट धारण करने वाले सीमारक्षक , कवचों आदि की सहायता से , शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्रों से अपनी रक्षा करते हैं। वे सीधे चलाए जाने वाले डंडों , कोड़ों आदि से शत्रुओं को पीछे धकेलते रहते हैं। साथ में वे आंसूगैस , पत्थरों, जल की बौच्छारों आदि दूर से चलाए जाने वाले व कम शक्ति के अस्त्रों से भी उन्हें सीमा से दूर हटाते रहते हैं। इससे अनेक शत्रु मर जाते हैं , और अनेक भाग जाते हैं। ऐसे सैनिक सबसे अधिक वीर होते हैं, क्योंकि वे तब तक घातक अस्त्र-शस्त्रों के बिना ही अपने शरीर पर उद्दंड शत्रुओं के वार झेलते रहते हैं, जब तक कि सूचना देकर बुलाए गए व पूरी तरह से तैयार सैनिक वहाँ नहीं पहुँच जाते। स्थूलदेश में भी तो रक्षा व्यवस्था पूर्णतया इसके समान ही होती है। वास्तव में हम सभी स्थूलपुरुष आत्मभ्रमित देहपुरुष ही तो हैं। यह आत्मविभ्रम शविद के अनवरत सान्निध्य से अनायास ही धीरे-२ नष्ट हो जाता है।

तंत्रशास्त्रों में कल्पित किया गया है कि विभिन्न शक्तिपीठ देवीमाता के ही अंगरूप हैं। उदाहरण के लिए, नैनादेवी स्थान को देवी के नयनों के रूप में कल्पित किया गया है। जिस प्रकार कोई विशेष भूमि-स्थान देवीमाता के किसी विशेष अंग के रूप में दिखाया गया है , तो उसी प्रकार उस स्थान पर स्थित स्थूलपुरुष स्वयमेव ही देवीमाता की देह के उस अंग के देहपुरुष सिद्ध हो गए। इसी वजह से शक्तिपीठों में जाकर देहपुरुषों के जैसी मुक्ति का अनुभव होता है।

पुरुषसूक्त के अनुसार संपूर्णसृष्टि एक विशाल शरीररूप ही है , अतः शविद भी वेद-पुराणों के तुल्य ही है, अर्थात वेदपुराणों में विशाल सृष्टि का आध्यात्मिक रूप से वर्णन है, और शविद में सूक्ष्मसृष्टि का इसी प्रकार से वर्णन है। जिस प्रकार पुराणों में वर्णित किए गए स्थूलसृष्टि के पदार्थ , चेतन देवताओं व राक्षसों के रूप में दर्शाए गए हैं, उसी प्रकार देहसृष्टि के पदार्थ भी देहपुरुषों व देहशत्रुओं के रूप में दिखाए गए हैं , यद्यपि देहसृष्टि के पदार्थ स्थूलसृष्टि के पदार्थों की अपेक्षा हर मामले में मनुष्य के साथ ज्यादा बराबरी दर्शाते हैं। जिस प्रकार स्थूल देवताओं को सुन्दर मनुष्यों का रूप दिया गया है, उसी प्रकार सूक्ष्मदेवताओं को भी दिया जा सकता है। इसी तरह से , जिस प्रकार स्थूलराक्षसों को कुरूप व काले-डरावने मनुष्य का रूप दिया गया है, उसी तरह से सूक्ष्मराक्षसों को भी दिया जा सकता है। जिस प्रकार वेद -पुराण सनातन हैं, उसी प्रकार शविद भी है, क्योंकि इसके आधार रूप जीव-जंतु भी तो सनातन ही हैं, तथा इसमें वर्णित घटनाएँ भी वेद-पुराणों की तरह ही वास्तविक-प्राकृतिक हैं, मिथ्या या मानव-निर्मित नहीं। जिस प्रकार वेद-पुराण प्रलयकाल में सुप्तावस्था में थे, परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषि-मुनियों ने उन्हें पुनः प्रकट किया; उसी प्रकार शविद भी अप्रकट रहता है, परन्तु विज्ञानकाल में जागृत आत्मा वाले विज्ञानियों के द्वारा पुनः-२ प्रकट किया जाता रहता है।

पुराणों के सम्बन्ध में समाज में एक मिथ्या धारणा प्रचलित हुई है , जिसके अनुसार पुराणों को असामाजिक व अव्यावहारिक लोगों का पक्षधर माना जाता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि लोग सृष्टि की घटनाओं को समझ नहीं पाते, विश्वास ही करना पड़ता है। परन्तु आजकल के विज्ञानप्रधान लोग किसी वस्तु को अच्छी तरह से समझ लेने से पहले उस पर विश्वास ही नहीं करते। ऐसे लोगों के लिए शविद ही सर्वोत्तम पुराण है। वास्तविकता तो विपरीत रूप से यह है कि पुराण सामाजिकता व व्यावहारिकता के सबसे अधिक पक्षधर होते हैं। ये अनायास ही कर्मयोग को बढ़ावा देते रहते हैं। यह हमने शविद के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उपयुक्त व युक्तियुक्त व्यावहारिकता -सामाजिकता के बिना अनासक्ति लगभग अर्थहीन सी ही है, क्योंकि जब तक युद्ध-स्तर के आचार-व्यवहार से आसक्ति की संभावना नहीं बढ़ेगी, तब तक अनासक्ति की संभावना भी नहीं बढ़ेगी। आसक्ति व अनासक्ति की संभावनाएं साथ-२ रहती हैं, और दोनों ही साँसारिकता/दुनियादारी को बढ़ाने से बढ़ जाती हैं। वनवासी पुरुष की तरह गुमसुम रहने वाला पुरुष भला किससे आसक्ति करेगा और किससे अनासक्ति। जब वर्षा ही नहीं है, तब छतरी खोल लेने से भला क्या लाभ हो सकता है? जो जितना अधिक व्यावहारिक व सामाजिक होता है, उसे अनासक्ति का उतना ही अधिक सुफल प्राप्त होता है। शविद के अध्ययन व परिशीलन से पुराण - सम्बंधित यह मिथ्या भ्रम भी दूर हो जाता है। शविद ने देहसृष्टि व मनुष्य-जीवन की घटनाओं के मध्य में समकक्षता का अध्ययन किया है, तो पुराणों ने स्थूलसृष्टि व मनुष्य-जीवन की घटनाओं के बीच की समानता का अध्ययन किया है। उदाहरण के लिए , प्रागैतिहासिक काल के डायनासोरों (dinasaurs) के राज को महिषासुर का राज समझ सकते हैं। उस चमकीले व महाभयानक उल्कापात को शक्ति /माता का अवतरण समझ सकते हैं,

जिसने डायनासोरों का समूल नाश किया और मानवता के विकास के लिए रास्ता साफ कर दिया। उस शक्ति को बनाने के लिए सभी देवताओं के द्वारा अपनी-२ शक्तियों के जोड़ने को अनेक प्रकार की अनुकूल परिस्थितियों का इकट्ठे रूप में निर्मित होना कह सकते हैं , जिससे वह अति दुर्लभ उल्कापात संभव हुआ। बात एक ही है, क्योंकि देहसृष्टि व स्थूलसृष्टि के बीच में कोई भी अंतर नहीं है। एक बात और है , प्रेमयोगी वज्र जब-२ शविद का ध्यान करता था, तब-२ ही उसके मन में उन पुराणपाठी वृद्ध पुरुष का मुखमंडल छा जाता था। इससे भी सिद्ध होता है कि शविद और पुराणों के बीच में समानता है।

जीवों की आत्मरूप चित्तवृत्तियाँ चिदाकाश की अंशमात्र होती हैं, इसीलिए वे जीवशरीरों के माध्यम से अल्प, लघु व स्थूल साँसारिक योजनाओं का ही निर्माण करा पाती हैं; जबकि देहपुरुषों का आत्मा पूर्ण चिदाकाशरूप होता है, इसीलिए वह देहपुरुषों से सृष्टितुल्य देहदेश को पूर्णता के साथ चलवा पाता है।

जब कोई विशिष्ट, प्रबल व उत्साही शत्रुसेनापति अपनी सेना के साथ पूर्वोक्त दोनों प्रकार की रक्षापंक्तियों को चकमा देकर देहदेश के काफी अन्दर प्रवेश कर जाता है, तब उनमें से बंदी बनाए गए शत्रु गुप्तचरसैनिकों की तीसरी श्रेणी के पास ले जाए जाते हैं। फिर वे सैनिक उन शत्रुओं के वस्त्रों में छिपाई हुई, उनकी अपनी अतिप्रिय वस्तुओं (जैसे कि चाय, कॉफ़ी, तम्बाकू, भांग आदि, लत पैदा करने वाली) को पहचान लेते हैं, और अपने उद्योगों में प्रचुरता से उनका उत्पादन करने लग जाते हैं। नए नियुक्त किए गए गुप्तचर सैनिकों को भी वे उनका उत्पादन करना सिखा देते हैं , ताकि कार्य में तेजी आए। इस सारे जटिल क्रियाकलाप को शुरु करने के लिए कुछ ज्यादा ही समय चाहिए होता है। इस तरह कई प्रचंड शक्ति वाले शत्रु तो क्रियाकलाप के शुरु होने से पहले ही देहदेश का विध्वंस कर देते हैं। कई तीक्ष्ण बुद्धि वाले देहदेशशत्रु इस तीसरी रक्षाप्रणाली के जागृत होने से पहले ही संघर्षमुक्त प्रकोष्ठों में अपने को छिपा लेते हैं , जैसे कि अधिकारियों के वातानुकूलित कक्षों में , अतिस्वच्छतायुक्त उत्पादन क्षेत्रों में; पर्वत, नदी, वन आदि विकट मार्गों व पहुँच वाले क्षेत्रों में आदि-२। जो शत्रु अपने को छिपाने में अस्मर्थ रहते हैं , वे अपने हाथों में अपनी अतिप्रियवस्तुओं को उठाए हुए इधर-उधर शिकार की तलाश में घूमते फिरते रहते हैं, यद्यपि गुप्तचर सैनिकों के द्वारा दूर से ही पहचाने जाने के कारण खुद ही उनका शिकार बन जाते हैं। कुछ विशालकाय देहदेशसैनिक तो पौराणिक काली माता की तरह ही होते हैं, जो कि शत्रुओं को समेत वाहन व अस्त्र-शस्त्रों के निगल जाते हैं।

यह तृतीय श्रेणी की सुरक्षा व्यवस्था इसलिए बनी है ताकि देहशत्रुओं के साथ प्रबल संघर्ष के बीच में , देहसैनिकों के द्वारा कोई स्वदेशी नागरिक हताहत न हो जाए। कुछ चतुर जाति के देहशत्रु देहदेशसैनिकों के बीच में होने वाली उस आपसी व जटिल संवाद प्रक्रिया का अवरोधन करते हैं , जो उनके सफाए के लिए जरूरी होती है। कई बार नागरिक देहपुरुषों और देहसैनिकों के बीच की संवाद प्रणालियों , जैसे कि दूरभाष-यंत्रों की तारों आदि को काट दिया जाता है। इससे सैनिकों को नागरिकों के ऊपर किए गए हमले की सूचना ही नहीं मिल पाती है। कई बार यदि सूचना मिलती है , तो संक्षिप्त व अपूर्ण रूप से, जिससे सैनिक, देहपुरुषों के कष्टों का सही ढंग से आकलन नहीं कर पाते। यह इसी तरह होता है , जैसे कि हिटलरनामकपुरुष ने गुप-चुप तरीके से यातना शिविरों में निर्दोष पुरुषों को मरवाया था। संपूर्ण देहदेश के सहयोग से निर्मित , स्वदेशी सुरक्षा के उपकरण व प्रणालियां ही बेहतर होती हैं, क्योंकि आयात किए गए विदेशी उपकरणों व प्रणालियों के तोड़ को शत्रु शीघ्र ही ढूंढ लेते हैं , क्योंकि वे वैश्विक तकनीकें खुले रूप में विद्यमान होती हैं, जिन्हें वे आसानी से चुरा लेते हैं। साथ में , विदेशी तकनीकों के खराब होने पर उनको दुरस्त भी आसानी से नहीं किया जा सकता। सैनिकदेहपुरुष आश्चर्यमयी जीवनलीला दर्शाने वाले देहपुरुषों में उत्कृष्ट होते हैं , व उनकी इन्द्रियाँ आदि भी बहुत संवेदनशील होती हैं। वे अपने शत्रुओं को पैनी नजर से देखकर , कानों से उनका कोलाहल सुनकर , नाक से उनकी गंध को ग्रहण करके , जीभ से उनके झूठे खाद्य-पेय पदार्थों के स्वाद को पहचानकर और त्वचा से उनको स्पर्श करके , उनकी उपस्थिति का पूरा ब्यौरा इकट्ठा करते हैं। फिर उनकी शक्तियों व दुस्सहास का मन में अंदाजा लगाकर या पुराने अनुभव को याद करके, अपनी तीव्र बुद्धि से कुछ निश्चय-निर्णय पर पहुँचते हैं। उस निर्णय के अनुसार ही वे अपने हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को उठाकर, उन मतवाले शत्रुओं की ओर आगे बढ़ते हैं , तथा मुंह से शत्रु के उत्साह का नाश करने वाली भयंकर गर्जना के साथ , हृदयविदारक शंखनाद भी करते हैं। भीषण युद्ध के परिश्रम से उत्पन्न तेज भूख -प्यास के कारण वे लगातार भोजन खाते व पानी पीते रहते हैं , और अपशिष्टों का उत्सर्जन करते रहते हैं। खाद्य व पेय पदार्थों की आपूर्ति देहदेश के राजा द्वारा भारी मात्रा में विदेशों से आयात करके की जाती है। संक्षेप में कहें तो उस युद्ध में देहदेश को भारी कीमत चुकानी पड़ती है , और कई महीनों तक चलने वाले संसाधनों का उपयोग चंद दिनों में ही हो जाता है। वहीं पर अन्तःपुरों में विद्यमान क्षत्रिय-देहपुरुष सभी सुख-सुविधाओं से संपन्न होकर, खाते-पीते हुए, काम-क्रीड़ा में संलग्न रहते हैं। प्रशिक्षण, व्यायाम, खेल आदि के सिवाय और काम तो वहाँ होता नहीं उनके लिए, अतः सीमा पर चल रहे युद्ध में देहसैनिकों की भारी क्षति की सूचना पाकर, वे तीव्रता से

संतानों को उत्पन्न करके, अपनी आवश्यक जनसंख्या को स्थिर बनाए रखते हैं। उनके लिए खाद्य-पेयादि की आपूर्ति व प्रशिक्षण आदि का इंतजाम भी बढ़ा दिया जाता है।

उपरोक्त विवरण से सपष्ट है कि देहपुरुषों व स्थूलपुरुषों के कार्य पूरी तरह से एक जैसे ही होते हैं। उनके बीच में लेशमात्र भी अंतर नहीं होता। इससे यह भी जाहिर होता है कि देहपुरुषों के मस्तिष्क में भी स्थूलपुरुषों के जैसी ही चित्तवृत्तियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। यद्यपि देहपुरुष अपनी चित्तवृत्तियों को अनुभव नहीं करते, क्योंकि ऐसा करने की आवश्यकता ही नहीं होती। हम स्थूलपुरुष अपनी चित्तवृत्तियों के अनुभव को कभी नहीं टाल सकते, यद्यपि हम देहपुरुषों के ध्यान से उनके प्रति अनासक्त अवश्य रह सकते हैं। यही शविद का मूलमंत्र है। इससे अद्वैत उत्पन्न होता है , जिसके अभ्यास से धीरे-धीरे अपनी शुद्ध आत्मा हमें चित्तवृत्ति नामक बनावटी तरंग के साथ पुनः याद आ जाती है। जिस प्रकार मुक्त पुरुषों के द्वारा देहपुरुषों के जैसे यंत्रमयी आचरण अनायास ही प्रकट होते रहते हैं , उसी प्रकार से देहपुरुषों के ध्यान से भी शुभ आचरण स्वतः ही होने लग जाते हैं , जिनके निरंतर व दीर्घकालीन अभ्यास से मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है।

देहदेश की स्वयंवर प्रथा भी बहुत प्रसिद्ध है। विशेष बात यह है कि उस प्रथा में खेल-कूद आदि के मुकाबले भी शामिल होते हैं। नए देश के विकास के लिए पितृदेश में सर्वगुणसंपन्न एक कन्या वृद्धि-विकास को प्राप्त होती है। हिरन के समान ही उसकी आँखें गंभीर, गहरी व खुली हुई होती हैं। कमर उसकी पतली होती है। उसकी नजर मधुर व शान्तिदायक हास्य से भरपूर होती है, खिले हुए कमल की तरह। हथिनी के जैसी मदमस्त व भोली-भाली चाल से वह सबका मन मोह लेती है। उसके परिधानों से इत्र की खुशबू चहुँ ओर दूर-२ तक फैलती रहती है। उत्तम रेशम की सुर्ख लाल रंग की साड़ी में वह दूर से अग्नि-शिखा की भाँति प्रतीत होती है। उसके घुंघराले व लम्बे -२ बाल बड़े सुन्दर सलीके से उसके कन्धों, कपोलों व पीठ पर फैले होते हैं। उनका रंग सुनहरा होने के कारण वे स्वर्ण के तंतु जैसे जान पड़ते हैं , जिन पर चोर-उचक्कों की नजर पड़ते ही ठहर सी जाती है, और वे भी मंत्रमुग्ध से होकर चोरी करना ही भूल जाते हैं। उसके कपोल आदि जो अंग वस्त्रों से बाहर निकले होते हैं , वे पर्वत के श्वेत शिखरों व बर्फ से भरी हुई नालियों - खाइयों की तरह प्रतीत होते हैं। लाल रंग के निशान उसके कपोलों पर चुम्बन का आभास करवाते हैं। उसकी लज्जायुक्त मुस्कान मातृत्वगुण से भी सम्पन्न होती है। श्वेत वर्ण के वक्ष पर ढके हुए स्तन ऐसा प्रतीत करवाते हैं , जैसे कि चांदी से निर्मित भूमि को चोर -उचक्कों से बचाने के लिए उसके शिखरों को वृक्षादि से ढक दिया गया हो। उसके स्वर्णिम केशों में गूंथे हुए विभिन्न प्रकार के पुष्पों से मनमोहक खुशबू आती रहती है। वह अपने केशों को उच्च कोटि की काम कला के प्रयोग से बांधे रखती है। उसकी देह स्वस्थ व यथोचित होती है। वह न तो मोटी प्रतीत होती है , और न ही कमजोर। हाथों में लाल रंग के चमकते हुए स्वर्णिम कंगन ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे कि दो-२ सूर्य एक साथ उग आए हों। उसके पैरों में सुनहरी पायजेबें ऐसी भली जान पड़ती हैं, जैसे कि मंदिर में सोने की घंटियां बज रही हों। वह मधुर व कोयल जैसी आवाज में कुछ गुनगुना रही होती है, जैसे कि भंवरे बोरियत से बचने के लिए गुंजायमान हो रहे हों। वह शानपूर्ण , कलापूर्ण व सौन्दर्यपूर्ण ढंग से ऐसे चल रही होती है , जैसे कि अपनी ही गुनगुनाहट के संगीत पर लयबद्ध रूप से नृत्य कर रही हो। कई बार उसके ढके हुए स्तन ऐसे डोलने लगते हैं, जैसे कि पर्वत शिखरों पर भूकंप सा आ गया हो। वह सोलह श्रृंगारों से सजी-धजी होती है। वास्तव में, हम कला, संगीत, नृत्य, साधना आदि विधाओं को इसलिए अपनाते हैं, ताकि हमारी कार्यक्षमता बढ़े। क्योंकि देहपुरुष सदैव पूर्णतः कार्यक्षम होते हैं, इसलिए इसका अर्थ यह है कि वे इन जैसी सभी विधाओं में भी पूर्णतया निपुण होते हैं।

वह राजकन्या असंख्य कन्याओं के बीच में तब उभर कर सामने आती है , जब परीक्षक-दल के द्वारा उन सबकी परीक्षा कराई जाती है। यह स्वाभाविक ही है कि उपरोक्त सर्वगुणसंपन्न कन्या ही विजयी घोषित होती है। वैसे तो देहदेश की सभी कन्याएं सर्वगुणसंपन्न होती हैं, परीक्षा तो केवल औपचारिकता मात्र ही होती है। जो कन्या बाल्यावस्था से ही सर्वोत्तम प्रकार की तुष्टिपुष्टिवर्धक परिस्थितियाँ प्राप्त करती है , वही परीक्षा में विजयी होती है। हर पल अंगरक्षक दल के साथ अनेक सहेलियाँ उसके साथ विद्यमान रहती हैं। जब वह विवाहयोग्य हो जाती है , तब देहदेश के महाराजा अपने मनचाहे गुणों से संपन्न, किसी एक देहदेश से, अनेक सर्वगुणसंपन्न राजकुमारों को अपनी कन्या के स्वयंवर के लिए आमंत्रित करते हैं। वास्तव में , नवदेश केवल दो देशों के सहयोग से ही , इसलिए बना होता है, ताकि उसमें दोनों देशों के गुणों के साथ , उन गुणों के आपसी मेल से नए गुण भी विकसित हो सकें। उसमें बहुत से देशों का साझापन इसलिए नहीं करवाया जाता, क्योंकि दो से अधिक के बीच में कड़वाहट व तनातनी उत्पन्न हो ही जाती है, जैसे कि कहा भी है कि “तीन तिगाड़ा, काम बिगाड़ा”। उपरोक्त राजकुमारों ने अपने शीश पर त्रिलोकशोभनीय स्वर्णमुकुट पहने होते हैं। उनके बुद्धि, शौर्य आदि गुणों की परीक्षा हेतु , उनके मार्ग में भी अनेक प्रकार की रुकावटें पैदा कर दी गई होती हैं , जिस वजह से बहुत से वीर राजकुमार वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं, तथा बहुत सारे चोट, दुर्घटना आदि के कारण विकलांग हो जाते हैं, जिससे वे मुख्य प्रतिस्पर्धा के प्रारम्भ में ही हार जाते हैं। कुछ कुमार लम्बी यात्रा के कारण ज्यादा ही कमजोरी, थकान, बेचैनी व भूख-प्यास महसूस करते हैं। कई राजकुमार जो तैरना नहीं जानते, वे रास्ते

में लगने वाली नदी में डूब कर मर जाते हैं। कुछेक घने जंगलों में लुटेरों के द्वारा मार दिए जाते हैं। कुछ नौजवान भूख के मारे जल्दबाजी में ही जंगल के जहरीले कंद-मूल खाकर मर जाते हैं, तो कुछ पहाड़ से गिरकर काल-कवलित हो जाते हैं। कुछ नौसखिये तो रास्ते के पहाड़ को भी नहीं लांघ पाते। कुछ कुमार दौड़ प्रतियोगिता जीतने के लिए एक-दूसरे को रोकते हैं, पीछे धकेलते हैं, तथा आपस में झगड़ा करते हैं। कई गबरू जवान रास्ता ही भटक जाते हैं, जिन्हें देहदेश के सुरक्षाबल डाकू-लुटेरा समझकर मार गिराते हैं।

अंततः वधुपक्षीय देहदेश के रनिवास में, अपेक्षित थोड़ी सी संख्या में ही विवाहार्थी कुमार पहुँच पाते हैं। वे अनेक बाधाएँ पार करके आए हुए कुमार बल, बुद्धि, धैर्य आदि गुणों में सर्वोत्तम होते हैं। वहाँ पर परीक्षा अपने अंतिम पड़ाव पर पहुँच जाती है। वह परीक्षा मानसिक ज्ञान व कौशल पर आधारित होती है। उस परीक्षा के अंत में वह राजकुमारी मंद-२ चाल से व चंचल-हँसमुख नजर से चारों ओर देखती हुई परीक्षाकक्ष में पहुंचती है। वह सभी कुमारों के पास बारी-बारी से, हँसमुख दृष्टि के साथ, कुछ समय के लिए रुकती है, और आँखों में आँखें डालकर देखती है। उस समय उत्तेजना, जोश व आनंद आदि कामरस के गुण कुमारों के मुख पर स्पष्ट दिखाई देते हैं। अंत में वह चयनित राजकुमार के पास ठहरती है , और उसके गले में वरमाला डाल देती है।

फिर वह विवाहोत्सव अति हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। उसमें सभी प्रकार के दिव्य व्यंजन व पकवान बनाए जाते हैं। अन्य जो भी भोग -विलास की वस्तुएँ व सेवाएं सृष्टि में उपलब्ध हैं , वे सभी उस विवाह में आए हुए अतिथियों व स्थानीय निवासियों को उपलब्ध करवाई जाती हैं। विविध साज-सज्जाओं व रौणकों से भरपूर भवनों में सभी देहपुरुष मनोवांछित भोग भोगते हैं। कुछ तो लालच के कारण ज्यादा भी खा लेते हैं , और फिर बीमार पड़ जाते हैं। विवाहमहोत्सव के शाँत हो जाने पर बारात को विदा कर दिया जाता है। वह बारात वापसी के दौरान , रास्ते में एक शाँतियुक्त स्थान पर बनाए गए, सुन्दर व सभी सुख-सुविधाओं से संपन्न एक विश्रामगृह में , कुछ समय के लिए ठहराई जाती है। वह विश्रामगृह पितृदेहदेश ने ही अपनी सीमा के अन्दर, सीमा से तनिक दूरी पर बनाया होता है। कुछ समय के बाद महाराजा के जामाता उनकी राजकन्या के साथ एक अति मनोहर पुत्र को पैदा करते हैं। वह पुत्र बालचन्द्रमा की तरह ही चमकीला व गोल -मटोल होता है। उसके पालन-पोषण आदि की व्यस्तता, उसके प्रति लार-दुलार आदि व अन्य आपसी संसर्ग से होने वाले सुखों से मोहित होकर , वे दोनों ही नए देहदेश की स्थापना के अपने उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं, और उस छोटे से विश्रामगृह में ही लम्बा वक्त बिता देते हैं। वे वहाँ पर पूरी तरह से वधुपक्षीय देहदेश पर ही निर्भर रहते हैं, और अयाचित दहेज़ में मिली हुई विभिन्न वस्तुओं /सेवाओं, जैसे कि वस्त्र, आभूषण, विभिन्न साजो-सामान, पशु, वाहन, सखी-सहेली, नौकर-चाकर आदि से गुजारा चलाते हैं। फिर जब संसाधन सीमित पड़ने लगते हैं, तब उन्हें होश आता है, अतः वे आगे के सफर पर निकल पड़ते हैं। वधुदेश के सीमान्त भाग में व वरदेश के निकट, एक निर्जन, परन्तु प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर छोटा सा प्रदेश होता है , जहाँ पर उस युवराज-परिवार के लिए एक अति सुन्दर व वातानुकूलित भवन बनाया हुआ होता है। वहाँ पर राजकन्या के पितृदेश के द्वारा भेजे गए भोगों से आनंदित होता हुआ वह युगलपरिवार अनेक प्रकार के वनों, उपवनों, पर्वतों, सागरों, नदीतटों, आश्रमों, तीर्थों व अन्य मनोरम स्थानों में सुखपूर्वक भ्रमण करता हुआ पहुंचता है। उस दौरान वह आपस में हास्य-विनोद आदि के साथ-२ अठखेलियाँ करता हुआ, लताओं के झूलों में झूलता हुआ , पवित्र जलों में स्नान करता हुआ , सुगन्धित पुष्पों को सूंघता हुआ, पुष्प-क्रीड़ा करता हुआ, पर्वतों पर चढ़ता हुआ, टेढ़े-मेढ़े बर्फ के मैदानों पर फिसलता हुआ , विविध प्रकार के चित्र-विचित्र विमानों में बैठकर सुदूर आकाश में उड़ता हुआ तथा चाँदनी भरी रातों में रास-लीलाएं करता हुआ बहुत ही आनंदित होता है।

इस प्रकार वह राजपरिवार असीमित उल्लास के साथ उस पूर्वनिर्दिष्ट भवन में पहुंचता है। कुछ दिवस विश्राम के उपरान्त , उस परिवार के नवविवाहित किशोर, सुगन्धित व पुष्पाच्छादित स्वर्णशय्याओं के आश्रय से, सर्वगुणसम्पन्न संतानों की प्राप्ति के लिए गर्भाधान संस्कार का आयोजन करते हैं। कुछ समय पश्चात उस निर्जन प्रदेश में, अनेक सुरों से सजे हुए, बालसुलभ संगीत के बोल गुंजायमान हो उठते हैं। राजसुलभ भोग-विलासों के साथ; महल में समस्त महिलाओं के अधर रूपी भंवरों द्वारा छुए जाते हुए कमल जैसे मुख वाले व स्त्रीरूपी निर्मल जलाशय द्वारा गोद में उठाए जाते हुए कमल जैसे शरीर वाले वे राजबालक, अति सुखपूर्वक तरीके से जल्दी ही किशोरावस्था में प्रवेश कर जाते हैं। इसके साथ ही वे भी अपने वयोवृद्धों की तरह ही, देशकाल से अतीत आनंद देने वाले गृहस्थ धर्म का पालन पूरी तत्परता व तन्मयता के साथ करने लग जाते हैं। इससे वह राजवंश दिन दुगुने और रात चौगुने ढंग से बढ़ता हुआ संपूर्ण प्रदेश में व्याप्त हो जाता है।

नया देहदेश बनने के समय, जैसे ही सारे विभाग बन कर तैयार हो जाते हैं, वैसे ही नए देश को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक राजा को भी चुन लिया जाता है। उपयुक्त जीवात्मा को ही राजा के रूप में बैठाया जाता है,क्योंकि देहदेश की तेज व बड़ी भारी भौतिक तरक्की के लिए, उसे प्रचंड व मूर्खतापूर्ण तरीके से चलाने की जरूरत होती है। इसके लिए आत्मबद्ध व अहंकारी शासक की जरूरत होती है , जो कि जीवात्मा के रूप में उपलब्ध हो

जाता है। इसके लिए अनेक जीवात्माओं की आपस में परीक्षा कराई जाती है। जो जीवात्मा नए देहदेश के अनुसार सभी योग्यताओं से सम्पन्न हो , उसे ही राज्याभिषेक कराकर राजगद्दी पर बैठाया जाता है। मुक्त और साधु लोग कभी भी राजपद की इच्छा नहीं रखते , क्योंकि उन्हें इस पर बैठकर बद्ध जीवात्माओं की तरह बंधन में पड़ने का कोई शौक नहीं होता। यद्यपि वे गुरु के रूप में नए राजा को सुशासन व सन्मार्ग की शिक्षा देने के लिए , कभी-कभार देहदेश के राज-काज को अपनी इच्छा से चलाते भी हैं।

जब अहंकार से रहित व निर्लिप्त रहते हुए भी, पुत्रदेश पितादेश द्वारा उपलब्ध कराए हुए सारे खाली स्थान को भर देता है; तब वह भूमि, साधनों व संसाधनों का और अधिक विस्तार चाहता है। राज्यों के विस्तार की यह प्रवृत्ति स्थूलसृष्टि में भी समान रूप में नजर आती रही है। यद्यपि राजा पुत्रमोह से बंधा होता है, परन्तु फिर भी वह उससे ज्यादा स्थान पुत्रदेश को विस्तार करने के लिए नहीं दे सकता , क्योंकि यदि वह ऐसा करता है, तो उसकी अपनी सत्ता के लिए भी खतरा पैदा हो सकता है। तभी नई जिस्म -सल्तनत में दबाव व घुटन में जी रहे देहपुरुष एक महान जन-आन्दोलन शुरु कर देते हैं। इससे परेशान होकर नया सुल्तान अपने शरणदायक सुल्तान के समक्ष अपनी महान पीड़ा का बखान करता है। उसकी उस पीड़ा से क्षुब्ध होकर, महाराजा अपने देश के बाहर व अपने निकट ही एक कम जनसंख्या वाले क्षेत्र में उसके लिए समुचित जमीन का प्रबंध करता है। राजा इस बात का पूरा ध्यान जरूर रखता है कि उसे वहाँ पर मनचाहे विस्तार व स्वतन्त्र जीवनयापन का भरपूर मौक़ा मिले। तब महाराजा विशाल जनसैलाब को स्थानांतरित करने के लिए, अपने देहदेश के सीमाक्षेत्र से गुजरते हुए राजमार्ग के अंतिम छोर के निकट बने हुए आतंरिक मुख्यद्वार को खोलने का आदेश देते हैं। वास्तव में यह आदेश नहीं, अपितु राजा की इच्छा होती है। देहदेश के मुख्यालय में स्थित सम्बंधित मंत्री, उनकी इस इच्छा को ही उनका आदेश समझ लेता है। फिर वह मुख्यालय में ही अपने निकट तैनात सम्बंधित विभाग के सर्वोच्च अधिकारी को आदेश अग्रसारित करता है। सर्वोच्च अधिकारी उस आदेश पर तीव्र संज्ञान लेते हुए उसे जरूरी टिप्पणियों के साथ समस्याग्रस्त क्षेत्र के स्थानीय अधिकारी को अग्रसारित करता है। वह स्थानीय अधिकारी फिर उपरोक्त उच्च अधिकारियों व मंत्रियों के सहयोग से विभिन्न कर्मचारियों को तैनात करता है , और समस्त गतिविधियों का सही ढंग से सञ्चालन करता है। उस मुख्यद्वार से परे व अंतिम छोर पर बने हुए बाहरी मुख्यद्वार तक अनेक प्रकार के सुरक्षाबलों को तैनात कर दिया जाता है , ताकि दूसरे देहदेशों से व निर्जन क्षेत्रों से ऊटपटांग किस्म के सूक्ष्मपुरुषों के अवैध प्रवेश को रोका जा सके। जब देहपुरुषों के कारवाँ बाहरी मुख्यद्वार के निकट पहुँच जाते हैं, तो वह द्वार भी खोल दिया जाता है। शास्त्रों-पुराणों आदि में जो नौ द्वारों वाली पुरी आदि के रूप में शरीर का वर्णन आता है, वह शविद के अनुसार ही तो है।

दोनों मुख्यद्वारों के बीच में तैनात सुरक्षाबलों की प्रचंड क्रियाशीलता के लिए तथा देहपुरुषों के सैलाब को उनके साजो -सामान के साथ दूर इलाके में स्थानांतरित करने के लिए काफी ज्यादा शक्ति व ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन , पानी, वस्त्र आदि जरूरी वस्तुएँ व सेवादारी करने वाले स्थानीय देहपुरुषों की फौज वहाँ पर भेजी जा रही होती है। इन वस्तु -सेवाओं की निर्विघ्न आपूर्ति के लिए सड़कें व अन्य मार्ग यथासंभव रूप से चौड़े कर दिए जाते हैं, तथा उनपर जमे मलबे, बर्फ, घास-फूस आदि बाधाओं को हटा दिया जाता है। उन मुरम्मत किए गए मार्गों पर तब अनेक प्रकार के वाहन; विभिन्न वस्तुओं, सैनिक-देहपुरुषों व अन्य कर्मचारी-देहपुरुषों को उठाकर आसानी व तेजी से दौड़ रहे होते हैं। उस देहराष्ट्रविभाजन के कारण दोनों देशों के लोगों को बहुत ज्यादा पीड़ा झेलनी पड़ती है। दोनों देशों की शक्ति व संसाधनों को गंभीर क्षति पहुंचती है। ऊटपटांग लोगों, दुर्घटनाओं व अन्य अनेक वजहों से दोनों ही देशों का, विशेषकर नवजात देहदेश का जीवन संकट में पड़ जाता है। अनगिनत देहपुरुष अपने दोगले मन की चपेट में आ जाते हैं। वे न तो इस देहदेश के हो पाते हैं , और न ही उस देहदेश के। इस प्रकार से उस विकट परिस्थिति में, दोनों ही पक्षों के देहपुरुष काफी ज्यादा संख्या में हताहत हो जाते हैं।

कई बार बाहर की ओर कूच कर रहे देहपुरुषों की भीड़ बहुत अधिक होती है , व उनकी गाड़ियां भी बड़ी-२ होती हैं। कई बार निर्दिष्ट राजमार्ग व राजद्वार अवरुद्ध होते हैं, तो कई बार द्वाररक्षकों की अक्षमता व अन्य सम्बंधित कमियों के कारण, भिन्न-२ आकार-प्रकार के राजद्वार ठीक ढंग से नहीं खुल पाते। ऐसे में, देहपुरुष उस सीमाक्षेत्र के, खाद्य-पेय की कमी वाले व चोर-उचक्कों से भरे हुए, उजाड़ स्थानों पर ही फंसे रह जाते हैं। उनका जीवन संकट में पड़ जाता है। ऐसे में, राजा को तीव्रता से सूचित कर दिया जाता है। वह बहुत दुखी होते हुए , देहपुरुषों की दर्द को महसूस करता है। पड़ौसी देशों की सलाह के अनुसार, उसके द्वारा द्वारों व मार्गों को चौड़ा करने का निर्णय लिया जाता है। उन्हें चौड़ा करने के लिए व उन पर गाड़ियों -काफिलों को गुजारने की खातिर ऊर्जा के लिए, पड़ौसीदेशों की सहायता ली जाती है। यदि कठोर व चट्टानी भूभाग के कारण , मार्गों को चौड़ा न किया जा पा रहा हो, तो उचित पैमाइश (survey) के बाद, नए मार्ग का निर्माण किया जाता है। कई बार , तंग मार्गों व द्वारों में से ही, देहपुरुषों की गाड़ियों को, उच्च शक्ति के इंजनों वाली मशीनों से बलपूर्वक खिंचवाया जाता है। इसमें सावधानी बरतनी पड़ती है , क्योंकि अत्यधिक बलप्रयोग से देहपुरुषों की

गाड़ियां टूट सकती हैं, और उन्हें गंभीर रूप से चोटें भी लग सकती हैं। साथ में, यदि बीच के तंग रास्ते में ही फँस जाएं, तो उनका दम भी घुट सकता है। ऐसे में भी, नए मार्ग के निर्माण को ही अधिक अहमियत दी जाती है। वह फिर पड़ौसी राजाओं की सहायता से , एक सुगम जैसे दिख रहे पहाड़ को खुदवा कर, एक नया राजमार्ग बनवा लेता है। उस नए निर्गमन-मार्ग पर सुरक्षा व्यवस्था ज्यादा अच्छी नहीं होती है , व अनेक कारणों से, एकदम से बढ़ाई भी नहीं जा सकती। वास्तविक व विशिष्टकार्यसमर्पित राजद्वारों पर तो बहुत लम्बे समय से सुरक्षा -व्यवस्था विकसित हो रही होती है। अतः उनकी बराबरी नवनिर्मित व कामचलाऊ राजद्वार नहीं कर सकते। इसी कारण से, देहपुरुषों के काफिलों के गुजर जाने के एकदम बाद, उस खोदे गए मार्ग को, हटाए गए मिट्टी-मलबे से पुनः भरना पड़ता है, ताकि वह स्थान पूर्ववत स्थिति में लौट आए, अन्यथा शत्रु अन्दर घुस सकते हैं। बहुत से शत्रु तो वैसे भी अन्दर घुस ही जाते हैं, जिनके सफाए के लिए विदेशी शस्त्रास्त्र पहले से ही सुसज्जित करके रखने पड़ते हैं। यदि देहपुरुषों को निकलने के लिए शीघ्रता से नया मार्ग न बनवाया जाए, तो उनको चोर-लुटेरे तबाह कर देते हैं। फिर अपनी विजय से उत्साहित वे शत्रु, मूलदेहदेश पर ही हमला बोल देते हैं। इस तरह से, देहदेश को उन शत्रुओं से निपटने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। कई बार तो वे शत्रु देहदेश पर अपनी सत्ता कायम कर लेते हैं।

एक बार लेखक ने देखा कि नवदेश के नागरिक, अपने साजो-सामान के साथ, किसी भी प्रयास से, मूलदेश से बाहर ही नहीं निकल पा रहे थे, और कुछ समय बाद, मुख्यद्वार भी शत्रुओं के भय से बंद करवा दिया गया था। वैसी हालत में, नवदेशनागरिकों के पास अपने को बचा कर रखने का कोई भी विकल्प शेष नहीं था। मूलदेश ने भी उन्हें अपने देश से बाहर निकला हुआ मानकर, उनके लिए की जा रही सारी आपूर्ति बंद करवा दी थी। नवदेश का सभी कुछ नष्ट हो गया था , और अनेक प्रकार के वातावरणीय प्रकोपों से, धीरे-२ करके वह अवशेषमात्र ही रह गया था। जब कभी कालान्तर में , आसपास रहने वाले लोगों की दृष्टि उन अवशेषों पर पड़ी, तब राजा ने उनको बाहर फिंकवाने का प्रबंध करवाया, ताकि उनसे उसके देश के नागरिकों पर भावनात्मक दुष्प्रभाव न पड़ता।

नए देश में कई किस्म के विशेषज्ञ, खासकर के जंग के हुनरमंद देहपुरुष विकसित ही नहीं हुए होते हैं। इससे विशेष व जरूरी विद्याओं की कमी से वह देहदेश कई बार पैदा होने से पहले ही नष्ट हो जाता है, खासकर अगर वालिद देहदेश के द्वारा वह ढंग से सम्भाला न जाए। सही ढंग से संभाले जाने पर भी, कई बार नवजात देश ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाता। कई बार कुछ विकसित होकर के वह नया देश अपने अब्बादेश के साथ ही शत्रु की तरह बर्ताव करने लग जाता है। वह ज्यादातर समय गंदा रहता है , जिसके कारण उसके अन्दर ऊटपटांग किस्म के लोग डेरा डाले रहते हैं। पितृदेश स्वाभाविक पुत्रमोह के कारण जब-२ उससे मिलने का प्रयास करता है, तब-२ वह भी उन उग्रपंथियों की चपेट में आ जाता है। ऐसे मिलन के मौकों पर पितृदेश की थोड़ी सी भी असावधानी से, यदि उसकी अपनी सीमा तानिकमात्र भी क्षतिग्रस्त हो जाए, तो वे सूक्ष्म उग्रपंथी उसके अन्दर भी प्रविष्ट हो जाते हैं। वे हिंसक, पापी व आत्मघाती सूक्ष्मपुरुष पितृदेश के अन्दर महान उत्पात करते हैं; निर्दोष देहपुरुषों का कत्लेआम करते हैं, सैनिकों के ऊपर छलपूर्वक आक्रमण करते हैं, देहराष्ट्रीय संपत्ति को भारी नुकसान पहुंचाते हैं , तथा अनेकविध मार्गों व संरचनाओं का विध्वंस करते हैं। कई बार वह पुत्रदेश शत्रु-देहराष्ट्र के साथ मिलकर, अपने पितृदेहराष्ट्र के लिए नित नई समस्याएँ खड़ी कर देता है। कई बार उसके उग्रपंथी लोग पितृराष्ट्र में घुसकर , वहाँ के स्थायी नागरिकों के मन में देशद्रोह व विद्रोह की चिंगारी को भड़का देते हैं।

वास्तव में देहदेश में जड़ें जमा चुके वे सूक्ष्म उग्रपंथी दिमाग से बहुत तेज और शरीर से काफी फुर्तीले होते हैं , यद्यपि गलत काम ही उन्हें ठीक दिखाई देते हैं। अधर्म उन्हें धर्म की तरह प्रतीत होता है। वे अधर्म का पालन अनासक्ति व अद्वैत के साथ वैसे ही करते हैं , जैसे सामाजिक देहपुरुष अपने धर्म का करते हैं। वैसे तो वे अधर्मीदेहपुरुष भी मुक्त व ईश्वररूप ही होते हैं , क्योंकि देहदेश में कोई भी पुरुष बद्ध नहीं होता, राजा के सिवाय। यद्यपि जब स्थूल उग्रपंथी उनका चिंतन करके उनके जैसा बनने का प्रयास करते हैं, तो सदैव असफल होते हैं, क्योंकि देहपुरुष कभी नहीं चाहते कि स्थूलदेश में भी कोई पुरुष उग्रपंथी हो। दूसरे तरीके से यह भी कह सकते हैं कि स्थूल उग्रपंथी ईश्वर अर्थात देहपुरुष के नाम पर गलत काम कर रहे होते हैं। इस प्रकार से उग्रदेहपुरुषों का ध्यान करके उनके जैसा बनने की कोशिश करने वाले उग्रपंथी तो साधारण उग्रपन्थियों से भी बुरे होते हैं , क्योंकि साधारण उग्रपंथी तो अपनी उग्रता को स्वीकार करता है , और इस कारण समय आने पर सुधर भी जाता है, लेकिन देहपुरुषचिन्तक उग्रपंथी कभी नहीं सुधरते, क्योंकि उन्हें अपना गलत काम सही लगता रहता है। हाँ , आत्मरक्षा के लिए उन उग्रदेहपुरुषों का नहीं, अपितु सैनिकदेहपुरुषों का चिंतन जरूर किया जा सकता है।

देहदेश के उन सूक्ष्म उग्रपन्थियों ने अपना उग्रता से भरा हुआ एक कथा-साहित्य बनाया होता है, जिसे हर कोई उग्रपंथी पढ़ता रहता है, और अपने पास हमेशा सहेज कर रखता है। नई औलादों को भी वह किताब मुहैया करवा दी जाती है। इस तरह से उनकी उग्र परम्परा कभी खत्म होने को नहीं

आती। उनको नष्ट करने के लिए कई कोशिशें की जाती हैं, जैसे कि देहदेश का प्रबंधन सुधारना व विदेशी तकनीकों की मदद लेना आदि-२; पर उनका बीज ख़त्म न हो कर बना रहता है। कभी-कभार जब देहदेशराजा या देहलोक-इंद्र शुद्ध व स्वस्थ आचार-विचाररूपी तप के साथ, लम्बे समय तक द्वैताद्वैतसंपन्नदेहपुरुषरूपी देहनारायण का ध्यान करता है, तो वे चमत्कारी देहपुरुषों के रूप में अवतार लेकर देहदेश से उनके बीज का सफाया कर भी देते हैं, या फिर उनसे बचाव की कोई शाश्वत युक्ति उपलब्ध करा जाते हैं। उस उग्र साहित्य की रचना किसी अवतारी पुरुष ने की होती है , जिसे वे राक्षसप्रकृतिपुरुष अपना आदिग्रन्थ मानते हुए, उसका भरपूर दुरुपयोग करते हैं। वास्तव में, वह ग्रन्थ बुरे लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए बना होता है, परन्तु वे उससे भले लोगों को परेशान करते रहते हैं। उसी तरह, विभिन्न अवतारी देहपुरुष विभिन्न प्रकार के आचार-शास्त्रों की रचना करते हैं, जो धीरे-२ पूरे देश में फैल जाते हैं, और देहदेश की व्यवस्था को मानवतापूर्ण विधि से चलाते हुए, उसे सुचारू बना कर रखने में योगदान देते हैं। उनको पूरे विश्व में फैलाने का सबसे अच्छा अवसर तो नए देश के निर्माण के समय होता है। नए देश के निर्माता लोगों को उनकी भली भांति शिक्षा दी जाती है, जिनसे प्रभावित होकर वे उन नए शास्त्रों को नए देश के संविधान में शामिल कर देते हैं। इस तरह से, वे नवीन व उपयोगी आचार-शास्त्र नए-२ देशों में प्रसारित होते हुए, पूरे विश्व में फैल जाते हैं। यद्यपि कई बार, बुद्धि-भ्रम या व्यवस्था की खामियों के कारण, इस तरह से बुरे शास्त्र भी फैल जाते हैं, परन्तु उनकी संख्या अच्छे शास्त्रों की अपेक्षा नगण्य ही होती है।

कई बार पितृदेश के द्वारा किए गए अनेक प्रकार के संधि-प्रस्ताओं से भी वह कुपुत्रदेश नहीं सुधरता। पितृदेश पुत्रमोह के कारण उसे छोड़ भी नहीं सकता। ज्यादातर मामलों में वह कुदेहदेश या तो अपने अन्दर पल रहे उग्रपंथियों के द्वारा स्वयं ही नष्ट हो जाता है, या फिर उसके शत्रुदेहदेश उसे नष्ट कर देते हैं। परन्तु कभी-कभार ऐसा भी होता है, विशेषकर पितृदेहदेश के राजा की लापरवाही से, जब उस पुत्रदेश की मूर्खता से केवल पितृदेश को ही लगातार नुकसान उठाना पड़ता है। बहुत विरले मामलों में पुराना देहदेश इस तरह से नष्ट भी हो सकता है। पुत्रदेहदेश के जन्म से ही लेकर अगर मातृदेश की ओर से उसका समुचित ध्यान रखा जाए तथा उसके अपने पैरों पर खुद खड़ा होने तक उसको जरूरत के हिसाब से सहारा व पालन-पोषण उपलब्ध करवाया जाए, तो ऐसी नौबत से बचा भी जा सकता है। स्थूल उग्रवादियों को यह जरूर जान लेना चाहिए कि सूक्ष्म उग्रवादियों का अनुकरण कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म उग्रपंथी तो सदामुक्त होते हैं, इसलिए उन्हें कोई पाप नहीं लगता, परन्तु स्थूल उग्रपंथी सदाबद्ध होते हैं, अतः वे अपने बुरे कामों के अंजाम से कभी भी बच नहीं सकते। इस प्रकार से अनेक देहदेश पैदा हो जाते हैं, जिनमें देहपुरुषों के पूर्णसमाज, ईश्वरीय लीला करते हुए विस्तार को प्राप्त होते हैं।

ज्ञानीपुरुषों के द्वारा कल्पित व चिरवांछित जो ब्रम्हसमाज है, वो यही देहपुरुषसमाज तो है। स्थूलसमाज में तो सपने में भी सर्वजनमुक्ति संभव नहीं हो सकती, परन्तु देहसमाज में सभी पुरुष, यहाँ तक कि सभी पशु-पक्षी व पेड़-पौधे भी स्वभाव से ही सदामुक्त हैं। यदि हर रोज, बेशक थोड़ी मात्रा में ही शविद का सहारा लिया जाए, तो देहपुरुष की तरह अनासक्ति अपने आप ही अर्थात बिना कोशिश किए ही पैदा हो जाती है, जो कि दिन भर टिकी रहती है। इससे आदमी व्यस्त भी रहता है, और प्रसन्न भी। वैसे भी अद्वैत-साधना वही सबसे अच्छी होती है, जो अपने-आप होती रहे, क्योंकि सोच-विचार कर के की गई साधना से दुनियादारी के जरूरी काम कुछ पीछे छूट जाते हैं, और साथ में, यह अहंकार भी पैदा हो जाता है कि मैं साधना कर रहा हूँ। इसलिए ऐसे-वैसे और लम्बे-चौड़े बर्ताव करने से अच्छा है कि सिर्फ देहपुरुष की तरह का ही मस्ती से भरा हुआ बर्ताव किया जाए, बेशक थोड़ा ही सही।

स्थूलसैनिकों के झुंडों की तरह ही, देहसैनिक भी इकट्ठे होकर चित्र-विचित्र व्यूहों की रचना करते हैं; जिससे वे प्रबल व बड़े भारी शरीर/आकार वाले शत्रुओं को भी आसानी से परास्त कर देते हैं। स्थूल पुरुष की तरह ही वे तहे दिल से दोस्ती भी करते हैं, जिससे वे एक दूसरों का हाथ पकड़ कर, लम्बी-२ कतारों में खड़े हो जाते हैं, और एक-दूसरे को ढाढस बंधाते हुए विशाल शत्रुओं को भी डरा-धमका देते हैं। इससे वे अपनी विशाल सत्ता को दिखाते हुए, वाग्बाणों से अपने सत्ता-गौरव के वर्णन को शत्रुओं की तरफ फेंकते रहते हैं, जिससे शत्रुओं के दिल लड़ाई से पहले ही टूट जाते हैं। फिर तो वे उन्हें आसानी से मार देते हैं, और कई बार खा भी लेते हैं। बड़े सूक्ष्मशत्रु को खाने के लिए वे वैसे ही इकट्ठे हो जाते हैं , जैसे कि फसल को नुकसान करने वाले बड़े जानवर को खाने के लिए बहुत से स्थूल पुरुष।

देहपुरुष आजाद होकर भी गुलाम ही होता है, जैसा कि सपष्ट रूप से दिखता भी है। वह देहदेश की भलाई के लिए ही जिन्दा रहता है, अर्थात खाता है, चलता है, विभिन्न कामों को करता है, लड़ाई लड़ता है, और आखिर में मर भी जाता है। इसी प्रकार स्थूलपुरुष भी तो गुलाम ही होते हैं, क्योंकि वे भी तो स्थूलदेश की भलाई के लिए ही इसी तरह से लगे होते हैं, यद्यपि उन्हें अपनी मूर्खता की वजह से ऐसा लगता है कि वे ये सब अपने लिए कर रहे हैं। वेदों में भी तो ऐसा ही लिखा है कि मनुष्य परमात्मा या प्रकृति के द्वारा उसकी अपनी मर्जी से वैसे ही नचाया जाता है , जैसे कि नट के द्वारा

कठपुतली। पुरुष को मोहमाया के कारण अपनी आजादी नजर आती है , जबकि वह हमेशा ही सारी सृष्टि की भलाई के लिए ही , नजर न आने वाली ताकत के द्वारा चलायमान रहता है। तब अहंकार किस बात का? क्या आदर्श नौकर कभी अहंकार करता है? इतनी सी हकीकत की जानकारी भी गुरूर को ख़त्म करने के लिए काफी है। इसकी तरफ श्रुतियों ने इस सूक्ति के द्वारा भली भांति इशारा किया है, "यत्पिण्डे तत्ब्रम्हाण्डे"। इसका साफ सा मतलब है कि जो कुछ ब्रम्हांड में घटित हो रहा है , वही छोटे से दायरे में भी , देश में भी, धरती पर भी, आदमियों के दुसरे समाजों में भी और यहाँ तक कि आदमी के शरीर के अन्दर भी हो रहा है। तो फिर जब कहीं भी अहंकार का नामोनिशान तक नहीं है , तो फिर खाली स्थूल पुरुष अर्थात मनुष्य ही क्यों अहंकार करके कर्ता-भोक्ता बन जाता है, और सबकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है?

कई बार सख्त चमड़े वाले शत्रु के टुकड़े देहपुरुष के पेट में बिना पचे हुए ही लम्बे समय तक पड़े रहते हैं , और अंत में उसे भी ले ही डूबते हैं; ठीक उसी तरह जैसे कई बार माँस के अन्दर के विषमय कीट , कांटे या हड्डियाँ उसे खाने वाले पुरुष को ही खा डालते हैं। कई बार कोई देहसैनिक विरले स्थूल पुरुष की ही तरह, रिश्वत आदि लेकर देहशत्रु से मिल जाता है , और उसे किसी भी हालत में मरने नहीं देता। ऐसी स्थिति में अन्य देहसैनिक देहदेश के हित में उसे ही उसी तरह मार डालते हैं , जिस तरह से लड़ाई के बीच में भ्रष्ट स्थूल सैनिक को अन्य सैनिक। मजबूत शारीरिक व मानसिक गठजोड़ बनाकर, समाजबाह्य-सूक्ष्मपशु, देहदेश से बाहर रहकर भी बड़े-२ कारनामे कर डालते हैं। वे अन्न-जल को आपस में बाँटकर बर्बादी को रोकते हैं। एक दूसरे के सहयोग से वे व्यूह-रचना बना कर रहते हैं, जिससे शत्रु उन पर आसानी से हमला न कर सके। क्योंकि बड़े देश के झमेलों से वे दूर रहते हैं, इसलिए वे एक-दूसरे से प्यार के साथ वक्त बिताने के मौके का भरपूर फ़ायदा उठाते हैं। इसी प्यार -मोहब्बत की बदौलत वे शत्रु का नाश करने के लिए, एक से बढ़कर एक प्रचंड अस्त्रों का भी निर्माण कर पाते हैं , जिन्हें खरीदने के लिए देहदेशों के राजाओं के बीच भी होड़ सी लगी रहती है। अगर ज़रा गौर से सोचें, तो स्थूल देश में भी तो ऐसा-वैसा ही कुछ नजारा दिखाई देता है।

अब देहपुरुषों के बीच में सहयोग-भावना का निरूपण करते हैं। एक विशेष वंश व जाति से सम्बंधित, देहपुरुषों के मित्र, देहदेशों से बाहर, सुनसान इलाकों में स्वतंत्रतापूर्वक जीवन बिता रहे होते हैं। वे स्वतंत्रता व प्रकृति के पुजारी होते हैं , इसलिए अपने छोटे से कुटुंब को छोड़कर किसी बड़ी सामाजिक या राष्ट्रीय व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते। वे ऐसी व्यवस्था को आत्मबंधक समझते हैं। वे सामाजिक देहपुरुषों को गुलाम और बद्ध मानते हुए उनके ऊपर फब्तियां कसते रहते हैं। बदले में उनके मित्र देहपुरुष भी उन्हें अपने समाज में रहने के लिए व खुद स्थिति को देखने -समझने के लिए न्यौता देते रहते हैं। वे जंगली सूक्ष्मपुरुष एक दुर्लभ व सोने के जैसा पदार्थ पैदा करते रहते हैं , जिसकी जरूरत देहसमाज को भी काफी पड़ी रहती है , अतः उनको बुलाने के पीछे का दूसरा मकसद यह भी होता है। देहपुरुषों के कुछ मित्र उनके बहकावे में आकर उनके वहाँ चले जाते हैं। देहसमाज अपने मित्रों की, मेहमानों की तरह आवाभगत करता है, तथा उन्हें भरपूर राजकीय सुरक्षा, आवास व पोषण आदि सुविधाएँ उपलब्ध करवाता है। खुश होकर बदले में वे मित्र भी , अपनी गूढ़ विद्या से, देहसमाज के लिए उस दुर्लभ पदार्थ को तैयार करते रहते हैं। स्थूलभारतवर्ष ने भी स्थूलपारसीपुरुषों को मित्रवत शरण दी थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने भी स्थूलभारत के विकास में अप्रतिम योगदान दिया।

चिदाकाश (चेतन आकाश) का अचित अंश (जड़ अंश) केवल जीवों के द्वारा ही अभिव्यक्तीकृत किया जाता है , आसक्ति के कारण। जीवों के अतिरिक्त मन-रहित संपूर्ण सृष्टि में केवल स्वाभाविक चिदाकाश का ही अस्तित्व है। अतः इससे सिद्ध होता है कि देहपुरुष भी चिदाकाशरूप ही हैं , क्योंकि उनके अन्दर अनुभवयुक्त मन ही नहीं होता है , और अगर उन्हें मन का अनुभव होता है , तो अनासक्ति के साथ होता है। यही अनासक्ति तो शविद का ध्येय है। जब रोग आदि देह-अहितकर घटनाएँ बिना सुर-ताल के या यूं कहें कि अचानक हो जाती हैं , तो वे देहपुरुषों के कारण नहीं, अपितु उनके मुख्य नियंत्रक देहदेशराजा या कहो कि जीवात्मा के कारण होती हैं। जीवात्मा के द्वारा अभिव्यक्त किया हुआ अचिदाकाश ही ऐसी घटनाएँ करवाता है। वैसे तो सुर-ताल के साथ सृष्टि में हर जगह व हर पल, हर कुछ घटित हो रहा है। अचिदाकाश के प्रभाव में आकर , देहदेश में सही ढंग से वायु का संचार नहीं हो पाता, जिस कारण से देहदेश में ऊटपटांग की घटनाएँ हो जाती हैं, क्योंकि वायु ही तो जीवन है। शविदरूपी औषधि की जरूरत तो केवल मन को ही पड़ती है , क्योंकि वही अज्ञान व आसक्ति से अचिदाकाश को अपने अन्दर अभिव्यक्त करता है। देहदेश और देहपुरुष तो खुद चिदाकाश ही हैं, अतः हमेशा ही मानवता की भलाई में लगे रहते हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि परमात्मा तो हमेशा विकास ही करता है , पतन के लिए जिम्मेदार तो केवल जीव स्वयं ही है। आजकल ज्ञान का असीमित भण्डार विद्यमान है , जिससे किंकर्तव्य के विषय में भ्रम होना लाजिमी है। अतः पूर्णतया मानवीय ढंग के साथ, देहपुरुष की ही तरह, समस्या द्वारा निर्दिष्ट आवश्यकता के अनुसार ही जानना चाहिए और करना चाहिए।

कई बार पुरुष की ही तरह, देहपुरुष के मस्तिष्क में भी संवेदन अणुओं के दोष से मनोरोग पैदा हो जाते हैं। इससे विकृत संवेदना वाले देहपुरुष देहदेश के विरुद्ध आचरण करने लग जाते हैं। हम यहाँ संवेदना को साधारण मन कह कर पुकारेंगे। अब पुरुषों के जैसी ही , देहपुरुषों की चिंतन व

निश्चय करने की योग्यता का विस्तार से वर्णन करते हैं। देहपुरुष के द्वारा चक्षु आदि पञ्चज्ञानेन्द्रियों की मदद से सभी बाहरी परिस्थितियाँ महसूस की जाती हैं। ऐसी हालत में साधारण मन ज्ञानेन्द्रियों का रूप ले लेता है। फिर उन परिस्थितियों के अनुसार ही उनके दिमाग में संवेदक अणु कुछ ज्यादा ही क्रियाशील हो जाते हैं, जिन्हें हम वास्तविक या सोच-विचार करने वाला मन कहते हैं। इससे बाहरी हालातों का अनुमान लगाया जाता है। अन्न को महसूस करके उनका मन ललचाने लगता है, पर बुद्धि के निर्णय का इंतज़ार करने के लिए रुक जाता है। अब वह मन ही मन उस अन्न के फायदे व नुकसान के बारे में सोचने लगता है। इससे बुद्धि को निर्णय करने में मदद मिलती है। अगर वह अन्न फायदेमंद होता है , तो उसका मन उसको खाने के निर्णय पर पहुँचता है। यही निश्चयात्मक मन, बुद्धि कहलाता है। फिर वह मन उसके पैरों, हाथों और मुख को उस अन्न को ग्रहण करने के लिए उकसाता है। उस हालत में वही साधारण मन कर्मेन्द्रियों के रूप को ग्रहण कर लेता है। संक्षेप में कहें तो सबसे पहले मन ज्ञानेन्द्रियों के रूप में अन्न के सूक्ष्म रूप को ग्रहण करता है। फिर सोच-विचार करने वाला मन पुराने तजुर्बों/अनुभवों (स्मरण के रूप में साधारण मन) व वर्तमान हालत (ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त) का जायजा लेकर इस बात का पता लगाता है कि क्या वह अन्न उसके मालिक देहपुरुष की सत्ता को बढ़ाने वाला है , या घटाने वाला। यदि वह अन्न जहर की तरह है, व देहपुरुष की सत्ता घटाने वाला है, तो उसका मन पैरों को उससे उल्टी दिशा में चलाने के व मुंह को बंद करने के निर्णय पर पहुंचता है। अन्न तो यहाँ केवल उदाहरण के तौर पर बताया गया है , ऐसी प्रक्रिया तो हरेक वस्तु-सेवा के मामले में समान ही है। इस प्रकार एक ही प्रकार के संवेदक अणु अलग-२ वक्त पर अलग-२ रूप धारण कर लेते हैं। इन संवेदक अणुओं से निर्मित सभी संवेदनाओं (sensations) को हम चित्त व उस चित्त की चित्र-विचित्र लहरों को उसकी चित्तवृत्तियाँ कहते हैं।

कई बार देहपुरुषों में स्थूलपुरुषों की तरह ही बुद्धिभ्रम भी उत्पन्न हो जाता है। इससे हानिकारक वस्तु लाभदायक लगती है , जैसे कि मछली को कांटे पर लगा अन्न लाभकारी लगता है, पर वह कांटे में फँस जाती है। इसी तरह से देहदेश में भी कई बार सशस्त्र विद्रोह के वक्त , विद्रोह करने वाले देहपुरुष वहाँ के कुछ प्रभावशाली देहनागरिकों को फायदेमंद नजर आते हैं , जिससे देहसैनिकों के द्वारा वे विद्रोही सैनिक मारे नहीं जाते , बल्कि इसके उलट, लोगों के द्वारा उनकी खूब सेवा की जाती है। कई बार बुद्धिभ्रम से फायदेमंद चीज नुकसानदायक भी लगती है , जैसा कि किसी विरले देहदेश में होता है। उस देहदेश के सैनिकों को वहाँ के विशेष जाति-धर्म के सज्जन देहपुरुष नुकसानदायक दिखने लगते हैं, और वे उन्हें प्रताड़ित करने लग जाते हैं। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि देहपुरुष पूरी तरह से एक ज़िंदा मशीन की तरह ही काम करते हैं। शास्त्रों में भी तो यन्त्र की तरह ही आचरण करने को कहा गया है। इस मामले में तो ये देहपुरुष निर्जीव यंत्रों से भी ज्यादा बढ़िया हैं , क्योंकि ये मशीन की तरह व्यवहार करते हुए, जीवित भी हैं, और पूरी तरह से जीवित पुरुषों की तरह बर्ताव भी करते हैं।

जिस प्रकार से स्थूल समाज का अध्यक्ष, समाज के आम स्थूल पुरुषों के द्वारा बनाई न जा सकने वाली चीजों ; जैसे कि यन्त्रों, उपकरणों आदि को दूसरे समाज से मंगवा कर अपने पुरुषों को उपलब्ध करवाता है ; ठीक उसी प्रकार से देहसमाज का अध्यक्ष भी देहसमाज में न बनाई जा सकने वाली चीजों; जैसे कि स्थूल अन्न-पदार्थों, स्थूल वस्त्रों, स्थूल जूतों आदि को स्थूल समाज से मंगाकर अपने देहपुरुषों के लिए उपलब्ध करवाता है। दोनों ही जगह समाजाध्यक्ष का यही काम होता है, मुख्यतया। दोनों ही जगह, समाज के अन्दर के काम तो निचले दर्जे के मुंशी , कर्मचारी आदि लोग ही निपटा देते हैं। विशेष अंदरूनी समस्या प्रकट होने पर ही समाजाध्यक्ष को सूचना दी जाती है।

देहपुरुष का स्वरूप जो मर्जी होए, हमारा मकसद तो मात्र इतना ही है कि आसक्ति का नाश होए। यदि देहपुरुष का, शविद के अनुसार वर्णन करके, आसक्ति का नाश हो रहा हो , तो इसमें हमें कोई आपत्ति नजर नहीं आती। परन्तु एक बात तो सोलह आने सच है कि देहपुरुष चंचल व चलायमान चित्त के साथ भी अद्वैतरूप ही हैं। बस इतना मात्र जान लेना ही मुक्ति के लिए पर्याप्त है।

अब देहदेश में साँस लेने के काम आने वाली हवा के बहाव के बारे में चर्चा करते हैं। उससे जुड़ी कुछ अन्य कार्यप्रणालियों का भी संक्षेप में पुनः वर्णन करेंगे। देहदेश में हर जगह, आपस में जुड़े हुए गुफाओं के जाल होते हैं। उनकी कुल लम्बाई हजारों किलोमीटर की होती है। उन गुफाओं में एक विशेष द्रव-पदार्थ मशीनों, पम्पों आदि की मदद से मजदूर देहपुरुषों के द्वारा धकेला जाता रहता है , जिससे कि वह हर पल बहता ही रहता है। उस तरल पदार्थ में वायु-आपूर्तिकर्ताओं की एक कूरियर कंपनी के कर्मचारी, अपनी पीठ पर हवा से भरे हुई थैले लाद कर बहते रहते हैं, जो कि यहाँ से वहाँ हवा की निर्बाध आपूर्ति करते रहते हैं। वे कर्मचारी लाल रंग की वर्दी पहने हुए होते हैं। शुरु में वे गुफाएँ खुली-डुली होती हैं, पर धीरे-२ व दूरी बढ़ने के साथ-२, तंग-२ होती जाती हैं। सुदूर के क्षेत्रों में तो वे अत्यंत तंग हो जाती हैं, क्योंकि सुदूर के जनजातीय व शहरों से दूर के क्षेत्रों में गुफाओं को खोदना काफी महँगा पड़ता है। उन संकरी गुफाओं में वे कर्मचारी खुले-डुले रहकर नहीं बह सकते, इसलिए उन्हें उनके द्वारों पर ही एक पंक्ति (लाईन) में खड़े होना पड़ता है, और बारी-२ से अन्दर घुसना पड़ता है। यहाँ पर देहपुरुषों की अनुशासनप्रियता की भी एक झलक दिखाई देती है। वह देहपुरुष -

नागरिकों को सीधा वितरण करने वाली गुफा इतनी तंग होती है कि उनमें बह रहे कर्मचारियों के हवा से भरे हुए बैग बार -२ गुफाओं की दीवारों से टकराकर उन्हें परेशान करते रहते हैं। खीझ व थकान के मारे वे सारी हवा को थैले से बाहर उड़ेल देते हैं। वहाँ पर गुफा की दीवारें बहुत पतली होती हैं, जिससे हवा दीवार के सूक्ष्म छिद्रों से बाहर निकल जाती है। फिर वह देहदेश के इलाकों में चारों ओर प्रवाहित होकर फैल जाती है, जिससे देहपुरुष जी भर कर साँस ले पाते हैं। उस साफ हवा के बदले में देहदेश की गन्दी हवा गुफा के अन्दर घुस जाती है , जिसे राज-दंड के डर से वे कर्मचारी अपने थैलों में दुबारा भर लेते हैं। उस तंग गुफा से देहदेश के लिए जरूरी भोजन-पानी समेत, बाकी की सभी चीजें; सेवा से सम्बंधित देहसैनिक, विभिन्न काम करने वाले देहपुरुष-कार्यकर्ता व कर्मचारी आदि भी बाहर निकलकर देहदेश के रखरखाव, वृद्धि व विकास में मदद करते हैं। उन सामानों के बदले में, देहदेश के समस्त अपशिष्ट पदार्थ व औद्योगिक उत्पाद आदि, उनकी जगह भरने के लिए अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। उस गुफा का द्रव फिर एक हवा के प्रचंड झंझावात व झोंकों से भरपूर, एक जलाशय में पहुंचता है। वहाँ पर उसके वे कर्मचारी साफ हवा के लालच में आकर अपनी गन्दी हवा के थैले को उल्टा देते हैं, और साफ हवा उसमें भर लेते हैं। इससे वे लापरवाही के दंड से भी बच जाते हैं। देहदेश से इकट्ठी की गई उस गन्दी हवा को बड़े -२ पम्पों के द्वारा देहदेश से बाहर फ़ेंक दिया जाता है। फिर से वह द्रव पूरे देहदेश में घूम -फिर कर उन संकरी गुफाओं में पुनः पहुँच जाता है, और यह प्रक्रिया चक्र की भाँति निरंतर चलती रहती है। द्रव एक अपशिष्ट-शुद्धिकरण यन्त्र से होकर भी गुजरता है, जहाँ पर अपशिष्ट पदार्थ साफ व सुरक्षित कर दिए जाते हैं, ताकि वे देहनालियों, देहगुफाओं आदि को खराब न कर सकें और धीरे-२ उनकी दीवारों पर जमते हुए उन्हें अवरुद्ध न कर सकें। देहदेश में हर तरफ घूमता हुवा वो द्रव अपशिष्ट-छनन-यंत्रों से होकर भी गुजरता है। वहाँ पर देहदेश से इकट्ठा किया गया द्रव छान लिया जाता है। फिर अपशिष्ट बाहर निकाल दिए जाते हैं, और एक विशाल टैंक में थोड़े समय के लिए भंडारित (स्टोर) कर दिए जाते हैं। उन अपशिष्टों को फिर नालियों के रास्ते से, नीचे स्थित नदी की ओर बहा दिया जाता है। वह नदी फिर नीचे-२ जाते हुए, देहदेश की सीमा लांघ कर सूक्ष्मसमुद्र में मिल जाती है।

देहगुफाओं से बाहर निकला हुआ वह शुद्ध जल फिर छोटी-२ नालियों से होकर सारे देहदेश में फैल जाता है। वह सभी देहपुरुषों व देहपशुओं के पीने के काम आता है। देहकिसान उससे खूब फसल पैदा करते हैं, और मोटा मुनाफ़ा कमाते हैं। जो अनाज वे कृषक पैदा करते हैं, उन्हें खाद्य-परिष्करण-उद्योगों में भेजा जाता है। उन उद्योगों में उन मोटे-२ अनाजों को छोटे, जल में घुलने वाले व पौष्टिक तत्त्वों में बदल दिया जाता है। यह इसलिए किया जाता है ताकि देहश्रमिकपुरुष आसानी से उपरोक्त यातायात-गुफाओं में उनका प्रवेश करा सके। कई बार देहदेश में जरूरत से ज्यादा बम्पर फसल हो जाती है। उसको परिष्कृत करने में व इधर -उधर पहुंचाने में बहुत ज्यादा ऊर्जा व शक्ति खर्च होती है , क्योंकि उसके लिए विशेष आरक्षित व कम गुणवत्ता (ऐफ़िशिऐन्सी) की, अतः खर्चीली आपूर्ति प्रणाली को चालू करना पड़ता है ; ऐसे ही जैसे स्थूलदेश में बिजली कम पड़ने पर कोयले का इस्तेमाल किया जाता है। अतिरिक्त तत्त्वों को हानिकारक वातावरण से सुरक्षित भंडारगृहों में रखा जाता है।

अनेक ब्रम्हांड मिल कर जब अपनी सत्ता बढ़ाने का प्रयास करते हैं, तो एक सृष्टि का निर्माण होता है। अनेक आकाशगंगाओं की सत्ता के प्रति भूख, एक ब्रम्हांड को जन्म देती है। अनेक सौरमंडलों के द्वारा एक आकाशगंगा का निर्माण होता है। सूर्य के साथ अनेक ग्रहों व उपग्रहों के सम्मिलित प्रयास से एक सौरमंडल वजूद में आता है। अनेक देश जब अपनी सल्तनत बढ़ाने के लिए ललायित हो जाते हैं, तब एक विश्व उभरकर सामने आता है। अनेक राज्यों के, सत्ता के लिए सम्मिलित प्रयास से एक देश बनता है। अनेक जनपदों से एक राज्य बनता है। अनेक विकासखंड इकट्ठे होकर एक जनपद का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार अनेक पंचायतों से एक विकासखंड, अनेक गाँवों से एक पंचायत, अनेक परिवारों से एक गाँव तथा अनेक स्थूल पुरुषों से एक परिवार निर्मित होता है। असंख्य देहपुरुषों के द्वारा जब इकट्ठे होकर, एक-दूसरे की सत्ता बढ़ाने का प्रयास किया जाता है , तब एक स्थूल पुरुष अर्थात एक देहदेश बनता है। वह देश देहपुरुषों का एक भरा-पूरा समाज होता है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के बड़े-२ अणु जब मिलकर अपनी जागीर बढ़ाने का फैंसला करते हैं, तब एक देहपुरुष का निर्माण शुरु हो जाता है, और धीरे-२ करके पूरा भी हो जाता है। असंख्य छोटे-२ अणु अपनी सुरक्षा के लिए इकट्ठे होकर जब एक झुण्ड बना लेते हैं, तब एक बड़ा अणु अस्तित्व में आता है। परमाणु बहुत छोटे होते हैं। वे भी बड़ा बनना चाहते हैं। जब कुछ परमाणु गठजोड़ बनाकर एक-दूसरे के लिए जीना शुरु करते हैं, तब यह प्रणाली लघु अणु के नाम से विख्यात हो जाती है। ब्रम्हांड बनने के शुरुआती दौर में, अनेक मूलभूत कण आपस में मिल जाते हैं। फिर समन्वित व नियंत्रित रूप वाली सामूहिक क्रियाशीलता से, वे एक सुव्यवस्थित समाज की रचना करते हैं, जिसे परमाणु नाम से पुकारा जाता है। असंख्य व विभिन्न देहों से भरे हुए इस सारे जीवन -प्रपंच की शुरुआत तब होती है, जब चिदाकाश अपनी दिव्य माया शक्ति से, असंख्य मूलभूत कणों के रूप में अपने आप को टुकड़ों में बंटता हुआ सा दिखा देता है।

चित्तवृत्तियाँ जितनी बलवान होती हैं, उनके साथ-२ कायम रहते हुए अनासक्तिमय दृष्टिकोण का भी उतना ही श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। इस तांत्रिक सिद्धांत के अनुसार, पुरुष-स्त्री के मध्य प्रेम-सम्बन्ध में चित्तवृत्तियों का स्फुरण सबसे ज्यादा होता है , इसीलिए दृष्टिकोण व क्रियाकलाप के अनुसार,

ऐसा सम्बन्ध सर्वाधिक मुक्तिकारी भी है, और सर्वाधिक बंधनकारी भी। परन्तु नकारात्मक व एकपक्षीय धारणा के जनमानस में स्थिर हो जाने के कारण इसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। वैसे तो प्रत्येक शक्ति के दोनों, परस्पर विपरीत पक्ष होते हैं। विद्युत व परमाणु ऊर्जा उत्पात मचा सकती है, यदि उसे उचित विधि से नियंत्रित न किया जाए। यद्यपि हानि के भय से तो लोगों को इन शक्तियों के भौतिक लाभों से वंचित होते हुए नहीं देखा जाता , क्योंकि आजकल भौतिक शक्तियों के नियामक व नियंत्रक पुरुषों की भरमार है। संभवतः आध्यात्मिक शक्तियों के नियामक तंत्र -गुरुओं की लुप्तप्रायता इसमें एक कारण हो। पुराणों व शविद में युद्धादि व प्रेम-सम्बंधादि का वर्णन अपेक्षाकृत रूप से ज्यादा इसलिए है, क्योंकि ये दोनों भाव ही संपूर्ण सृष्टि में मुख्य रूप से विद्यमान हैं, और इन दोनों भावों में ही चित्तवृत्तियाँ अपने प्रचंडतम रूप में होती हैं , जिस कारण तंत्र सिद्धांत के अनुसार, मुक्ति का सबसे अधिक सुअवसर भी इन्हीं से उपलब्ध होता है। स्त्री-पुरुष प्रेमसंबन्धों का भरपूर वर्णन इसलिए भी है ताकि तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार समाधि लग सके, जैसे प्रेमयोगी वज्र की लगी। पुरुषोत्तम के लिए या अन्य किसी मानवीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए , त्याग-बलिदान से अचानक जो आत्मा का विकास होता है, वह इसी तंत्र सिद्धांत से तो होता है। इसी तरह से, ग्रामीण व शहरी पुरुषों के बीच की मित्रता अथवा गुरु के साथ नजदीकी से उत्पन्न आत्मानंद का सिद्धांत भी यही है। इसी तंत्रमय सिद्धांत के अनुसार, अनासक्तियुक्त मनोभावों की अपेक्षा अनासक्तियुक्त इन्द्रियभाव ज्यादा कारगर होते हैं, क्योंकि यदि इन्द्रियों के अनुभव प्रत्यक्ष होते हैं , परन्तु शिथिलता पैदा करने वाले नहीं होते हैं , तो वे केवल बलवान चित्तवृत्तियों वाले ही होते हैं। उपरोक्त चित्तवृत्तिरूपी मानसिक संकल्प-विकल्पों को अहमियत दिए जाने के कारण ही, तंत्र में किसी भी मानवीय वस्तु व भाव को निषिद्ध मानकर प्रतिबंधित नहीं किया जाता, अपितु उन्हें रूपांतरित (transformed) किया जाता है। इसी तरह, कई लोगों के मन में शंका उठती है कि प्रकृति ने मनुष्य को ऐसी मुक्तेच्छा (free will) क्यों दी है, जिससे वह कई बार कुमार्गगामी बन जाता है। वास्तव में ऐसा भी उपरोक्त तांत्रिक सिद्धांत के अनुसार ही होता है कि कोई व्यक्ति अपने कार्यों में अद्वैत के साथ , जितने अधिक मस्तिष्क का व जितनी अधिक मुक्त इच्छा का प्रयोग करता है , उसे उतना ही शीघ्र तांत्रिक-लाभ मिलता है, और उतनी ही शीघ्रता से वह मुक्त भी हो जाता है। अतः मुक्तेच्छा तो मनुष्य के लाभ के लिए ही प्रदान की गई है, क्योंकि यदि यह न होती, तो मनुष्य को मुक्ति के लिए , कई मनुष्य-जन्म एक पंक्ति में लेने पड़ते। अतः मानव को बहुत संभल कर चलने की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह तो स्वाभाविक ही है कि जो वस्तु लाभकारी है, वह अनुचित विधि से प्रयोग किए जाने पर, हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। पत्थरों से घर भी बनाए जा सकते हैं, और गड्ढे भी।

सृष्टि के सभी पदार्थों की चेतन मनुष्य के निर्माण व उसकी चिदाकाश में विलीनता अर्थात मुक्ति की ओर प्रवृत्ति दर्शाती है कि सभी पदार्थों का आत्मस्वरूप, चिदाकाश ही है। ऐसा ही जागृत आत्मा वाले बहुतेरे पुरुषों ने अनुभव भी किया हुआ है। देहपुरुषों की आत्मा तो सदैव जागृत ही रहती है। जीवों को प्रसन्नता व सुख देने से, उनके अन्दर विद्यमान परमात्मा अर्थात देहपुरुष अपने आप ही तृप्त हो जाते हैं। सृष्टि के सभी पदार्थ स्वभाव से ही विकासोन्मुखी हैं, क्योंकि अपने असली रूप चिदाकाश की ओर, अपने बाहरी रूप के साथ पलायन करते हुए, वे स्वयं ही विकसित होते जाते हैं। बेजान चीजों से बने हुए देहपुरुष भी इसी वजह से चलायमान रहते हैं, पर उनसे बने हुए स्थूलपुरुष ऐसा करते हुए आसक्त हो जाते हैं, और बाहर के चक्कर में कुछ ज्यादा ही पड़कर, अपने अन्दर का ज़िंदा आसमां ही गवां बैठते हैं।

देहपुरुष के द्वारा खाना-पीना भी बिल्कुल स्थूल पुरुष के जैसा ही नजर आता है। असामाजिक और अकेली -गुमनाम बस्तियों में जीने वाले भले सूक्ष्मपुरुष, देहदेश से बाहर रहते हुए, खुले में विचरण करते रहते हैं, और साधु-फकीरों जैसे जान पड़ते हैं। वे दूर से ही अनाज के दानों को पहचान कर, वहाँ तक अपने पैरों से चलकर पहुँचते हैं। फिर उस अनाज की अच्छी तरह से जांच -पड़ताल करके आराम से बैठ जाते हैं, अपने हाथों से एक-२ निवाला उठाकर मुंह में डालते हैं, और फिर अच्छी तरह से चबा कर निगल जाते हैं। कुछ किस्म के सूक्ष्मपुरुष अनाज को कच्चा ही और कुछ दूसरे , पकाकर खाते हैं। फिर उनकी जठराग्नि से जले-टूटे अनाज के दानों में मौजूद सूक्ष्मपोषक तत्त्व, उनके पेट से होते हुए, उनके शरीर के द्वारा अन्दर की ओर सोख लिए जाते हैं। बिना पचे हुए व शरीर के लिए नुकसानदायक अपशिष्ट पदार्थों को वे मलद्वार से बाहर की ओर धकेलते हुए, खुले में, सीधे ही रूप में त्यागते रहते हैं; क्योंकि बाहर के खुले-डुले माहौल में, भीड़-भाड़ वाले देहसमाज के अन्दर बनी हुई, जटिल रूपों वाली मलशोधन व निष्कासन प्रणालियों के जैसी प्रणालियों की जरूरत नहीं होती। साथ में, बाहरी समाज की अपेक्षा, देहदेश का समाज बहुत ज्यादा जटिल व विकसित होता है। वहाँ पर अनाज को पकाने के लिए एक अलग ही विभाग खोला गया है। फिर अनाज का पका हुआ और पौष्टिक रस पूरे देहदेश में , हरेक देहपुरुष तक, यातायात की विकसित प्रणालियों के माध्यम से पहुंचाया जाता रहता है। देहपुरुषों को भोजन समेत सभी जरूरी चीजों के लिए कहीं चल कर जाने की जरूरत नहीं होती। इसी तरह से, अपने शरीर के अपशिष्ट पदार्थों का उत्सर्जन करने के लिए उन्हें खुली जगह की तरफ दौड़ नहीं लगानी पड़ती , बल्कि अपशिष्ट इकट्ठा करने व उन्हें उठाकर शोधक यन्त्र तक ले जाने की प्रणाली देहदेश में हर जगह विद्यमान होती है। सूक्ष्मपुरुष कुछ किस्म के अनाज सूखे

रूप में भी खाते हैं, पर ज्यादातर मामलों में वे जल में घुले हुए अनाज को ही घोल के रूप में पीते हैं। इससे उनमें पानी की कमी भी साथ-२ पूरी होती रहती है। स्थूलदेश की ही तरह, वे जल का प्रयोग अपने सूक्ष्मदेहदेश में स्थित सभी वस्तुओं के परिवहन के लिए व अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने के लिए करते हैं, यद्यपि कई बार अघुलनशील अपशिष्टों को ठोस रूप में भी बाहर निकालते हैं। वे जल का प्रयोग अपने शरीर का तापमान नियंत्रित करने व उसे हरेक भाग में समान रखने के लिए; अपने शरीररूपी सूक्ष्मदेहदेश को स्थिरता व लचीलापन प्रदान करने के लिए तथा दूसरे कई कार्यों के लिए भी करते हैं। जल के बिना वे मृत हो जाते हैं। उन्नत प्रणालियों के कारण देहपुरुषों की ताकत के बेवजह व जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल अर्थात दुरुपयोग पर रोक लगती है, जिससे देहदेश तेजी के साथ विकास को प्राप्त करता है। स्थूलसमाज में भी तो ऐसा-वैसा ही कुछ स्पष्ट नजर आता है। जब देहपुरुष इतने ज्यादा विकसित ढाँचे के बीच भी अनासक्त रह सकते हैं, तो हूबहू उनके जैसे स्थूलपुरुष, सामान्य से ढाँचे में जीते हुए भी क्यों नहीं।

देहपुरुष अपने नासिका छिद्रों से श्वास के रूप में प्राणवायु को भी आवश्यकता के अनुसार व अनायास ही ग्रहण करते रहते हैं , क्योंकि वे अनासक्त होते हैं। स्थूलपुरुषों की आसक्ति ही श्वास को अनियमित व बाधित करती है, जिससे फिर अनेक रोग व विकार पैदा हो जाते हैं। जिस प्रकार देहपुरुष के द्वैताद्वैत स्वरूप के ध्यान से पर्याप्त, गहरे व उदर-चालित श्वास-प्रश्वास का तीव्रता से संचार शुरु हो जाता है, उसी प्रकार यौगिक श्वास-प्रश्वास अर्थात प्राणायाम आदि से देहपुरुष के द्वैताद्वैत स्वरूप की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। कई बार वायु प्रदूषण के कारण देहपुरुषों को पर्याप्त शुद्ध वायु नहीं मिल पाती। यह प्रदूषण कभी-२ कुदरती तौर पर पैदा हो जाता है, पर ज्यादातर मामलों में देहदेश के राजा के गलत निर्णयों से ही ऐसा होता है। कई बार वह राजा अपने देश के क्षणिक लाभ के लिए धुंआ छोड़ने वाले बड़े-२ उद्योगों का जाल बिछा देता है, जिससे पूरे देहदेश का वातावरण दूषित हो जाता है। इससे बहुत से देहपुरुष कैंसर, हृदयरोग आदि बिमारियों से ग्रस्त होकर मर जाते हैं। महामारी की तरह फैलने पर ये रोग कई बार पूरे देश को ही नष्ट कर डालते हैं। उस बिगड़े हुए देहदेश के नजदीक के दूसरे देश भी उससे खुद ही प्रभावित हो जाते हैं , क्योंकि जहरीली हवा चारों ओर फैल जाती है। कई बार तो देखा-देखी में भी दूसरे देश यह गलत तरीका सीख जाते हैं। इसी तरह देहदेश की अत्यधिक क्रियाशीलता व विकृत कृत्रिमता के कारण जल प्रदूषण भी फैल जाता है। वह विषैला जल जब देहदेश के नदी -नालों में प्रवाहित होने लगता है , तो शोधन के उपरान्त भी वह अपना जहरीला असर दिखा ही देता है।

ध्वनिप्रदूषण से देहदेश के अधिकारी तनावग्रस्त हो जाते हैं, और अपना काम मन लगाकर नहीं कर पाते। इसके परिणामस्वरूप देहदेश को सुचारू रूप से चलाने वाली नीतियाँ नहीं बन पातीं। देहदेश में देहपुरुषों की अतिक्रियाशीलता व उनके द्वारा कृत्रिम रसायनों -पदार्थों आदि के प्रयोग से कई बार भूमिप्रदूषण भी फैल जाता है। ऐसा मलनिष्कासन प्रणाली के उचित शोधन व रखरखाव के बिना भी हो जाता है। ऐसे में देहदेश के अन्दर गन्दगी के अम्बार लग जाते हैं। इस तरह की प्रदूषणकारी अतिक्रियाशीलता भी शविद के समुचित परिशीलन से रोकी जा सकती है। शविद से निम्न क्रियाशीलता पर भी रोक लगती है, क्योंकि निम्न क्रियाशीलता से भी साफ-सफाई का समुचित ध्यान नहीं रह पाता। इस तरह से हम देख सकते हैं कि देहपुरुष की तरह ही हर घड़ी-हर पल जागरूक रहने से ही स्थूलपुरुष का हर प्रकार से भला हो सकता है। देहपुरुषों के स्मरण के प्रभाव से देहदेश की आवश्यकताओं की पूर्ति व समस्याओं के समुचित ढंग से निवारण की ओर खुद ही ध्यान चला जाता है।

जब ऊटपटांग किस्म के अतिक्रियाशील सूक्ष्मपुरुष देहदेश पर हमला कर देते हैं, तब देहदेश के लोग व सैनिक भी अतिक्रियाशील हो जाते हैं, ताकि उनका मुकाबला कर सकें। इससे तथा आग्नेय अस्त्रों से भी देहदेश का तापमान बढ़ जाता है। स्थूलदेश में भी तो ऐसा ही घटित होता है।

अनेक दर्शनों और धर्मों के द्वारा अलौकिक पुरुषों की कल्पना की गई है , जो कि जीवनमुक्त होते हैं, अर्थात मुक्त होते हुए भी साँसारिक रूप से क्रियाशील रहते हैं। हिन्दुओं के देवता, बौद्धों के डाइटीस (deity) व अन्य धर्मों के फरिश्ते आदि ऐसे ही अलौकिक पुरुषों के कुछेक उदाहरण हैं। इसी तरह शविद के द्वारा कल्पना किया गया अलौकिक पुरुष भी देहपुरुष ही है, जो कि वास्तविकता के सबसे अधिक निकट प्रतीत होता है। ये तंत्रविशेषज्ञ देहपुरुष पुरुष के सबसे ज्यादा नजदीक में ही करोड़ों की संख्या में विद्यमान होते हैं , तथा पुरुष के जीवन को प्रतिक्षण संभव बनाए रखते हैं, इसलिए उसे परमप्रिय हैं। ऐसा समझने वाले शविदज्ञानी उन्हें कभी भी नहीं भूल सकते। बौद्ध दर्शन के अनुसार पुरुष को प्रतिक्षण मानसिक रूप से जागरूक रहना चाहिए। यह टिकाऊ मानसिक जागरूकता भी देहपुरुषों के स्मरण से ही सबसे ज्यादा सुलभ है। इसी तरह अद्वैत वेदान्त भी अव्यावहारिक है , यदि उसे देहपुरुष की तरह अपने जीवन में न उतारा जाए। वास्तव में तप , व्रत, पर्व आदि धार्मिक क्रियाकलापों को इसीलिए बनाया गया है ताकि अद्वैत पुष्ट हो सके। ऐसी परिस्थितियों में मन स्वाभाविक रूप से अस्थिर जैसा हो जाता है , जिसे स्थिर बनाने के लिए शविद,पुराण आदि अद्वैतसाधनों का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे में अद्वैत का अभ्यास न्यूनाधिक रूप से स्वयं ही हो जाता है।

शास्त्रों/पुराणों में हम इंद्रदेव को अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या, छल-कपट आदि दुर्गुणों के साथ देख सकते हैं। उनमें वास्तव में ये दुर्गुण , अनासक्ति व अद्वैतनिष्ठा के साथ होते हैं। वास्तव में राजा, प्रशासक व नियंत्रक के मन में अहंकार का होना भी आवश्यक है, क्योंकि अहंकार का आश्रय लिए बिना, विशाल व चित्र-विचित्र जनसमूह पर पूर्णरूप से नियंत्रण रखना संभव नहीं हो पाता। अधिकाँश ढीठ प्रकार के लोग अहंकार से रहित आदेश का पालन भी नहीं करते। इसी तरह से, सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए, नियमों का पालन न करने वाले नागरिकों के ऊपर क्रोध करना भी आवश्यक हो जाता है, यद्यपि वह अद्वैतयुक्त अनासक्ति के साथ व मानवता के हित में होना चाहिए। देहदेश के अधिकारीगण भी अहंकार में प्रतिष्ठित होते हैं , तभी तो वे उच्चकोटि की सुविधाओं से पूर्ण भवनों में निवास करते हैं, और परिस्थिति के अनुसार विभिन्न आदेशों का प्रसारण करते हुए, देहदेश को सुचारू रूप से चलाने के लिए, उसे सदैव उचित नियंत्रण में रखते हैं। वे उत्पथगामियों को दण्डित करने का आदेश भी देते रहते हैं। उन आदेशों से प्रेरित होकर , सुरक्षकदेहपुरुष उससे भी अधिक क्रोध करते हुए, देहदेश में अव्यवस्था फैलाने वाले नागरिकों पर टूट पड़ते हैं। इसी प्रकार देवों की तरह ही , ईर्ष्या व कपट किए बिना, देहदेश के प्रशासक आततायी व कुत्सित सूक्ष्मशत्रुओं का सफाया नहीं कर सकते। वास्तव में ये सभी प्रकार के अद्वैतनिष्ठ दिव्यपुरुष , इन मानसिक दोषों को अपने शौक को पूरा करने के लिए नहीं , अपितु मानवता के हित के लिए ही, बिना इच्छा के ही स्वीकार करते हैं। इसी तरह , अधिकाँश लोग प्रकाशमय जगत को ही देवता के दृष्टिकोण से, अद्वैतस्वरूप अनुभव करते हैं, अंधकार को नहीं। वास्तव में जैसे जीवित मनुष्य के जीवन में अन्धकार का आना भी स्वाभाविक है , उसी तरह देवता व देहपुरुष के जीवन में भी। देवता उसे भी अद्वैतदृष्टि से ही अनुभव करते हैं। यह हमें देहपुरुष से सीखना चाहिए कि अँधेरे से भी दूर नहीं भागना चाहिए , क्योंकि यह भी प्रकाश की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। केवलमात्र , अंधकार में अनासक्त रहते हुए, उसे अद्वैतदृष्टिकोण अर्थात शविदचिंतन के साथ अनुभव करना है।

शविद का परिशीलन कुण्डलिनी को भी प्रतिष्ठापित करता है, जिसे फिर हठयोग के द्वारा परिपक्व करके, ऊपर चढ़ाया जा सकता है, व जागृत किया जा सकता है। शविद इड़ा (भावमय/अनुभवमय नाड़ी) व पिंगला (अभावमय/कर्ममय नाड़ी) के रास्तों से कुण्डलिनी के ऊर्ध्वगमन को संतुलित भी करता है। एक स्वयं की अनुभूत की हुई रहस्य की बात कहता हूँ। कुण्डलिनी वास्तव में सबसे प्यारी भौतिक आकृति ही है , जिसके बार-२ के मित्रतापूर्वक अभ्यास व परिचय से वह मन में स्थिर होने लगती है , जिसको कि कुण्डलिनी का प्रतिष्ठित होना कहा जाता है। शविद उन्मुक्त व मानवतापूर्वक जीवन-व्यवहारों का भरपूर समर्थन करता है, जिनसे कि भौतिक वस्तुएँ मानसिक बनने लगती हैं। हाँ, इनके साथ-२ शविद की ओर भी ध्यान जरूर रहना चाहिए। इसका मतलब है कि चित्तवृत्तियों व उनके भावों को रोकना नहीं है, अपितु उनके साथ बीच-२ में शविद की ओर क्षणिक व टेढ़ी नजर डालनी है सिर्फ, ताकि जैसा है, वैसा ही चलता रहे और इससे कोई किसी तरह की दखलंदाजी न होए। इससे उन व्यवहारों में अनासक्ति का तड़का लगेगा और वे पवित्र होकर शुद्ध मानसिक बन जाएंगे। भौतिकता को नकारने वाले को मानसिकता भी उपलब्ध नहीं होती , क्योंकि मानसिकता का स्रोत भौतिकता ही तो है। यदि कोई शविद के बिना भौतिकता या किसी भौतिक वस्तु को स्वीकारेगा , तो उसे उसके प्रति आसक्ति हो जाएगी , जिससे वह उसी के पीछे लगा रहेगा , बजाय इसके कि वह उसे मन में शुद्ध रूप में स्थिर करके विकसित करे। इससे वह कुण्डलिनी भौतिकता के ही आश्रित रहेगी, जिसमें रहकर उसका पूर्ण विकास संभव ही नहीं है।

शविद ने प्रेमयोगी वज्र की तब भरपूर सहायता की थी, जब उसकी कुण्डलिनी आत्मज्ञान के स्पर्श के बाद नीचे उतर आई थी, और फिर इड़ा नाड़ी से होकर ऊपर चढ़ गई थी। उस समय वह मानसिक रूप से उत्तेजित, अति संवेदनशील, घबराया हुआ सा, स्त्री की तरह व्यवहार वाला, दिव्य व हसीन सपनों में खोया हुआ, थका हुआ सा और शारीरिक रूप से शिथिल सा रहता था। मानसिक उत्तेजना के बाद , वह अचानक गहरे अवसाद में डूब जाता था। अवसाद (अंधकारमय अवस्था) के समय, उसकी कुण्डलिनी पिंगला नाड़ी में प्रविष्ट कही जाती थी। वह संतुलित रूप से दोनों नाड़ियों में , अर्थात सुषुम्ना में प्रविष्ट नहीं हो रही थी। उसकी शारीरिक व यहाँ तक कि, मानसिक शक्ति भी बहुत क्षीण हो गई थी, क्योंकि कुण्डलिनी हर समय पूरे वेग के साथ उसके मस्तिष्क में डेरा डाले रखती थी। वह कुण्डलिनी जीवित व प्रत्यक्ष मनुष्य से भी अधिक प्रत्यक्ष, जीवंत व स्पष्ट प्रतीत होती थी। उसके शरीर की सारी खुराक उसको लगातार कायम रखने में खर्च हो रही थी। भूख उसकी कम व अजीब सी होती थी। कभी भूख समाप्त रहती थी , तो कभी एकदम से बढ़ जाया करती थी, जिसको फिर संभालने में कठिनाई आती थी। उसकी कार्य करने की निपुणता भी क्षीण हो गईथी, व वह अकेले में खोया रहता था, ज्यादातर समाधि के आनंद में। यद्यपि आध्यात्मिक रूप से ये लक्षण सामान्य थे, परन्तु भौतिक रूप से तो विघ्नकारी ही थे। उस समय लेखक ने भी किसी अज्ञात प्रेरणा से शविद का एक पृष्ठ का संक्षिप्त व लघु रूप, विश्वविद्यालय की पत्रिका में प्रकाशित किया था। कुशाग्रबुद्धि प्रेमयोगी वज्र ने उस लेख से प्रेरणा ली और उससे शरीरविज्ञान दर्शन ही बना डाला। लेखक ने तो उसे केवल कलम से कागज़ पर उकेरा ही है, मात्र। तभी से उसके द्वारा शविद के चिंतन का सिलसिला शुरु हो गया था, जिससे लगभग २० सालों के व्यावहारिक व रुचिप्रद प्रयास से, यह दर्शन बन कर पूर्ण हुआ। उस एक

पृष्ठ के शविद से संपूर्ण शविद उसी तरह तैयार हो गया , जैसे एकश्लोकी भागवत से संपूर्ण श्री भागवत पुराण निर्मित हुआ था। वह शविद उसके मानसिक संतुलन के लिए रामबाण सिद्ध हुआ। इससे उसकी कुण्डलिनी पिंगला व इड़ा , दोनों नाड़ियों से होते हुए समान रूप से प्रवाहित होने लगी और वे परस्पर विपरीत स्वभाव होने के कारण एक दूसरे को संतुलित करने लगी। २० वर्षों के व्यस्त जीवन के बीच शविद के परिशीलन के बाद जब प्रेमयोगी वज्र को अनुकूल माहौल के साथ कुछ शाँतियुक्त काल के १ -२ वर्ष उपलब्ध हुए, तो वह अनायास ही योग की उन्नत अवस्था में स्थित हो गया। इसका अर्थ है कि शविद के जीवन भर के परिशीलन के उपरांत मोक्ष अवश्य ही संभव है, क्योंकि जीवन के अंतिम १-२ वर्ष अवश्य ही शाँतिपूर्ण होते हैं (भौतिक या मानसिक या उभय रूप से)। यह भी हो सकता है कि शविद व कुण्डलिनीयोग के संयुक्त -अभ्यास से पुरुष किसी ऐसे दिव्य ग्रह-नक्षत्र पर जन्म ले, जहाँ के पुरुषों का मस्तिष्क साधनामय होता हो व स्वयं ही योग -साधना में तत्पर रहता हो, सरलता से आत्मज्ञान कराने के लिए; और जहाँ पर मस्तिष्क को संबल देने के लिए पृथ्वी-ग्रह पर किए जाने वाले तंत्रमय-टोटकों को करने की जरूरत न पड़ती हो।

कुण्डलिनी-ग्रंथों में कहा गया है कि हृदय से ७२००० नाड़ियाँ निकलकर, पूरे शरीर में फैल जाती हैं; परन्तु एक नाड़ी मस्तिष्क की ओर जाती है, जो ब्रम्ह तक ले जाती है, अर्थात कुण्डलिनीजागरण करवाती है। वास्तव में, यहाँ पर नाड़ियों का अर्थ प्रचंड अनुभूतियाँ ही हैं। सभी प्रचंड अनुभूतियाँ चक्षु आदि बाहरी इन्द्रियों के सहयोग से बनी होती हैं, जिन्हें ७२००० नाड़ियाँ कहा गया है। परन्तु एक ही अनुभूति, जो सर्वाधिक प्रचंड भी होती है, वह केवल मस्तिष्क में ही उत्पन्न होती है, जिसे उस अकेली ऊर्ध्वगामी नाड़ी के रूप में दर्शाया गया है। ७२००० की बड़ी संख्या इसलिए है , क्योंकि ऐसी असंख्य नाड़ीचालित संवेदनाएं हैं, जिन्हें हम अनुभव नहीं कर सकते, परन्तु वे शरीर को चला रही हैं। उदाहरण के लिए, पेट को चलाने वाली, हृदय को चलाने वाली आदि-२ असंख्य नाड़ियाँ।

शाँतिकाल भी सापेक्ष होता है। यह भिन्न-२ लोगों के लिए भिन्न-२ होता है। द्वैत के साथ तो कोई भी व्यक्ति पूर्णतया कर्मठ नहीं बन सकता। अद्वैतदृष्टिकोण स्वयं ही व्यक्ति को पूर्ण कर्मठता की ओर ले जाता है। जब कोई व्यक्ति अद्वैत के साथ पूर्णतया कर्मठ (मानसिक व शारीरिक, दोनों रूप से) बना रहता है, तभी वह कर्मयोगी कहलाता है। शविद की सहायता से, प्रेमयोगी वज्र का कर्मयोग १५-२० वर्षों के निरंतर प्रयास से सफल हुआ। यद्यपि समयावधि में भिन्नता हो सकती है। फिर किसी अज्ञात प्रेरणा से , यदि २-३ वर्षों के लिए प्रवास आदि के कारण, अपना निवासस्थान बदलना पड़े, तो उस कर्मयोगी का कर्मप्रवाह टूट जाता है। उससे वह उतनी गहरी शाँत अवस्था को अनुभव करता है , जितनी गहरी शांतावस्था को एक साधारण व्यक्ति तब अनुभव करता है, जब वह सब कुछ त्याग कर पूर्णसंन्यास ग्रहण कर लेता है। इस तरह से, उस कर्मयोगी को, उस लघुशाँतिकाल में की हुई, अपनी कुण्डलिनीयोगसाधना का उतना ही महान व शीघ्र फल प्राप्त होता है , जितना कि उक्त पूर्णसंन्यासी को। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो वही कर्मयोगी वाली घटना घटित हुई और वह एक साल में ही कुण्डलिनीजागरण का अनुभव कर सका, यद्यपि उसने कुण्डलिनीयोग के साथ यौनयोग का आश्रय भी लिया था।

अद्वैतयुक्त व व्यस्त जीवनव्यवहार के बाद शाँतिपूर्ण अवस्था में कुण्डलिनीयोग का अभ्यास करना अत्यधिक लाभदायक होता है। व्यस्तजीवन में अद्वैतधारणा को अपनाने से यह लाभ होता है कि वह हर समय कर्मों , फलों व संकल्पों के अनुभवों के साथ मिश्रित होते हुए, मानसिकता को निरंतर जागृत रखती है। जब शान्तिपूर्णकाल में इन अनुभवों के अभाव की अवस्था से गुजरना पड़ता है, तब स्वयं ही व्यक्ति कुण्डलिनीयोग की ओर आकर्षित हो जाता है, क्योंकि वह जागृत मानसिकता की आदत से विवश होता है। उस समय वह जागृत मानसिकता उसे कुण्डलिनी से ही मिल रही होती है। यदि पूर्व में उसने द्वैत के साथ जीवनयापन किया हो, तब वह मानसिकता-हीनता का भी अभ्यस्त होता है, अतः वह मानसिकता को जागृत रखने वाले कुण्डलिनीयोग की ओर, सही व रुचिकर ढंग से प्रेरित नहीं हो पाता।

प्रेमयोगी वज्र ने अपने लाभ हेतु जिस एकश्लोकी शविद को अपने आत्मज्ञान के प्रचंड प्रभाव में होने पर उद्गीरित किया था, वह निम्नांकित है:-

मानवता से बड़ा धर्म नहीं, काम से बढ़ कर पूजा नहीं; समस्या से बड़ा गुरु नहीं, गृहस्थ से बड़ा मठ नहीं।

“समस्या से बड़ा गुरु नहीं”, यह उपरोक्त वाक्यांश विरोधाभास व गूढ़ता से भरा हुआ है। यह सर्वथा सत्य है कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं , परन्तु यह भी सत्य है कि अधार्मिक (मानवताहीन) गुरु विनाशकारी भी हो सकते हैं, जैसे कि धार्मिक उग्रपंथी। इसलिए आँखें खुली रखकर चलने की आवश्यकता होती है, बिना सोचे-समझे विश्वास करने की नहीं। साथ में यह भी लिखा है कि “मानवता से बड़ा धर्म नहीं”। गुरुसेवा तो मानवता का एक अभिन्न अंग है। एक बात और है। यदि किसी को कुछ सीखने व जानने की इच्छा ही नहीं है, तो गुरु भी उसकी अधिक सहायता नहीं कर सकते। सीखने व जानने की इच्छा, समस्याओं से ही उत्पन्न होती है। यहाँ पर समस्या को मानवता संतुलित कर रही है , अर्थात समस्या इतनी अधिक भी नहीं होनी चाहिए कि मानवता ही खतरे में पड़ जाए। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि काम करते-२ जो छोटी-मोटी समस्याएँ आती हैं, वे स्वयं ही उचित दिशानिर्देशन करके

सिखाते हुए, हमें आगे बढ़ाती रहती हैं। इसके बहुत से उदाहरण मौजूद हैं। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि केवल समस्याओं से ही सीखना चाहिए, अनुभवी लोगों से नहीं सीखना चाहिए, क्योंकि अनुभवी लोगों से सीखने का गुण भी तो गद्योक्त मानवता में ही विद्यमान होता है। इसका एक और अर्थ यह भी है कि बैठे-बिठाए को गुरु कुछ भी प्रदान नहीं कर सकते हैं। कुछ प्राप्त करने के लिए स्वयं ही संघर्ष करना पड़ता है, स्वयं ही सभी समस्याओं से जूझना पड़ता है, और स्वयं ही सभी अनुभव प्राप्त करने पड़ते हैं। गुरु तो केवल मार्गदर्शन ही कर सकते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि कोई विशेष नियम, धर्म, पंथ या कोई अन्य सापेक्ष प्रक्रिया, सभी लोगों के लिए एकसमान रूप से लाभकारी नहीं भी हो सकती है। अतः बंधे-बंधाए नियमों के अंतर्गत रहते हुए भी, समस्या के अनुसार, इधर-उधर भी, अद्वैत के साथ हाथ-पैर मारते रहना चाहिए। यह वैसे ही है, जैसे पालतु पशुओं को पूर्ण रूप से खुला न छोड़ते हुए, उन्हें सीमित क्षेत्र में ही, निगरानी के अंतर्गत चराया जाता है। यदि वंश-परम्परा से चले आ रहे नियमों को एकदम से छोड़ा जाए, तो "घर का ना घाट का" वाली स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। वैसे भी, समस्या ही तो यह बताती है कि कौन सा काम, कब व कैसे करना है। यदि दर्द पैर में है, तो सिर की औषधि लेने से क्या लाभ? "काम से बढ़कर पूजा नहीं" व "गृहस्थ से बड़ा मठ नहीं", ये दोनों वाक्यांश तो कर्मयोग एवं तंत्र के मूलभूत सिद्धांत हैं। बुद्धिमान प्रेमयोगी वज्र ने ये सभी बातें पूरी तरह से समझीं, तभी तो उसने प्रस्तुत पुस्तक में इनको सिद्ध करके भी दिखाया है। "काम से बढ़कर पूजा नहीं, मानवता से बड़ा धर्म नहीं", इन दोनों वाक्यांशों का मिश्रित अर्थ यह है कि मानवता से भरे हुए काम से बढ़ कर कोई भी पूजा नहीं हो सकती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पूजा व धर्म छोटी चीजें हैं; अपितु इसका अर्थ है कि यदि कोई व्यक्ति अमानवता के कार्य करते हुए, पूजा या धर्म का ढोंग करता है, तो उसकी पूजा या धर्म मानवतावादी की मानवता से बड़े नहीं हैं। वास्तव में, ईश्वर प्रत्यक्षरूप में नहीं दिखता; अपितु वह उसकी मानवतापूर्ण, अद्वैतपूर्ण एवं अनासक्तिपूर्ण प्रकृति के रूप में ही दिखाई देता है। इसलिए इस प्रकार के प्राकृतिक व्यवहार (मानवीय कर्म) से ईश्वर की पूजा स्वयं ही हो जाती है, व अप्रत्यक्षरूप में उसका ध्यान भी निरंतर बना रहता है। शविद से ऐसा व्यवहार बहुत शीघ्र विकसित होता है। वास्तव में, काम या कर्म, अच्छे काम/सत्कर्म का ही पर्यायवाची शब्द है। बुरे काम को तो दुष्कर्म या कुकर्म कहते हैं। इसलिए देहपुरुष की तरह, कर्म को पूजा समझ कर करना तो सर्वोत्तम भक्ति है।

मानवता-धर्म ही वास्तविक धर्म है। दूसरे मानवनिर्मित धर्म तो केवल इसके सहकारी अंग ही हैं। यदि वे इसकी अवहेलना करते हैं, तब तो संभवतः वे अधर्म से भी निम्नतर माने जाएं। मानवता का अर्थ है, प्रत्येक समय व प्रत्येक स्थिति में मानवता के हित में ही प्रयास करना। देहपुरुषों को ही देख लें। वे निरंतर व बिना थके, इसलिए काम करते हैं, ताकि हम सभी का जीवन संभव बना रहे। उन्होंने न तो कोई धर्म अपनाया है, और न ही कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ी है। परन्तु यह उनकी प्राकृतिक व स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वे मानवता की भलाई व विकास के लिए, अद्वैत व अनासक्ति के साथ, हर प्रकार से प्रयासरत रहते हैं। क्या उस वायु ने किसी धर्म का अध्ययन किया है, जिसे हम निरंतर ग्रहण करके जीवित रहते हैं? नहीं। परन्तु उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह हमें जीवन देती रहे। इसी तरह से; क्या महान सूर्य, जल, अग्नि व धरती माता ने कभी किसी धार्मिक विश्वविद्यालय से उपाधि ग्रहण की है? नहीं। उन सभी की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वे अद्वैतभाव के साथ, जीवन के हित में कर्म करते रहें। इस प्रकार से, यह सिद्ध है कि धर्म तो प्रकृति में, हर स्थान पर व हर समय, स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। मनुष्य ने तो केवल कम या अधिक रूप से, उस धर्म की नक़ल ही की है।

इड़ा-पिंगला के ऊपर भी आजकल भ्रम की सी स्थिति बनी हुई प्रतीत होती है। सरल सी बात है। सारे शरीर की संवेदनाएं इड़ा नाड़ी (afferent nerve channel) के द्वारा इकट्ठी की जाती हैं, और मेरुदंड के रास्ते से मस्तिष्क को भेजी जाती हैं। मस्तिष्क में यह नाड़ी भावनाओं व संकल्पों को भी अभिव्यक्त करती है। इसमें आनंद व प्रकाश अधिक होता है, जिससे झूठमूठ में ही लगता रहता है कि एक और आत्मज्ञान की झलक मिलने वाली है। अतः यह नाड़ी आकर्षण व आसक्ति को उत्पन्न करती है। इसी कारण से कुण्डलिनी की स्वाभाविक इच्छा भी इसी नाड़ी में रहने की होती है। प्रेमयोगी वज्र भी इसी तरह से इसमें आसक्त हो गया था, और अपनी कुण्डलिनी को उसने इसमें ही फँसे रहने दिया था। जब वह भौतिक रूप से औरों से काफी पिछड़ गया, तब उसने शविद का आश्रय लेकर इड़ा की आसक्ति को त्यागा और कुण्डलिनी को पिंगला नाड़ी में से भी प्रवाहित होने दिया। पिंगला नाड़ी (efferent nerve channel) मेरुदंड से होते हुए, मस्तिष्क से निकलकर पूरे शरीर में फैल जाती है, व पूरे शरीर को कर्म करने के लिए आदेश जारी करती है। वह कर्मात्मक ज्यादा और अनुभवात्मक कम होती है। फिर पिंगला से होते हुए उसकी कुण्डलिनी सभी कर्मेन्द्रियों व संसार में प्रसारित होने लगी थी। इस तरह से उसकी कुण्डलिनी हर स्थान पर समान व संतुलित रूप से अभिव्यक्त होने लगी। तब प्रेमयोगी वज्र का कुण्डलिनीमय ध्यान, संवेदनाओं/भावनाओं व व्यवहार/कर्मों के ऊपर समान रूप से लगने लगा और वह संतुलित रूप से समाधिस्थ बन गया। वह सभी कुछ मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ, शरीर-वैज्ञानिक पक्ष तो केवलमात्र समझने व समझाने के लिए ही है।

आजकल कुण्डलिनी आदि मानसिक अनुभवों को एनर्जी (energy) बोलने का चलन भी बढ़ा हुआ सा दिखाई देता है , विशेषकर तथाकथित आधुनिक वर्ग के बीच में। इससे कुण्डलिनी व अन्य आध्यात्मिक अनुभवों का महत्त्व कुछ बौना सा प्रतीत होता है। एनर्जी जड़ (nonliving) है, जबकि कुण्डलिनी चेतन (living) है। प्राचीन, अर्थयुक्त व प्रसिद्ध नाम को नहीं बदलना चाहिए; चाहे वह किसी भी जाति-धर्म या सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ हो, क्योंकि उसमें एक दिव्य प्रेरणात्मक शक्ति छिपी होती है। चेतनायुक्त या जीवित कुण्डलिनी को एनर्जी (energy) आदि कहना तो वैसे ही अपूर्ण वर्णन है, जैसे कि सर्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक आईंस्टीन (Ienstein) को ई=एम सी स्क्वायर (e=mc square) कहना। जागृत कुण्डलिनी में चेतना के सभी गुण विद्यमान हैं, और परब्रम्ह के बाद वह सर्वश्रेष्ठ है; जबकि एनर्जी तो जड़ भी हो सकती है, उसके कई प्रकार व स्तर भी हो सकते हैं; उससे आध्यात्मिक प्रगति शिथिल भी हो सकती है, रुक भी सकती है, और यहाँ तक कि वह विपरीत प्रभाव भी दिखा सकती है आदि -२। नाम में बहुत शक्ति होती है। कुण्डलिनी शब्द को अनादिकाल से, अनगिनत साधुओं व योगियों के वंश, अपने ज्ञान से सिंचित करते आए हैं। वे वैश्विक थे, और किसी जाति, धर्म, नस्ल, क्षेत्र या परम्परा से नहीं बंधे थे। इसलिए वे सभी के हैं, और किसी को उनका आश्रय लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। शरीर के विभिन्न भागों में विचित्र संवेदनाओं, जैसे कि विभिन्न प्रकाशों, आवाजों, चुभनों व पक्षाघातों आदि चित्र -विचित्र संवेदनाओं का अनुभव होना; स्थिर या बदलती मानसिक ऊर्जा (एनर्जी) के ऊपर अनुचित विधि से धारणा-ध्यान के कारण प्रतीत होता है। ऐसा तब भी होता है जब चिर -संचित मानसिक ऊर्जा, उचित मार्गदर्शन के बिना, मनमाने व लाभरहित तरीके से अचानक उत्सर्जित होती है। इनसे कोई आध्यात्मिक लाभ या आत्मज्ञान होने की संभावना प्रतीत नहीं होती। ये और अन्य भी, जो चित्र-विचित्र लक्षण व्यक्ति में उत्पन्न होते हैं, वे संभवतः कुण्डलिनी का विरोध-प्रतिरोध करने से ही उत्पन्न होते हैं। इन दुष्प्रभावों से बचने का तरीका यही प्रतीत होता है कि गुरु , देव, तांत्रिक प्रेमिका (consort) आदि के स्थूल शरीर को कुण्डलिनी बनाया जाए और उस मानसिक चित्र पर ही एकाग्र रूप से ध्यान लगाया जाए। कुण्डलिनी एक जीवनी -शक्ति (life force) है। वह गुरु, प्रेमी-प्रेमिका (consort), माता-पिता, बंधु-बांधव, धन-संपत्ति, देवता आदि सब कुछ है। वह ईश्वर का दूत (messenger of god) है। वह ईश्वर का, मन में समा सकने योग्य लघु रूप है। वह ईश्वर का अवतार है। वह हमें ईश्वर की ओर ले जाती है। वह हमारी सुरक्षिका है। वह हमारी मार्गदर्शिका है। वह हर प्रकार से हमारा लाभ व विकास करती है, जिसके बदले में वह केवल हमारे अपने मनमंदिर में, अपने लिए एक स्थायी निवास मांगती है, और कुछ नहीं। वह अनन्य प्रेमरूपा है। वह हमारी प्रियतमा है। वह प्राणवायु व प्राणों को पुष्ट करती रहती है, जिससे तन-मन स्वस्थ बना रहता है। वह तब भी हमारा साथ निभाती है, जब सभी कुछ हमें छोड़कर चला जाता है। जब योगी को, कुण्डलिनी का नियमित रूप से ध्यान करते हुए, लगभग डेढ़-दो वर्ष हो जाते हैं, तब वह स्वयं ही ईश्वर की ओर आकृष्ट होकर, उसकी भक्ति में डूबने लगता है , क्योंकि कुण्डलिनी से उच्चतर अवस्था तो ईश्वर की ही है। यह जीव का प्राकृतिक स्वभाव है कि वह उच्च से उच्चतर अवस्था की ओर स्वतः अग्रसर होता रहता है। यदि किसी के मन में लम्बे समय से एक ही विचार या चित्र बारम्बार आता-जाता हो, तो वह पूर्व में उसके कुण्डलिनीजागरण का प्रमुख लक्षण है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी वैसा ही होता था। कुण्डलिनी के चित्र तो अवस्था व परिवेश के अनुसार बदल भी सकते हैं, परन्तु निरंतर चिंतन का अभ्यास तो एकसमान रूप से वही रहता है।

शविद के पूरा होने के आसपास, कुण्डलिनीयोग के अतिरिक्त बल से प्रेमयोगी वज्र को समाधि का क्षणिक अनुभव भी हुआ। कुण्डलिनीयोग से सुदृढ़ किया हुआ देहपुरुष का मानसिक चित्र एकदम से उसके मस्तिष्क में पहुँच गया था। प्रेमयोगी वज्र का पूरा मस्तिष्क उस कुण्डलिनी से भर गया था , और भारी महसूस हो रहा था। अहंकार व देह–जगत का भान समाप्त हो गया था, यद्यपि आँखें खुली व एकटक थीं। अन्दर-बाहर हर जगह देहपुरुष ही समान रूप से विद्यमान था। सामान्य चीजें जैसे उससे अलग नहीं, अपितु उसके अन्दर प्रतीत हो रही थीं। अतीव आनंद, एकता, शान्ति व तनाव-हीनता का अनुभव हो रहा था। तर्कबुद्धि नष्ट हो गई थी, और केवल अनुभवमात्र ही शेष था। अपने स्वास्थ्य के प्रति चिंता व आसपास स्थित लोगों से लज्जा अनुभव करने के कारण; साथ में अपने आप व अहंकार का भान न रहने से प्रेमयोगी वज्र डर गया। इस डर से उसने कुण्डलिनी को बलपूर्वक नीचे उतार दिया। योग-शास्त्रों के अनुसार, ऐसी अवस्था में अपने आप को कुण्डलिनी के समर्पित कर देना चाहिए व कुछ भी चेष्टा नहीं करनी चाहिए। समाधि-स्थिति लगभग ५-१० सैकेंड के लिए रही।

प्रेमयोगी वज्र अपनी उस समाधि का वर्णन अपने शब्दों में इस प्रकार करता है , "मैं १८ वर्षों से अद्वैत (मुख्यतः शविद, अर्थात शरीरविज्ञान दर्शन से प्राप्त, कुछ सनातन धर्म की संगति से प्राप्त) का, पूर्ण व्यावहारिकता व कर्मठता से युक्त साँसारिकता के साथ; लगभग १०-११ वर्षों से अनियमित व अपूर्ण (बिना केन्द्रित ध्यान/focused concentration के) योगाभ्यास से (इन दोनों विधियों से ही मेरी मानसिक कुण्डलिनी आधाररूप/मूलाधार में जीवित रहती थी); एक साल से अपने घर से बहुत दूर , शाँत व तनावमुक्त स्थान पर नियमित व समर्पित रूप से अपने एक अतिपरिचित वृद्धाध्यात्मिकपुरुष (गुरु) के मानसिकचित्र रूपी कुण्डलिनी का ध्यान करता हुआ , कुण्डलिनीयोग का अभ्यास कर रहा था (इससे मेरी कुण्डलिनी

परिपक्व हो गई थी); तथा अंत के एक महीने से तांत्रिकयोग/प्रत्यक्षयौनसंसर्गयोग को (नियमित/लगभग प्रतिदिन) उपरोक्त साधना के साथ जोड़ कर, उससे अपनी कुण्डलिनी को अत्यधिक परिपक्व/ऊर्ध्वगामी/जागरणोन्मुखी बना रहा था। मैं बहुत दिनों के बाद, बहुत लम्बी यात्रा करके, अपने नए व व्यक्तिगत वाहन से सपरिवार घर आया हुआ था। तभी एक दिन मैं एक समारोह में एक कुर्सी पर बैठा था। कुण्डलिनीयोग -साधना के शान्तिदायक प्रभाव के कारण, मेरी दाढ़ी भी मध्यम आकार तक बढ़ी हुई थी, और उसके लगभग ३० प्रतिशत बाल श्वेत वर्ण के प्रतीत हो रहे थे। उस समारोह में मेरा हृदय से स्वागत हुआ था। वहाँ पर मुझे अपने लिए चारों ओर विशेष प्रेम व सत्कार का अनुभव हो रहा था। समारोहीय लोगों के साथ जुड़ी हुई बचपन की मेरी यादें जैसे तरोताजा हो गयी थीं। मैं अपने को खुला हुआ , सुरक्षित, शाँत, तनावरहित, मानसिकता से पूर्ण (mindfull), अद्वैतशाली व मानसिक कुण्डलिनी-चित्र के साथ अनुभव कर रहा था। मेरी कुण्डलिनी से सम्बंधित लोग वहाँ पर उपस्थित थे , व वातावरण-माहौल भी मेरी कुण्डलिनी से सम्बंधित था। खड़ी पहाड़ी पर बना वह घर जैसे चिपका हुआ सा लगता था। चहल-पहल व रौनक वहाँ महसूस हो रही थी। समारोहीय संगीत (आधुनिक प्रकार का) भी मध्यम स्तर पर बज रहा था। चिर-परिचित लोगों के खुशनुमा चेहरे जैसे यहाँ-वहाँ उड़ रहे थे, व सीढ़ियों पर ऊपर-नीचे आ-जा रहे थे। मैं बीच वाली मंजिल की बालकनी में था। एक कमरे में स्त्रियों का समूह नृत्य-गान में व्यस्त था। कभी एक-२ करके, कभी दो-२ के समूह में और बहुत विरले मामले में तीन-२ के समूह में वे महिलाएँ बारी-२ से उठकर, गाने वाली २०-२५ महिलाओं के घेरे के बीच में आतीं और अपने नृत्य-कौशल का प्रदर्शन करतीं। मेरे सामने वाली, हरी-भरी व रौनक से युक्त पहाड़ी पर सिधाई में व पर्वत-शिखर से लगभग एकसमान नीचाई पर बनी सड़क उस घर की ऊंचाई के स्तर पर थी, और वहाँ से यातायात के साधनों का शोर मध्यम स्तर पर सुनाई दे रहा था। उस पहाड़ी पर स्थित सूर्य के मुख की लाली बढ़ती ही जा रही थी , जैसे कि वह अपने कर्त्तव्यवहन (duty) के पूरा होने का इंतज़ार बड़ी बेसब्री से कर रहा था। मेरा बहुत समय बाद मिल रहा, एक पुराना व कुछ समय पहले ही सेवानिवृत्त सैनिक, मेरे मानसिक कुण्डलिनी-चित्र के भौतिक रूप से सम्बंधित व उसके जैसे ही कर्मठता आदि गुणों से भरे हुए उत्तम स्वभाव वाला, मित्र सहित ज्ञाति-भ्राता, हँसमुख व तेजस्वी मुद्रा में जैसे ही अपनेपन के साथ मेरा हालचाल पूछने लगा, वैसे ही मैं अपनी कुण्डलिनी के विचार में गहरा खो गया और वह उद्दीप्त (stimulate) होकर अचानक ही मेरे पूरे मस्तिष्क में छा गई। मेरा सिर भारी हो गया व उसमें दबाव महसूस होने लगा। मस्तिष्क में वह दबाव विशेष रूप का था , क्योंकि साधारण दबाव तो चेतना को भी दबा देता है , परन्तु वह दबाव तो चेतना (consciousness) को भड़का रहा था। ऐसा लग रहा था , जैसे कि मेरे मस्तिष्क के अन्दर चेतना की नदी (river of consciousness) भंवर के रूप में, पूरे वेग के साथ घूम रही हो और मस्तिष्क के कण-२ को कम्पित कर रही हो, जिसे सहन करने में मेरा मस्तिष्क अस्मर्थ हो रहा था। वह चेतना का प्रचंड भंवर मेरे मस्तिष्क में, बाहर की ओर एक विस्फोटक दबाव बनाता हुआ प्रतीत हो रहा था। उस चेतना-भंवर (consciousness whirl) को चलाने वाली, मुझे अपनी कुण्डलिनी प्रतीत हो रही थी, क्योंकि वह हर जगह अनुभव हो रही थी। उस तरह की हल्की सी, तूफानी सी, गंभीर व समान रूप की आवाज का अनुभव हो रहा था, जिस तरह की आवाज मधुमक्खियों के झुण्ड के एक साथ उड़ने से पैदा होती है। वास्तव में वह कोई आवाज भी नहीं थी, परन्तु उससे मिलता-जुलता, सन्नाटे से भरा हुआ, मस्तिष्क के एक विचित्र प्रकार के दबाव या कसाव से भरा हुआ, विशाल आत्मचेतना का अनुभव था। वैसा दबाव, जैसा कि शीर्षासन या सर्वांगासन करते हुए, मस्तिष्क में अनुभव होता है; यद्यपि वह अनुभव उससे कहीं अधिक दबाव के साथ, उपर्युक्त सन्नाटे के साथ, चेतनापूर्ण, प्रकाशपूर्ण, कुण्डलिनीपूर्ण एवं आनंदमयी था। यदि अपने अन्दर चल रही, सन्नाटे व आवाज, एकसाथ दोनों से भरी हुई सरसराहट जैसी गुप्त हलचल (यद्यपि आवाज नहीं, पर आवाज की तरह) विद्युत-ट्रांसफार्मर को स्वयं को अनुभव होए, तो वह उसे कुण्डलिनीजागरण के जैसी स्थिति समझे। वह आत्मज्ञान भी नहीं था, अपितु उससे निम्नस्तर का अनुभव था। वह ओम के बीच के अक्षर, "ओ----------------" की एकसमान व लम्बी खिंची हुई आवाज की तरह की अनुभूति थी। संभव है कि ओम का रहस्य भी कुण्डलिनीजागरण में छिपा हुआ हो। दृष्यात्मक अनुभव भी जैसे झुण्ड की मधुमक्खियों की तरह ही , मस्तिष्क को फोड़ कर बाहर निकलने के लिए बेताब हो रहे हों। शक्तिशाली फरफराहट के साथ, जैसे वह अनुभव ऊपर की ओर उड़ने का प्रयास कर रहा था। अतीव आनंद की स्थिति थी। वह आनंद एकसाथ सैंकड़ों यौनसंबंधों से भी बढ़ कर था। सीधा सा अर्थ है कि इन्द्रियां उतना आनंद उत्पन्न कर ही नहीं सकतीं। कुण्डलिनी पूरी तरह से प्रकाशित होती हुई, सूर्य का मुकाबला कर रही थी। वह प्रत्यक्ष के भौतिक पदार्थों से भी अधिक स्पष्ट, जीवंत व वास्तविक लग रही थी। आँखें खुली व गंभीरता से नज़ारे निहार रही थीं। जहाँ पर भी दृष्टि जा रही थी, वहीँ पर कुण्डलिनी दृष्टिगोचर हो रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे सभी कुछ कुण्डलिनी के रंग में रंगा हुआ हो। सभी अनुभव एकसमान, परिवर्तनरहित व पूर्ण जैसे लग रहे थे। मेरा अहंकार पूर्णतया नष्ट हो गया था। मैं अपने स्वास्थ्य के प्रति चिंतित हो रहा था। मुझे अपने व्यक्तित्व का कुछ भी भान नहीं रहा। मेरे साथ में कुर्सी पर बैठे २ -३ लोग, वह मित्र/ज्ञाति-भ्राता व आते-जाते कुछ लोग भी आश्चर्य, शंका व संभवतः तनिक चिंता से मेरी ओर देखने लगे, जिससे मुझे तनिक संकोच होने लगा। मैंने थोड़ा सिर झुकाते हुए अपने माथे की ऊपरी

सीमा को दाएं हाथ की अँगुलियों के अग्रभागों से दबाते हुए बार -बार मला व आँखों को भींचते हुए अपने व्यक्तित्व में वापिस लौटने का प्रयत्न किया। कुछ प्रयत्न के बाद कुण्डलिनी वापिस नीचे लौट आई। मुझे अपनी भूल का अहसास हुआ और मैंने कुण्डलिनी को वापिस ऊपर चढ़ाने का प्रयास किया , परन्तु मैं सफल न हो सका , यद्यपि मैंने अपने आप को बहुत अधिक प्रसन्न , तरोताजा, तनावरहित व अनासक्ति/द्वैताद्वैत से संपन्न अनुभव किया। कुण्डलिनीजागरण के उस अनुभव के समय, मुझे अपने चेहरे पर गर्माहट व लाली महसूस हो रही थी। ऐसा अनुभव मुझे अप्रत्यक्षतंत्र के समय भी हुआ था, जब प्रथम देवीरानी का चित्र मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट व प्रचंड हो जाया करता था, यद्यपि इस कुण्डलिनीजागरण की अपेक्षा मध्यम स्तर के साथ। इस बार देवीरानी का नहीं, अपितु उन पुराणपाठी वृद्धाध्यात्मिकपुरुष (जो पुस्तक-परिचय/समर्पण भाग में वर्णित किए गए हैं) का चित्र सर्वाधिक स्पष्ट व प्रचंड रूप से अनुभव हुआ, यद्यपि केवल १० सेकण्ड के लिए। प्रथम देवीरानी का चित्र तो मस्तिष्क में लगभग सदैव बना रहता था; कभी हल्के स्तर में, कभी मध्यम स्तर में और कभी प्रचंड स्तर में। यद्यपि इस बार कुण्डलिनी का चित्र सर्वोच्च स्तर पर अभिव्यक्त हुआ। वृद्धाध्यात्मिकपुरुष का मानसिक चित्र (कुण्डलिनी) भी लगभग सदैव (यद्यपि देवीरानी की अपेक्षा कुछ कम समय तक) बना रहता था, परन्तु वह अधिकाँशतः हल्के स्तर पर ही अभिव्यक्त होता था; मध्यम या प्रचंड स्तर पर अपेक्षाकृत रूप से बहुत कम। ऐसा लगता है कि ऐसी भिन्नता के लिए , मेरा भौतिक व कामप्रधान परिवेश जिम्मेदार था। यदि आध्यात्मिक परिवेश होता, तो सम्भवतः इसका उल्टा होता, अर्थात वृद्धाध्यात्मिकपुरुष का मानसिक चित्र देवीरानी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना करता। देवीरानी के चित्र ने कभी भी अपने भौतिकरूप के स्तर से अधिक अभिव्यक्ति नहीं दिखाई , परन्तु इस कुण्डलिनीजागरण में, वृद्धाध्यात्मिकपुरुष के चित्र ने तो अपने को, अपने भौतिकरूप के स्तर से भी अधिक अभिव्यक्त कर दिया। उस अनुभव से मेरे मन में स्त्रीमोह का फंदा काफी ढीला पड़ गया था , क्योंकि बिना कामोत्तेजना के ही, सर्वाधिक स्पष्ट मानसिक चित्र बनना, किसी आश्चर्य से कम नहीं था। प्रथम देवीरानी के मानसिक चित्र (क्रियाशील कुण्डलिनी) के साथ मुझे कभी भी पूर्ण समाधि (जागृत कुण्डलिनी) कि अनुभूति नहीं हुई, अर्थात वह कुण्डलिनी क्रियाशील तो निरंतर बनी रही , परन्तु कभी भी जागृत नहीं हो सकी। यद्यपि कालान्तर में द्वितीय देवीरानी ने प्रत्यक्ष /पूर्ण तंत्रयोग/वामपंथी तंत्र से सहायता उपलब्ध करवा कर, उन वृद्धाध्यात्मिक पुरुष के मानसिक चित्र की कुण्डलिनी को मेरे शरीर में बहुत ऊपर उठवाया व जागृत करवाया। संभवतः इसी कुण्डलिनीजागरण/समाधि को ही सहस्रार चक्र/मस्तिष्क में कुण्डलिनी का परब्रम्ह/आत्मा से जुड़ना/एकाकार होना कहा गया है।"

हो सकता है कि लोगों को लग रहा हो कि प्रेमयोगी वज्र विक्षिप्त या बीमार हो रहा हो। इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि अधिकाँश तथाकथित विक्षिप्त, कुण्डलिनी-योगी होते हैं। वास्तव में उनकी कुण्डलिनी जागृत हुई होती है, अतः वे हर किसी वस्तु में अपनी कुण्डलिनी को ही ढूँढते व देखते रहते हैं, और कई बार तो उससे बातें भी करने लग जाते हैं। वास्तव में, कुण्डलिनीजागरण के समय प्रेमयोगी वज्र की मानसिक आँख खुल गई थी। इसी को तीसरा नेत्र (third eye) या छठी इन्द्रिय (sixth sense) भी कहते हैं। यह मानसिक आँख भौतिक आँखों की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म, आनंदप्रद, शान्तिप्रद, प्रकाशपूर्ण और अंतर्दृष्टियुक्त होती है। कुण्डलिनीजागरण के निकट, कुण्डलिनी का, सूक्ष्म व अव्यक्त रूप में एक उफान जैसा दबाव, तन-मन में छाया होता है, जो कुण्डलिनीजागरण के लिए प्रेरित करता रहता है। वह उफान कुण्डलिनीजागरण के बाद ही शाँत होता है। फिर पुनः कुण्डलिनीजागरण करने के लिए वह उफान संचित करना पड़ता है, जिसमें कम या अधिक समय लग जाता है, साधना के प्रति प्रयास के अनुसार। जब कुण्डलिनीयोग सिद्ध होने लगता है, तब मन की, शान्ति, तनावहीनता, अद्वैत व आनंद से युक्त एक दिव्य सी अवस्था होती है। साथ में , यौनयोग के यौनसंयम में दृढ़ता विद्यमान रहती है। योगसाधना के तुरंत बाद , भूख एकदम से बढ़ जाती है, और अधिक खा लेने पर, अगले भोजनकाल में घट भी जाती है। फिर उससे अगले भोजनकाल में पुनः एकदम से बढ़ जाती है, इस तरह से यह चक्र चलता रहता है। संभवतः यह शरीर के वजन को संतुलित रखने के लिए ही होता है। कुण्डलिनी बहुत बुद्धिमान होती है, और वह अपनी अधिकतम अभिव्यक्ति के लिए, उचित व संतुलित वजन को ही सर्वोत्तम मानती है। फिर भी, उस समय नियंत्रण में रहकर भोजन करना लाभदायक रहता है , अन्यथा अपच, आलस्य व शिथिलता उत्पन्न होने की आशंका रहती है। सूखा भोजन (चपाती, बिस्कुट आदि) करते समय, यदि हम अपने पेट के अनुसार ठीक भी खाएं, तो भी कुछ देर के बाद पेट भारी लगने लगता है, क्योंकि सूखे खाद्य पदार्थ पानी को सोखकर फूल जाते हैं। इससे बचने का तरीका यही प्रतीत होता है कि भोजन करते समय थोड़ा पानी पिया जाए , जो पेट भरने के लिए अन्न की मात्रा को घटा देता है। इससे पाचन भी ठीक होता है, यद्यपि अधिक पानी से कुछ शिथिल भी पड़ सकता है।

यदि दिमाग पर जोर देकर, कुछ स्मरण किया जाए या एक ही चित्र पर निरंतर जोर दिया जाए, तो दिमाग या सिर पर एक दबाव/भारीपन सा महसूस होता है। तो जरा सोचें, जब वही चित्र, जीवित व वास्तविक जितना स्पष्ट हो जाता है, तब कितना व कैसा दबाव महसूस होता होगा। वैसा ही दबाव प्रेमयोगी वज्र को भी महसूस हुआ। कुण्डलिनीजागरण अधिकाँशतः उस समय अचानक होता है , जिस समय उसके जागरण की कोई भी

संभावना प्रतीत नहीं हो रही होती है, और व्यक्ति मानसिकतापूर्ण, मस्त व खुशहाल माहौल में जी रहा होता है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो ऐसा ही हुआ, तभी तो वह कुण्डलिनी को अधिक देर तक सहस्रार में रोककर रखने के लिए तैयारी नहीं कर पाया। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि हमें कभी भी कुण्डलिनीजागरण की उम्मीद लगा कर नहीं बैठ जाना चाहिए। जब जागरण होना होता है , तो अनुकूल परिस्थितियों में स्वयं ही व कभी भी हो सकता है। उम्मीद लगाने से तो वह संभवतः आँखमिचौली ही खेले। फिर भी , समय के जिस दौर में, उपर्युक्त दिव्य लक्षणों के साथ मस्तिष्क में सन्नाटा सा हो तथा साथ में भारीपन व दबाव भी बढ़ा हुआ हो , उस दौर में कुण्डलिनीजागरण की संभावना अधिक होती है। जब पहले से ही मस्तिष्क में साधनामय दबाव बना हो और साथ में, कुण्डलिनीजागरण का दबाव भी अचानक से उसमें जुड़ जाए, तब स्वाभाविक ही है कि उस अनुभव को सहन करना थोड़ा कठिन होता है, यद्यपि संभवतः अभ्यास व निर्भयता से, कालांतर में अच्छी तरह से सहन हो जाता है। प्रेमयोगी वज्र ने कुण्डलिनी को संभवतः इसलिए भी उतारा , क्योंकि वह अपने पूर्व के क्षणिकात्मज्ञान से उत्पन्न भयानक मानसिक परिस्थितियों और उनसे उत्पन्न भौतिक अव्यवस्थाओं से, अपने अवचेतन मन (subconscious mind) में इतना अधिक डरा हुआ था कि क्षणिकात्मज्ञान से मिलते -जुलते कुण्डलिनीजागरण को अनुभव करते ही, उसने उस अनुभव को अनजाने में ही नीचे उतार दिया। सिद्धांततः तो कुण्डलिनी से भयभीत नहीं होना चाहिए, उससे प्रेम करना चाहिए, उसे अपनी इच्छा से प्रकट होने देना चाहिए , उसके यथेच्छ क्रियाकलापों में विघ्न उत्पन्न नहीं करना चाहिए और उसके प्रति समर्पित रहना चाहिए। प्रेमयोगी वज्र ने यह बात भी अच्छी तरह से सुनी , पढ़ी व समझी नहीं थी कि जागी हुई कुण्डलिनी को नीचे नहीं उतारना चाहिए। यह भी एक परम आश्चर्य की बात है कि यह पूर्णसटीकता से कभी नहीं बता सकते कि कब कुण्डलिनीजागरण होगा , केवल संभावना ही व्यक्त कर सकते हैं। इसीलिए कुण्डलिनीजागरण के लिए शीघ्रता नहीं करनी चाहिए और बेचैन नहीं होना चाहिए। आराम से , जितना हो सके, उतना ध्यान करते रहना चाहिए। कुण्डलिनीजागरण की घटना साधारण सी लगती है, परन्तु फिर भी इसके ऊपर पूर्णनियंत्रण नहीं किया जा सकता।

प्रेमयोगी वज्र को अपनी कुण्डलिनी , सर्पिणी की तरह, ऊपर की ओर रेंगती हुई प्रतीत नहीं हुई। न ही उसने कुण्डलिनी को , चक्रों को भेदते हुए अनुभव किया। उसे तो केवल ऐसा लगा, जैसे कि वह कुण्डलिनी के विचार में खो गया हो। वास्तव में याद किए जा रहे किसी पुरुष के मानसिक चित्र को ही तो कुण्डलिनी कहते हैं। जब वह याद आत्यंतिक रूप ग्रहण कर के एक निश्चित सीमा को लांघ जाती है , तब वही कुण्डलिनी जागृत कुण्डलिनी बन जाती है, जैसी कि पूर्वोक्त विवरण में प्रेमयोगी वज्र को अनुभव हुई थी। उपरोक्त विवरण से प्रतीत होता है कि कुण्डलिनी से सम्बंधित बहुत सी बातें मायामयी, दार्शनिक व जनसाधारण को कुण्डलिनीयोग की ओर आकर्षित करने के लिए बनाई गई हो सकती हैं , परन्तु विपरीत रूप से, ये बातें कई बार जिज्ञासुओं को भ्रमित व हतोत्साहित भी कर सकती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि अति उच्च स्तर के कुण्डलिनीयोगी को इन चमत्कारिक घटनाओं का अनुभव होता हो, परन्तु आम साधकों को इनसे कोई लाभ मिलता हुआ प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उन्हें तो केवल कुण्डलिनीजागरण से ही अपेक्षा होती है, चाहे वह किसी भी मानवीय ढंग से हो जाए। लेखक के अनुसार, जब लगभग डेढ़ वर्षों तक, नियमित रूप से कुण्डलिनीयोग का अभ्यास हो जाता है, तब वज्र के संकुचन के साथ, कई बार उसके ऊपर स्थित कुण्डलिनी भी सरसराती हुई, ऊपर जाती हुई अनुभव होती है, और मस्तिष्क में अभिव्यक्त होने लगती है। ऐसा विशेषतः तब होता है, जब तांत्रिक प्रेमिका (consort) भी साथ में हो। योगाभ्यास के समय भी, प्रेमयोगी वज्र को कभी भी कुण्डलिनी, मूलाधार से मस्तिष्क (आज्ञा चक्र) तक, ऊपर जाते हुए रास्ते में, स्पष्टता से नहीं दिखाई दी। योगबंध लगाए जाने के बाद, उसे तो वह मूलाधार में गायब होती हुई व मस्तिष्क में प्रकट होती हुई अनुभव होती थी। इसके एक अन्य प्रमाण के तौर पर , जोसैफ कैम्पबैल की पुस्तक (a mythic image) के पृष्ठ संख्या ३०६ पर, श्री रामकृष्ण परमहँस कहते हैं कि मुझे अपनी कुण्डलिनी कभी कीड़े या साँप की तरह रेंग कर और कभी बन्दर की तरह सीधे ही छलांग लगा कर , सहस्रार में प्रविष्ट होती हुई अनुभव होती है। मस्तिष्क को ही आज्ञाचक्र कहा जाता है। प्रेमयोगी वज्र को आज्ञाचक्र का कोई विशेष स्थान अनुभव नहीं हुआ, जैसे कि भौहों के मध्य में या उसकी सिधाई में, सिर के ठीक पिछले भाग में आदि-२ बताया गया है। उसने भौहों के बीच में भी कुण्डलिनी का कम ही ध्यान किया। उसने तो केवल मस्तिष्क में ही ध्यान किया , उसे फिर चाहे आज्ञाचक्र कह लो या कुछ अन्य। मस्तिष्क चक्र तो एक ही प्रतीत होता है। मस्तिष्क के विभिन्न चक्रों में केवल ऊंचाई का ही अंतर होता है। सहस्रार चक्र मस्तिष्क में सबसे ऊंचे स्थान पर स्थित होता है। वास्तव में, सहस्रार चक्र में तो कुण्डलिनी को जागरण के समय (उपरोक्त १० सेकण्ड की समाधि) ही प्रतिष्ठित माना जाता है। यद्यपि उसे अपनी कुण्डलिनी मूलाधार (root chakra) से ऊपर उठते हुए प्रतीत नहीं हुई, परन्तु अपने मस्तिष्क में स्थिर व ऊपर उठने के भारी दबाव के साथ अनुभव हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि संभवतः उसने यौनयोग की भारी सहायता से ; उस समय अति शीघ्रता से कुण्डलिनीजागरण कर दिया, जिस समय उसके निचले चक्र भी पूरी तरह से अनवरुद्ध नहीं हुए थे , यद्यपि महान यौनबल की सहायता से कुण्डलिनी उछल कर , सहस्रार में पहुँच गई। संभवतः वह ऐसे ही हुआ, जैसे गरजते हुए बादलों से बिजली, वायुमंडल के अवरोध को भी चीरते हुए, छलांग लगा कर धरती में प्रविष्ट हो

जाती है। इसी तरह, कुण्डलिनी कोई चित्र-विचित्र या अपरिचित वस्तु या जड़ ऊर्जा (प्रकाश, ध्वनि आदि) आदि भी नहीं है, जो अचानक से प्रकट हो जाए; अपितु यह तो निरंतर साधना से प्रज्वलित किया गया, कोई एक विशेष मानसिक चित्र (गुरु, इष्टदेव आदि का) ही है, जो कभी भी सहस्रार में जागृत हो सकता है। हो सकता है कि किसी विशेष प्रकाश या ध्वनि आदि के मानसिक चित्र भी जागृत हो जाए , परन्तु वह जागरण भी तो उसके नियमित व लम्बे समय तक के ध्यान से ही संभव होता है, अचानक से या आसमान से फूल गिरने की तरह नहीं होता। वास्तव में, कुण्डलिनी का, किसी चिर-परिचित, इन्द्रियागम्य व शुभमनुष्याकृति के रूप में ध्यान करना ही सर्वाधिक सरल व व्यावहारिक उपाय है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र ने किया था।

उस समाधि में प्रेमयोगी वज्र को सभी कुछ, मस्तिष्क के अन्दर अनुभव हुआ। बाहर के दृश्य, बाहर की आवाजें, बाहर की अन्य अनुभूतियाँ, अन्दर के विचार आदि सभी अनुभव; सभी कुछ मस्तिष्क में ही, एकसमानरूप से अनुभव हुआ। इस तरह से अनुभव होना स्वाभाविक ही था , क्योंकि मानसिककुण्डलिनी का अनुभव सर्वाधिक प्रचंड व तीक्ष्ण था, अतः अन्य निम्नतर अनुभव, बाहरी कैसे प्रतीत हो सकते थे , क्योंकि यह एक आम अनुभवात्मक धारणा है कि बाहरी अनुभव तीक्ष्ण होते हैं, जबकि मानसिक अनुभव क्षीण होते हैं। इसीलिए जब शुद्धमानसिककुण्डलिनी का अनुभव, बाहरी सभी अनुभवों से भी अधिक तीक्ष्ण था, तब सभी बाहरी अनुभव स्वयं ही शुद्धमानसिक (आतंरिक) अनुभव बन गए। क्योंकि सभी अनुभव मस्तिष्क में ही विद्यमान थे, अतः सभी अनुभव एकसमान लगे, क्योंकि एक ही मस्तिष्क में स्थित अनुभव (साथ में, एक ही प्रकार की संवेदनाओं से बने हुए), अलग-२ कैसे प्रतीत हो सकते हैं।

कुण्डलिनी जब पूर्ण आनंदमयी समाधि के रूप में मस्तिष्क के अन्दर एक बार भी व क्षण भर के लिए भी पूर्णतया प्रज्वलित हो जाती है , तब भी वह संभवतः साधक को स्वयं ही अपनी ओर आकर्षित करने लग जाती है, और धीरे-२ उसे आत्मज्ञान तक ले जाती है। सभी मानसिक चित्रों को तो उनके भौतिक रूपों से अधिक प्रज्वलित नहीं कर सकते, इसीलिए सैम्पल (sample) रूप में एक ही चित्र का आश्रय लिया जाता है, और उसे ही बारम्बार के अभ्यास से प्रकृष्ट करके समाधि अवस्था तक पहुंचाया जाता है। संभवतः कुण्डलिनीजागरण के बाद भी वही प्रक्रिया चलती है , जो प्रेमयोगी वज्र के साथ प्रथम देवीरानी के ध्यान से घटित हुई थी। वह सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था होती है। उसमें कुण्डलिनी लगभग सदैव ही मन में छाई रहती है, जिससे, अनुभूत जगत उसके साथ जुड़ जाता है। फिर मानसिक कुण्डलिनी की आयु पूरी होने पर, वह विलीन होने लगती है, जिसके साथ उससे जुड़ा हुआ जगत भी विलीन होने लगता है। कुण्डलिनी के शून्यप्राय होने पर जगत भी शून्यप्राय हो जाता है , और योगी के मन में आनंदमयी शून्यता छा जाती है। वास्तव में वह एक आभासिक (virtual) शून्यता होती है, वास्तविक (real) नहीं, क्योंकि अनुभवगत जगत तो पहले की तरह ही रहता है, केवल उसके प्रति आसक्ति ही शून्य हो जाती है। वह असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था होती है। उसी के बीच में कभी भी क्षणिकात्मज्ञान हो सकता है। योगी श्री रामकृष्ण परमहँस के साथ भी तो संभवतः वही हुआ था। उनकी ध्यानसाधना इतनी अधिक दृढ़ थी कि उन्हें काली माता हर जगह व हर समय प्रत्यक्ष दिखती थीं। उनके गुरु ने जब देखा कि वे उस सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था से आगे नहीं बढ़ पा रहे थे, तो उन्होंने उन्हें काली माता को नष्ट करने को कहा। काली माता के मानसिक चित्र के नष्ट होते ही वे असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित हो गए, जिससे उन्हें आत्मज्ञान हुआ।

संभवतः प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँच चुकी थी, और वह उसे वहाँ आत्मज्ञान के लिए अपेक्षित समय (संभवतः औसतन एक मिनट के आसपास) तक स्थित न रख सका। यह सिद्धांत है कि कुण्डलिनी उस समय अचानक सहस्रार में पहुंचती है, जब कुण्डलिनी-साधक को कुण्डलिनी के अनुकूल वातावरण उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए, यदि कुण्डलिनी-साधक महादेव के रूप की कुण्डलिनी का चिरकाल से ध्यान कर रहा हो और साधना के मध्य में वह कभी पवित्र कैलाश की तीर्थयात्रा पर चला जाए, तो उसकी कुण्डलिनी की सहस्रार पहुँचने की संभावना अत्यधिक प्रबल हो जाती है। इसी तरह से, यदि कोई व्यक्ति यौनयोग की सहायता से, एकांत में अपने स्वर्गीय पितामह (गुरु) की कुण्डलिनी का प्रचंड ध्यान कर रहा हो और साथ में, फिर यदि बहुत समय के बाद कभी वह अपने उन ज्ञातिजनों (रिश्तेदारों) या गुरुभ्राताओं से मिलने चला जाए, जिनका उसके गुरु के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध रहा हो, तो उनसे व्यवहार के दौरान उसकी कुण्डलिनी को अचानक से ही अत्यधिक बल प्राप्त हो जाता है , जिससे वह जीवंत होकर जागृत हो जाती है। वास्तव में उनसे सम्बन्ध भी पितामह के आश्रय से ही बना होता है, और वह मिलाप भी। इसलिए उस समय पितामह से सम्बंधित स्मरण दोनों पक्षों की बाध्यता बन जाती है। यदि वे ज्ञातिजन हार्दिक प्रेम प्रदर्शित करने लगे, तो स्वतः ही वह प्रेमबल कुण्डलिनी को ही प्राप्त होगा, क्योंकि उसी के आश्रय व सहयोग से ही ज्ञातिजनों से सम्बन्ध हैं। ऐसे में कुण्डलिनीजागरण की संभावना अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। उन पितामह का मानसिक चित्र तो वैसे भी प्रतिदिन की योगसाधना से बहुत प्रगाढ़ बना होता है। ऐसे में, उस ज्ञाति-मिलाप के अवसर पर उनका प्रबल स्मरण उस चित्र को बहुत अधिक मानसिक बल प्रदान करता है, और वह कुण्डलिनीजागरण के रूप में जीवंत हो जाता है। यह तो मात्र एक उदाहरण है। ऐसी ही, किसी मानसिकचित्र के प्रबल व चहुंमुखी स्मरण की कहीं पर भी प्रबल संभावना यदि बनती है, तो उससे वह चित्र कुण्डलिनीजागरण के रूप में जीवंत

हो उठता है। वैसी संभावना तो फिर कई गुना बढ़ जाती है, यदि वर्षों से शविद आदि से अद्वैत का परिशीलन किया जा रहा हो। संभवतः लम्बे समय के नियमित कुण्डलिनीयोगाभ्यास से, ऐसी किसी अपेक्षा की आवश्यकता नहीं होती और सीधे ही योगसाधना से कुण्डलिनीजागरण हो जाता है। ऐसी संभावना अत्यधिक व निरंतर भय से भी बन सकती है, जैसी कृष्ण के भय से कंस में बनी थी। ऐसी संभावना आत्यंतिक प्रेम से भी बन सकती है, जैसी कृष्णप्रेम में दीवानी मीरा में बनी थी। ऐसी संभावना आत्यंतिक द्वेष से भी बन सकती है, जैसी कृष्ण-द्वेष से पागल शिशुपाल में बनी थी। इन सभी के मन में कृष्ण के मानसिक चित्र के रूप की कुण्डलिनी क्रियाशील या जागृत हो गई थी।

यह भ्रम भी प्रचलित है कि पहाड़ों में ही आत्मज्ञान होता है। यदि ऐसा होता तो सभी पहाड़ी लोग आत्मज्ञानी होते। वास्तव में जिन आत्मज्ञानी पहाड़ी लोगों का वर्णन आता है, उनमें से अधिकाँश शान्ति के लिए मैदानों से पहाड़ों में जाकर बसे होते हैं। प्रेमयोगी वज्र को भी क्षणिकात्मज्ञान तभी हुआ था, जब वह मैदानी क्षेत्रों, विशेषकर राजस्थान व पंजाब से आए हुए, किसी पुराने समय से लेकर पहाड़ों में बसे हुए छात्रों /लोगों के साथ गहन मित्रता के दौर में प्रविष्ट हुआ था। अतः पहाड़ व मैदान के मिश्रण का आत्मज्ञान में अवश्य ही कुछ योगदान है। वैसे भी पहाड़ के अंतिम छोर पर स्थित खुले मैदान में एक आश्चर्यजनक आत्मज्ञान की शान्ति अनुभव होती है , जैसा कि पहाड़ी प्रदेशों व मैदानी प्रदेशों की सीमाओं पर (उदाहरणतः ऋषिकेश-हरिद्वार में) दिखाई भी देता है। वास्तव में, पहाड़ों में रहने वाले अधिकाँश लोग आत्मज्ञान के अत्यधिक निकट होते हैं, क्योंकि वे स्वभाव से ही मेहनती, तन्त्रवादी, नम्र व द्वैताद्वैतवादी होते हैं। उन्हें भौतिक आयाम की सीमा लांघने के लिए केवल थोड़े से साधना-बल की ही आवश्यकता होती है, परन्तु वे वास्तविक व पर्याप्त प्रयास ही नहीं कर पाते। साधना से सम्बंधित मार्गदर्शन भी उन्हें सरलता से सुलभ नहीं हो पाता। पहाड़ों के कठिन जन-जीवन के कारण भी वे साधना के ऊपर समुचित ध्यान नहीं दे पाते। पहाड़ों के खुशनुमा व मेल-जोल से भरे हुए जनजीवन, तथा ताज़ी आबोहवा के कारण ही वे आत्मज्ञान के इतने अधिक निकट होते हैं। वे अधिक नम्र व खुशहाल भी होते हैं। इन सभी दिव्य गुणों का प्रमुख कारण यही है कि वे स्थानीय देवताओं के नैष्ठिक भक्त होते हैं, जो प्रेमयोगी वज्र को देहपुरुष की तरह ही सर्वशक्तिमान प्रतीत होते हैं।

प्रेमयोगी वज्र अपने समाधिकारक कुण्डलिनीयोग का वर्णन अपने शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से करता है, "मैं कुण्डलिनीयोग के अभ्यास को दिन में दो बार करता था, कम से कम एक-डेढ़ घंटे तक सुबह व एक घंटे तक शाम को, प्रतिदिन लगभग एक ही निर्धारित व निश्चित समय पर। सबसे पहले आसनों के अनुसार विभिन्न चक्रों पर कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए योगासन करता था। भोजन आदि कम से कम चार घंटे पहले तक नहीं खाया होता था, व पानी आदि पेय पदार्थ एक घंटे पहले तक नहीं पिया होता था। उससे उदर -रोगों (गैस्ट्रिक ईसोफेजिअल एसिड रिफ्लक्स, हायटिक हर्निया, बवासीर आदि/gastric oesophageal reflux, hiatic hernia, hemorrhoids etc.) से बचाव होता था। योग से उदर के आकार पर भी कुछ सीमा तक रोक लगती है। मल बहुत कम बनने लगता है, क्योंकि खाया गया अधिकाँश अन्न, प्राण की शक्ति से पचा लिया जाता है, और शरीर के द्वारा सोख लिया जाता है। पेट पर कम दबाव देने वाले आसन शाम को व अधिक दबाव वाले सुबह के समय करता था। फिर मैं सिद्धासन में बैठता था , व मूलाधार पर कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए कपालभाति व अनुलोम -विलोम प्राणायाम करता था। उसके बाद माईक्रोकोस्मिक ऑर्बिट (microcosmic orbit), जो कुण्डलिनी रोटेशन (kundalini rotation) का एक सरल प्रतिरूप है, उसे करता था। उसमें साँस को भरकर व छोड़ कर रोका जाता था, प्रत्येक चक्र पर कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए। जितना सरलता से संभव हो सकता था, साँस उतना ही रोकता था, शुरु-२ में तो आम स्थिति की तरह ही साँस लेते-छोड़ते हुए करता था। पहली रोटेशन-प्रक्रिया में बाएँ नासिका-छिद्र से साँस लेता था, व दाएं से छोड़ता था। प्रक्रिया के शुरु में, कुण्डलिनी को बंधों की सहायता से मूलाधार से मस्तिष्क को ले जाता था। कुण्डलिनीयोग की प्रारंभिक अवस्था में ऐसा प्रतीत होता था , जैसे कि यौगिकबंध लगाने से अज्ञात व आतंरिक प्राणवायु (स्थूलवायु नहीं) का दबाव ऊपर की ओर उठता था, व मस्तिष्क में एक सूक्ष्मविस्फोट जैसी अनुभूति के साथ पहुंचता था, जिसके साथ कुण्डलिनी भी चिपकी होती थी। फिर कुण्डलिनी को मस्तिष्क में क्लोकवाईस (clockwise) घुमाता था (हल चलाते हुए किसान की तरह)। किसान को हल, लेवलर (leveler) आदि के साथ, मस्तिष्क की दीवारों को कुरेदते हुए, फिर गोलाकार चक्रों में जोतते हुए, अन्दर की ओर जाते हुए ध्यान करता था। इससे मस्तिष्क में एक दबाव के साथ , वास्तविक के जैसी कुरेदन महसूस होती थी। कई बार डरता था कि कहीं मस्तिष्क में कोई विकृति न आ जाए , क्योंकि ध्यान में बहुत शक्ति होती है, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। ऐसी खुरचन से ध्यान की तीव्रता भी बढ़ जातीथी, व मस्तिष्क तरोताजा जैसा महसूस होता था। लेवलर से मेरे मस्तिष्क के चारों ओर, बाहरी व चट्टानी किनारों पर, ढक-२ के जैसी, टकराने की आवाज, मुझे अनुभव होती थी। इससे भी मस्तिष्क तरोताजा हो जाता था। संभवतः इनसे भी कुण्डलिनीजागरण में सहायता मिली हो, क्योंकि इससे कुण्डलिनीजागरण के समय की, मस्तिष्क में दबाव व सनसनाहट के जैसी स्थिति को सहने के लिए मैं अभ्यस्त हो गया था। इससे यह लाभ भी हुआ कि मेरे पूरे मस्तिष्क का चप्पा-२ क्रियाशील हो गया था, जो कुण्डलिनीजागरण के लिए आवश्यक है। कुण्डलिनीजागरण के समय भी

मेरा पूरा मस्तिष्क कुण्डलिनी से लबालब भर गया था। यदि मस्तिष्क का कोई भाग सुप्त अथवा सुस्त रहता है, तो संभवतः कुण्डलिनीजागरण नहीं हो सकता। फिर जीभ को सॉफ्ट पेलेट (soft palate) के साथ छुआता था, व कुण्डलिनी के स्वाधिष्ठान चक्र पर पहुँचने तक छुआ कर रखता था। जीभ के रास्ते से होकर कुण्डलिनी मस्तिष्क से नीचे उतर जाती है, व निर्धारित चक्र पर बस जाती है। फिर मूलबंध के द्वारा ऊपर की ओर के यथावश्यक दबाव से वह उसी चक्र पर टिकी रहती है। कुण्डलिनी को फिर विशुद्धि चक्र (गले के आधार पर, आगे की ओर) तक उतारता था, जैसे कि कोई किसान खेत जोत कर नीचे उतरा हो व आराम कर रहा हो। फिर हृदय चक्र (दोनों स्तनों के मध्य में, किसान का वास्तविक घर) तक कुण्डलिनी-किसान उतर जाता था। आराम करके कुण्डलिनी-किसान नाभि-चक्र वाले खेत पर अपने हल व बैलों के साथ पहुँच जाता था। फिर गोलाकार नाभि -क्षेत्र को एंटीक्लोकवाईस (anti clockwise) जोतता था। वहाँ पर भी मैं पूरे उदरक्षेत्र को, बाहर से अन्दर की ओर जोतते हुए, किसान का ध्यान करता था। पहली एक-दो लकीरें, पसलियों को कुरेदते हुए व बाहर की अंतिम सीमा से होती हुई, वज्र के ऊपर से होकर बनाई जाती थीं। फिर वह आराम करने के लिए स्वाधिष्ठान चक्र (वज्र के मूल के पास) तक उतर जाता था। उसके बाद अपने सबसे मूलनिवास अर्थात मूलाधार चक्र (गुदाद्वार से अंडकोष तक जाने वाली मध्य रेखा अर्थात पैरीनीयम के ठीक मध्य में) पर शाँत हो जाता था, या हल्के-फुल्के अंदाज में काम कर रहा होता था। वहाँ पर कुण्डलिनी सर्वाधिक स्पष्ट प्रतीत होती थी, और विशेष बात यह है कि वहाँ पर व्यस्त व लौकिक काम-काज के समय भी कुण्डलिनी का ध्यान आसानी से हो जाता था। श्वास भरते समय मैं ऐसा ध्यान करता था कि कुण्डलिनी प्राणवायु पीकर पुष्ट हो रही होती थी। समाधि /कुण्डलिनीजागरण के बाद मैं प्राण व अपान को एकसाथ मिलाना भी सीख गया था, जिसमें कुण्डलिनी तक श्वास ले जाने का ध्यान करता था, और मूलबंध लगाकर अपान (शरीर के निचले भागों का प्राण) के, ऊपर चढ़ने व उसके कुण्डलिनी के ऊपर प्राण के साथ मिश्रित हो जाने का ध्यान करता था। उससे, ऊपर से प्राण व नीचे से अपान की शक्ति कुण्डलिनी को एकसाथ प्राप्त होती थी, और वह दुगुने रूप से प्रज्वलित हो जाती थी। मूलबंध लगाने के लिए मूलाधार की माँसपेशियों को इस तरह से सिकोड़ता था कि ऊपर की ओर दबाव बने व मलद्वार भी ऊपर की ओर संकुचित होए। बीच -२ में, परिस्थिति के अनुसार उड्डीयान बंध की सहायता भी लेता था। उसमें साँस को बाहर छोड़कर व थोड़ा साँस भरते हुए, अपने पेट को अन्दर की ओर सिकोड़ता था, व ऊपर की ओर उठाता था। उससे भी कुण्डलिनी का ऊर्ध्वगमन होता था, विशेषतः मूलाधार से सीधा आज्ञाचक्र (मस्तिष्क-चक्र) को। प्रत्येक बार साँस भरने व छोड़ने के बाद जालंधर बंध लगा देता था, जिससे कि प्राण कुण्डलिनी के ऊपर से नहीं भाग पाता था, व अन्य वायु-विकार भी पैदा नहीं कर पाता था। वह बंध गर्दन-सिर को नीचे झुकाकर व ठोड़ी को छाती के निकट ला कर लगाया जाता था। यह सारी प्रक्रिया फिर दाहिने नासिका-छिद्र से साँस भरते हुए व बाएँ से छोड़ते हुए पूरी की जाती थी। उसमें मस्तिष्क व नाभि चक्रों में कुण्डलिनी को पहली प्रक्रिया से विपरीत दिशा में घुमाया जाता था। तीसरी रोटेशन -प्रक्रिया में दोनों नासिका-छिद्रों से साँस ली जातीथी, व छोड़ी जाती थी। उसमें मस्तिष्क व नाभि चक्रों में कुण्डलिनी का ध्यान पहली प्रक्रिया की दिशा में पुनः किया जाता था (उस बार किसान-कुण्डलिनी को लेवलर चलाते हुए)। उस तरह से अभ्यास करते हुए (बिना एक बार भी अभ्यास को तोड़े हुए) जब मुझे एक साल हो गया, तब कुण्डलिनी को आत्मज्ञानकारक व समाधिकारक बल देने के लिए कुण्डलिनीयोग को तांत्रिक यौनसंसर्ग के साथ जोड़ा गया" ।

यदि प्रारम्भिककाल में कुछ चक्रों (विशेषतः ग्रीवा, स्वाधिष्ठान व हृदयचक्र आदि) पर कुण्डलिनी का ध्यान करना कठिन लग रहा हो, तो उन्हें छूकर, उनका ध्यान किया जा सकता है। पूर्वोक्तानुसार, ग्रीवा-चक्र गले के उच्च भाग के ठीक नीचे एक गड्ढे में जैसा होता है, जहाँ वह समतल होने वाला होता है। वहाँ पर एक संवेदना सी अनुभव होती है। वह लगभग छाती व गले को जोड़ने वाले त्रिकोणाकार गड्ढे के निचले छोर से ६ अंगुल ऊपर होता है। गर्दन को थोड़ा पीछे की ओर भी मोड़ा जा सकता है, जिससे ग्रीवा-चक्र पर थोड़ा दबाव सा बनता है, जो कुण्डलिनी को कुछ उत्तेजित सा कर देता है। उसी तरह, हृदयचक्र दोनों स्तनों के बीच में या थोड़ा ऊपर होता है। स्वाधिष्ठान चक्र यौनांग के ऊपर वाले मूल से थोड़ा (लगभग तीन अंगुल) ऊपर, हड्डी से ऊपर होता है, जहाँ दबा कर गड्ढा जैसा बनता है, और एक यौनसंवेदना सी अनुभव होती है। मेरुदंड का स्वाधिष्ठान चक्र, मेरुदंड के निचले छोर से लगभग ५-६ अंगुल ऊपर वहाँ होता है, जहाँ दबाने पर गड्ढा जैसा बनता है, और एक तीव्र संवेदना सी अनुभव होती है। वास्तव में अभ्यास से सब पता चल जाता है, क्योंकि कुण्डलिनी का सर्वाधिक स्पष्ट चित्र एक विशेष व संवेदना-युक्त स्थान पर स्वयं ही बनता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आधारभूत कुण्डलिनीयोग के सिद्ध हो जाने पर तांत्रिक यौनसंसर्ग बहुत आसान, सकारात्मक व तीव्रता से शुभ फल देने वाला बन जाता है। चक्रों के सम्बन्ध में भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है। ये साँकेतिक हैं। ध्यान शरीर में कहीं भी लगाया जा सकता है, क्योंकि देहपुरुष हर स्थान पर विद्यमान हैं, देह के अन्दर भी और देह के बाहर भी (जैसा कि हमने शविद में सिद्ध किया भी है)। ध्यान वहाँ पर ज्यादा अच्छा लगता है, जहाँ पर झुकाव आदि से जकड़न/संवेदना (bending/sensation) जैसी महसूस होए, क्योंकि वहाँ पर देहपुरुष पर्याप्त रक्त-

आपूर्ति से प्रफुल्लित हो रहे होते हैं। क्योंकि चक्रों पर व मेरुदंड पर , योगासन करते हुए सबसे अधिक अकड़न महसूस होती है, इसीलिए वहाँ पर कुण्डलिनी का ध्यान आसान बताया गया है। इस हिसाब से चक्र पूरे शरीर की गहराई में (शरीर के अगले भाग से पिछले भाग, अर्थात मेरुदंड तक) जारी रहते हैं। वैसे यदि निश्चित क्षेत्र/चक्र पर ही प्रतिदिन ध्यान किया जाए, तो ध्यान अधिक लाभकारी होता है, उसी तरह से, जैसे निश्चित स्थान व समय पर भोजन करने से उदर-लाभ होता है। नियमित अभ्यास से, मूलबंध व उड्डीयान (uddeyaan) -बंध लगाने पर कुण्डलिनी धीरे-२ आगे के क्षेत्र (front channel) से स्वयं ही ऊपर उठती हुई महसूस होती है। उड्डीयानबंध वही श्रेष्ठ है, जो स्वयं लगता है। इसमें मूलबंध लगाने के थोड़ी देर बाद, जब साँस कुछ घुटने जैसा लगता है, या छाती से थोड़ा सा साँस लिया जाता है , तब स्वयं ही पेट कुछ अन्दर की ओर चला जाता है, तथा साथ में, उदरसहित कन्धों तक का, शरीर का मध्य भाग थोड़ा सा ऊपर की ओर सिकुड़ जाता है। इससे मस्तिष्क की ओर प्राणों का प्रवाह बढ़ जाता है। वह प्राण मस्तिष्क में कुण्डलिनी को स्फूर्तिमान कर देता है। वैसे उड्डीयानबंध के साथ ही मूलबंध का लगना अच्छा रहता है, अन्यथा केवल मूलबंध लगाने से, वह खुलकर छूटता रहता है। लघु उड्डीयानबंध से जब पेट ऊपर की ओर चढ़ा होता है, तब मूलबंध लगाने का, ऊपर की ओर का दबाव बनाना भी सरल हो जाता है। योगबंधों से प्राण ऊपर को उठकर, उसी मानसिकचित्र अर्थात कुण्डलिनी को पुष्ट करते हैं, जिसको ध्यान में रखकर योगबंध लगाए जाते हैं। इसका अर्थ है कि योगबंध निर्धारित-लक्ष्यांकन (fixed targetting) के सिद्धांत पर भी काम करते हैं। सिद्धासन में पैर की एड़ी से मूलाधर चक्र पर एक दबाव बना रहता है, जिससे भी कुण्डलिनी को ऊपर उठने का कुछ बल प्राप्त होता है। संभवतः कई उत्कृष्ट साधकों को मेरुदंड से होकर भी, कुण्डलिनी ऊपर उठते हुए प्रतीत होती है। उसे अपने स्वाभाविक स्थान पर रहने देना चाहिए और ऊपर -नीचे की ओर ज्यादा बलपूर्वक नहीं धकेलना चाहिए। वह तब बंधों की शक्ति से स्वयं ही ऊपर से ऊपर उठती रहती है। मस्तिष्क में उसके पहुँचने का अर्थ उसका अंतिम पड़ाव (final round) नहीं है। वह लम्बे समय तक ऊपर-नीचे जाती रहती है, और धीरे-२ मस्तिष्क में परिपक्व (mature) होती है। पूरी तरह से परिपक्व हो जाने पर वह पूर्वोक्त पूर्णसमाधि (कुण्डलिनी जागरण) के रूप में परिवर्तित हो जाती है, अर्थात सहस्रार में प्रविष्ट हो जाती है। वैसे तो किसी न किसी स्तर की समाधि सदैव अनुभव होती ही रहती है, परन्तु मुक्ति का द्वार तो पूर्णसमाधि ही है। अभ्यास करते-२ स्वयं ही अनुभव होने लगता है कि कौन सा बंध व श्वास कहाँ उपयुक्त है, क्योंकि कुण्डलिनी की प्रकाशाभिमुखता चतुर साधक को स्वयं ही निर्देशित कर रही होती है। प्राकृतिक समाधि /यौन-समाधि तो दिन-रात बिना प्रयास के स्वयं ही लगी रहती है , जैसी कि प्रेमयोगी वज्र की लगी रहती थी किशोरावस्था में , क्षणिकात्मज्ञान के समय। कृत्रिम समाधि सुबह-शाम ही लगती है, कुण्डलिनीयोग के अभ्यास के मध्य में, यद्यपि पूर्णसमाधि (कुण्डलिनीजागरण) कभी भी लग सकती है। वास्तव में कृत्रिम समाधि को बलपूर्वक, दिन में कम ही लगाना चाहिए, क्योंकि इससे देहपुरुष की तरह के युक्तियुक्त कर्म दुष्प्रभावित हो सकते हैं। बहुत लम्बे समय तक के अभ्यास से कृत्रिम समाधि भी इतनी अधिक बलवान हो जाती है कि वह प्राकृतिक समाधि की तरह ही स्वयं ही दिन-रात लगी रहती है। प्राकृतिक समाधि अधिकाँशतः बहुत तीव्र व अनायास उत्पन्न हुए यौन-आकर्षण से लगती है, जैसा प्रेमयोगी वज्र के साथ घटित हुआ था। कुण्डलिनी का अभ्यास साधक को व्यर्थ की भौतिकता से मोड़कर मानसिकता /आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है , क्योंकि पहले अपने शरीर, फिर अपने मन-मस्तिष्क व अंत में आत्मा के अन्दर चमकती कुण्डलिनी को अनुभव करते हुए साधक को विदित हो जाता है कि वास्तविकता व महत्ता मन -आत्मा के अन्दर है, बाहर के जगत में नहीं। जब एक प्रकार से समाधि की आदत सी पड़ जाती है, तब उसके बिना संसार व्यर्थ व हानिकारक सा लगने लगता है। इसलिए एक समाधि के पूर्णतया समाप्त होने से पहले ही, साधक दूसरी समाधि का आश्रय ले लेता है। समाधि वैसी ही होती है, केवल उसका मानसिक चित्र बदलता है। नई समाधि प्राकृतिक रूप से, स्थानान्तरण सिद्धांत से भी लग सकती है, व साधना के द्वारा नए सिरे से भी। बाल्यकाल में जो पुरुष तेजस्वी, बुद्धिमान व एकाग्र होते हैं, उनमें पूर्वजन्म की समाधि का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। समाधि एक मानसिक आवरण का काम करती है, जो कि द्वैतपूर्ण साँसारिक क्लेषों से मन को बचा कर रखती है। आत्मज्ञान के बाद भी पुरुष को समाधि की छत्रछाया स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। वास्तव में वह छत्रछाया तो पहले से ही मिल रही होती है , क्योंकि आत्मज्ञान की प्राप्ति समाधि से ही तो होती है। बाद में तो प्रेमयोगी वज्र योगासन करते हुए भी, साँस भरकर व रोककर, साथ में मूलबंध लगाकर, प्राण व अपान को जोड़ने की कला सीख गया था। वह पूजा की मूर्ति के अन्दर, जल चढ़ाते समय सूर्य के अन्दर व पुराणों को पढ़ते हुए, संस्कृत श्लोकों के अन्दर भी कुण्डलिनी का ध्यान करने लग गया था। वास्तव में पूजा , स्वाध्याय आदि तभी पूर्ण फल प्रदान करते हैं, यदि उनके अन्दर कुण्डलिनी का ध्यान किया जाए। देवताओं की मूर्तियाँ मुख्यतया स्वर्णिम वर्ण वाली व चमकीली धातुओं से बनाई जाती हैं, जैसे कि स्वर्ण, ताम्बा आदि से। ऐसा इसलिए किया जाता है, क्योंकि अपनी क्रियाशीलता व जागरण की अवस्था में कुण्डलिनी, स्वर्णिम जैसी व चमकती हुई प्रतीत होती है। अतः उन देवप्रतिमाओं की चमकती हुई सतह पर, कुण्डलिनी को देखना चाहिए व उसका ध्यान करना चाहिए। जो हम पूजा के समय धूप/पुष्प आदि सूंघते हैं, ज्योति आदि देखते हैं, भोग आदि खाते हैं, व घंटानाद आदि सुनते हैं आदि-२; वे सभी अनुभूतियाँ प्राणों

के साथ ऊपर उठकर, कुण्डलिनी को पुष्ट कर रही होती हैं। प्राणों का अर्थ यहाँ सूक्ष्म प्राण से है, जो योगबंधों से ऊपर उठता है, और कुण्डलिनी को भी ऊपर उठाकर, मस्तिष्क में पुष्ट करता रहता है। सीधा ध्यान तो चक्रों पर ही लगाया जाता है, मस्तिष्क में तो वह स्वयं पहुंचता है। वैसे तो मस्तिष्क में भी सीधा ध्यान लगा सकते हैं, परन्तु यौनचक्रों से ऊपर उठी हुई कुण्डलिनी बहुत सशक्त होती है। वैसे भी , व्यावहारिक जीवन में, मस्तिष्क में सीधा ध्यान लगाना कठिन होता है।

कुछ अभ्यास के उपरांत, चक्र पर सीधे रूप में ध्यान लगाने की अपेक्षा, प्राण के माध्यम से स्वतः ध्यान लगना ही श्रेयस्कर, सरल व क्रीड़ामय होता है। साँस भरते हुए, चक्र में प्रविष्ट होती हुई प्राणवायु का ध्यान करना चाहिए। साँस छोड़ते समय , जैसे ही चक्र पर स्थित कुण्डलिनीचित्र धुंधलाने लगता है, वैसे ही दूसरी, भरी हुई साँस वहाँ पर पहुँच जाती है, और वह चित्र पुनः चमकने लगता है। इस तरह से यह सिलसिला चलता रहता है। नाभिचक्र व स्वाधिष्ठानचक्र पर उदर की गति से भी प्राण को केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। हृदयचक्र पर वक्षस्थान की गति से भी कुछ सहायता मिलती है। माथे की माँसपेशियों को तनिक सिकोड़ कर आज्ञाचक्र (भौहों के मध्य में) पर प्राण को केन्द्रित किया जा सकता है। दांतों को थोड़ा भींच कर, गले के विशुद्धिचक्र पर दबाव बना कर, वहाँ पर प्राण को केन्द्रित किया जा सकता है। क्षणिक मूलबंध से मूलाधारचक्र पर प्राण को केन्द्रित किया जा सकता है। इसी तरह से, योगासन के समय, जोड़ों की ऐंठन पर भी प्राणवायु को केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। जिस तरह से अग्नि को भड़काने के लिए केवल एक चिंगारी व हवा ही पर्याप्त होती है, उसी तरह से योगाग्नि को भड़काने के लिए भी प्राणायाम व कुण्डलिनी की आवश्यकता होती है। जैसे वही चिंगारी वायु के संपर्क से, भड़कता हुआ आग का शोला बन जाती है, वैसे ही कुण्डलिनी भी। बस, केवल कुण्डलिनी का एक बार चक्र पर ध्यान शुरु हो जाए और उसपर धौंकनी की तरह, प्राणायाम से प्राणवायु बैठती रहे, तो वह खुद ही भड़कने लग जाती है, और स्पष्ट होती जाती है, गहरा ध्यान लगाने के लिए दिमाग पर अधिक जोर डालने की आवश्यकता नहीं रहती। प्राणवायु से कुण्डलिनीचक्र पुष्ट होता हुआ , उसी तरह से अनुभव किया जाता है, जैसे कि हवा की धौंकनी से आग का चुल्हा पुष्ट होता रहता है। जैसे हवा से , चुल्हे की अग्नि स्वयं ही पुष्ट होती रहती है , उसी प्रकार से कुण्डलिनीचक्र की कुण्डलिनी भी, क्योंकि शरीर के प्रत्येक अणु-परमाणु में देहपुरुष विद्यमान हैं, और कुण्डलिनी, समस्त देहपुरुषों को प्रदान किया गया, एक मनुष्य का एकसमान रूपाकार व जीवनचरित ही है (शविद के सिद्धांतानुसार)। जिस तरह से अग्नि स्वयं ही प्राणवायु को अपनी ओर खींचती है, उसी तरह से कुण्डलिनी भी। जहाँ पर कुण्डलिनी होती है , वहाँ पर प्राण स्वयं ही खिंचा चला जाता है। इसी तरह से , जहाँ पर प्राण का ध्यान किया जाता है, वहाँ पर कुण्डलिनी स्वयं ही प्रकट हो जाती है। इस तरह से कुण्डलिनी, प्राण व ध्यान आपस में एक-दूसरों को पुष्ट करते रहते हैं।

हल्की साँस चल रही हो, तो उसे विशुद्धि चक्र पर उड़ेलते रहना चाहिए और यदि पर्याप्त समय व शान्ति उपलब्ध हो, तो मूल बंध व उड्डीयान बन्ध लगा कर नीचे के प्राणों के, उस तक आरोहण का ध्यान भी करना चाहिए। कुछ अधिक लम्बी साँसों को हृदयचक्र पर उड़ेलना चाहिए। मध्यम साँसों को नाभिचक्र पर उड़ेलना चाहिए। लम्बे व गहरे श्वासों का ध्यान , उन्हें स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार के ऊपर उड़ेलते हुए करना चाहिए। इस तरह से , क्योंकि चक्रों पर प्राणवायु के भर जाने से, वह वहाँ पर कुण्डलिनी को स्पष्ट व गतिशील करते हुए, उसके साथ स्वयं भी एक प्रकार से चक्कर काटते हुए कहलाया जा सकता है, संभवतः इसीलिए इन विशेष ध्यानयुक्त बिन्दुओं को चक्र कहा जाता है। जब कुण्डलिनी -अग्नि को पूरे शरीर की प्राणशक्ति से भड़काया जाता है , तब वह गोलाकार चक्र में घूमने लगती है , जैसे कि कोई किसान गोलाकार खेत को तीव्र वेग से जोत रहा हो। चक्रवासिनी कुण्डलिनी एक जीवित मनुष्याकृति (गुरु, इष्टदेव आदि) होती है, जो जीवित देहपुरुष के ऊपर आरोपित हुई होती है। कुण्डलिनीयोग से चक्र पर उड़ेली गई श्वास को वह स्वयं भी साँस के रूप में लेती रहती है , और पुष्ट होती रहती है, शविदवर्णित देहपुरुष की तरह। कुण्डलिनीचक्रों के खुलने के बारे में भी भ्रम की सी स्थिति बनी रहती है। संभवतः किसी चक्र के खुलने का यह अर्थ है कि उस चक्र पर कुण्डलिनीचित्र अत्यधिक स्पष्ट , चमकीले, जीवित व आनंदमयी रूप में होता है। इसका सीधा सा अर्थ है कि कुण्डलिनी कभी भी वहाँ से जागरण के लिए ऊपर उठ सकती है , अन्यथा चक्र बंद होने की अवस्था में, वह चक्र पर ही घूमती रहती है। प्रेमयोगी वज्र ने भी कुण्डलिनीजागरण से पहले, कई दिनों तक अपनी कुण्डलिनी को, मूलाधार, स्वाधिष्ठान व आज्ञा (मस्तिष्क) चक्रों पर, इसी पूर्वोक्त रूप में अनुभव किया था।

कुण्डलिनी-क्रियाशीलता को कई लोग भ्रम से कुण्डलिनी -जागरण समझ लेते हैं, लगभग जैसा ही कुछ प्रेमयोगी वज्र ने भी कुण्डलिनीजागरण से पहले समझ रखा था। कुण्डलिनी जब क्रियाशील हो जाती है, तब वह दैनिक जीवन में, शरीर में यहाँ-वहाँ, विशेषतः मस्तिष्क में प्रतीत होती रहती है। कुण्डलिनीयोगाभ्यास के समय भी वह शरीर के प्रत्येक चक्र के साथ , यथानिर्दिष्ट रूप से सहस्रार (मस्तिष्क) में भी पहुंचती रहती है; यद्यपि वहाँ पर उसे जागृत नहीं, अपितु क्रियाशील ही कहेंगे। जागृत होने पर तो वैसा प्रचंड अनुभव होता है , जैसा कि प्रेमयोगी वज्र ने वर्णित किया है। जागृत होती हुई कुण्डलिनी तो मस्तिष्क में पूर्णतः व सर्वाधिक रूप से जीवंत या सत्य प्रतीत होती है। वह बाहर के भौतिक जगत से भी अधिक जीवंत प्रतीत होती

है (जैसी कि प्रेमयोगी वज्र को पूर्वोक्त १० सेकण्ड की समाधि में अनुभव हुई)। सामान्य परिस्थिति में, कुण्डलिनीजागरण तो केवल यौनयोग से ही संभव है, क्योंकि कुण्डलिनीजागरण के लिए अत्यधिक मानसिकबल की आवश्यकता होती है, जो केवल यौनयोग से ही प्राप्त हो सकता है। यदि साधक व्यावहारिक-प्रकार का न होते हुए, संन्यासी-प्रकार का हो, तो उस परिस्थिति में साधारण कुण्डलिनीयोग से भी कुण्डलिनी जागृत हो सकती है, क्योंकि उस महान शान्तावस्था में अत्यधिक मानसिक शक्ति सरलता से प्राप्त हो जाती है। साधना करते समय जब सर्वाधिक सुलभ चित्र मन में बैठ जाता है , अर्थात कुण्डलिनी क्रियाशील हो जाती है, तब साधना के बल से उसका प्रकाश धीरे-२ बढ़ने लगता है। फिर स्वाभाविक है कि मन उसका अधिक से अधिक ध्यान करता जाता है, क्योंकि आनंदमयी व प्रकाशमयी वस्तु के पीछे मन स्वयं ही भागता है। अंत में वह कुण्डलिनी जाग जाती है। फिर मन पूर्णरूप से संतुष्ट हो जाता है, और पूरा स्वाद चख के पीछे हट जाता है, वैसे ही जैसे कोई आदमी पेट भर जाने के बाद अन्न को खाना बंद कर देता है। फिर मन उसकी तरफ, बिना साधना के ही , व्यवहारकाल में भी भागता रहता है , जब तक कि निरंतर समाधि न लग जाए। यद्यपि बहुत से गुणवत्ताप्रेमी साधक नियमित साधना के साथ उस कुण्डलिनी का, बलपूर्वक ध्यान करते ही रहते हैं। संभवतः यह और अधिक अच्छी बात होती है।

प्राणवायु या श्वास, अर्थात शुद्ध, ताज़ी व कुछ ठंडक वाली हवा (पहाड़ों के जैसी) में कुण्डलिनी का ध्यान करना सरल होता है। ऐसी हवा से कुण्डलिनी की ज्योति प्रज्वलित होकर भड़क जाती है। वास्तविक के भौतिक जगत में भी , ऐसी हवा के झोंके मन को मीठे-२ संकल्पों से भर देते हैं। इसी कारण से तो अधिकतर योगी व साधक लोग शुद्ध, स्वच्छ व एकांतमयी पहाड़ों में, अन्यथा खुले वातावरण में भ्रमण करते हुए, कुण्डलिनीसाधना का अभ्यास करते हैं। मूलबंध लगाने से, जब पूरे शरीर की प्राणवायु सरसराहट के साथ मस्तिष्क में पहुंचती है, तो वहाँ पर कुण्डलिनी चमकने-दमकने लगती है। भ्रमण के समय भी पर्याप्त प्राणवायु उपलब्ध होती है। प्रेमयोगी वज्र को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष समाधि , दोनों ही के समय, ऐसी ही शाँत, उन्मुक्त, एकांतमयी, भ्रमण से भरपूर, स्वच्छ, शुद्ध, योगयुक्त व मर्यादित श्रम वाली आदि-२, प्राणवायु से भरपूर परिस्थितियाँ भी उपलब्ध हुई थीं। प्राणवायु है, तो सभी कुछ है। यही जीवन है, यही उन्नति है, यही कुण्डलिनीजागरण है, यही आत्मज्ञान है, और यही मुक्ति है।

जिस तरह से भौतिक विद्याओं के क्षेत्र में , सैद्धांतिक नियमों को पूरा किए बिना सफलता नहीं मिलती , उसी तरह से कुण्डलिनीयोग आदि मनोवैज्ञानिक विद्याओं में भी। ईश्वर /दैव भी इन सैद्धांतिक नियमों की उपेक्षा नहीं कर सकते , यद्यपि वह उनका पालन कराने वाली अनुकूल परिस्थितियाँ तो उत्पन्न कर ही सकते हैं। बहुत से महान परिश्रमी तो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलता प्राप्त कर लेते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भौतिक पक्ष की तरह ही, आध्यात्मिक पक्ष के क्षेत्र में भी, सफलता के लिए ईश्वर केवल सहयोगी कारण ही है, मुख्य कारण तो उचित ढंग से परिश्रम करना ही है। अधिकाँश लोग अज्ञानवश ईश्वर को आध्यात्मिक सफलता में मुख्य कारण मान लेते हैं। इसलिए ईश्वर की अनुकूलता को प्राप्त करने के लिए, देहपुरुष की तरह ही अद्वैतनिष्ठ रहते हुए, उसी की तरह सभी कर्मों को ईश्वरसेवा समझते हुए करना ही वास्तविक ईश्वराराधना है।

प्रेमयोगी वज्र इस उपरोक्त समाधिकारक योगसाधना के अंतर्गत लगभग पूरे वर्ष भर तक कुण्डलिनीसम्बंधित सोशल मीडिया (Brilliano kundalini forum, emergingsciencefoundation.org) के निरंतर संपर्क में था , और कुण्डलिनीयोग से सम्बंधित सर्वाधिक वार्तालाप/चैटिंग (chatting) करता रहता था। साथ में प्रेमयोगी वज्र कुण्डलिनी व व्यावहारिक अध्यात्म से सम्बंधित भौतिक पुस्तकों , ई-पुस्तकों व क्वोरा/quora (प्रश्नोत्तरी-वेबसाईट फोरम/question-answer type online forum) की भी निरंतर सहायता ले रहा था। सबसे अधिक प्रभावित तो उसे तांत्रिक व यौनयोग-सम्बंधित पुस्तकों ने ही किया। प्रारम्भ से ही वह वहीं से निरंतर प्रेरणा लेता रहा तथा अन्य सदस्यों को भी प्रेरित करता रहा। इसका अर्थ है कि सोशल-मीडिया की संगति से भी काम चल सकता है, विशेषतः यदि जिज्ञासा व परिश्रम तीव्र हो। उपरोक्त चैटिंग में प्रेमयोगी वज्र ने सिद्ध कर दिया कि विपरीत समय-क्षेत्र (time zone) के साथ सम्बन्ध से ज्ञान उत्पन्न होता है, क्योंकि उससे दिन और रात, अर्थात प्रकाश व अन्धकार आपस में मिश्रित हो जाते हैं, जिससे अनोखा अद्वैत उत्पन्न होता है।

कुण्डलिनीयोग के अन्य लाभों को प्रेमयोगी वज्र अपने शब्दों में इस प्रकार कहता है , "कुण्डलिनीयोग को करते हुए मेरा मानसिक अवसाद व उबाऊपन क्षीण हो गया था। मेरी भूख में आश्चर्यजनक रूप से सुधार हो गया था , और अब मैं शारीरिक वजन को लेकर चिंतित होने लग गया था। परन्तु वजन बढ़ने से पूर्व ही मेरी भूख अपने आप ही सामान्य हो जाया करती थी। मन का फालतू शोर -शराबा थम गया था। परेशान करने वाली पुरानी यादें क्षीण हो गई थीं। पहले मैं अकेलापन व अपने को समाज से कटा हुआ सा अनुभव करता था, परन्तु योग के अभ्यास से मुझे लगा कि समाज अकेला है, व मुझसे कटा हुआ है। मेरे पाचनतंत्र के छुटपुट रोग लगभग नष्टप्राय हो चुके थे। मेरे शरीर की दर्दें समाप्त हो गई थीं। पूरे दिनभर मैं उत्तम प्रकार की मनस्कता को अनुभव करता था। मानसिक विकार शाँत हो गए थे। क्रोध नियंत्रण में आ गया था। मन काम करने में लगने लगा था" । इस तरह से हम देख सकते हैं कि कुण्डलिनीयोग से भौतिक /शारीरिक व्यायाम व आध्यात्मिक योग साधना, दोनों का फल एक साथ प्राप्त होता है।

बवासीर में भी इससे कुछ लाभ मिलता है , क्योंकि मूलबंध लगाते रहने से गुदाद्वार का संकुचन -प्रसारण निरंतर चलता रहता है, जिससे उससे सम्बंधित क्षेत्र में रक्त संचार बाधित नहीं होता। प्रातःभ्रमण, शौच व स्नान के बाद कुण्डलिनीयोग अत्युत्तम रहता है। हर स्थान पर गन्दगी महसूस होने का जो मानसिक रोग होता है, वह भी नियमित कुण्डलिनीयोग से नष्टप्राय हो जाता है।

शिकारी-शिकार की परम्परा निर्जीव जगत में भी वैसी ही होती है, जैसी कि सजीव जगत में। जिस प्रकार अपने सभी देहपुरुषों के द्वारा अन्न खाए जाने पर, उनका स्वामी पुरुष भी अन्न से तृप्त हो जाता है, उसी प्रकार अपने सभी अणुओं के द्वारा अन्न खाए जाने पर, देहपुरुष भी अन्न खाने से मिलने वाली तृप्ति महसूस करता है। जैसे किसी समाज के सभी पुरुषों के द्वारा अपशिष्टों के उत्सर्जन को उस समाज का उत्सर्जन भी कह सकते हैं , उसी प्रकार किसी पुरुष के सभी देहपुरुषों के द्वारा उत्सर्जन करने को उस पुरुष का उत्सर्जन कहते हैं , तथा किसी देहपुरुष के अन्दर विद्यमान अणुओं के द्वारा अपशिष्ट-उत्सर्जन को उस देहपुरुष के द्वारा किया गया उत्सर्जन कहते हैं। देहपुरुष के शरीर प्रोटीन नामक बड़े-२ अणुओं को अपने शरीर के निर्माण के लिए कच्चे माल की तरह इस्तेमाल करते हैं, अर्थात उन्हें अपने मुख से उन्हें खाते हैं। इसी तरह प्रोटीन नाम का एक अणु अमीनो -अम्ल नामक अनेक सूक्ष्म-अणुओं को खाता है। अमीनो-अम्ल का एक अणु कार्बन (carbon), हाईड्रोजन (hydrogen), ऑक्सीजन (oxygen) व नत्रजन (nitrogen) नाम के चार किस्म के परमाणुओं को सैकड़ों -हजारों की संख्या में खाता है। एक परमाणु प्रोटोन (proton), न्यूट्रॉन (neutron) व इलेक्ट्रोन (electron) नाम के अनेक सूक्ष्म कणों को खा जाता है। ये सूक्ष्म कण अपने से सूक्ष्म कणों को खाते ही रहते हैं , खाते ही रहते हैं। इस तरह से शिकारी-शिकार की यह परम्परा अनगिनत निचले स्तरों तक चलती रहती है, और चिदाकाश पर जाकर ख़त्म होती है, जो सबका शिकार भी है, और शिकारी भी।

अब सृष्टिदेह में शिकार-शिकारी की परम्परा का वर्णन करते हैं। सृष्टिदेह स्थूलजगत की सबसे बड़ी शिकारिन है। वह ब्रम्हांडदेहों को खाकर पुष्ट होती रहती है। एक ब्रम्हांडदेह असंख्य आकाशगंगादेहों को निगल जाती है। एक आकाशगंगादेह के अन्दर करोड़ों सौरमंडलदेहें समाई हुई हैं। एक सौरमंडलदेह सूर्यदेह, ग्रहदेहों, उपग्रहदेहों व अन्य छोटी-मोटी देहों से पुष्ट होती है, अर्थात वह सर्वभक्षी पुरुषों की तरह ही सर्वाहारी है। एक सूर्यदेह अनेक प्रकार की तत्त्वदेहों, यौगिकदेहों व मिश्रणदेहों को खाती है। एक यौगिकदेह अनेक प्रकार की तत्त्वदेहों को चट कर जाती है। एक तत्त्वदेह हाईड्रोजन नामक मूलतत्त्वदेह को खा जाती है। एक हाईड्रोजनदेह एक प्रोटोनदेह व एक इलैक्ट्रोनदेह की स्वतन्त्र जीवनलीला को समाप्त कर देती है। परम्परा के अंत में एक सूक्षमतमकणदेह आकाशदेह के किसी भाग में दांत मारकर वैसे ही चिपकी होती है , जैसे कि एक जोंक गाय के नाक में। आकाशदेह चिदाकाशदेह को खाती है, क्योंकि अज्ञान से चिदाकाशदेह ही आकाशदेह के रूप में प्रतीत होती है। वास्तव में यही चिदाकाशदेह सत्य है , क्योंकि यही सबकी देहों का निर्माण करती है। जैसे इमारत कोई नई चीज नहीं, अपितु ईंट ही है; उसी तरह सब कुछ चिदाकाश ही है। इसी तरह, जैसे गाय कोई विशेष व भिन्न वस्तु नहीं है, अपितु घास ही है, क्योंकि घास से ही निर्मित है। यह निर्विघ्न चिदाकाश निर्जीव जगत में हर जगह अपने मूलरूप में विद्यमान है, केवल जीवों ने ही इसे आसक्ति करके बिगाड़ा है। इस तरह से जब निर्जीव जगत सजीव जगत से भी ज्यादा ज्ञानी व स्वाभाविक है, तब उससे घृणा कैसी और उसकी पूजा पर बवाल क्यों? इसी तरह से, बड़ी देहों के लिए अपाच्य व हानिकारक छोटी देहें भी उन सभी देहों के द्वारा अपनी देह से मलरूप में बाहर निकाली जाती रहती हैं, जैसे कि सौरमंडलदेह के द्वारा खाए गए हानिकारक धूमकेतुदेह, तथा ब्लैकहोलदेह (black hole) के द्वारा खाए गए तारामंडलदेहों के हनिकारक अवशेष अपने शरीर से बाहर निकाले जाते रहते हैं।

प्राणायाम वर्षा की तरह काम करता है। जैसे वर्षा का जल सम्पूर्ण भूमि में रिस जाता है, उसी तरह से प्राणायाम की प्राणवायु भी पूरे शरीर में रिस जाती है। जैसे भूमि में रिसे हुए जल को जल-बंधों व छोटी-बड़ी नहरों के माध्यम से इकट्ठा करके, उससे पौधे को सिंचित किया जाता है, उसी प्रकार शरीर में रिसे हुए प्राण को यौगिक-बंधों के प्रयोग से कुण्डलिनी के ऊपर उड़ेला जाता है, जिससे कुण्डलिनी पुष्ट होकर जागृत हो जाती है।

सूक्ष्मपुरुषों की चालाकी भी बिल्कुल उनके हमशक्ल पुरुषों की तरह ही होती है। कुछ चतुर सूक्ष्मशत्रु देहपुरुषों की वर्दी पहन लेते हैं, जिससे कि वे देहसैनिकों के कोप से बच जाएं। कुछ शत्रु अपने कपड़ों व घरों आदि के चिन्हों को पूरे देहदेश में फैला देते हैं , ताकि देहसैनिकों को ठगा जा सके और खुद सुरक्षित जगहों पर छिप जाते हैं; ठीक वैसे ही जैसे एक छिपकलीदेह अपनी पूंछ गिराकर अपने शत्रु से दूर भाग जाती है। देहसैनिक उन चिन्हों के पीछे भागते फिरते हैं, और खाली हाथ लौट जाते हैं। कुछ शत्रु शस्त्रास्त्ररोधी कवचों को धारण करते हैं। कुछ सूक्ष्मशत्रु देहपुरुषों के घरों में प्रविष्ट हो जाते हैं, और उन्हें डरा-धमका कर, सुरक्षा के साथ भोजन-पानी उनसे हासिल करते रहते हैं। परन्तु अंत में जब बेचारे देहपुरुष का खजाना खाली हो जाता है, और वह उन्हें सुरक्षा व भोजन देने में अस्मर्थ हो जाता है, तो वे उस देहपुरुष को घर के अन्दर बाँध कर घर में आग लगा देते हैं, और खुद भाग जाते हैं। भोजन के लिए घर से भागते हुए सूक्ष्मशत्रुओं को कई बार देहसैनिक देख लेते हैं, और मार गिरा देते हैं। कई बार किसी घर में शत्रु का पता लगने पर, जब उसको बाहर निकालने में सूक्ष्मसुरक्षाबल नाकाम हो जाते हैं, तो वे पूरे घर को ही उड़ा देते हैं। फिर क्षतिपूर्ति करने के लिए देहदेश के

सभ्य सूक्ष्मकर्मचारी वहाँ पर पहुँच कर नया घर शीघ्र ही खड़ा कर देते हैं। इस तरह की मजबूरी की हालातों में , देहसैनिकों के अपने देश की जन-धन संपदा के प्रति किंचित हिंसक होने पर भी, वे देहदेश के द्वारा दण्डित नहीं किए जाते, क्योंकि उनकी उस मजबूरी में की गई छोटी-मोटी हिंसा के बीच में बड़े मायने में देहदेशसेवा की भावना छिपी होती है। परन्तु इसके ठीक उलट , देहदेश की प्रथा, व व्यवस्था से अलग-थलग रहने वाले सूक्ष्मदेहशत्रु शाँतिकाल में भी सहन नहीं किए जाते, क्योंकि भविष्य में उनके द्वारा विश्वासघात किए जाने की हरदम संभावना बनी ही रहती है। अतः यह स्पष्ट है कि देहपुरुषों में भी पुरुषों की तरह ही विश्वास व अविश्वास की भावनाएं भी विद्यमान होती हैं। इसके विपरीत , कई शत्रु इतने अधिक खुंखार होते हैं कि जब सुरक्षाबल उन्हें ढूँढते हुए, घर के अन्दर घुसने का प्रयत्न करते हैं , तब घर के सदस्य, उन राष्ट्रशत्रुओं के भय के कारण या उनके प्रति दया के कारण, उनको धूल-मिट्टी व टूटे-फूटे सामानों से भरे हुए तहखानों में छिपा लेते हैं। वे उन्हें जरा भी घर से बाहर नहीं जाने देते। उससे सुरक्षाबलों को उन छिपे हुए उग्रवादियों का पता ही नहीं चल पाता। अंततः वे देशद्रोहियों के घरों के अन्दर ही अन्दर , ऐशो-आराम की जिंदगी जीते हुए, विद्रोह की आग फैलाते रहते हैं, और कई दुस्साहसी शत्रु तो विद्रोही संतानों को भी पैदा कर देते हैं।

कुछ पकड़े गए शत्रु, अपनी अर्जित की गई विशेष विद्या के द्वारा , पुरुषदेहदेशस्थित कारावास में धकेले जाने से बच भागते हैं। लम्बे समय तक देहसैनिकों के नाजायज हस्तक्षेप के कारण कई बार स्थानीय देहपुरुष बगावत भी शुरु कर देते हैं , और देहदेश को नुकसान पहुंचाने लग जाते हैं। सम्बंधित क्षेत्र से वह बगावत धीरे-२ पूरे देश में फैल जाती है, जिसका विस्तार से वर्णन हम आगे भी करेंगे। देहदेशजेल में धकेले गए कुछ सूक्ष्मशत्रु अपनी विशेष विद्या से मृत्युदंड से भी बच निकल जाते हैं। इसी तरह से, बहुत से विदेशी सूक्ष्म-शत्रु भी कारावास में बंद कर दिए जाते हैं, ताकि वे भाग न सके। फिर उन्हें फांसी वाले स्थान पर ले जाया जाता है , जहाँ उन्हें लटका दिया जाता है। स्थूलदेश की ही तरह सूक्ष्मदेश में भी मृत्युदंड के लिए अनेक विधियाँ उपयोग में लाई जाती हैं।

वे विद्रोही देहपुरुष भी देहसैनिकों के द्वारा सूक्ष्मशत्रुओं की तरह ही मारे जाते हैं। उन विद्रोहियों के मारे जाने पर देहदेश का राजा प्रसन्न हो जाता है, तथा भविष्य में निर्दोष प्रजा दुखी न हो , इसको पक्का करने के लिए वह अपने सैनिकों व कर्मचारियों को सतर्कता के साथ नियंत्रण में रखता है। परन्तु कई बार उनका आन्दोलन सफल भी हो जाता है , जिससे कि पूरे देहदेश में अराजकता फैल जाती है। ऊटपटांग बने हुए स्थानीय देहपुरुष पूरे देहदेश को बर्बाद करके रख देते हैं। फिर नए चिंतन के साथ नए नौजवान देहपुरुष बड़ी फूर्ति व लगन के साथ देहदेश को जल्दी ही विकास की बुलंदियों तक पुनः पहुंचा देते हैं।

देहदेश का सविनय अवज्ञा-आन्दोलन भी बड़ा दिलचस्प होता है। वह पूरी तरह से स्थूलदेश के जैसा ही होता है। जब देहपुरुषों को कई दिनों तक , किसी कारणवश, प्रशासन के द्वारा मूलभूत सुविधाएँ न उपलब्ध करवाई जाएं, तब वे प्रशासन से बहुत नाराज हो जाते हैं। ऐसा विशेषकर तब होता है, जब देहपुरुष आपातकाल जैसी अवस्था में, देहदेश को सुचारु रूप से चलाने के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहे होते हैं। प्रशासन के ऊपर उनका क्रोध सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के रूप में उतरता है। वे अपना काम तो करते रहते हैं , परन्तु स्वदेशीय प्रशासन द्वारा उपलब्ध कराई जा रही सुविधाओं को सामूहिक रूप से ठुकरा देते हैं। वे अपने पास संचित करके रखी गई चन्द वस्तुओं से ही अपना काम चलाते रहते हैं। ऐसे में उनके द्वारा किए गए कार्यों की गुणवत्ता क्षीण हो जाती है, और देहदेश बहुत कमजोर हो जाता है। देहदेशराजा के द्वारा आयात के लिए निर्दिष्ट की गई वस्तुओं का , देहदेशसीमा के निकट स्थित बंदरगाह पर ढेर लग जाता है। प्रजा के विमुख होने के कारण , राजा का मन भी नहीं करता कि वह उन वस्तुओं को देहदेश के अन्दर मंगवा कर, अपने समय व अपनी शक्ति, दोनों को व्यर्थ गंवाए। इधर-उधर बिखरी हुई कीमती वस्तुओं को देखकर, पड़ौसी राजाओं का मन भी ललचाने लगता है, और वे उन्हें हड़पना शुरु कर देते हैं। कुछ धर्मप्रिय राजा ऐसा नहीं करते , अपितु प्रभावित राजा के साथ मिलकर, प्रजा को मनाने का प्रयास करते हैं। कई बार प्रजा मान भी जाती है, और अपनी हड़ताल ख़त्म कर देती है। कई बार तो ऐसे विदेशी विशेषज्ञों की भी सहायता लेनी पड़ती है , जो कि संधि-समझौते करवाने में माहिर होते हैं। अंत में प्रजा मान ही जाती है , यद्यपि कुछ शर्तों के साथ। इस तरह से, देहदेश धीरे-२ पुनः तरक्की करने लगता है, यद्यपि पहले के जैसी स्थिति वापिस आने में लम्बा समय लग जाता है। यदि प्रजा को मनाने के कोई उपाय न किए जाएं , तो प्रजा को अपने आन्दोलन को ख़त्म करने की सुध तब आती है, जब वह अपनी मृत्यु के निकट पहुँच जाती है, यद्यपि बहुत से देहपुरुष तो बीच में भी मरते रहते हैं। ऐसे में देहदेश भी अत्यधिक क्षीण हो चुका होता है, और वह पूर्वावस्था प्राप्त करने के लिए, और भी कहीं अधिक समय ले लेता है। कई बार तो वह बीच में ही दम तोड़ देता है। बहुत ही विरले मामलों में , ऐसे आपातकाल के बीच में युद्ध, महामारी आदि अन्य आपातकाल प्रवेश कर जाते हैं, जिससे देहदेश नष्ट भी हो जाता है।

देहपुरुष के द्वारा द्वैत में भी अद्वैत के अनुभव को ही अनासक्ति कहते हैं। अनुभव तो सभी कुछ करना है , परन्तु उन अनुभवों को सत्य नहीं समझना है, क्योंकि उनसे देहपुरुष प्रभावित ही नहीं होते। अनुभवों के प्रति इसी असत्यता की धारणा को ही अनासक्ति कहते हैं। जैसी विकट व जटिल सामाजिक परिस्थितियों में वे देहपुरुष रहते हैं, उसमें द्वैत होना लाजिमी ही है। उनकी कलाकारी इसी में है कि वे अपने अन्दर अद्वैत की भावना को भी सतत बनाए रखते हैं। शायद वे यह कला अपने से छोटे आकार वाले अणुओं -परमाणुओं से सीखते हैं। इस परम्परा को नीचे की ओर बढ़ाने पर तो सबका मूलशिक्षक चिदाकाश ही सिद्ध होता है। पूर्ण अद्वैत भाव में न तो आसक्ति का प्रश्न उठता है , और न ही अनासक्ति का। अनासक्ति तो केवल द्वैताद्वैत में ही संभव हो सकती है। इसी तरह पूर्ण द्वैत में भी अनासक्ति हो ही नहीं सकती। देहपुरुष की ही तरह पुरुष भी पूर्ण अद्वैत के साथ गृहस्थचर्या सही ढंग से निभा ही नहीं सकते , इसलिए उसे भी देहपुरुष के द्वारा दिखाया गया द्वैताद्वैत का रास्ता अपना लेना चाहिए। "योगः कर्मसु कौशलम ", गीता की यह उक्ति भी देहपुरुष की तरह ही अनासक्ति -कौशल अर्थात द्वैताद्वैत-कौशल को लेकर ही है। कामादि छः मानसिक दोष तथा अन्य चिरस्थायी व प्रचंड भावनाएं आत्मा को ढक देती हैं, परन्तु यदि ये ही देहपुरुष की आत्मा के स्मरण के साथ हों तो ये ही आत्मा को उजागर भी कर देती हैं। वैसे यह बात हमेशा ध्यान में रहनी चाहिए कि देहपुरुष का आत्मस्वरूप कभी भी चित्तविहीन नहीं हो सकता, क्योंकि उसके जैसे अचम्भे वाले काम क्या बिना चित्त के किए जा सकते हैं ? क्या किसी ने मृतपुरुष को कभी हल चलाते हुए देखा है ? आत्मस्वरूप से, वह तो अनासक्त दृष्टिकोण के साथ रहने वाला चित्तमात्र ही है , बस। यहाँ चित्त का मतलब पूर्वोक्त-अनुसार आधारभूत मन अर्थात साधारण मन या यूं कहें कि संवेदक अणुओं के समूह से है, जो कि हर प्रकार के अनुभव के रूप में प्रकट होता रहता है।

देहपुरुष में संक्रामक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। पुरुष की ही तरह ; वे भी चमड़ी से , मुंह से व नासिका से जीवाणुओं व विषाणुओं के प्रवेश से संक्रमित हो जाते हैं। विषाणु उसके देहदेश में घुसकर उसके जीवनतत्त्वों से अपनी संख्या को बढ़ाते हुए उसके पूरे देहदेश में फैल जाते हैं , और उसे अपनी संततियों से भर देते हैं। ये विषाणु फिर उसके सभी आंतरिक अंगों को नष्ट करने लग जाते हैं। संख्या में बहुत ज्यादा हो जाने पर , अन्दर तंगी व भोजन-पानी की कमी से जूझते हुए , उसके शरीररूपी घर में चारों तरफ खिड़की-दरवाजे खोदकर पंक्तिबद्ध हो जाते हैं , और बाहर निकल जाते हैं। अगर इस तरह से वे रास्ता निकालने में कामयाब नहीं हो पाते , तो उसके शरीर को विस्फोट से उड़ा देते हैं, और खुद भाग कर निकल जाते हैं। फिर वे भोजन-पानी के लिए दूसरे देहपुरुषों के शरीर के अन्दर घुसते हैं। इस तरह यह संक्रमण फैलता रहता है। कई बार संक्रमित देहपुरुष अन्य स्वस्थ देहपुरुषों को सतर्क कर देते हैं, जिससे वे उन शत्रुओं से सावधान हो जाते हैं। स्थूलपुरुषदेह की ही तरह , देहपुरुषों के शरीर भी बहुत से जीवाणुओं को अपनी आतंरिक सुरक्षाप्रणाली से मार देते हैं, और इस तरह से वे खुद ही स्वस्थ हो जाते हैं। बाकी के बचे हुए बीमार देहपुरुषों का इलाज चिकित्सक देहपुरुष करते हैं। कई बार इलाज असफल हो जाने से या रिएक्शन (reaction) आदि से कुछेक देहपुरुष मर भी जाते हैं। भविष्य में सभी देहपुरुषों का विभिन्न रोगों से बचाव हो, इसके लिए सूक्ष्मचिकित्सक सभी देहपुरुषों को विभिन्न रोगों के खिलाफ टीके /वैक्सीन (vaccine) के इंजेक्शन भी लगाते रहते हैं।

कभी-कभार किन्हीं देहपुरुषों की अन्तरंग विकृति से, उनके हाथ-पैर भी विकृत हो जाते हैं, और वे अपंग हो जाते हैं। वास्तव में तो उपरोक्त रोगों को अनुभव करते हुए भी देहपुरुष अप्रभावित रहते हैं, जिससे वे अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में ही स्थित रहते हैं। अधिकाँश स्थूलपुरुष तो पूरे मोहल्ले को जगा देते हैं।

स्थूलपुरुषों की ही तरह, देहपुरुषों में भी बाँट-छाँट की भावना देखी जाती है। जैसे कि पुरुष कुछ ख़ास किस्म के पुरुषों से ही दुश्मनी निरंतर बनाए रखना पसंद करते हैं, उसी प्रकार अतिसूक्ष्मपुरुषों की एक विशेष आक्रमणकारी जनजाति एक ख़ास किस्म के देहपुरुषों पर ही हमला करती है। दूसरी किस्म के देहपुरुषों की तरफ वे देखते तक नहीं, चाहे वे कितने ही अच्छे क्यों न हों। इसी तरह देहदेश के राजकुमार भी अपनी ही जाति की कन्याओं के साथ, प्रबल आसक्ति के साथ विवाह रचाते हैं, दूसरी जाति की ज्यादा सुन्दर व गुणसम्पन्न कन्याओं को भी छोड़कर। देहपुरुषों को तो अनासक्तिपूर्ण बताया गया है, फिर यहाँ आसक्तिमय विवाह कैसे? यही तो देहपुरुषों की कलाकारी है कि वे आसक्ति भी अनासक्ति के साथ ही करते हैं। यह पुरुषों के लिए सीखने योग्य है।

पुरुषों की तरह ही देहपुरुषों की भी एक पूर्वनिश्चित आयुसीमा होती है , जिसे लांघ कर वे मर जाते हैं। जिस प्रकार विभिन्न श्रेणी के पुरुषों की आयुसीमा अलग-२ होती है, उसी प्रकार देहपुरुषों की भी भिन्न-भिन्न होती है। पुरुषों के अंगों की तरह ही देहपुरुषों के अंग भी समय के साथ घिसते -पिटते रहते हैं, और साथ-२ में भरते भी रहते हैं। यदि वे स्वतः भर सकने से ज्यादा ही क्षतिग्रस्त हो जाएं तो उनका इलाज विशेषज्ञ चिकित्सकों के द्वारा किया जाता है। असंख्य देहपुरुष रोगों, दुर्घटनाओं व हर पल चल रही बारीक जंगों के कारण पूरी आयु गुजारने से पहले ही नष्ट हो जाते हैं। वे

बचपन, जवानी व बुढ़ापे के साथ, जीवन की बाकी सभी अवस्थाएँ पुरुषों की तरह ही बिताते हैं। बचपन में निकम्मे जैसे व खेल-कूद में मशगूल होकर, सेहतमंद भोजन खूब खाते रहते हैं, और अपने शरीर को बड़ा/विकसित कर रहे होते हैं। किशोरावस्था में वे विवाह करके अपनी वंश -परम्परा को बढ़ाने लग जाते हैं। जिस तरह बहुत से पुरुष आजीवन ब्रम्हचारी रहते हैं, उसी तरह से बहुत से देहपुरुष भी रहते हैं। युवावस्था में वे वंशपरम्परा से विरक्त हो जाते हैं, और विभिन्न विद्याओं में प्रशिक्षण लेने के उपरान्त अपनी -२ विशेषज्ञता से सम्बंधित कर्मों में तल्लीन होकर देहसमाज को उन्नत करते रहते हैं। वृद्धावस्था में पहुँच जाने पर, कर्मों से धीरे-२ करके विरक्त होने लग जाते हैं, और अंत में मर जाते हैं, जब देह-चांडालों के द्वारा दहन कर दिए जाते हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि देहपुरुषों में यह सबकुछ द्वैताद्वैत अर्थात अनासक्ति वाली भावनाओं के साथ चलता रहता है।

देहनियंत्रक चित्तवृत्तियों के नष्ट होने को ही मृत्यु कहते हैं। जब देहपुरुष प्रबल अनासक्ति के कारण, चित्तवृत्तियों के अस्तित्व को ही अहमियत नहीं देते हैं, तब वे उनके नाश को भी अहमियत क्यों कर देंगे भला? इससे जाहिर है कि वे मरने को भी अहमियत नहीं देते, अर्थात अमर होते हैं। इसी तरह से, फिर वे चित्त के दुबारा हकीकत बनने को भी अहमियत नहीं देते , अर्थात पुनर्जन्म को भी अहमियत न देकर, एक किस्म से उसे महसूस ही नहीं करते। पुरुषों की ही तरह, अधिकाँश देहपुरुष शाकाहारी होते हैं, परन्तु कुछेक मांसाहारी भी होते हैं। देहसैनिक ज्यादातर मांसाहारी होते हैं, क्योंकि उन्हें ज्यादा ताकत और चुस्ती की जरूरत होती है। वे अपने दुश्मनों तक का गोश्त खाते रहते हैं। पुरुषों ही की तरह मदिरा , भांग आदि नशे की चीजों का असर, देहपुरुषों पर भी साफ दिखाई देता है। नशे से उनके अन्दर, चित्त की गतिविधियाँ, शिथिल सी और कई बार तो स्थिर जैसी हो जाती हैं। तब वे सही-गलत का फैंसला नहीं कर पाते और एक तरह से जैसे अँधेरे में डूब से जाते हैं। यह बात अलग है कि वे अनासक्ति के कारण अँधेरे को भी अहमियत नहीं देते। महादेव भी तो इसी तरह भांग के नशे से अछूते रहते हैं। नशों से उनके पाचनतंत्र समेत पूरे शरीर पर बुरा असर पड़ता है। वेदों में विवाहावसर पर मद्यपान व यज्ञ आदि में देवार्पित माँसबलि आदि के भक्षण को स्वीकार किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसा अवश्य करना चाहिए, अपितु इसका यह अर्थ है कि यदि कोई पुरुष स्वभाववश व परिस्थितिवश इनका पूर्ण प्रयत्नोपरांत भी त्याग न कर सके, तो इनका प्रयोग कम व तांत्रिक विधि से किया जाए, जिससे स्वतः ही ज्ञान व सन्मार्ग प्राप्त हो सके। जिस प्रकार पुरुष धीरे -२ तरक्की करता हुआ, लाखों-करोड़ों सालों में अपने जिस्म की पूरी विकसित अवस्था को हासिल करता है , उसी तरह से देहपुरुष को भी करोड़ों साल लग जाते हैं। उस विकास में , अधिकाँश योगदान देहपुरुष का ही होता है, पुरुष का तो नाममात्र का योगदान होता है। ऐसा होते हुए भी जब देहपुरुष मोह के वशीभूत नहीं होता, तब उसका छोटा सा सहायक पुरुष ही क्यों अपने विकास के लिए अत्यधिक उतावला होकर, अपने अद्वैत को भंग करता है।

कहीं-२ पर यह धारणा भी प्रचलित है कि एक बार भी अनुचित कार्य करने से कुण्डलिनीजागरण अथवा आत्मज्ञान नहीं होता, जैसा कि शास्त्रों में भी पढ़ने को मिल जाता है। उदाहरण के लिए, एक स्थान पर लिखा है कि जितनी बूँदें मद्यपान की पी जाएं, उतने ही जन्म मुक्ति के लिए लग जाते हैं। संभवतः केवल सन्मार्ग के प्रति प्रेरित करने के लिए ही इस प्रकार का भय बनाया गया है, यथार्थ में ऐसा होता हुआ प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रेमयोगी वज्र ने भी आत्मज्ञान व कुण्डलिनीजागरण से पहले, अनेक दोषपूर्ण आचरण किए थे। उसने क्षणिकात्मज्ञान से पहले, बचपन में २-४ बार धूम्रपान किया था। कुण्डलिनीजागरण से पहले भी उसने कुछ समय के लिए मद्यपान किया था , धूम्रपान किया था, माँसभक्षण किया था, अप्रत्यक्ष रूप से असामाजिक यौनाचरण किया था, व यहाँ तक कि नशीले पदार्थों का सेवन भी किया था। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि कुण्डलिनीजागरण के लिए ऐसे आचरण करने चाहिए, अपितु यह है कि यदि कोई इन आचरणों से घिरा हुआ है, तो उसे हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह भी तीव्रता से सुधर कर अपनी कुण्डलिनी को जागृत कर सकता है। वैसे उपरोक्त मामले में, प्रेमयोगी वज्र अपवाद भी हो सकता है, क्योंकि उसे अपने गुरु की अत्यधिक निकटता भी प्राप्त हो चुकी थी, फिर भी दृढ़ अभ्यास से सभी कार्य संभव हो जाते हैं।

अधिकाँश लोग चाहते हैं कि समाज से सभी बुराइयाँ पूरी तरह से समाप्त हो जानी चाहिए। यह इच्छा देहदेश की सुव्यवस्था के विरुद्ध है , क्योंकि एक स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक छुटपुट बुराइयाँ तो वहाँ भी विद्यमान रहती हैं। समाज के सभी लोग एक-दूसरे के सहयोगी होने चाहिए, विरोधी नहीं; जैसा कि देहदेश में होता है। आपसी लड़ाई-झगड़ों से न तो कभी किसी का हित हुआ और न ही कभी होगा। वैसे आत्मरक्षा तो सबका जन्मसिद्ध अधिकार है ही। अब प्रेमयोगी वज्र को ही लें, क्षणिकात्मज्ञान की शक्ति उसे एक रजोगुण व तमोगुण प्रधान समाज से भी प्राप्त हुई थी। बचपन से लेकर भी, प्रेमयोगी वज्र मिश्रित प्रकार के समाज में पला -बढ़ा था। वहाँ पर प्रत्येक प्रकार के मनुष्य , परस्पर मेल-मिलाप के साथ रहते थे। उस समय प्रेमयोगी वज्र के इर्द-गिर्द अध्यात्ममिश्रित यौनरोमांच (romance) का भी बोलबाला रहता था। तांत्रिक गुण तो जैसे उसमें बचपन से ही थे। स्त्रियों की, विशेषतः गुणसम्पन्न स्त्रियों की निकटता से , वह अत्युच्च मानसिकता को या यूं कहो कि कुछ -२ आत्मज्ञान के अनुभव से उत्पन्न मानसिकता को अनुभव करता था। वह स्त्रियों को देवी की तरह पूज्य मानता था। यद्यपि साथ में वह स्त्रियों से यह अपेक्षा भी रखता था कि वे प्रेमपूर्ण , मीठी वाणी के

साथ, सहनशील, हास्ययुक्त, प्रसन्नतायुक्त व अन्य स्त्रियोचित गुणों के साथ रहें तथा साथ में अपने पति की चहुंमुखी प्रगति के लिए प्रयास करती रहें। क्योंकि प्रेमयुक्त व्यवहार से पुरुष स्त्री के वश में हो जाता है, इसलिए आवश्यक है कि स्त्री उचित आचार-विचार का समर्थन करे और सिखाए भी। ऐसा ही प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ था, जब संकेत में ही प्रथम देवीरानी ने मद्यपान, नशे आदि की कड़ी भर्त्सना की थी। उससे वह नशीली वस्तुओं से बचा रहा, जो भी उसके क्षणिकात्मज्ञान में एक अतिरिक्त अनुकूल कारण था। यह शोध का विषय है कि क्या उस क्षेत्र के तांत्रिक प्रभाव से उसमें तांत्रिक गुण उत्पन्न हुए थे, या उसके सूक्ष्म या पूर्वजन्म के तांत्रिक प्रभाव से वह क्षेत्र यौनरोमांच से भर गया था। इन सभी बातों से भी सिद्ध होता है कि कुण्डलिनी का विकास सहयोगात्मक व प्रेमपूर्ण समाज में अधिक अच्छा होता है। समाज के निम्नगुणप्रधान अंग साँसारिक शक्ति को बढ़ाते हैं, जो शक्ति फिर उच्चगुणप्रधान अंग से मिलकर, उसकी आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाती है। यह भी तो एक श्रम-विभाजन ही है, देहदेश की परम्परा के अनुरूप। समाज का एक ही अंग निम्नगुणों (रजोगुण व तमोगुण) व उच्चगुणों (सत्त्वगुण) को एक ही समय में, एक साथ अच्छी तरह से ग्रहण नहीं कर सकता। साँसारिक शक्ति को प्रकट करने के लिए निम्नगुणों को ग्रहण करने से , आध्यात्मिकता प्रकट करने वाले उच्च गुण नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह से , आध्यात्मिकता को प्रकट करने वाले उच्चगुणों के आश्रय से भौतिकता प्रकट करने वाले निम्न गुण नष्ट हो जाते हैं। व्यावहारिक आत्मज्ञान तो उच्चगुणों के साथ बसने वाली भौतिकता से ही उत्पन्न होता है। यही तंत्र का भी सिद्धांत है। इसीलिए निम्नगुणों वाले अंगों व उच्चगुण वाले अंगों के मध्य में उच्च कोटि का प्रेम व सहयोग होना चाहिए। स्वस्थ समाज में यह आदान-प्रदान चलता रहता है। कभी कोई पुरुष निम्नगुणों का सहयोग देकर उच्चगुणों वाले पुरुष की सहायता करता है, तो कालान्तर में वही निम्नगुणपुरुष उच्चगुण को ग्रहण कर लेता है, और उच्चगुण-पुरुष निम्नगुणों को, एक-दूसरे का ऋण चुकाने के लिए।

स्वस्थ समाज में सभी के अपने-२ स्तर होते हैं। किसी का स्तर कर्मयोग का होता है, किसी का स्तर ज्ञानयोग का होता है, तो किसी का यौनयोग का। किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक स्तर को नीचा समझकर, उससे घृणा नहीं करनी चाहिए। तीनों प्रकार के स्तरों से कुण्डलिनी पुष्ट होती है, यद्यपि उसे पुष्ट करने की विधि में थोड़ी बाहरी भिन्नता अवश्य है। कर्मयोग से वह बहुत सुदृढ़ हो जाती है। ऐसा करते हुए, कालांतर में कर्मयोगी स्तरोन्नत हो जाता है, और अनायास ही ज्ञानयोगी बन जाता है। ज्ञानयोग से कुण्डलिनी को बहुत शक्ति मिलती है, और वह मुक्तिगामी-वेग के निकट पहुँच जाती है। फिर ज्ञानयोगी पुनः स्तरोन्नत होकर यौनयोगी बन जाता है। यौनयोग से कुण्डलिनी को मुक्तिगामी वेग मिलता है , और वह जागृत हो जाती है। इसलिए जो व्यक्ति कर्मयोग में स्थित रहते हुए, ज्ञानयोगी या यौनयोगी से वैर न करके उनसे प्रेम करता है, उसे अपने ज्ञानयोग या यौनयोग वाले स्तर में बहुत सी अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हो जाती हैं। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ था। समाज में सभी लोग भिन्न -२ आध्यात्मिक स्तरों पर प्रतिष्ठित होते हैं। किसी को कोई विधि उपयुक्त लगती है, और किसी को कोई। कई लोग ज्ञानयोग-स्तर के बाद पुनः कर्मयोग-स्तर को ग्रहण कर लेते हैं, और फिर कालान्तर में, पहले से भी उच्चतर स्तर के कर्मयोग व ज्ञानयोग को प्राप्त करते हैं। इस तरह से, कई लोग १-२ चक्र ही पूरा करते हैं, कई लोग अधिक बार पूरा करते हैं, और उत्तरोत्तर उन्नत होते रहते हैं। कई बिरले लोग पहली बार ही ज्ञानयोग में सफलता पाने के बाद, उसे दृढ़ करने में लगे रहते हैं, और वैरागी-संन्यासी बन जाते हैं। इसीलिए विभिन्न स्तरों के बीच में भेदभाव नहीं करना चाहिए, क्योंकि सभी का लक्ष्य एकसमान ही तो है। इसी तरह, इन्हीं तीनों आधारभूत मार्गों के ऊपर निर्मित विभिन्न पंथों व सम्प्रदायों के बीच में भी भेदभाव नहीं करना चाहिए। पूर्णभौतिकता भी आध्यात्मिकता का सबसे निचला स्तर ही होता है , यदि वह आध्यात्मिकता के दिशानिर्देशन में रहे। पूर्वोक्तानुसार , प्रेमयोगी वज्र भी अपने विज्ञानाध्ययनकाल में वृद्धाध्यात्मिकपुरुषनिर्मित आध्यात्मिकता के वश में था। यद्यपि वह निर्णय लेने में स्वतन्त्र था , बाध्य नहीं था। आध्यात्मिकता की संगति को उसने स्वेच्छा से स्वीकार किया था। ऐसा ही होना चाहिए। संभवतः अध्यात्मविदों द्वारा अपने विषय में रुचि उत्पन्न न करके, उसे बलात थोपना ही लोगों का उससे विमुख होने में मुख्य कारण है। और भी, संभवतः ज्ञानकर्महीनता या अमानवता तो निकृष्ट प्रकार का स्तर है, जिससे बचना चाहिए। इस निम्नतम स्तर को छोड़कर, सभी स्तर प्रगतिशील होते हैं, और एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं। जिस भी समाज में ये विभिन्न स्तर एक-दूसरे से अलग हुए, उस समाज में आध्यात्मिकता की हानि हुई और अंधे भौतिकवाद या अकर्मवाद को बढ़ावा मिला।

अगर देहदेश में आबादी पर काबू न रखा जाए, तो देहपुरुषों के बीच में लड़ाई-झगड़ों से व अनाज-पानी की गैरमौजूदगी से पूरा जिस्म-मुल्क ही तबाह हो जाए। जी हाँ, जनसंख्या नियंत्रण के बिना तो देहदेश के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। देहसमाज में बिना चूक वाली व मानवता से भरी हुई जनसंख्या नियंत्रण की प्रणालियाँ, जैसे कि आत्मसंयम, तंत्रयोग/यौनयोग आदि विद्यमान होती हैं। इससे देहपुरुषसंख्या उस स्तर पर बना के रखी जाती है, जिस स्तर पर होने से पूरे देहदेश में ज्यादा से ज्यादा मात्रा में विकास, मानवता, निपुणता व खुशहाली का बोलबाला हो।

देहपुरुषों का संगठन बना कर रहना भी लाजवाब होता है, जो पूरे संसार में प्रसिद्ध है। सभी देहपुरुषों के सुसंगठित कर्मों से ही जटिल देहसमाज का अस्तित्व संभव हो पाता है। श्रमिक पुरुषों की भीड़ की तरह ही, जब अनेक श्रमिक देहपुरुष इकट्ठे होकर बल का प्रयोग करते हैं, तब बड़े से बड़े काम भी चुटकियों में हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, देहदेश के यातायात विभाग में ही लाखों-करोड़ों श्रमिक लगे होते हैं। इसी तरह से, एक ही प्रतिष्ठित पद पर भी अधिकारी देहपुरुष हजारों-लाखों की संख्या में नियुक्त किए गए होते हैं। ये संख्या लाजिमी भी है, क्योंकि आगे उनके नियंत्रण में अरबों खरबों की संख्या में सूक्ष्मजनता होती है। वे सभी अधिकारी मिलजुल कर व बिना किसी व्यर्थ वाद-विवाद के अपने-२ अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए, एक तरह से एक-दूसरे के अधिकारों को पुष्ट ही कर रहे होते हैं। उनमें चौधरचारी का गुरूर होना भी लाजिमी है , पर वे उसको भी अहमियत नहीं देते, अर्थात उससे अनासक्त रहते हैं। अधिकारियों व कर्मचारियों की उत्तरोत्तर पदों की श्रृंखला तो देहपुरुषों में पुरुषों से भी कहीं ज्यादा मजबूत व कामयाब होती है। वहाँ पर सूक्ष्मकर्मचारियों की कोई प्रोमोशन (promotion) भी नहीं होती है, अत्यंत विरले या इक्के-दुक्के मामले को छोड़कर। इसका कारण यह है कि जब सभी देहपुरुषों को सभी जगह भरपूर व समान सुविधाएँ प्राप्त हो रही होती हैं , तो वे अपने काम को बदल कर अपने तजुर्बे का नुकसान क्योंकर करेंगे भला? एक साथ इतने सारे अधिकारी होने से यह लाभ भी होता है कि उनके द्वारा दिए गए आदेश में वजन होता है , जिसे निचले तबके के बारीक सेवादार नजरअंदाज नहीं कर पाते और साथ में, उनके द्वारा औपचारिकता मात्र के लिए घटिया काम करने की भी कम ही संभावना रहती है। देहपुरुष संगठन बनाकर भी उतने ही शाँत व अनासक्त रहते हैं, जितने कि एकांत में। देहपुरुषों के ऐसे जटिल व यंत्रमयी समाज से यह भी जाहिर होता है कि पुरुषों से ऐसे समाज की अत्यंत अपेक्षा नहीं भी है, क्योंकि पहले से ही ऐसे जीवंत समाज विद्यमान होने से ईश्वर की इससे सम्बंधित इच्छाएं तो पहले ही पूरी हो चुकी हैं। पुरुष से तो केवल अद्वैतयुक्त मानवता की ही अपेक्षा प्रतीत होती है, फिर चाहे वह साधारण समाज के साथ हो या यंत्रमय समाज के साथ। हाँ, तंत्र के सिद्धांतानुसार, यंत्रमय/कर्मठ समाज में देहपुरुषों की तरह का प्रचंड अद्वैतभाव धारण करना अधिक लाभकारी है, यद्यपि इसमें द्वैत धारण करने से हानि भी उतनी ही है।

कुछ अत्यंत विरले पुरुषों की तरह ही, देहपुरुषों में भी इच्छा-मृत्यु देखी जाती है, यद्यपि वे पुरुषों की तरह आत्महत्या नहीं करते , क्योंकि वे अनासक्ति के कारण आत्मरूप से सदा पूर्ण व मुक्त हैं, अतः उनकी आत्मा की हत्या का तो सवाल ही कैसे पैदा हो सकता है ? जब कोई बहुत विरले देहपुरुष इतने ज्यादा अपंग, बीमार या जीवाणु-संक्रमित हो जाते हैं कि देहशरीर की चिकित्साव्यवस्था भी जवाब देने लग जाती है , तब वे जीने में अस्मर्थ होकर अपने शरीर को अकेले में या कई बार सामूहिक रूप से भी, योगाग्नि से उसी तरह भस्म कर देते हैं, जैसे कि कोई योगी या संन्यासी। ऐसा बहुत अपवाद की स्थिति में ही होता है। वे ऐसा तभी करते हैं, जब वैसा करने से सम्पूर्ण राष्ट्र की सुरक्षा होनी हो और सम्पूर्ण मानवता का हित होना हो। ऐसा ही दधीचि ऋषि ने भी किया था। उन्होंने वृत्रासुर के वध के लिए और अंततः सम्पूर्ण मानवता की रक्षा के लिए ही अपनी अस्थियों का दान किया था।

देहपुरुष भी पुरुषों की तरह ही एकांत, शाँति व भ्रमण के शौक़ीन होते हैं। सूक्ष्मसैनिक व वाहनचालक देहपुरुष अपने नगर से बाहर निकलकर, घुमते-फिरते हुए पूरे देहदेश में फैल जाते हैं। वहाँ पर ताज़ी हवा , खुले-डुले पर्यावरण व अन्न-जल की भरमार होने के कारण वे अपनी सारी पुरानी थकान मिटा देते हैं, जिससे उनकी कार्यक्षमता और भी ज्यादा तरोताजा हो जाती है। इसी प्रकार, युद्ध के पूरा होने पर भी, उपरोक्त देहसैनिक दूसरे ही जंगली, खुले-डुले व आरामदायक मार्गों पर आराम से टहलने का आनन्द लेते हुए, सीमा-क्षेत्रों से वापिस, अपने मुख्य कार्यालयों में पहुँच जाते हैं, जो देहदेश के अन्दर वाले और जनजीवन से भरपूर इलाकों में बने होते हैं। वहाँ पर वे चुस्ती-फ़ूर्ति को कायम रखने के लिए लगातार वर्जिश व खेलकूद में लगे रहते हैं। देहदेश के दूसरे कर्मचारी भी घुमते-फिरते हुए ही अपनी वस्तुओं व सेवाओं को देहपुरुषों के घर-द्वारों पर जाकर प्रदान करना पसंद करते हैं। पुरुषों की तरह ही, उन्होंने भी उत्तम प्रकार के जूते पहने होते हैं, ताकि दौड़ते-फिरते हुए कहीं चोट न लग जाए। वैसे तो देहपुरुष भीड़-भाड़ वाले, अंदरूनी व शहरी इलाकों में भी अपनी आत्म-शान्ति को भंग नहीं होने देते, अनासक्ति अर्थात द्वैताद्वैत के कारण। अहंकार से भरा हुआ व अपने को कर्ता-भोक्ता मानने वाला पुरुष जब देहपुरुषों के इस तरह के नजारों पर नजर डालता है, तो उसका अहंकार पल भर में ही फुर्र हो जाता है।

अब हम देहपुरुषों के विद्रोह का वर्णन करेंगे, जो कि पुरुषों के विद्रोह के जैसा होने के कारण दुनिया भर में मशहूर है। किसी वक्त राजा की लापरवाही से देहदेश में दीनता व हीनता पसर जाती है। इससे सारे देहपुरुष कुपोषित, विषाक्त एवं क्षीण हो जाते हैं। बहुत समय तक वे अपने शरीर की दुर्दशा की ओर ध्यान न देते हुए भी, देहदेश के हित में ही लगे रह कर, अपने विहित कर्म तत्परता के साथ करते रहते हैं। इससे वे अधिक से अधिक क्षीण होते चले जाते हैं। अनेक देहपुरुष अकालमृत्यु के सम्मुख होते हुए ; अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारी, कुपोषण व दुर्घटना आदि मुसीबतों के कारण, अपने सम्बन्धियों एवं बालकों की मृत्यु के मूकदर्शक जैसे बनकर रह जाते हैं। वैसी हालत में उनका रो-रो कर बुरा हाल हो जाता है। इतनी बुरी हालत

के बावजूद भी वे भरपूर शारीरिक व मानसिक तनावों को सहते हुए, अपने अधिष्ठाता देहसमाज के यथानिर्दिष्ट कर्त्तव्यकर्मों का निर्वाह करते रहते हैं, परन्तु उनके प्रति अत्याचारों की पराकाष्ठा तब सीमा को लांघ जाती है ; जब राजा के आदेश, लापरवाही या अदूरदर्शिता की वजह से, उनमें से कोई बिरादरी लगातार व सीधे रूप में प्रताड़ित की जाने लगती है। बहुत समय तक उस बिरादरी के देहपुरुष अपनी मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना को झेलते हैं, परन्तु जब उनकी सहनशक्ति जवाब दे देती है , तब वे लोग क्रोधित होकर देहदेश के साथ-२, उसके राजा के प्रति भी विद्रोही हो कर , देहसमाज के नाश के लिए प्रयासरत हो जाते हैं। उस देहबिरादरी के विद्रोही देहपुरुष छल -कपट के साथ देहसमाज-उद्धारक बनने का नाटक करके सभी देहपुरुषों को ठगते हैं, तथा उनसे अपना खूब सेवा-पानी करवाते हैं। और तो और, उनके लिए आबंटित, सारे संसाधनों को अपने मकसद के लिए इस्तेमाल करते हुए व बड़ी तेजी से औलादों को पैदा करते हुए, उनको भी विद्रोह फैलाने के लिए पूरे देहदेश में चहुँ ओर भेज देते हैं। वे विद्रोही कुछ भी काम नहीं करते; क्योंकि वे भारी तादाद में व लगातार ही औलादों को पैदा करने , उन्हें दाना-पानी मुहैया करवाने आदि की व्यस्तता के चलते शक्तिहीन से हो जाते हैं। ऐसे में, मुख्यधारा के सामाजिक व कर्मठ देहपुरुष, संसाधनों व सेवाओं की कमी के कारण कमजोर होते रहते हैं, और मरते भी रहते हैं। बहुत से तो सीधे ही विद्रोहियों के द्वारा नष्ट कर दिए जाते हैं। देहसैनिक तो पहले ही देहसमाज की बदहाली से क्षीण हुए होते हैं , ऊपर से विद्रोहियों के साथ लोहा लेते हुए, बेचैनी व थकान के मारे जल्दी ही हार जाते हैं। कई बार देहसैनिकों की ताकतवर योजना के बलबूते , एक-२ करके सारे सूक्ष्म विद्रोही मार दिए जाते हैं, परन्तु कई बार बात यहीं नहींरुकती और देहदेश की सुरक्षा व्यवस्था जवाब देने लग जाती है।

अब तक तो राजा के नोटिस (notice) में लाए बिना ही, देहदेश के विभिन्न मंत्री व अधिकारी ही स्थिति को संभाले हुए होते हैं, परन्तु अब राजा को भी सूचना दी जाने लगती है। देहदेशराजा इससे बड़ा परेशान रहने लगता है, और बड़ी दर्द महसूस करता है। फिर वह खुद भी लड़ाई में कूद जाता है। वह देहदेश के ऊपर समुचित ध्यान देने लगता है। वह पूरे देश में साफ-सुथरी व सेहतमंद भोजन-पानी जैसी जरूरी चीजों का वितरण बढ़ा देता है। वह आयात शुल्क घटा कर आयात को भी बढ़वा देता है। वह उन जहरीला धुंआ छोड़ने वाले व जहरीले रसायन छोड़ने वाले कारखानों को बंद करवा देता है, जिनसे देहदेशजनता मानसिक व शारीरिक रूप से लगातार क्षीण हो रही थी, और विद्रोह के लिए प्रेरित हो रही थी। कई बार शत्रुओं के बार-२ के हमलों से भी देहपुरुष विद्रोह के लिए प्रेरित हो जाते हैं, तो कई बार वे चतुर शत्रुओं के बहकावे में आ जाते हैं। थोड़े-बहुत विद्रोही तो हमेशा ही दिखते रहते हैं, जिन्हें पकड़कर सजा भी दी जाती रहती है, परन्तु इस तरह का बड़ा विद्रोह तो जनता की स्थिति अति दयनीय हो जाने पर ही होता है। राजा विदेशों से भी हानिकारक चीजों के आयात पर रोक लगवा देता है। विद्रोह को कुचलने के लिए वह विदेशों से उच्च तकनीक के हथियार भी मंगवाता है, जिनसे विद्रोही देहपुरुष बेरहमी से लाखों-करोड़ों की संख्या में कुचले जाते हैं। उन उन्नत तकनीकों से देहसुरक्षाबलों को भी और ज्यादा ढाडस मिलता है, यद्यपि वे भी सहमे हुए होते हैं, और कई बार खुद ही उन उन्नत तकनीकों की चपेट में आ जाते हैं। कई बार वे उन्नत तकनीकें किसी चूक के कारण, निर्दोष देहदेश-जनता पर ही अपना कहर ढा देती हैं। कट्टर किस्म के विद्रोही देहपुरुष तो कभी भी मुख्यधारा में वापिस नहीं लौट पाते , इसलिए उनको ख़त्म करके ही उनसे छुटकारा मिलता है। हल्के स्तर के विद्रोहियों का मानसिक इलाज किया जाता है , व उन्हें सही मार्गदर्शन दिया जाता है। भविष्य में ऐसी कुव्यवस्था कभी नहीं होगी , ऐसा पक्का बताकर वे आश्वस्त किए जाते हैं। ऐसा करने पर वे कई बार सुधर भी जाते हैं , और वापिस मुख्यधारा में भी लौट जाते हैं। कई बार वे राजा की भली मंशा से संतुष्ट नहीं हो पाते और धीरे -२ अपनी उग्रता बढ़ाते हुए कट्टर विद्रोही बन जाते हैं। ऐसे में फिर उनको टपकाने के सिवाय कोई चारा नहीं बचता।

सभी तरीकों के नाकामयाब होने पर देहदेश शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और अपने साथ उन विद्रोही देहपुरुषों को भी ले डूबता है। उनकी मूर्खता पर हंसी आती है, क्योंकि वे अपने क्षणिक लाभ के लिए, अपने उस मालिक देहदेश को तबाह करने पर आमादा हो जाते हैं, जिसकी बदौलत ही लम्बे वक्त तक व भरपूर मात्रा में विभिन्न सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होती रहती हैं। मतलब यह है कि वे अपने पैरों पर खुद ही कुल्हाड़ी मार देते हैं। पुरुषों के जैसे नजरिये के विपरीत, देहपुरुष क्रोध, मूर्खता व विद्रोहिता आदि सभी अभिव्यक्तियों-भावों को प्रकट करते हुए भी उनमें कभी आसक्त नहीं होते। वे उसी तरह से द्वैताद्वैत का परिशीलन करते हैं, जैसे कि किसी नौटंकी में नाटकबाज। यद्यपि पुरुषों को ऐसे सभी कांडों से बचना चाहिए, क्योंकि वे बंधे हुए हैं, और जिंदगी से हमेशा के लिए छुटकारे की खातिर जिंदगी के मोहताज हैं, जबकि देहपुरुष हमेशा ही आजाद हैं, इसलिए उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।

इन सब बातों से सिद्ध होता है कि सभी इंसानियत के उसूलों को, देहपुरुषों की तरह, द्वैताद्वैत की अक्ल के साथ निभाने को ही शरीरविज्ञान दर्शन नाम दिया गया है। आज आसक्ति रोग संक्रामक रोग की तरह हर जगह व्याप्त है, इसलिए इसके समूल नाश के लिए बहुत ज्यादा बल लगाने की जरूरत है, जो कि अच्छे आचार-विचार व शविद को मिलाकर ही मिल सकता है। युक्तियुक्त ढंग से बर्ताव करते हुए भी , जगत के प्रति सत्यत्व बुद्धि को ही आसक्ति कहते हैं, और असत्यत्व बुद्धि को अनासक्ति। बस और कुछ नहीं, यही धारणा का अन्तर है मात्र, जो कि पुरुषों को देहपुरुषों से अलग करता है।

देहदेश में देहपुरुष यद्यपि एक-दूसरे के आश्रित होते हैं, फिर भी वे बहुत ज्यादा स्वावलंबी भी होते हैं। यहाँ पर इस योग्यता से जुड़ी एक सत्य घटना याद आ रही है, जिसमें खनन-खुदाई आदि का वह काम भी शामिल हो जाएगा, जो शुरु में ही देहपुरुषों के व्यवहारों, भावनाओं व कामों की सूचि में दर्शाया गया है। वैसे तो विवाह के बाद नए देहदेश के निर्माण की खातिर, राजकन्या के पितृदेहदेश के सीमान्त भाग में सभी सुख-सुविधाओं से युक्त एक अति सुन्दर महल पहले से ही बना हुआ होता है, परन्तु कई बार मौसमी ज्यादतियों की वजह से वह उनके पहुँचने से पहले ही तबाह हो चुका होता है। ऐसे में उस परिवार का आत्मनिर्भर होना बड़ा जरूरी हो जाता है। ऐसा ही कुछ उस वक्त का नजारा था। पहले भी वर्णित की गई रिवाज के अनुसार, वर-वधु का शुभ मिलन राजमार्ग के बीच में एक छोटे से परन्तु भव्य महल में आयोजित किया गया था। इससे यह भी जाहिर होता है कि स्थूलदेश की ही तरह, देहदेश में भी रिवाजों का चलन होता है। वहाँ पर पितृदेश के द्वारा दी गई सुख -सुविधाएँ पर्याप्त थीं। जब सुविधाएँ काफी कम पड़ गईं, तो वह जोड़ा अपनी कुछ औलादों के साथ उस बड़े महल वाले स्थान की तरफ चल पड़ा था। सुरक्षाकर्मी तो देहदेश में हर जगह मौजूद होते ही हैं, इसलिए वहाँ भी पहले से ही थे, लेकिन फिर भी वहाँ पर इक्के-दुक्के चोर-उचक्के नजर आ रहे थे, इसलिए राजपरिवार की सुरक्षा के लिए आसपास के सुरक्षाकर्मी भी वहाँ इकट्ठे हो गए थे। देहदेश की सुरक्षा व्यवस्था हमेशा ही बड़ी चाक -चौबंद होती है, जिससे सभी देहपुरुष पूरी सुरक्षा व लगन के साथ भरपूर जीवन जी पाते हैं। उस निर्जन-निर्वन स्थान पर कुछ-२ भूख से परेशान वह राजपरिवार महल का नामों-निशान न पाकर हैरान था। शायद चोर-उचक्के उसका बचा-खुचा हिस्सा भी उठाकर ले गए थे। राजसहायता का भी उस उजाड़ जगह पर एकदम पहुंचना लगभग नामुमकिन सा ही था। देहदेश में देहपुरुष सभी विद्याओं में पूर्णतः प्रशिक्षित होते हैं , यह अलग बात है कि वे किसी विशेष विद्या को ही व्यावहारिकता के रूप में ढालते हैं। आपातकाल में भी कोई विरले देहपुरुष ही नई विद्या को व्यावहारिक बना पाते हैं। स्थूलजगत में भी तो इस तरह के पुरुष विरले ही होते हैं। ऐसी ही एक कोशिश उन्होंने भी की और वे कामयाब हो गए। उन्हें रसायन विद्या का स्मरण हो आया। उस विद्या से उन्होंने मिट्टी -पत्थर को घोलने वाला एक रसायन बनाया; जिससे उन्होंने महल, मार्ग, जल के कुँए, तालाब, फसलों के लिए खेत आदि सब कुछ जरूरी संरचनाएँ बना दीं। उस प्रदेश में तो साँस लेने के लिए हवा तक की भी कमी थी, इसलिए उस राजपरिवार ने कड़ी मेहनत से चारों ओर हरे-भरे वृक्ष भी उगा दिए।

इस तरह से उन्होंने खोद-खुदाई करके मुख्य राजमार्ग तक संपर्क सड़क का निर्माण भी कर लिया, जिससे होकर उन्हें राजसहायता भी प्राप्त होने लग गई। उस निर्जन प्रदेश की सकंटक सीमा एक स्थान पर विभक्त थी। लगता था कि जैसे वहाँ कोई प्रवेश-निकासी के लिए राजद्वार हो। वहाँ से चोर-उचक्के किस्म के सूक्ष्म पुरुष भी अन्दर घुस रहे थे, जिनके ऊपर देहसैनिक बुरी तरह से टूट के पड़ रहे थे। उस समय देहदेश की सुरक्षा प्रणाली कमजोर थी, शायद इस वजह से कि उस समय देहदेश में कोई गृहयुद्ध, कुप्रबंधन, अकाल, अलगाववाद, एकताहीनता, कर्तव्यविमुखता या देशप्रेमहीनता आदि का दौर भी साथ-२ चल रहा था। इस वजह से मौके का फ़ायदा उठाते हुए, बहुत से उग्रपंथी ज़िंदा थे, जो कि निर्जन व भीड़ भरे इलाकों के बीच में छुट-पुट वारदातों को अंजाम दे रहे थे। वे चालाक भी बहुत थे, इसीलिए खुला हमला नहीं कर रहे थे, ताकि और ज्यादा फौज उस हलचल वाले क्षेत्र में न पहुंचा दी जाती। कालान्तर में देहदेश के और ज्यादा कमजोर हो जाने पर, उन्होंने बढ़िया मौक़ा जानकर व इकट्ठे होकर बहुत बड़ा हमला बोल दिया। क्षेत्र तनावग्रस्त व सतर्क घोषित कर दिया गया था, और वहाँ पर फौजियों व अन्य जरूरी साजो-सामान की आपूर्ति काफी हद तक बढ़ा दी गई थी। उस निर्जन स्थान में देहपुरुषों की हलचलें भी काफी बढ़ गई थीं, जिससे उस सीमान्त व ठंडी जगह पर भी काफी गर्मी महसूस हो रही थी। संघर्ष के उग्र हो जाने पर तो पूरे देहदेश को ही उच्च सतर्कता पर डाल दिया गया था।

फिर प्रेमयोगी वज्र ने देहदेश के राजा को उच्च कोटि के विदेशी हथियारों व अन्य साजो-सामान, जैसे कि भोजन, वस्त्र आदि का भारी आयात करते हुए पाया। ऐसे प्रचंड युद्धों में उच्च विदेशी तकनीकों के बिना, अक्सर देहदेशों की हार हो जाया करती है, क्योंकि दुश्मन तो अपने घर-परिवारों को जंगलों में सुरक्षित छोड़ के, देहदेश की जनता के बीच में अन्दर घुसे होते हैं, इसलिए उनके निर्दोष परिवार व उनके अपने इलाके के निर्दोष लोग, सभी सुरक्षित रहते हैं। निर्दोष परिवारों समेत समूची निर्दोष जनता तो देहसैनिकों की ही मारी जाती है, जिसके सदमे से वे कुछ-कुछ मायूस व हतोत्साहित से, लाख बचने की कोशिश करते हुए भी हो ही जाते हैं, तथा सूक्ष्म शत्रुओं की तरह पूरी तरह से खुल कर नहीं लड़ पाते। साथ में, बीहड़ों में रहने वाले असभ्य सूक्ष्मशत्रु तो रोजाना के लड़ाई-झगड़ों के आदी होते हैं, इसलिए उन्हें कोई ज्यादा फर्क भी नहीं पड़ता, जबकि देहदेश के निवासी, यहाँ तक कि सैनिक भी सभ्य होते हैं, और एक वार करने से पहले भी कई बार सोचते हैं। इसलिए देहसैनिकों का कुछ परेशान होना तो लाजिमी ही है। कोई बहुत विरला व बहुत दमदार राजा ही ऐसे भीषण युद्ध में, बिना किसी विदेशी मदद के जीत पाता है। प्रेमयोगी वज्र ने देखा कि फिर ज्यादातर बारीक दुश्मन मारे गए। कुछेक को तो पहले की ही तरह देहदेश के बाहर धकेल दिया गया, परन्तु अब तो आयातित विदेशी आग्नेयास्त्र मिसाइलें (missiles) उनके अपने जंगलों-बीहड़ों में भी उनका पीछा करते हुए, उनको तबाह कर रही थीं। इस तरह से, विकसित हो रहे नए देहदेश की तरफ बढ़ रही एक

विकट समस्या टल गई थी। इससे वह आराम के साथ पूर्णरूप से विकसित हो पाया, जब उसने मुख्य देहदेश से अलग होकर अपनी अलग व नई सत्ता कायम कर ली, यद्यपि बाद में भी वह उसके साथ पूरे सहयोग के साथ मिलजुल कर रहा , जिससे कि वे दोनों, अलग-२ देहदेश नहीं, बल्कि एक ही देहदेश की दो रियासतें जान पड़ती थीं।

देहदेश के कमजोर होने पर कई बार सूक्ष्मशत्रु जीत भी जाते हैं। फिर वे नए देहदेश को बेरहमी से तबाह करने लग जाते हैं। नया राजा बड़े देहदेश के पास बार-२ मदद के लिए गुहार लगाता है, परन्तु वह भी, बार-२ कोशिश करने पर भी उस क्षेत्र को जीत नहीं पाता, हालांकि वह दुश्मनों को उस सीमित दायरे में रोक रखने में कामयाब हो जाता है, और अपने देश को बचा लेता है। फिर पुराना राजा बहुत पीड़ित हो जाता है, और नए देहदेश को अपने देश से निकल कर सुरक्षित हो जाने की सलाह देता है। शत्रुपीड़ित नया राजा भी फिर बड़े राजा से कोई दरकार न रखता हुआ उस सलाह को मान जाता है। फिर नए देश के सभी निवासी भी अपने-२ साजोसामान के साथ, समय से पूर्व ही, अपनी अर्धविकसित अवस्था में ही बड़े सैलाब की तरह बाहर निकल जाते हैं, अपना एक नया देहवतन बसाने।

उपरोक्त प्रकार के ज्यादातर मामलों में, नया सूक्ष्म देश बसाने की इच्छा रखने वाले, वे सूक्ष्म लोग सफल नहीं हो पाते, क्योंकि पूर्ण परिपक्वता से पहले उनमें तजुर्बे की कमी के साथ, उनके देश में संसाधनों की भी भारी कमी होती है, यद्यपि बड़ा राजा उनकी बहुत सहायता करता है। उनके बाहर निकल जाने से बड़ा राजा भी चैन की साँस लेता है , अपने देश को सुरक्षित जानकर, क्योंकि ज्यादातर सूक्ष्म हमलावर भी पीड़ित क्षेत्र में शिकार/भोजन न मिलने से परेशान होकर, बाहर की ओर भाग खड़े होते हैं। बाकी बचे हुए शत्रु मार दिए जाते हैं, परन्तु कई बार बहुत से दुश्मन उस बीहड़ जैसे क्षेत्र में ही छिपे रहकर मौके की तलाश में रहते हैं। जब किसी और देहदेश का विकास शुरु होने लगता है, तब वे फिर से हमला कर देते हैं। वैसे कई बार, देहदेश के राजा की अपनी गलती से भी नया देहदेश समय से पूर्व ही अपनी नई सत्ता कायम कर लेता है। वह उसका विशेष ध्यान नहीं रखता; क्योंकि विकास की शुरुआत में देहदेश को उच्च गुणवत्ता के संसाधनों की समुचित मात्रा में आवश्यकता होती है। नया देहदेश तजुर्बे की कमी से नाजुक भी ज्यादा होता है। ऐसी हालत में नया देहदेश परेशान व नाराज होकर, अपनी नई सत्ता का डंका समयपूर्व ही बजा देता है। हालांकि बाद में नए देहदेश की अजीबोगरीब हरकतें देखकर राजा को अपनी चूक का अहसास जरूर होता भी है, और वह उसे समुचित रीति से स्थापित करने के लिए पुरजोर कोशिश करता भी है। कभी यह कोशिश कामयाब हो जाती है, और कभी नहीं भी।

कई बार सूक्ष्म हमलावर नए विकसित हो रहे देहदेश की सीमाएं तोड़कर, पूरे मूल देहदेश में ही फैल जाते हैं। फिर भयानक लड़ाई शुरु होती है, जिसके अंजाम में या तो देहदेश उन पर किसी भी तरह से काबू पा लेता है , या फिर उनसे हार कर नष्ट हो जाता है। फिर शुरुआत से एक नए मूल-देहदेश के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। चित्तवृत्तियाँ ही संकल्पों व कर्मों के रूप में विद्यमान होती हैं। पुरुषों के द्वारा महसूस की जाने वाली चित्तवृत्तियाँ दरअसल सबसे पहले उनके देहदेश के प्रबंधकपुरुषों के मन में ही तो पैदा होती हैं , यद्यपि वे उन्हें महसूस नहीं करते या यदि करते हैं, तो अनासक्ति के साथ करते हैं। साथ में, सभी देहप्रबंधक सूक्ष्म पुरुषों की चित्तवृत्तियों को भी पुरुष अनुभव नहीं करते, बल्कि उनके कुछेक विरले समूहों की चित्तवृत्तियों को ही महसूस करते हैं। यह इसलिए होता है, क्योंकि ज्यादातर प्रबंधक, राजा अर्थात पुरुष से कोई अपेक्षा नहीं रखते। कई बार अत्यधिक से अत्यधिक विरले मामले में राजा देहदेश के सभी प्रबंधकों की, यहाँ तक कि साधारण संदेशवाहकों की चित्तवृत्तियों को भी अनुभव करने लग जाता है, जैसा कि संभवतः आत्मज्ञानी योगी श्री गोपी कृष्ण ने कुण्डलिनीजागरण के बाद अनुभव किया था। इसमें राजा अनुभव करते-२ इतना परेशान हो जाता है कि उसका जीवन ही जोखिम में पड़ जाता है। उनका यह कहना कि कुण्डलिनीजागरण के उपरांत अचानक से मस्तिष्क विकसित होने लगता है, जिससे कि अधिक से अधिक अंतर्दृष्टि व सहजानंद को ग्रहण करने की क्षमता आए ; सत्य प्रतीत होता है। तभी तो व्यक्ति बालक की तरह की बलहीनता को अनुभव करता है, क्योंकि ऊर्जा मस्तिष्क के विनिर्माण में व्यय होती रहती है। अगर देहदेश के अन्दर कुछ ज्यादा ही हलचल या गड़बड़ हो जाए, तो ही उन गड़बड़ियों को महसूस करने वाले प्रबंधकों की चित्तवृत्तियों को राजा महसूस करता है , ताकि राजा भी कुछ मदद कर सके। इसी तरह से देहदेश के विदेशनीति, विदेशों से सुरक्षा व विदेशी आयात-निर्यात से सम्बंधित वजीरों की चित्तवृत्तियों को भी राजा महसूस करता है, क्योंकि इन मामलों में इंतजाम की सारी दरकार सिर्फ राजा से ही होती है। देहपुरुष किसी भी हालत में, उनके अपने द्वारा महसूस किए जाने वाले संकल्पों के प्रति राजा की आसक्ति की उम्मीद नहीं करते, क्योंकि इससे तात्कालिक और नकली फायदे के इलावा देहदेश का नुकसान ही होता है। देहदेश-राजाओं की आसक्ति से देहदेशों के बीच में तो आपसी झगड़े , अशाँति, हिंसा आदि बुराइयाँ रहती ही हैं ; साथ में उनके अपने देहदेश में भी सभी बुराइयाँ विद्यमान रहती हैं। क्योंकि अगर एक मुल्क का शहंशाह दूसरे मुल्कों को परेशान करके अपनी आदत बिगाड़ता है , तो वह निश्चित ही अपने मुल्क की

खातिरदारी भी नहीं कर सकता और उसकी अपनी हुकूमत के लोग भी उससे परेशान होकर उसके जैसे ही बन जाते हैं , या फिर बगावत कर देते हैं। यह परम्परा नीचे से नीचे, ऐसी ही चलती रहती है। आखिर में वह मुल्क ही तबाह हो जाता है।

पुरुष भी कभी मुक्त देहपुरुष ही था, परन्तु कालान्तर में वह आसक्ति करके बंध गया और पुरुष बन गया। उसकी आसक्ति विद्या को उसकी संतानों ने भी ग्रहण कर लिया और आगे-२ चलकर पूरा समाज ही आसक्तिमय हो गया। आज कोई पुरुष यदि पूरी तरह आनासक्त रहे , तो भी अधिकाँशतः उसकी संतानें समाज के आसक्ति-रोग से संक्रमित हो ही जाती हैं, खासकर यदि सावधानीपूर्वक बचाव न किया जाए। दिवसकाल की लगातार मेहनत से थके हुए देहपुरुष रात्रि हो जाने पर अपनी चित्तवृत्तियों को ढीला करते हुए, गहन निद्रा के बीच प्रविष्ट हो जाते हैं। वे नींद सहित उसके अँधेरे को व सपनों की छिटपुट चित्तवृत्तियों को भी अहमियत नहीं देते, इसीलिए उनसे भी बचे रहते हैं। वैसे ज्यादा ही अहमियत या तवज्जो देने को ही तो आसक्ति कहते हैं। चित्तवृत्तियों के जागने के साथ ही, वे प्रभात होने पर पुनः जाग जाते हैं। देहदेश के कुछ राजकर्मचारी-देहपुरुषों का काम राजा को ठीक समय पर जगाना होता है। उनके पास घड़ी जैसा एक यन्त्र होता है, जिसमें अलार्म (alarm) लगाकर वे ठीक समय पर जाग जाते हैं, और साथ में राजा को भी जगा देते है। कई बार, यदि वे रात्रि-चौकीदार देहपुरुष रोगी हो जाएं या उनकी घड़ी में गड़बड़ी हो जाए , तो राजा की निद्रा अनियमित सी हो जाती है। इस समस्या को रोकने के लिए या पुनः चौकीदारी -प्रणाली को दुरस्त करने के लिए, उन देहपुरुषों को पुष्ट करना पड़ता है , व उस घड़ी को ठीक करवाना पड़ता है।

जिस तरह से कोई पुरुष अजनबी लोगों व अजनबी जगहों के क्रियाकलापों से ज्यादा विचलित नहीं होता , बल्कि इसके विपरीत एक मजा जैसा महसूस करता है, उसी तरह से एक अनासक्त पुरुष हमेशा ही रहता है, क्योंकि उसके लिए सभी कुछ अजीब अर्थात अजनबी की तरह ही होता है। अब देहपुरुषों व उनके क्रियाकलापों को ही देख लो। वे सभी सच भी हैं, और झूठ भी, अर्थात अजीब हैं; तो फिर बिल्कुल उन्हीं की तरह के पुरुष व उन्हीं की तरह के उनके क्रियाकलाप, कैसे पूरी तरह से सच हो सकते हैं? वे भी दोनों ही हैं, मतलब कि सच भी हैं, और झूठ भी। तभी तो द्वैताद्वैत की धारणा ही देहपुरुष की धारणा है, और सर्वश्रेष्ठ भी। द्वैत से दोनों की (देहपुरुष व अनासक्त पुरुष) दुनियादारी चलती है, और अद्वैत से दोनों का मुक्ति का आनंद कायम रहता है। इसी द्वैताद्वैत का ही दूसरा नाम अनासक्ति भी है। इसी प्रकार जगह बदलने या घूमने–फिरने के पीछे भी अनासक्ति सिद्धांत काम करता है। परस्त्रियों से हास्य-विनोद से आनंद प्राप्ति की वजह भी अनासक्ति है। भय से व साहसिक गतिविधियों से आत्मानंद भी अनासक्ति की ही उपज है। “पर्वताः दूरतः रम्यन्ते”, यह उक्ति भी अनासक्ति सिद्धांत को दर्शाती है। पढ़ाई -लिखाई, कथाओं, दंतकथाओं, उपन्यासों, किम्वदंतियों व दूसरे अविश्वसनीय प्रकरणों से जो आत्मानंद की उपलब्धि होती है, वह भी उनमें अनासक्ति से ही होती है। अनासक्तिजनक उपायों में भी मूल संस्कृत भाषा में पुराण-कथाएँ सबसे सफल प्रतीत होती हैं, क्योंकि संस्कृत भाषा चित्तरूपी अग्नि को प्रज्वलित कर देती है , जिससे इन्द्रियगम्य स्थूलजगत भी अपने अंदर ही महसूस होता है, अर्थात कुण्डलिनी क्रियाशील हो जाती है। फिर अपने मानसिक रूप से आसक्ति कैसी? गैरों (बाहरी संसार) की तरफ झुकाव को आसक्ति व अपने (मन/आत्मा) प्रति झुकाव को प्रेम कहते हैं। पुराणों की कथाओं की प्रत्यक्ष रूप से असत्यता अनासक्ति को पैदा करती है , तथा अप्रत्यक्ष रूप से सत्यता, उनके पढ़े जाने में रुचि को बनाए रखती है।

यदि वस्तुओं व भावों में, अर्थात चित्तवृत्तियों में आनंद होता, तब तो मनोरम वस्तुएँ या लोग, कभी भी किसीको बुरे न लगते। किसी भी मनोरम वस्तु से आनंद इसलिए मिलता है, क्योंकि उससे पुरानी घटनाएँ स्मरण हो आती हैं, जिनके प्रति अनासक्ति होना स्वाभाविक है, क्योंकि वे अप्रत्यक्ष व पुरानी होती हैं, दूर के पर्वतों की तरह तथा बिना मतलब की, अर्थात अजनबी सी बन चुकी होती हैं। विरह से जो प्रेम का आनंद महसूस होता है, वह भी अनासक्तिजन्य ही होता है। इसी तरह से परहित के कर्मों, दूसरों के द्वारा दिए उपदेश या आदेश से किए गए कर्मों, कर्तव्यकर्मों व क्लिष्टकर्मों के साथ भी अनासक्ति विद्यमान होती है, आत्मानंद के स्रोत के रूप में। गीत, नाटक आदि कलाओं से और पठन, लेखन आदि विद्याओं से जो आनंद मिलता है, वह अनासक्तिमूलक ही है; क्योंकि ऐसी गतिविधियों में मन पूरी तरह से डूब जाता है , और अपने आप को ही अजनबी सा लगने लग जाता है। इसी तरह दूरदर्शन-चलचित्र (tv-film,video etc.), चित्रपट-चलचित्र (theatre-movie) आदि से भी अनासक्ति लाभ मिलता है। सिने कलाकार जितनी चाहे कोशिश कर लें, वे अपने अभिनय को वास्तविक नहीं बना सकते। वे वास्तविकता की पूरी नक़ल तो कर सकते हैं , परन्तु भावों व हावों-भावों को पूर्णतः वास्तविक नहीं बना सकते। अतः उनके कलाकारी के क्रियाकलापों में अनासक्ति विद्यमान रहती है, देहपुरुष की तरह। वास्तव में, सिने कलाकार देहपुरुष ही होते हैं। इस तरह से, हम सदैव अपने शरीर के अन्दर सिने कलाकारों का हुजूम लिए रहते हैं।

विज्ञान विषय इसलिए नीरस लगता है, क्योंकि उसके प्रति लोग सत्यत्व बुद्धि रखने लगते हैं , जिससे आसक्ति पैदा हो जाती है। इसके साथ -२ वैदिक-पौराणिक पुरुषों के साथ या ऋषि , गुरु आदि दिव्य पुरुषों के साथ नजदीकी बनाने से उत्पन्न अनासक्ति का भाव विज्ञान के साथ स्वतः जुड़ जाता है, जिससे वह फिर रुचिकर लगने लगता है। ऐसा ही प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ था।

वैदिक कर्मकांडों में सुन्दर रूप–रंग व सुन्दर कद-काठी वाले मनुष्यों की तरह के देवता कल्पित किए गए होते हैं , जो कि स्थूल सृष्टि का नियमन उसी तरह से करते रहते हैं, जैसे कि देहपुरुष देहसृष्टि का। ऐसा करने के पीछे का मूल उद्देश्य भी अनासक्ति -कौशल को विकसित करना ही होता है। जिस तरह से आत्मज्ञान की प्राप्ति होने पर अनासक्ति खुद ही पैदा हो जाती है , उसी तरह अनासक्ति से भी आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। इससे जाहिर होता है कि शरीरविज्ञान दर्शन सभी मेहनतकश पुरुषों के लिए काफी आसान व फायदेमंद है, क्योंकि इसमें कुछ अलग से औपचारिकता नहीं करनी है, बल्कि अपने नजरिये को ही बदलना है मात्र।

स्थूलसमाज के विधिनियम व आदेश, अर्थात लॉ एंड ऑर्डर (law and order) की तरह ही देहसमाज में भी सबसे ज्यादा फायदेमंद माहौल बना कर रखा जाता है। जैसे स्थूलसमाज में आन्दोलन, विद्रोह आदि के वक्त फायदेमंद हालात की परिभाषा बदल दी जाती है , उसी तरह से सूक्ष्मसमाज में भी। फिर जिस तरह से स्थूलसमाज में अस्थायी तौर पर नया लॉ एंड ऑर्डर लाया जाता है , उसी तरह से सूक्ष्मसमाज में भी। देहसृष्टि की सभी निर्माण–योजनाएं, निर्माण के पहले से ही उस देहसृष्टि के सभी देहपुरुषों के मन में बनी होती हैं , ठीक उसी तरह से, जैसे ब्रम्हापुरुष के मन में सारी स्थूल सृष्टि सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती है। वैसे तो देहसृष्टि बनने की शुरुआत के कुछ देहपुरुष ही (स्थूल सृष्टि के प्रजापतियों की तरह) इन सभी योजनाओं को सही ढंग से याद करके संपूर्ण सृष्टि तैयार कर पाते हैं। बाद के देहपुरुषों के मन में ये योजनाएं रहती तो हैं, पर वे उन्हें भूल जाते हैं, जिससे वे नई देहसृष्टि नहीं बना पाते। यह जरूरी भी है , क्योंकि नहीं तो सृष्टियों के अन्दर सृष्टियों का अंत ही नहीं होगा और इस तरह से अव्यवस्था फैल जाएगी। इसी तरह से ही, सभी स्थूलपुरुषों के अन्दर भी सारी स्थूलसृष्टि सूक्ष्म रूप में विद्यमान होती है , परन्तु ब्रम्हापुरुष व प्रजापतियों के सिवाय, सभी उसे भूल जाते हैं। देहपुरुष तो देहसृष्टि के विस्मरण के समय भी पूर्णमुक्त ही रहते हैं , क्योंकि वे उस विस्मरण को भी अहमियत नहीं देते , जबकि स्थूलपुरुष विस्मरण को अहमियत देने से, उससे बंध कर अपनी विशाल आत्मा को भूल जाते हैं, और जड़वत जैसे हो जाते हैं।

कई बार देहदेश के भंडारघर जरूरत से ज्यादा भरे जाते रहने से जल्दी ही घिस -पिट जाते हैं। ऐसा ज्यादातर तब होता है , जब राजा अपने कमीशन, सिफारिश, पक्षपात आदि मुद्दों से जुड़े हुए स्वार्थों की वजह से बाहरी देशों से , बिना जरूरत के भी विभिन्न पदार्थों का आयात करवाता ही रहता है। कुछ समय बाद भण्डारण से जुड़ी सभी व्यवस्थाएं क्षीण होकर नष्ट हो जाती हैं। भण्डारघरों के कर्मचारी भी काम के अत्यधिक बोझ के कारण, काम छोड़ कर चले जाते हैं। फिर सारा अतिरिक्त सामान देहदेश के मैदानों, गली-गूचों, रास्तों, जलाशयों में व यंत्रों-मशीनों आदि जरूरी साजो-सामान के आसपास पड़ा-बिखरा हुआ सड़ता रहता है, और गन्दगी फैलाता है। इससे बहुत से देहपुरुष भी बीमार पड़ जाते हैं, और बहुत से जरूरी यन्त्र जंग आदि लगने से खराब हो जाते हैं। फालतू सामान को इधर से उधर ढोने में भी बहुत सी शक्ति बर्बाद हो जाती है। देहदेश को चलाना बड़ा मुश्किल हो जाता है। सूक्ष्मचूहों के बीच भी मुफ्त की दावत उड़ाने की एक होड़ सी लग जाती है, जिससे देहदेश में बीमारियाँ भी फैल जाती हैं। वे चूहे जगह-२ छेद कर देते हैं, जिन्हें बंद करना खासा मुश्किल हो जाता है , क्योंकि वे बार-२ वहाँ छेद करते रहते हैं। मजबूरन सारे देहदेश की सफाई की जाती है , और सारा फालतू सामान नदी-नालों में बहा दिया जाता है। इसी तरह, स्थूलदेश के प्लास्टिक (plastic) आदि नष्ट न होने वाले कूड़े-कचरे की तरह ही, देहदेश में भी कूड़ा-कचरा होता है, जिसे नष्ट करने के लिए देहदेश को भी स्थूलदेश की तरह ही भारी कीमत चुकानी पड़ती है। इससे देहदेश की कीमती विदेशी मुद्रा की भी बहुत ज्यादा बर्बादी हो जाती है। इससे देहदेश बहुत कमजोर हो जाता है , व बहुत सी विपत्तियों के बीच फँस जाता है। सूक्ष्मशत्रु तो उसके पीछे जैसे हाथ धोकर ही पड़ जाते हैं। नए भंडारघर बनाने की कोशिश भी की जाती है , पर यह कठिन काम होता है, और इसमें समय भी काफी लगता है। ज्यादातर देहदेशों में तो वे बन ही नहीं पाते दुबारा से। स्थूलदेशों में, विशेषकर विकासशील देशों में भी तो भंडारघर बनाने में पुरुषों की रुचि कम ही दिखाई देती है , जिससे करोड़ों टन (ton) का सामान हर साल बर्बाद हो जाता है। अंत में राजा को ही मन मसोस कर मजबूरी में कदम उठाना पड़ता है। उसे जरूरत से ज्यादा का आयात बंद करवाना पड़ता है , जिससे उसके बहुत से कमीशनखोर देहपुरुष खासे नाराज होकर उसे गुपचुप तरीके से परेशान भी करते हैं। राजा ने तो देहदेश चलाना होता है , इसलिए उसे कुछ समय के लिए उन अपने ही अधिकारी देहपुरुषों की नाराजगी भी झेलनी पड़ती है। हालांकि कुछ समय बाद तो अच्छी आदत उनको पड़ ही जाती है। इससे एक समस्या यह भी आती है कि हर वक्त जरूरत के सामान को आयात करते रहना पड़ता है। यदि किसी कारणवश कभी आयात में बाधा पैदा हो जाए , तो उसकी देहप्रजा के देहपुरुष भूखे भी मर जाते हैं। कई बार भुखमरी फैलने से पूरा देहदेश ही तबाह भी हो जाता है। इस विकट समस्या से बचने के लिए उसे अपने भंडारघरों को

कामचलाऊ तरीके से चलाना पड़ता है, जिसके लिए ताउम्र उसे विदेशी तकनीक के सहारे रहना पड़ता है, जिसके अपने नुकसान अलग से होते हैं। ऐसे ही मामले स्थूलदेश में भी तो दिखते रहते हैं।

देहदेश में सफाई-व्यवस्था भी गजब की होती है। वहाँ पर प्रत्येक वस्तु, सदैव अपने निर्धारित स्थान पर ही मिलती है, यहाँ-वहाँ पर बिखरी हुई नहीं। इससे किसी भी वस्तु के बारे में भ्रम होने व उसके गुम होने का अंदेशा नहीं रहता। देहदेश की समस्त भूमियाँ इतनी अधिक शुद्ध व साफ -सुथरी होती हैं कि स्थूलदेश में उतनी शुद्ध व साफ-सुथरी भूमि को प्रायोगिक रूप में भी तैयार नहीं किया जा सका है। उसी तरह से , देहदेश का जल इतना अधिक निर्मल व शुद्ध होता है कि उसके सामने स्थूलदेश के बड़े से बड़े जलशुद्धीकरण के उपाय भी बौने सिद्ध हो जाते हैं। वायु भी वहाँ पर साफ - सुथरी, बिना धूलकणों की, बिना रोगाणुओं की, बिना हानिकारक गैसों की व बिना दुर्गन्ध की होती है। वह वायु न तो अधिक ठंडी होती है, और न ही अधिक गर्म, अपितु उचित व स्थिर तापमान पर स्थित होती है, जिससे देहदेशनागरिक बड़ा भारी आराम व तन-मन की सम्पूर्ण तरोताजगी महसूस करते हैं। देहदेश में साफ-सफाई की ऐसी सुन्दर सुव्यवस्था, देहदेश में नियुक्त नैष्ठिक सफाई कर्मचारियों, देहदेशनागरिकों की साफ-सुथरी/अच्छी आदतों, चाकचौबंद सुरक्षाव्यवस्था आदि के कारण ही सम्भव हो पाती है।

देहपुरुष अपने मित्र देहपुरुषों के प्रति कृतज्ञता का भाव भी प्रकट करते हैं। वे शत्रुओं की युद्धनीति को भली भांति स्मरण रखने वाले सैनिकों की , उनके जीवनपर्यंत सेवा करते रहते हैं। बदले में वे विशेषज्ञसैनिक भी अपने जीवनभर , भविष्य के सूक्ष्मयुद्धों में शत्रुओं को धूल चटाने में देहदेश की खासी मदद करते रहते हैं। स्थूलपुरुष भी तो युद्धविशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ इसी तरह से उठाते हैं। यह हैरानी होना लाजिमी ही है कि देहपुरुष इतने बड़े-२ काम, बिना आसक्ति के कैसे कर लेते हैं? अगर वे कर लेते हैं, तो पुरुष भी कर सकते हैं, क्योंकि दोनों के काम व वेश-परिवेश के बीच में रत्ती भर का भी अंतर नहीं है। केवल अभ्यास की ही आवश्यकता है।

अगर केवल चित्तवृत्तियों में ही स्थायी आनंद होता, तो उनमें आसक्त पुरुष और दुराचारी को भी जरूर मिलता। यदि उनके बिना आनंद होता, तो मूढ़ों, बेहोशों व नशे में धुत्त पुरुषों को भी मिलता। दरअसल आत्मानंद तो बीच वाले रास्ते में , अर्थात मध्यम मार्ग में, अर्थात अनासक्ति में ही है। अतः चित्तवृत्तियों का निवारण शविद का ध्येय नहीं है, अपितु उन्हें द्वैताद्वैत के साथ अनुभव कराना ही है। हमने सभी भावों -अभावों को यथावत स्वीकार करना है, क्योंकि वे कर्म के सहचर होते हैं, और उनके निवारण से देहपुरुष की तरह के युक्तियुक्त कर्म नहीं हो पाते। हमने तो केवल द्वैताद्वैत दृष्टिकोण के साथ जीवन जीते हुए, उनके प्रति अनासक्त रहना है। पुरुष का जीवन एक परीक्षा की तरह ही है, जिसमें एक साथ ही चित्तवृत्तियों का ग्रहण और त्याग, दोनों काम करने पड़ते हैं। ऐसा केवल देहपुरुष की तरह द्वैताद्वैत से ही संभव है। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण से चलने /बहने वाले नदी-जल को रोकने के लिए बाँध की तथा जल को गुरुत्व के विरुद्ध ऊपर उठाने के लिए बिजली-मोटर आदि की जरूरत होती है, उसी प्रकार अज्ञान से चलने वाली आसक्ति को रोकने के लिए भी अनासक्ति का बाँध बनाना पड़ता है, तथा पुराने समय की नीचे गिरी हुई आसक्तियुक्त चित्तवृत्तियों को अनासक्ति के पंप से ऊपर उठाना पड़ता है। जैसे गुरुत्व नष्ट होने पर उपरोक्त बाँध व बल की आवश्यकता नहीं रहती, उसी तरह अज्ञान के नष्ट होने पर अनासक्ति की भी, अर्थात अनासक्ति खुद कायम रहती है। चित्त को कुछ दौड़ाने के बाद शविद के स्मरण से तत्काल अनासक्ति-लाभ महसूस होता है।

शरीरविज्ञान-दार्शनिक प्रतिक्षण ही अनंत उपचारों से, अनायास ही, अर्थात अनजाने में ही, अर्थात बिना किसी औपचारिकताओं के ही देहपुरुषों की पूजा करते रहते हैं, क्योंकि देहपुरुष कहीं दूर नहीं, अपितु उनके अपने शरीर में ही विद्यमान होते हैं। वे उन्हें नद, नदी, तालाब, समुद्र आदि अनेक जल-स्रोतों के जल से स्नान करवाते हैं, तथा उन्हें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, अभिषेक व शुद्धोदक आदि के रूप में जल अर्पित करवाते हैं। विविध व सुगन्धित हवाओं के रूप में नाना किस्म के धूप लगाते हैं। औषधियों से उनकी चिकित्सा करते हैं। अनेक प्रकार के वाहनों में बैठाकर उन्हें एक प्रकार से पालकियों में घुमाते भी हैं। उनके द्वारा बोली गई शुभ वाणी से उनके उपदेश ग्रहण करते हैं। सुनाई देती हुई, अनेक प्रकार की शुभ वाणियों को उनके प्रति अर्पित स्तोत्र, घंटानाद व शंखनाद समझकर, उनसे उनकी स्तुति करते हैं। अनेक प्रकार के व्यंजनों से उन्हें भोग लगाते हैं। नेत्ररूपी दीप -ज्योति से उनकी आरती उतरवाते हैं। अनेक प्रकार के मानवीय मनोरंजनों, संकल्प-कर्मरूपी व्यायामों से व योग-भोगादि अन्यानेक विधियों से उनका मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार से शरीरविज्ञान दार्शनिकों के द्वारा किए गए सभी मानवीय काम व व्यवहार ईश्वरपूजारूप ही हैं। पुरुष की सारी अनुभूतियाँ , उसके काम-काज को काबू में रखने वाली, उसकी चित्तवृत्तियाँ ही हैं, जिन्हें देहपुरुष ही अपने अन्दर पैदा करते हैं, देहदेश को नियंत्रित करने के लिए। ऐसा समझने वाला पुरुष देहपुरुषों को ही कर्ता-भोक्ता समझता है, और कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है। वास्तव में हम अनादिकाल से ही पूजा व सेवा करते आ रहे हैं, इस देहमंडल की। परन्तु हमें इसका पर्याप्त लाभ नहीं मिलता, क्योंकि हमें इस बात का ज्ञान नहीं है, और यदि ज्ञान है तो दृढ़ता से विश्वास करते हुए, इस बात को मन में धारण नहीं करते। शविद के अध्ययन से यह विश्वास दृढ़ हो जाता है , जिससे धारणा भी निरंतर पुष्ट होती रहती है। इससे हमें

पुराने समय के किए हुए, अपने प्रयासों का फल एकदम से व इकट्ठा , कुण्डलिनीजागरण के रूप में मिल जाता है। इस तरह से हम देख सकते हैं कि शरीरविज्ञानदार्शनिक पूरी तरह से वैदिक-पौराणिक पुरुषों की तरह ही होते हैं। बाहर से वे कुछ अधिक व्यवहारवादी व तर्कवादी लग सकते हैं, परन्तु अन्दर से वे उनसे भी अधिक शाँत, समरूप व मुक्त होते हैं। वे उस तूफान से भड़के हुए महासागर की तरह होते हैं, जो बाहर से उसी की तरह, तन-मन से भरपूर चंचल-चलायमान होते हैं, परन्तु अन्दर से उसी की तरह शाँत व स्थिर भी होते हैं।

देहदेश में पार्थमन नामक एक अतिविशिष्ट, वरिष्ठ व अतिमहत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है। वह बहुत से छोटे अधिकारियों की नियुक्ति करता है , जो फिर श्रमिकदेहपुरुषों को अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त करते रहते हैं। कुछ अधिकारी भण्डारगृहों में नियुक्त किए जाते हैं, जो भंडारणकार्य में लगे कर्मचारियों का निरीक्षण करते रहते हैं। पार्थमन अपने एक वडेलाल नामक निकटतम कनिष्ठ अधिकारी (immediate junior officer) को भी नियुक्त करता है, जो कृषिविभाग व जलविभाग के देहपुरुषों को उन उपरोक्त छोटे अधिकारियों का विशेष ध्यान रखने का आदेश जारी करता रहता है। वे अधिकारी देहगुफाओं में प्रवाहित हो रहे द्रव के रिसाव को रोकते हुए , व्यापारिकद्रव की बर्बादी को भी रोकते हैं। यदि कहीं गुफा में छिद्र आदि हो जाए, तो उसे श्रमिकदेहपुरुषों से बंद करवाते रहते हैं। वे द्रव के बहाव को धक्का देने वाले, बिजली आदि से चलने वाले मोटर-पम्प (motor pump) पर तैनात कर्मचारियों पर भी दृष्टि रखते हैं , ताकि वे समयानुसार व परिस्थिति के अनुसार मोटर की शक्ति को बढ़ाते व घटाते रहें। क्योंकि यदि वे आवश्यकता से अधिक शक्ति बढ़ाते हैं, तो उससे देहदेश की बहुमूल्य ऊर्जा की बर्बादी होती है, और गुफाओं की दीवारों के खराब होने व उनमें छिद्र हो जाने की संभावना बनी रहती है। साथ में , इससे मोटर व अन्य जुड़ी हुई मशीनों (machines) के खराब होने का डर भी बना रहता है , जिससे देहदेशव्यवस्था ठप पड़ सकती है। वैसे, इस तरह के आपातकाल के लिए, विदेशों से मंगा कर एक अतिरिक्त मोटर रखी होती है , परन्तु मोटर को प्रतिस्थापित (replace) करना बहुत महंगा पड़ता है, और कई बार यह प्रयास असफल भी हो जाता है। उपरोक्त बढ़ई पुरुषों की ठोक-मुरम्मत से, गुफा के आस-पास, बाढ़ आने की संभावना भी बहुत कम रह जाती है। यदि आवश्यकता से कम शक्ति पर मोटर चलाई जाए, तो देहदेश में अन्न-जल व अन्य वस्तुओं का अकाल पड़ सकता है। पार्थमन देहदेश का एक पहुंचा हुआ वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी पहुँच देहदेश के प्रशासक व विद्वान वर्ग तक निरंतर बनी रहती है, जिन्हें वह बड़ी चतुराई व शालीनता से नियंत्रण में रखता है। कई बार देहदेश उसको अहमियत नहीं देता , जिससे वह क्षीण हो जाता है। ऐसा विशेषकर तब होता है, जब देहदेश एक नए देहदेश के निर्माण में व्यस्त होता है। नए देश के उत्साह में, उसमें अहंकार भर जाता है, और वह अपने को आवश्यकता से अधिक अहमियत देने लगता है, जिससे वह पार्थमन जैसे महत्त्वपूर्ण अधिकारियों की भी उपेक्षा कर देता है। ऐसे में देहदेश की मशीनरी स्तंभित सी हो जाती है। सारे श्रमिकदेहपुरुष उचित नियंत्रण के बिना , बेकाबू होकर अपना काम छोड़ने लग जाते हैं। देहदेश में अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। देहपुरुष भूख व प्यास से मरने लग जाते हैं। देहदेश के सभी अधिकारी व मंत्री भी त्राहि -२ करने लग जाते हैं, और बहुत सुस्त पड़ जाते हैं। ऐसे में राजा भी कैसे प्रसन्न रह सकता है। वह भी इनके बिना नपुंसक की तरह बनकर , भीषण अवसाद से ग्रस्त हो जाता है। लेखक ने भी एक बार देहदेश की ऐसी ही दयनीय अवस्था को प्रत्यक्ष रूप से देखा था। उसने देखा कि फिर भले मन के कुछ पड़ौसी राजाओं ने उस मरणासन्न राजा को संभाला। वे अन्य देशों से या खुले बीहड़ों में विचरण करने वाले, वैसे नैष्ठिक पुरुषों को ढूंढ कर लाए, जो पार्थमन जैसे अधिकारी की योग्यता रखते थे। फिर उन पुरुषों को मृतप्राय, स्थानीय पार्थमन अधिकारियों का स्थान लेने के लिए, प्रभावित देहदेश में नियुक्त किया गया। लेखक ने देखा कि फिर धीरे-२ देहदेश की दशा सुधरने लगी। उस अहंकारग्रस्त देहदेश में कुछ वडेलाल जैसे अधिकारियों को भी बाहर से ला कर , नियुक्त किया गया। यदि पार्थमन अधिकारियों को शीघ्रता से सुदृढ़ न किया गया होता, तो वह देहदेश शीघ्र ही क्षीण हो जाता।

यदि किसी घोर परिस्थिति के कारण शविद -ज्ञानी अपनी पूरी कोशिश करने पर भी आत्मविभ्रम को महसूस करता है , तो उस रजोगुण वाली हालत के बाद शविद के द्वारा सिखाए गए, अपने द्वैताद्वैत युक्त शाँत व्यवहार से वह अपनी आत्मशान्ति को पुनः हासिल कर लेता है। वास्तव में, शविद के अनुसार युक्तियुक्त कर्म करने से ही मुक्ति मिलती है , क्योंकि कर्म से ही चित्तवृत्तियों की चकाचौंध उमड़ती है , जिनके प्रति शविद द्वारा दर्शाई गई अनासक्ति को लागू करने का मौक़ा मिलता है। यह अनासक्ति और कुछ नहीं, बल्कि वेदों का साक्षीपन या बौद्धों का विटनैसिंग ही है। इसी साक्षीपन की भावना को ही वर्तमान में स्थित रहना भी कहा जाता है। इसका अर्थ है कि देहपुरुष की तरह ही , वर्तमान की अपनी सम्पूर्ण अवस्था पर, निष्पक्ष व अनासक्त रूप से ध्यान दिया जाता है। वर्तमान आत्मस्थिति को छोड़कर दूसरी स्थिति को नहीं पकड़ना है। इससे तो समस्या वैसे ही कायम रहेगी, जैसे एक कंटीले वृक्ष से किसी दूसरे कंटीले वृक्ष के ऊपर कूदने से किसी व्यक्ति की समस्या कायम रहती है। केवलमात्र देहपुरुष की तरह , वर्तमान आत्मस्थिति के प्रति अनासक्त होकर शाँत हो जाना है। शविद के अनुसार भी, चित्त के प्रति अनासक्ति तभी की जा सकती है, यदि चित्त की ओर ध्यान दिया जाए। यदि चित्तवृक्ष की वर्तमान अवस्था की किसी विशेष शाखा पर ध्यान दिया जाए , तो उस शाखा के प्रति आसक्ति का उदय हो जाएगा ,

परन्तु यदि संपूर्ण चित्तवृक्ष पर एक साथ ध्यान दिया जाए तो यह साक्षीपन कहलाएगा , जिसके साथ अनासक्ति स्वयमेव निवास करती है। यह तो प्रतिदिन के भौतिक/स्थूल क्रियाकलापों में भी स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है कि किसी विशेष भाव /वस्तु के साथ चिपके रहने से आसक्ति का उदय होता है, जबकि सभी भावों/वस्तुओं को समान महत्त्व देने से अनासक्ति का उदय होता है। देहपुरुषों की जीवनचर्या के संबन्ध में ज्यादा बात करने का क्या फायदा, क्योंकि यह तो हमें सब कुछ पहले से ही पता है, क्योंकि जो-२ कुछ हम पुरुष करते हैं, वो-२ सभी कुछ वे देहपुरुष भी करते हैं। द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाः, समानं वृक्षं परिषस्वजाते, तयोरेकः पिप्पलं सुस्वादति, अनश्नन्यो अभिचाकशीति। द्वा सुपर्णा, अर्थात दो पक्षी, अर्थात पुरुष और देहपुरुष; सयुजा सखायाः, अर्थात जुड़वा भाइयों की तरह के गहरे मित्र। समानं वृक्षं परिषस्वजाते - एक ही वृक्ष, अर्थात एक ही स्थूलदेह पर निवास करते हैं। तयोरेकः पिप्पलं सुस्वादति - उनमें से एक, अर्थात पुरुष पीपल वृक्ष के फल को खाता है , अर्थात आसक्त हो जाता है। अनश्नन्यो अभिचाकशीति-दूसरा, अर्थात देहपुरुष न खाता हुआ, बस देखता रहता है,अर्थात अनासक्त रहता है। उपनिषद के इस एक श्लोक में पूरा शविद समाया हुआ है।

निम्न स्तर के साधकों व साधना के शुरुआती इच्छुकों के लिए तो शविद से बढ़िया दूसरा विकल्प नजर ही नहीं आता। उच्च स्तर के साधकों के लिए भी शविद लाभदायक है, यद्यपि उनके लिए यह एक विकल्प नहीं, अपितु अनुपूरक ही है। द्वैताद्वैत से आत्मा व जगत, दोनों की एक साथ व समान रूप से सिद्धि होती है। द्वैताद्वैत धीरे-२ विकसित होता हुआ, खुद ही पूर्ण अद्वैत में परिवर्तित हो जाता है, जिससे आत्म-जागृति होती है। यद्यपि पूर्ण अद्वैत वाले वक्त में भी चित्तवृत्तियाँ कायम रहनी चाहिए , क्योंकि उन्हीं से तो पूर्ण अद्वैत का अभ्यास होता रहता है , और वह बढ़ता भी रहता है, अन्यथा बिना अभ्यास के रहा-सहा अद्वैत भी घिसता रहता है, आगे तो कैसे बढ़ सकता है। क्योंकि जैसे द्वैत की खुराक चित्तवृत्तियाँ हैं, उसी तरह से अद्वैत की खुराक भी चित्तवृत्तियाँ ही हैं।

अगर देहपुरुष भी पुरुष की तरह ही आसक्ति से अचिदाकाश स्वरूप बन जाया करता , तो फिर उसी की तरह ही सच्चिदानंद की प्राप्ति के लिए जरूर ही देहजगत को आसक्ति के साथ महसूस करता, जिससे कि इतना सटीक देहजगत ही अस्तित्व में न आया होता, उसे बचा कर रखने की बात तो दूर रही। उदाहरण के लिए, अगर मौत के डर से देहसैनिक भाग जाया करते, तो देहदेश को कौन बचाता? इससे पुनः सिद्ध होता है कि देहपुरुष अनासक्त होते हैं। शविद का साधना सिद्धांत यह भी है कि पुरुष शविद को बीच-२ में व कभी-कभार या जरूरत पड़ने पर, उड़ते ख्यालों के बीच में पल भर के लिए उड़ा दिया करे, बिना दुसरे संकल्पों को छेड़े हुए। इससे शविद की अनासक्ति का नजरिया उन ख्यालों के साथ पक्की तरह से जुड़ जाता है , और साथ में दुनियादारी के काम पर भी बुरा असर नहीं पड़ता।

मूलदेहदेश के सीमान्त भाग में, नवनिर्मित देहदेश के निकट, एक बहुत बड़ा भंडारघर होता है। उस भंडारघर में नए देहदेश के लिए आवश्यक, सारा साजो-सामान भंडारित करके रखा जाता है। नवनिर्मितदेहदेश की आवश्यकतानुसार, उसे साजो-सामान की आपूर्ति की जाती रहती है। नए देहदेश के देहपुरुष प्रशासन चलाने में कम कुशल होते हैं। उनके पास संसाधनों की भी कमी होती है। अतः नया देश शुरुआत के कुछ समय के लिए , अधिकतर रूप से मूलदेश के आश्रित रहता है, जब तक कि वह अपने देहपुरुषों के अथक प्रयासों से सारे संसाधन नहीं जुटा लेता व स्वावलंबी नहीं बन जाता। भंडारघर से नए देहदेश की ओर जाने वाले राजमार्ग पर भारी संख्या में सुरक्षाबल उपलब्ध करवाया गया होता है , क्योंकि बीहड़ इलाकों के शत्रु लूटपाट की मंशा से अक्सर हमला करते रहते हैं। भंडारघर में भी सुरक्षा के चाक-चौबंद प्रबंध किए गए होते हैं। कई बार बड़े आक्रमण भी हो जाते हैं, जिनसे निपटना बहुत मुश्किल हो जाता है। ऐसा ही एक बड़ा आक्रमण लेखक ने भी प्रत्यक्ष देखा था। एकबार लेखक ने देखा कि भंडारघर का द्वार खुलने के बाद, विभिन्न साजो-सामान को राजमार्ग तक पहुंचाया जा रहा था। वहाँ से वह विभिन्न प्रकार के वाहनों में भरा जा कर , राजमार्ग के सीमान्त राजद्वार तक पहुँचाया जा रहा था। फिर बाहरी राजद्वार को खोलने का आदेश दिया जा रहा था। सामान के बाहर निकाले जाने के एकदम बाद, राजद्वार को बंद किया जा रहा था, ताकि चोर उचक्के अन्दर न घुस पाते। फिर भंडारघर से सामान की दूसरी खेप को राजमार्ग तक निकाला जाता था, और पुनः वही प्रक्रिया चलती थी। इस तरह से, वह प्रक्रिया बार-२ इसी तरह से दोहराई जा रही थी। फिर वह सामान मूलदेश से बाहर का मार्ग तय करके, नए देहदेश तक पहुंचा दिया जाता था। उस समय बाहरी राजद्वार के आसपास शत्रुओं का कोई उत्सव आदि चला हुआ था , जिससे चारों ओर भारी संख्या में देहशत्रु नजर आ रहे थे। उस दिन, द्वारपाल भी कुछ सुस्त जैसे लग रहे थे। संभवतः वे बीमार थे, रात को कम सोए हुए थे, भूखे-प्यासे थे या किसी नशीली वस्तु आदि का सेवन किए हुए थे। यह भी हो सकता है कि उन्होंने शत्रुओं से रिश्वत ले रखी हो। तभी उन्हें नींद आ गई और बाहरी राजद्वार बहुत समय तक खुला रह गया। मौका देखते ही शत्रु भारी संख्या में अन्दर घुसने लगे। जब तक द्वारपालों की आँख खुली, तब तक असंख्य शत्रु देश के अन्दर प्रविष्ट हो चुके थे। राजमार्ग पर भयानक युद्ध शुरु हो गया था। शत्रु संख्या में अधिक थे , व वे काफी घातक भी थे, इसलिए

सुरक्षाबलों ने शीघ्र ही घुटने टेक दिए। देखते ही देखते शत्रुओं ने पत्थर , पेड़ आदि उखाड़-२ कर राजमार्ग को ध्वस्त व पूर्णतः अवरुद्ध कर दिया, ताकि साजो-सामान की आपूर्ति बाहर को न की जा सकती और वे स्वयं ही सारे साजो -सामान का भरपूर व मनमुताबिक़ लुत्फ उठा पाते। शत्रु भंडारघर में घुस चुके थे। वहाँ पर उन्होंने मनमाने ढंग से खाते -पीते हुए, भारी मात्रा में तोड़-फोड़ कर दी व बाहर की ओर के, छोटे-बड़े सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिए। देहदेश से भी अतिरिक्त सुरक्षाबल वहाँ भेजा गया। महाराज को भी सूचना दे दी गई। उस विशाल भंडारघर में शत्रु यहाँ -वहाँ छिपे हुए थे, जिन्हें ढूंढ पाना बहुत कठिन हो रहा था। इस तरह से, सुरक्षाबलों से बचते हुए, वे भंडारघर से ही विभिन्न प्रकार की उन्नत किस्म के आग्नेयास्त्रों मिसाइलों का प्रक्षेपण करते हुए, देहदेश के विभिन्न व महत्त्वपूर्ण स्थानों को तबाह करते जा रहे थे। उन पर काबू पाना कठिन हो रहा था। देहदेश उनके निरंतर हमले से बहुत क्षीण हो गया था, और नष्ट होने की कगार पर था। उसी समय राजा ने सूझबूझ का परिचय देते हुए , पूरे भंडारघर को ही विस्फोट से उड़वा दिया। यद्यपि अधिकाँशतः वह देश उस के जैसे अत्युन्नत भण्डारगृह को या उसके नष्ट भाग को पुनः कभी भी निर्मित नहीं कर पाता। सारे शत्रुओं का सफाया हो गया और देहदेश पुनः विकास के पथ पर आगे बढ़ने लगा। कई बार विदेशों से मंगवाए हुए उन्नत प्रकार के हथियार , सीधे ही उस राजद्वार से अन्दर प्रविष्ट करवाए जाते हैं, और भंडारघर में पहुंचाए जाते हैं। अधिकाँशतः इससे सफलता मिल जाती है , परन्तु कई बार वे उन्नत आग्नेयास्त्र भी भंडारघर की चित्र-विचित्र संरचनाओं, मार्गों व वस्तुओं के बीच में छिपे हुए शत्रुओं को टार्गेट (target) नहीं कर पाते। कई बार तो शत्रु प्रत्याग्नेयास्त्रों / एंटीमिसाइलों (anti missiles) को छोड़कर, उन्हें निष्प्रभावी कर देते हैं।

देहपुरुष के शरीर में भी पुरुषसमाज व देहपुरुषसमाज की तरह ही एक भरा -पूरा समाज विद्यमान होता है। उस अतिसूक्ष्म समाज में कर्म -विभाजन भी हूबहू दूसरे समाजों की तरह ही होता है। उदाहरण के लिए , वहाँ पर भी ड्राईवर/अतिसूक्ष्मचालकपुरुष अतिसूक्ष्म स्वचालित यानों में, उस अतिसूक्ष्म देश के उपयोग की सामग्रियां लादकर, उन्हें अतिसूक्ष्मराजमार्गों पर लाते-ले जाते रहते हैं। वहाँ पर वैसे ही भण्डारगृह व भंडारीपुरुष विद्यमान होते हैं। उसमें बड़े समाजों की तरह ही जलविभाग व जलाशय भी निर्मित होते हैं। उसमें ऊर्जाविभाग व तापविद्युत घर भी बिल्कुल वैसे ही हैं। कुछ लोग किसान होते हैं, जो देहपुरुषदेहदेश के लिए विभिन्न प्रकार के अन्न उगाते रहते हैं। उस देहपुरुषदेहदेश में, देहदेश को सुचारु रूप से चलाने वाला एक बहुत बड़ा संविधान भी निर्मित होता है। उस संविधान को पुस्तक के रूप में , बहुत सावधानी से सहेज कर रखा जाता है। उस पुस्तक को लिखने के लिए वहाँ पर बहुत से विशेषज्ञ, पर्यवेक्षक व लेखक विद्यमान होते हैं। वे उसमें नए-२ बन रहे महत्त्वपूर्ण नियमों व कानूनों को भी जोड़ते रहते हैं। वह देश जो कुछ भी, अपने अनुभवों से, अपनी समस्याओं से व अपनी गलतियों से सीखता रहता है, उन सभी का आकलन एक विशेषज्ञकमेटी के द्वारा किया जाता रहता है। यदि वे नई विद्याएँ देश के लिए आवश्यक प्रतीत होती हैं , तो उन्हें स्थूलरूप में लिखकर लेखकपुरुषों के समक्ष भेजा जाता है, ताकि वे उचित कांट-छाँट करके, उन्हें संक्षिप्तरूप से संविधान में दर्ज कर सकें। समय के साथ-२, पुस्तक में लिखे गए अक्षर, धुंधले होकर मिटते भी रहते हैं, जिन्हें भी वे पुनः से लिखकर दुरस्त करते रहते हैं। नई पुस्तक की छपाई के बाद , छपाई-दोषों से उत्पन्न गलतियों की संभावना अधिक रहती है। वे उन गलतियों को भी ठीक करते रहते हैं। जब उस देहपुरुषदेहदेश से एक नए देहपुरुषदेहदेश का निर्माण, देशविभाजन से हो रहा होता है, तब मूलदेश के संविधान की, उस विशाल पुस्तक की समरूप प्रति (duplicate copy) को, वहाँ के अत्याधुनिक छपाईखाने (publishing house) में बड़े जोर-शोर के साथ छापा जाता है। वहाँ पर एक विशेषज्ञ छपाईकर्तासमूह के साथ बहुत से कर्मचारी काम कर रहे होते हैं। इस तरह से उस अतिसूक्ष्मदेश में भी सभी सामाजिक संरचनाएँ बनी होती हैं, तथा उस अतिसूक्ष्मसमाज में स्थित अतिसूक्ष्म पुरुषों के द्वारा भी वहाँ के सभी सामाजिक कार्य अनासक्ति के साथ किए जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि देहदेशों की यह परम्परा अनंत है, और पुरुष इनको कभी भी नहीं लांघ सकता। इसलिए बेहतर है कि पलायन को छोड़कर देहपुरुष की तरह ही आचरण किया जाए। इससे एक बात और सामने आती है कि जब पुरुष की तरह का जीवन -व्यवहार व यहाँ तक कि उससे कहीं अधिक उन्नत-उत्कृष्ट रूपमें, सृष्टि के विभिन्न व अनगिनत प्रकार के देहपुरुषों के द्वारा बखूबी दर्शाया जाता है ; तो अत्युन्नत मस्तिष्क के धनी पुरुष से केवलमात्र उनके जैसी जीवनचर्या की ही अपेक्षा नहीं की जा सकती, अपितु उससे मानवीय भावनाओं, विशेषतः प्रेम की अपेक्षा किया जाना स्वाभाविक ही है।

किसी रोग आदि के कारण अपनी मृत्यु को निकट आया देखकर भी पुरुष कर्मत्याग नहीं कर पाता है , क्योंकि उसे मुक्ति की सबसे ज्यादा जरूरत होती है। इससे सिद्ध होता है कि शीघ्रता से मुक्ति केवल कर्म से ही हो सकती है। पुरुष की ही तरह , सुरक्षा व भोजन के लिए प्रवृत्ति तो साधारण से साधारण वस्तुओं व स्वतन्त्र जीवों में भी दिखाई देती है, फिर पुरुष में ही पहाड़ जैसा अहंकार क्यों पैदा हो जाता है? ठीक ऐसी ही प्रवृत्ति बड़े से बड़े ग्रह-नक्षत्रों, तारा-मंडलों और यहाँ तक कि ब्रम्हांड में भी स्पष्ट नजर आती है, जो तनिक भी अहंकार नहीं करते, तो फिर पुरुष नामक, सृष्टि का इतना अधिक छोटा सा एक टुकड़ा, इतना बड़ा अहंकार क्यों पाल लेता है? दरअसल पुरुषदेह के सिवाय, उस जैसी अन्य सभी देहें अनासक्ति के कारण ही

अहंकार से बची रहती हैं। पुरुष के अन्दर अहंकार का प्रवेश आसक्ति-मार्ग से ही तो होता है। वैसे अगर अनुकरण करना ही हो , तो देहपुरुषों का ही करना चाहिए, क्योंकि अनासक्तियुक्त पदार्थों में पुरुष के सबसे ज्यादा नजदीक या यूं कहो कि पूर्ण रूप से अनासक्त -पुरुषरूप ही यदि कोई है, तो वह देहपुरुष ही है।

यदि पृथ्वी को पुरुष के जितने आकार तक छोटा कर दिया जाए, तो उस पर स्थित पुरुष, देहपुरुषों के जितने छोटे हो जाएंगे। शविद के अनुसार, जो सामाजिक पुरुष सीधे ही चिदाकाश/निराकार ईश्वर का ध्यान करते हैं, वे अधिकाँशतः सफल नहीं हो पाते, क्योंकि उनमें चित्तवृत्तियों की मंदता के कारण, उनसे देहपुरुषों की तरह के, मानवता से भरे हुए अनासक्तियुक्त कर्म आसानी से नहीं हो पाते। जिस तरह से द्वैतमय दृष्टिकोण बंधनकारी है, उसी तरह से केवलमात्र शरीर-विज्ञान भी बंधनकारी है, परन्तु शरीरविज्ञान-दर्शन मुक्तिकारी है। वैदिक संस्कृति, विशेषतः वैदिक कर्मकांड से मिश्रित विज्ञान भी शविद की तरह ही मुक्तिदायक है। यह पल भर में ही आत्मलाभ देना शुरु कर देता है। शविद केवल बनावटी या समकालीन दर्शन नहीं है , अपितु यह अनादिकाल से चली आ रही जीव-परम्परा के ऊपर आधारित होने के कारण अनादि-अनंत है। इस दर्शन में वे ही तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं, जो शरीर में स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। अतः यह दर्शन प्राकृतिक होने के साथ-२ वैज्ञानिक भी है। वैज्ञानिक इसलिए भी है, क्योंकि इसकी सिद्धि के लिए विज्ञान का सहारा भी लिया गया है। शविद को नया दर्शन भी कह सकते हैं , और पुराना भी। नया इसलिए, क्योंकि इसको बनाते समय पूर्वनिर्मित किसी भी दर्शन की सहायता नहीं ली गई है , और पुराना इसलिए, क्योंकि यह दर्शन पूर्वनिर्मित दर्शनों से भी मेल खाता है। जब -२ भी प्रेमयोगी वज्र इस दर्शन से जुड़ी हुई कागज़ आदि सामग्रियों को अपने भ्रमण के थैले में डाले रखता था , तब-२ उसे एक दिव्य तांत्रिक व आध्यात्मिक शक्ति अपनी रक्षा करते हुए महसूस होती थी। इसका सीधा सा तात्पर्य है कि शविद को एक सुन्दर पुस्तक के या अन्य सम्बंधित चिन्हों के रूप -आकार में ढालकर व सहेज कर रखना, आधुनिक तंत्र के अनुसार बहुत लाभदायक है। लगता है कि यह विधि पुरातन तंत्रों के मंडलों व चिन्हों की तरह ही काम करती है। इसी तरह, यह शविद अपनी सभी ई-रीडिंग डीवाईसिस (e-reading devices) पर भी सदैव डाऊनलोड करके रखा जा सकता है , ताकि इसकी दिव्य तांत्रिक शक्ति प्रतिक्षण उपलब्ध होती रहे। बौद्धदर्शन के अनुसार , तंत्र-मंडल स्थूल संसार के सूक्ष्म व प्रतीकात्मक रूप होते हैं। शरीरमंडल से बड़ा तंत्र-मंडल क्या हो सकता है, क्योंकि इसमें संपूर्ण सृष्टि अपने पूर्णरूप में विद्यमान रहती है। शरीरमंडल ईश्वरनिर्मित होता है, तथा जीवंत, गतिमय व मजबूत हाड़-माँस का बना होता है, इसलिए मानव-निर्मित मंडलों की तरह जड़मय व क्षणभंगुर नहीं होता। शरीरमंडल सदैव स्वयं ही साथ-२ चला रहता है। इस शरीरमंडल के अन्य भी बहुत से लाभ हैं। पुरुष को जब यह ज्ञात हो जाता है कि वह अनादि काल से देहमंडल की अराधना करता आ रहा है, तो वह क्षणभर में ही देहपुरुष की तरह मुक्त हो जाता है। क्योंकि हम अनादिकाल से ही इस अद्वैतशाली शरीरमंडल की अराधना करते आए हैं, इसलिए इसका भली भांति ज्ञान हो जाने से, अनादिकाल से की जा रही अद्वैतसाधना का फल तुरंत व अनायास ही प्राप्त हो जाता है, जिससे कुण्डलिनीजागरण या आत्मज्ञान अचानक या अविलम्ब रूप से भी हो सकता है। साथ में, देहावसान के समय जब कहीं पर भी, कोई भी सान्त्वनाप्रद आश्रय दृष्टिगोचर नहीं होता, उस समय यह अपना शरीर ही अद्वैतमंडल के रूप में सर्वश्रेष्ठ आश्रय सिद्ध होता है , यदि शविद से इसे पहले से ही पुष्ट किया गया हो। क्योंकि मनुष्य अपने शरीर से ही सर्वाधिक प्रेम (आसक्तिपूर्वक) करता है, अतः शविद के माध्यम से उसके द्वारा अपने शरीर में ही अद्वैत का दर्शन सर्वाधिक लाभकारी/मुक्तिकारी है।

इस शरीरमंडल की पूजा हम अनजाने में ही अनादिकाल से करते आ रहे हैं , और तब तक करते रहेंगे, जब तक मुक्त नहीं हो जाते, क्योंकि सभी जीवयोनियों के शरीर एकसमान रूप से, ब्रम्हांड के प्रतिरूप ही होते हैं। अतः इस मानवजीवन में शरीरमंडल की अराधना से, जो अद्वैतदृष्टिकोण हमारे अन्दर विकसित होगा, वह आगे होने वाले अपने जन्मों में भी हमें सूक्ष्मरूप में स्मरण होता रहेगा , क्योंकि उन जन्मों में भी तो हम इसी मानवशरीरमंडल के जैसे जीव-शरीरमंडलों में ही निवास कर रहे होंगे। तांत्रिकयौनयोग के लिए शरीरविज्ञानदर्शन का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जब योगी व योगिनी, दोनों ही अपने-२ व एक-दूसरे के शरीरों को अद्वैतशाली शरीरमंडलों के रूप में देखते हैं, तब दोनों ही अद्वैतमयी आनंद से भर जाते हैं। इसी तरह से, जब वे दोनों, आपसी मिलन के समय, अद्वैतभाव से संपन्न हो जाते हैं, उस समय अद्वैतशील शरीरमंडलों की अराधना स्वयं ही हो जाती है। पुस्तकोक्त इस सिद्धांत के अनुसार कि यौनसंसर्ग के समय धारण किया गया मानसिक भाव या दृष्टिकोण कई गुना वृद्धि को प्राप्त करता है, वह अद्वैतभाव/अद्वैत-दृष्टिकोण तीव्रता से पुष्ट होता हुआ, व्यक्ति को मुक्त कर देता है। उस अद्वैतमयी भाव के साथ , शरीरमंडलों में कुण्डलिनी का ध्यान स्वतः व अनायास ही होता रहता है। वह कुण्डलिनी यौनान्गोत्तेजना व योगबंधों की सहायता से , यौनचक्रों व मस्तिष्कचक्र के बीच में निरंतर दोलायमान होती रहती है, जिससे पुष्ट होकर वह शीघ्र ही जागृत हो जाती है। साधारण यौनसम्बन्ध से , बहुमुखी व भ्रमित मन की प्रतिदिन की

गतिविधियों से चेतना-दुग्ध प्राप्त होता है; परन्तु तांत्रिकयौनसम्बन्ध से उपलब्ध मानसिक एकाग्रता से, विकासमान कुण्डलिनी से चेतना-दुग्ध प्राप्त होता है।

कुण्डलिनी वास्तव में देहपुरुष को दिया गया, एक दिव्य व अलौकिक पुरुष का रूपाकार ही है। वास्तव में कुण्डलिनी कोई सर्पिणी आदि नहीं है, अपितु यह देवी-देवता, गुरु या प्रेमी-प्रेमिका (consort) के रूप में एक सुन्दर, अलौकिक व शुद्ध/प्रगाढ़ मानसिक चित्र ही है। इस मानसिक चित्र को ही अप्रत्यक्ष रूप में कुण्डलिनी कहते हैं; क्योंकि गुरु, देवता आदि के श्रेष्ठ व प्रतिष्ठित रूपों का, मूलाधार जैसे तथाकथित निम्न स्थान पर प्रत्यक्ष रूप में ध्यान करने को कहना; किसी भी प्रकार से सामाजिक/शिष्ट व व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। इस कुण्डलिनी का ध्यान शरीर के विभिन्न बिन्दुओं व चक्रों पर किया जाता है। इसका सीधा सा अर्थ है कि कुण्डलिनी और कुछ नहीं, अपितु देहपुरुष को दिया गया एक रूपाकार व एक जीवन-चरित्र ही है, क्योंकि चेतन देहपुरुष शरीर में हर स्थान पर विद्यमान होते हैं। कुण्डलिनी-चित्र (देहपुरुष को दिया गया मानव-रूप) प्रत्येक चक्र पर प्रत्येक मानवीय काम करता है, खाता है, पीता है, आराम करता है; क्योंकि वास्तविकता में भी तो प्रत्येक चक्र पर, कुछ देहपुरुष कुछ काम कर रहे होते हैं, तो कुछ दूसरे देहपुरुष कुछ अन्य काम। सभी देहपुरुष रूपाकार में समान होते हुए, कुण्डलिनी का रूप धारण किए हुए होते हैं। कुण्डलिनी का ध्यान चक्रों पर विशेषतः इसलिए किया जाता है, क्योंकि वे चक्र देहदेश की क्रियाओं के मुख्य स्थान होते हैं, जहाँ पर देहपुरुष अनासक्ति के साथ सर्वाधिक क्रियाशील होते हैं, अतः वहाँ पर सबसे अधिक प्रभावीरूप से प्रकट रहते हैं। इसलिए कुण्डलिनी के रूप में, वहाँ पर उनका ध्यान करना सर्वाधिक सरल है। इसी तरह से, शरीर के स्पष्ट अनुभूति वाले स्थानों (योग के समय ऐंठन, खिंचाव आदि के साथ जोड़ों व अन्य स्थानों) पर भी उनका ध्यान इसी कारण से सुगम है। इसका अर्थ यह है कि कुण्डलिनी -योगी, देहपुरुष-उपासक होते हैं। तांत्रिक प्रेमिका (consort) /प्रेम-संबंधी के सान्निध्य से यौनांगों के आसपास उत्तेजना व क्रियाशीलता बढ़ जाती है, जिससे वहाँ पर कुण्डलिनीरूपी देहपुरुष का ध्यान करना सरल हो जाता है। तांत्रिक गुरु के सान्निध्य से यह क्रियाशीलता लम्बे समय तक बनी रहती है, क्योंकि फिर प्रजनन शक्ति का सदुपयोग, शारीरिक संसर्ग-सुख पाने की अपेक्षा कुण्डलिनी की परिपक्वता व उसके ऊर्ध्वगमन के लिए किया जाता है। इन उत्पादक अंगों के देहपुरुष नया देहदेश बनाने के पूरे मन /मूड (mood) में होते हैं, इसलिए वहाँ पर उनकी अद्वैतमयी क्रियाशीलता पूरे चरम पर होती है। इसीलिए कुण्डलिनी उन यौन -क्षेत्रों में सर्वाधिक स्पष्ट व शुद्ध होती है। जैसे ही यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से, उन प्रजनक केन्द्रों पर शक्ति का वेग कम हो जाता है, वैसे ही वे शिथिल पड़ जाते हैं, क्योंकि यौगिक बंधों के सहचर बने हुए प्राण/मन के साथ वह स्पष्ट कुण्डलिनी मस्तिष्क को चली जाती है। एक प्रकार से यह भी कह सकते हैं कि वहाँ पर विद्यमान शक्ति रक्त -प्रवाह के साथ (रक्त में भी अत्यधिक क्रियाशील देहपुरुष विद्यमान होते हैं) एकदम से मस्तिष्क को चली जाती है, क्योंकि वह स्पष्ट मानसिक चित्र वास्तव में मस्तिष्क में ही बन रहा होता है। इससे वह कुण्डलिनी मस्तिष्क में जीवंत हो जाती है, और साधक को कुछ-२ समाधि के जैसी (अल्प समाधि/अपूर्ण कुण्डलिनी जागरण/ कुण्डलिनी-क्रियाशीलता) स्थिति का अनुभव होता है, जो एक अल्प-आनंदमयी अवस्था (पूर्ण जागरण की महान आनंदमयी अवस्था की अपेक्षा से) होती है। योग-बंधों से रक्त-प्रवाह को यौनांगों से मस्तिष्क की ओर मोड़ने में सहायता मिलती है। प्राणायाम से देहपुरुषों को भरपूर प्राणवायु/ऑक्सीजन मिलती है, और वे पुष्ट हो जाते हैं। इससे उनका ध्यान सरलता से हो जाता है। वास्तव में, सभी देहपुरुषों को एक ही चित्र देना चाहिए, भले ही वे देहदेश में अलग-२ काम क्यों न कर रहे हों, क्योंकि सभी देहपुरुष आत्मरूप से एकसमान ही तो हैं। इसी तरह से, सभी वस्तु-भावों व मनोभावों (मनोभाव भी वस्तुओं के प्रतिबिम्ब व अंश होने के कारण, बाहरी वस्तुओं से अलग नहीं हैं) को भी वही एक रूप प्रदान करना चाहिए, क्योंकि बाहरी रूप से सभी वस्तुएँ भी विभिन्न देहों व देहपुरुषों के रूप में ही विद्यमान हैं (जैसा कि हमने शविद में सिद्ध किया भी है), यद्यपि वास्तविक रूपाकार तो उनका एक ही/अद्वैतरूप ही है। योग-ऋषि पतंजलि भी तो यही कहते हैं कि एकाग्र -ध्यान से ही समाधि संभव है। वास्तव में कुण्डलिनीयोग पतंजलि-योग का ही तकनीकी प्रवर्धन है। पतंजलिकृत अष्टांगयोग भी वास्तव में विशेष कुछ नहीं ; अपितु सैद्धान्तीकृत, सरलीकृत, समाजीकृत व नियमबद्ध उत्कट-यौनप्रेम ही है। जैसे वाहनचालक यदि वाहनचालन की तकनीक शुरु में ही अच्छी तरह से सीख जाए, तो वह कुशल चालक बन जाता है; उसी तरह से यदि कुण्डलिनीयोगी भी शुरु में ही इस योग की उत्तम तकनीक सीख जाए, तो वह शीघ्र ही कुशल योगी बन जाता है। वास्तव में, कुण्डलिनीयोग को साँसारिक लोगों की सुविधा को ध्यान में रख कर ही विकसित किया गया है, क्योंकि उनमें बाह्य-इन्द्रियाँ प्रबल होती हैं, अतः वे कुण्डलिनी का ध्यान सीधे ही मस्तिष्क में नहीं कर सकते, इसलिए उन्हें अप्रत्यक्षरूप में चक्रों पर ध्यान लगाना सिखाया जाता है। यह ऐसे ही है, जैसे कि बच्चे को कड़वी दवाई शहद के साथ मिला कर दी जाती है। सभी मानवीय देहपुरुष पूज्य हैं, बेशक वे छोटा सा ही काम क्यों न कर रहे हों, क्योंकि वे, सभी मानवीय कर्मों को द्वैताद्वैत के साथ करने में पूर्णतया सक्षम होते हैं। देहदेश के प्रत्येक चक्र पर, देहपुरुष प्रत्येक प्रकार का कर्म करते रहते हैं। उनका कोई समूह कुछ करता है, तो कोई समूह कुछ। कुछ तो आराम करते हुए स्थित होते हैं। अतः किसी भी चक्र पर, परिस्थिति के अनुसार,

किसी भी प्रकार का कर्म करती हुई या आराम करती हुई कुण्डलिनी का ध्यान किया जा सकता है। अगर कुण्डलिनी को विधिपूर्वक घुमा सको, तो बहुत अच्छी बात है, परन्तु यदि आरम्भ में कठिनाई हो, तो चिंता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि किसी भी चक्र पर कुण्डलिनी का ध्यान सीधे रूप में भी किया जा सकता है, क्योंकि कुण्डलिनी वास्तव में देहपुरुष को दी गई मानवीय रूप-सत्ता अर्थात मनुष्याकृति ही है, और शविद के अनुसार देहपुरुष तो हर स्थान पर पहले से ही विद्यमान हैं। वैसे, उसी कुण्डलिनी को निचले-२ चक्रों पर उतारने व बारम्बार घुमाने का यह लाभ होता है कि प्राणवायु से, पहले से ही चमकती हुई कुण्डलिनी हमें निरंतर उपलब्ध होती रहती है। कभी कोई चक्र अधिक क्रियाशील होता है , तो कभी कोई। इसलिए एक ही चक्र में नहीं उलझे रहना चाहिए, क्योंकि सभी चक्र आपस में एक-दूसरे की कमी को पूरा करते रहते हैं। मुख्य मापदंड तो ध्यान की मात्रा ही है। गीता में भी यही कहा गया है कि आत्मज्ञान सत्त्वगुण की प्रचुरता से उद्भूत होता है। गीता में कहीं पर भी कुण्डलिनी शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है। अतः स्वयंसिद्ध है कि पतंजलि-वर्णित मानसिक समाधि-चित्र ही वास्तव में कुण्डलिनी है, क्योंकि वही परम सत्त्वगुण-स्वरूप है, और वही आत्मज्ञान कराती है। कुण्डलिनी कुछ विशेष नहीं, अपितु दीर्घकालिक सकेंद्रित मन (longlasting focussed mind) ही तो है। यदि जागरण के बिना ही, मन किसी एक विशेष रूप आदि (कुण्डलिनी) पर दीर्घकालपर्यंत सकेंद्रित हो, तब तो कुण्डलिनी के जागरण की आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र को प्रथम देवीरानी की कुण्डलिनी के साथ अनुभव हुआ। बौद्धों में भी एक निर्धारित वस्तु का ध्यान सदैव करने का प्रचलन है। उस वस्तु को, कुण्डलिनी की तरह ही कोई विशेष नाम दिया गया है। वास्तव में वह कुण्डलिनी ही है, केवल नाम का ही अंतर है। वस्तु व सिद्धांत, दोनों विधाओं में ही समान हैं। वह वस्तु भिन्न-२ लोगों की रुचि व व्यवसाय आदि के अनुसार, भिन्न-२ होती है। उस वस्तु का, निरंतर अभ्यास से दर्शन/साक्षात्कार (visualization) किया जाता है। हठयोग में कुण्डलिनी विषय का, भौतिक रूप से वर्णन किया गया है, जैसे कि नाड़ियों की संख्या व स्थिति, चक्रों की संख्या व स्थिति आदि-२। यह इसलिए किया गया है, ताकि भौतिकवादी लोग भी कुण्डलिनीयोग की और आकृष्ट हो सके। ऐसे लोगों को नाप-तोल की भाषा अधिक अच्छी तरह से समझ में आती है, क्योंकि वे भौतिक दृष्टि से देखने के आदी होते हैं। वास्तव में तो कुण्डलिनीयोग पूर्णतः मनोवैज्ञानिक ही है। कुण्डलिनीयोगी को हमेशा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए, क्योंकि जैसे स्थूलदेश में प्रसन्नचित्त पुरुष ही सर्वोपयुक्त विधि से जीवनयापन करते हैं , उसी प्रकार से देहसमाज, जो कि सर्वोपयुक्त समाज होता है, उसके देहपुरुष भी प्रसन्नचित्त व हँसमुख ही सिद्ध होते हैं।

देहदेश का सीमासुरक्षाबल कई बार कमजोर पड़ जाता है। कई देहदेशों की सीमाभित्ति तो शुरु से ही कमजोर होती है। देहदेश के निकटतम बाहर के वातावरण के ठण्ड, सूखा, दुर्गमता आदि क्लेश भी कई बार बहुत घट जाते हैं। ऐसी सभी अवस्थाओं में, सीमा के निकट बस कर रहने वाले शत्रुओं के हौंसले बुलंद हो जाते हैं। वे सभी, भिन्न-२ आकार-प्रकार के टोलों में बसे होते हैं। ऐसी अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होने पर, उनके टोले देहदेशसीमा के बिल्कुल निकट अपना नया डेरा बसा लेते हैं। वे सीमा पर स्थित चौकीदारों /निरीक्षकों से साँठगाँठ कर लेते हैं, और उन्हें रिश्वत के रूप में बहुत सारा धन देते हैं। उसके बदले में, निरीक्षक देहपुरुष उन्हें अपने देश से सभी सुविधाएँ प्राप्त करने देते हैं। कई बार उन टोलों के बीच में देहशत्रु भी छिपे होते हैं। वे सुविधाएँ इकट्ठी करके लाने का बहाना बनाकर, देहदेश के अन्दर घुस जाते हैं, और निरीक्षकों को चकमा देते हुए, देहदेश के अन्दर की ओर भाग जाते हैं। काफी अन्दर घुसकर वे देहदेश के विरुद्ध घातक कार्यवाही की तैयारी में जुट जाते हैं। कुछ समय के प्रयास से वे पर्याप्त शक्ति संगठित कर लेते हैं, और कालान्तर में अनुकूल अवसर को भांपते ही, देहदेश पर घातक हमला कर देते हैं। भयानक युद्ध शुरु हो जाता है। पूरे देहदेश में अतिसतर्कता का दौर घोषित कर दिया जाता है। शीघ्र ही उनका सफाया कर दिया जाता है , यद्यपि बहुत से शत्रु छिप कर जीवित बच जाते हैं, क्योंकि वे देहदेश में लम्बे समय से रह रहे होते हैं, जिससे वे उसके चाल-चलन का पूर्वाकलन करना अच्छी तरह से सीख जाते हैं। यद्यपि वह देश तो पुनः दूसरी बार उनसे पराजित नहीं हो सकता, क्योंकि वह उनकी युद्धनीति से अच्छी तरह से परिचित हो गया होता है। फिर भी वे शत्रु दूसरे देहदेशों पर हमला करने की फिराक में हमेशा रहते हैं। पहले से ही कमजोर देश तो उन्हें अपने दम से हरा ही नहीं पाते, इसलिए उन्हें विदेशी शस्त्रास्त्रों के आश्रित रहना पड़ता है।

एक बार लेखक ने देखा कि शत्रुहन नामक एक देहदेश घुसपैठियों की उन टोलियों के प्रति पहले से ही सतर्क हो गया था। जैसे ही सीमानिरीक्षकों ने कुछ टोलियों को सीमा पर देखा, वैसे ही उन्होंने उसकी सूचना महाराज को भेज दी। घुसपैठियों की उन टोलियों ने देहदेश की सीमाभित्ति के बाहरी हिस्से का सहारा लेकर, अपने तम्बू (tent) आदि लटकाए हुए थे, जिनमें वे अपने साजो-सामान के साथ, अस्थायी रूप में निवास कर रहे थे। इसी कारण से, उन तक देहदेश के सुरक्षाबल नहीं पहुँच पा रहे थे। उस दीवार के कारण, उनके द्वारा छोड़े गए अस्त्र भी अपना प्रभाव नहीं दिखा पा रहे थे। अंततः महाराज को अपने विदेशी मित्रों की सहायता लेनी पड़ी। फिर लेखक ने देखा कि प्रभावित राजा ने एक पड़ौसी राजा से सहायता के लिए प्रार्थना की। पड़ौसी राजा ने लेखक के देखते ही, भारी मात्रा में अस्त्र-शस्त्र, देहदेश की सीमा के बाहर इकट्ठे करवा दिए। घुसपैठियों की टोलियाँ भाग पाती, इससे पहले ही पड़ौसी राजा ने उनका सफाया करवा दिया। कुछ शत्रु, ध्वनिपछाड़ लड़ाकू-विमानों ((supersonic fighter planes) में सवार

होकर हमला करते हैं। राजा उनके ऊपर पैनी नजर रखता है। वह उनके ऊपर वायुयानरोधी बंदूकों (anti aircraft guns) से निशाना लगवाता है, और उनकी ओर आग्नेयास्त्र/मिसाईलें भी छुड़वाता है, परन्तु वे लड़ाकू विमान बहुत फुर्तीले होते हैं, और बार-२ बच कर निकल भागते हैं। वे फिर गहन वनों, घाटियों व अँधेरे से भरे हुए अन्य स्थानों में छिप जाते हैं। जब राजा का ध्यान उनके ऊपर नहीं होता अथवा रात्रिकाल में , वे पुनः आक्रमण कर देते हैं। वे सीमाभित्ति के साथ लगते खुले-डुले क्षेत्र में, आसमान से नीचे उतर (landing) जाते हैं। फिर वे अपने लड़ाकू यानों में लाए गए, अत्याधुनिक छिद्रजनक यंत्रों (drilling machines) की सहायता से सीमाभित्ति में छिद्र कर देते हैं। उन यंत्रों में ध्वनिमोषक (silencer) लगे होते हैं, जिससे उनसे जरा भी आवाज नहीं होती। राजा को इससे उनकी गतिविधियों का पता ही नहीं चलता। कई बार वे रडार (radar) को धोखा देते हुए, बहुत कम ऊंचाई पर उड़ रहे होते हैं। कई बार, उन शत्रुओं के उड़ते हुए जेट-यानों (jet planes) की कर्कश व तीखी आवाज को सीमास्थित ध्वनि-संवेदक (sound-sensors) पकड़ लेते हैं, जिसकी सूचना राजा को मिल जाती है, और वह चौकन्ना हो जाता है। सुरक्षाबलों की ज़रा सी भी हलचल देखकर, वे वायुयान फिर से लम्बी उड़ान भरकर, दूर छिप जाते हैं, और वहाँ से, अत्याधुनिक दूरबीनों से स्थिति पर नजर बना कर रखते हैं। मौक़ा देखते ही, वे पुनः हमला कर देते हैं। कई बार राजा को सीमाभित्ति में स्थित संवेदकों (sensors) से, सीमाभित्ति में हो रहे छिद्र की सूचना मिल जाती है। वैसी हालत में वह तुरंत ही, बड़ी तेजी के साथ, सीमा के निकट खड़े वायुयान को गोला-बारूद से उड़वा देता है। वायुयान को बचाव के लिए, उड़ान भरने का मौक़ा ही नहीं मिल पाता। पायलट भी उस हमले में मारा जाता है। छेदक-यंत्र को भी नष्ट करवा दिया जाता है। वहाँ पर अन्दर घुसने की फिराक में खड़े अन्य शत्रु, इधर-उधर भाग जाते हैं। कई बार राजा अन्य कामों में इतना व्यस्त हो जाता है कि सीमा-संवेदकों के द्वारा भेजी गई सूचना के ऊपर समुचित ध्यान ही नहीं दे पाता। कई बार सीमासंवेदक-उपकरणों की बैटरी (battery) डाऊन (down) हो जाती है, जिससे वे ठीक ढंग से सूचना नहीं दे पाते। वैसी परिस्थितियों में, शत्रु शीघ्रता के साथ अन्दर घुस जाते हैं, और वहाँ पर सुरक्षाबालों के भय से, सीमा के निकट ही लूटपाट करते हैं। डर के मारे, वे माल-टाल लेकर, जल्दी ही बाहर निकल जाते हैं। उसके बाद तुरंत ही, जटिल यंत्रों से, छिद्र उतनी अधिक सफाई से बंद करवा दिया जाता है कि सीमाभित्ति पूर्णतः पहले की तरह ही हो जाती है, और यह पता भी नहीं चलता कि वहाँ पर कभी कोई छिद्र भी बनाया गया था। उससे राजा धोखे में रहता है, और यह बात कभी नहीं मानता है कि देश पर कोई हवाई हमला भी हुआ था। उससे राजा आगे के लिए भी सतर्क नहीं हो पाता। कई बार कुछ घातक, चतुर व निडर शत्रु देश के अन्दर ही ठहर जाते हैं, और सुरक्षाबलों के साथ लुक्काछुप्पी खेलते हुए, वहाँ पर अपने संख्याबल को बढ़ा देते हैं। फिर धीरे-२ मजबूत होकर, सम्पूर्ण देश के साथ युद्ध का ऐलान कर देते हैं। वह देवासुर संग्राम भी बहुत भीषण होता है। कई लोग सोच सकते हैं कि भौतिकरूप से इतने क्षुद्र व सूक्ष्म देहपुरुष के ऊपर क्यों ध्यान लगाना चाहिए। परन्तु महर्षि पतंजलि तो कहते हैं कि किसी भी चीज पर ध्यान लगाया जा सकता है, जैसे कि हवा, जल, प्रकाश-बिंदु, आवाज व यहाँ तक कि अणु-परमाणु पर भी; तो फिर देहपुरुष पर क्यों नहीं। वे तो हमारे सबसे निकट, अतः अतिप्रिय हैं। उसमें ध्यान लगाना सरल भी है, क्योंकि वह स्थूलपुरुष के साथ सर्वाधिक समानता रखता है। वास्तव में देहपुरुष की तरह ही, हवा, पानी आदि पदार्थ भी ध्यानालंबन के आलंबन ही होते हैं, अर्थात जो ध्यान का आलंबन, मानवरूप, मन में बसा होता है, वही इन अद्वैतशाली पदार्थों के ऊपर आरोपित हो जाता है। इस तरह से, ध्यान तो केवल एक ही मनुष्याकृति का लग रहा होता है। अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को उत्तरा के गर्भ में रहते हुए, अपने को अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गए ब्रम्हास्त्र से बचाते हुए , जो श्रीकृष्णविग्रह चारों ओर दिखाई दे रहे थे , वे संभवतः देहदेश के सुरक्षकदेहपुरुष/देहसैनिक ही थे, जिनके ऊपर पूर्वजन्म के प्रभाव से, अभिमन्यु का समाधिचित्र, अर्थात कुण्डलिनी (श्रीकृष्णविग्रह) आरोपित हो गई थी। वैसे कुण्डलिनीयोग करते हुए, कुण्डलिनीचित्र (देहपुरुषचित्र) स्वयं ही उभर कर सामने आ जाता है।

कुण्डलिनीयोग के पीछे अनैच्छिक संवेदनारोपण का सिद्धांत भी काम करता है। कुण्डलिनीयोग के समय शरीर व मन की संवेदनाओं के ऊपर कुण्डलिनीचित्र का आरोपण हो जाता है, चक्रों पर कुण्डलिनी का ध्यान करने से। दिवसकाल के लोकव्यवहार के समय , जब मानसिक व शारीरिक संवेदनाएं जागृत हो जाती हैं, तब उनके साथ जुड़ी हुई कुण्डलिनी भी स्वतः व अनायास ही जागृत हो जाती है।

कई लोग डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत को व भौतिक शरीरविज्ञान को कुण्डलिनीयोग के साथ जोड़ने लग जाते हैं। संभवतः वे ऐसा इसलिए करते हैं, ताकि आधुनिक समय के विज्ञानवादी लोग भी कुण्डलिनीयोग के प्रति प्रेरित हो जाएं। वास्तव में ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता , क्योंकि कुण्डलिनीयोग एक निरा मनोवैज्ञानिक/आध्यात्मिक पथ है, जिसमें भौतिकता के ऊपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

प्रेमयोगी वज्र ने कुण्डलिनीयोग से सम्बंधित बहुत सी प्राचीन व आधुनिक पुस्तकों का अध्ययन किया, परन्तु कुण्डलिनी का वास्तविक स्वरूप कहीं पर भी दर्शाया गया, उसे नहीं मिला। प्राचीन ग्रंथों में संभवतः इसे दुरुपयोग की आशंका के कारण गूढ़ रखा गया हो , परन्तु आधुनिकता व खुलेपन के आज के दौर में तो गूढ़ता का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। कहीं पर इसे सर्पिणी , तो कहीं पर ज्वाला-शिखा आदि की तरह वर्णित किया गया है।

इससे प्रतीत होता है कि कुछ छिपाया जा रहा है। वास्तव में यह तो उसके स्वभाव व प्रकाशत्व आदि गुणों का ही वर्णन है। उसका वास्तविक रूप तो निरंतर के योगभ्यास के माध्यम से सुदृढ़ किया जाता हुआ, पतंजलि-वर्णित एक शुद्ध मानसिक चित्र/आलंबन ही है।

कुण्डलिनीयोग के साथ शविद का आश्रय इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि कुण्डलिनीयोग की उच्च अवस्था में साधक अधिकाँशतः मानसिक भ्रम व मनोदशा-दोलन से दुष्प्रभावित हो जाता है। शविद के अभ्यास से वह द्वैताद्वैत में प्रतिष्ठित रहता है , और इस तरह संविभ्रम से सुरक्षित रहता है। प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी जिस समय उछालें मार रही थी, उस समय उसे उन आध्यात्मिक वृद्ध पुरुष के माध्यम से पुराणों की संगति मिलती रही। वे पुराण उसके विज्ञान के अध्ययन के साथ मिलकर एक प्रकार से शविद ही बन गए थे, जिससे वह संविभ्रम व मनोदोलन से बचा रहा।

जिस मानसिक चित्र के कुण्डलिनी के रूप में उभरने की संभावना अधिक हो , वह चित्र बारम्बार मन में आता रहता है, बेशक उस चित्र से कोई विशेष लगाव या जुड़ाव न भी हो। वह चित्र विशेषतः किसी उस चिर-परिचित व प्रेमी पुरुष का होता है, जिसके सभी कर्म-भाव, मन में स्पष्ट व अच्छी तरह से बैठे होते हैं। वह चित्र गुरु का, मित्र का, बड़े-बुजुर्ग का, अंतरलैंगिक-प्रेमी (lover of different sex/consort) या यौन-प्रेमी आदि का, किसी का भी हो सकता है। उसी चित्र का ध्यान करना चाहिए। नियमित व निरंतर अभ्यास से, वही चित्र फिर कुण्डलिनी बन जाता है। वह कुण्डलिनी फिर मस्तिष्क में सुदृढ़ होती हुई, चरमावस्था तक पहुँचने पर जागृत होकर, आत्मज्ञान की ओर आसानी से ले जाती है। किसी नए-नवेले चित्र, जैसे कि देवता आदि के चित्र का चुनाव भी किया जा सकता है , यद्यपि इसमें प्रारम्भ में, अपेक्षाकृत रूप से कुछ अधिक कठिनता अनुभव हो सकती है, क्योंकि उन देवता आदि के रंग-बिरंगे कर्म-भाव हमारे चित्त में उस तरह से नहीं बैठे होते हैं , जिस तरह से हमारे प्रतिदिन के मानव-साथी के। वैसे, देवता को देहपुरुष का रूप देकर, देहपुरुष के कर्म-भावों को देवता के ऊपर आरोपित कर सकते हैं, जिससे यह कार्य बहुत आसान हो जाता है। उस पुरुष के रूप का मानसिक चित्र उतना अधिक फलदायक होता है, जितना अधिक वह पुरुष अनासक्ति व द्वैताद्वैत से सम्पन्न होता है, तथा जितना अधिक मानसिक आकर्षण उत्पन्न करता है। इस गणना से, आध्यात्मिक गुरु व देवता{विशेषतः तांत्रिक प्रेमिका (consort) के साथ, (ताकि यौनाकर्षण का भी लाभ मिले) व देहपुरुष का रूप धारण किए हुए} सर्वाधिक फलप्रद हैं।

पूर्वोक्त श्रेणी के कई घुसपैठिए तो उन्नत छेदक यंत्रों (advanced drilling machines) की सहायता से, सीमाभित्ति में बहुत सी सुरंगें बना देते हैं, और उनमें छिप कर रहने लग जाते हैं। उन्हें पकड़ पाना बहुत कठिन होता है। गुप्तचर -चित्रकों (detective-photographers) के स्वचालित-चित्रक (cameras) तो उन्हें देख ही नहीं पाते। जब उनकी संख्या काफी बढ़ जाती है, तब वे सीमा-संवेदकों की पकड़ में आने लगते हैं। उनमें उत्पन्न विद्युतीय सूचना, मूल-ध्वनि (source-sound) के अनुसार बदलती रहती है। फिर सीमासंवेदकों में उत्पन्न , बदलती हुई विद्युतीय-सूचना (electric-signal), बदलती हुई विद्युत-तरंगों (electromagnetic waves) के रूप में अंतरिक्षस्थित संचार उपग्रह (communication sattelite) तक अग्रसारित (relay) हो जाती हैं। वहाँ पर वे तरंगें विवृद्ध (amplify) कर दी जाती हैं, जो फिर राष्ट्रीय राजधानी-स्थित संचार-स्तम्भ (communication tower) तक पहुँच जाती हैं। वहाँ पर वे तरंगें पुनः बदलते हुए विद्युत -प्रवाह (electric current) के रूप में परिवर्तित कर दी जाती हैं। फिर वह विद्युत-प्रवाह, तारों (cables) के माध्यम से होता हुआ, राजकक्ष तक पहुँच जाता है, और उसमें लगे ध्वनि-चेतावक (sound-alarm) में, स्रोतध्वनि के अनुसार, बदलती हुई आवाज का रूप ले लेता है। उस झकझोरने वाली आवाज को सुनकर , राजा कुछ बेचैन सा व सतर्क हो जाता है। वह जासूसी -पत्रकारिता (media) से जुड़े विभाग को प्रभावित क्षेत्र का मुआयना (survey) करवाने का आदेश देता है, परन्तु विभाग से जुड़े लोगों को वहाँ से खाली हाथ ही वापिस आना पड़ता है, क्योंकि वहाँ पर उन्हें कुछ भी नहीं मिलता है। फिर राजा के द्वारा विदेशी गुप्तचरों का एक विशेष दस्ता वहाँ भेजा जाता है। उसके लोग समस्या की जड़ तक पहुँच जाते हैं , और राजा को यथास्थिति से अवगत करवा देते हैं। फिर समस्या यह होती है कि घुसपैठियों के ऊपर पूर्वोक्तानुसार हवाई-बमबारी या गोलीबारी भी नहीं करवाई जा सकती , क्योंकि उससे सीमाभित्ति को गंभीर क्षति पहुँचने की संभावना बनी रहती है। वास्तव में, वे घुसपैठिए उन सुरंगों से बाहर निकलते ही नहीं। उनके कुछेक सदस्य सीमाभित्ति के निकटतम भाग में बने लोगों के घरों में, रात के समय डाका डालते रहते हैं, और खाने-पीने का सामान चुराकर ले जाते रहते हैं। वे संभवतः वेष बदलकर सुरंगों से बाहर निकलते हैं, जिससे रात्रि-गश्त कर रहे सुरक्षाकर्मियों के संदेह के दायरे में नहीं आ पाते। यदि उनको पकड़ा भी जाए, तो भी उनकी विशाल संख्या को कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती। सुरक्षाकर्मी सुरंगों के अन्दर घुसने से घबराते हैं, क्योंकि घुसपैठिए तो सुरंगों के अन्दर रहने के आदी हो चुके होते हैं, और लड़ाई में किसी पर भी आसानी से भारी पड़ सकते हैं। फिर राजा एक गूढ़ युद्धनीति के तहत , मित्र देशों की सहायता से , सीमान्तक्षेत्र के लोगों के घरों में विषयुक्त भोजन-पानी रखवा देता है। वह विष, देश के बाहर स्थित बीहड़ों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, जो वहाँ से उन्नत तकनीकों की सहायता से इकट्ठा कर लिया जाता है। वह धीमा जहर होता है , जो उसे खाने वाले को एकदम से नहीं मारता। उससे घुसपैठियों को , चुराए गए खाद्य-पेयों में

विष होने का संदेह नहीं हो पाता। यद्यपि उन्हें उनका स्वाद थोड़ा बदला-२ सा व अजीब सा जरूर लगता है, परन्तु बाध्यतावश उन्हें वह खाना-पीना ही पड़ता है, क्योंकि भूखे-प्यासे मरने से अच्छा तो यही है कि बेस्वाद खाद्य -पेय भी खा-पी लिया जाए। फिर धीरे-२ करके, उनका समूल नाश हो जाता है। राजा भी फिर पुनः चैन की बंसी बजाने लग जाता है।

वास्तव में प्रेमयोगी वज्र को पतंजलिरचित अष्टांगयोग के प्राकृतिक समरूप (natural copy) का आश्रय स्वयं ही किसी दैवीय संयोग से मिल गया था। अष्टांग योग के प्रथम दो पाद, यम व नियम, उसके परिवार व सामाजिक परिवेश के आध्यात्मिक व अहिंसक पृष्ठभूमि से सम्बंधित होने के कारण उसमें स्वतः ही सिद्ध हो गए थे। जब वह अपने पारिवारिक सदस्यों , विशेषतः पितामह के साथ जमीन, खेत व पशुओं से सम्बंधित शारीरिक व मानसिक कार्य करता था, तो उसका तीसरा व चौथा पाद, क्रमशः आसन व प्राणायाम स्वयं ही सिद्ध हो जाते थे। पांचवे पाद प्रत्याहार का समावेश उसमें अपने पितामह की संगति से उत्पन्न हुआ , जो कि एक बहुत ही आत्मसंतोषी व इन्द्रियविमुख पुरोहित थे। छटे -सातवें पाद, धारणा-ध्यान के संस्कार भी उसे उन्हीं से मिले थे, क्योंकि वे नियमित रूप से अध्यात्म-साधना करते रहते थे। वही बीज-संस्कार उस अग्रवर्णित मित्र बालक के प्रति प्रेम में परिणत हो गए। जब वह प्रेम देवीरानी के प्रति स्थानांतरित हुआ, तब उसमें यौन-आकर्षण भी जुड़ गया और वह प्रचंड होकर आठवें पाद अर्थात समाधि के उस रूप में प्रवृद्ध हो गया, स्वप्नकालिक क्षणिकात्मज्ञान जिसका परिणाम बन कर उभरा।

तंत्र के सम्बन्ध में, यहाँ एक बात गौर करने योग्य है। संभवतः पतंजलि के अहिंसा-धर्म को आम जनमानस के द्वारा समझने में त्रुटि हुई है। वास्तव में पञ्च-मकार (मद्य, माँस, मैथुनादि) के रूप में की जाने वाली, नैष्ठिक तांत्रिकों की छोटी-मोटी हिंसा, हिंसा की श्रेणी में नहीं आती। वे उससे उस अद्वैतज्ञान व आत्मज्ञान को सिद्ध कर रहे होते हैं, जो अहिंसा के सबसे बड़े मापदंड हैं। कोई यदि अहिंसा का चोला पहन कर द्वैतज्ञान में डूबा हुआ हो , तो वह अहिंसा का दिखावा ही माना जाएगा। प्रतिदिन का योगाभ्यास इसलिए भी आवश्यक है , क्योंकि हम शारीरिक कार्य या व्यायाम तो बहुत करते हैं, परन्तु मानसिक व्यायाम बहुत कम करते हैं। इससे संतुलन बिगड़ जाता है, मन बेचैन हो जाता है, और वह बंदरों की तरह इधर-उधर छलांगें मारने लगता है, जिससे हानि की संभावना बढ़ जाती है। वास्तव में, स्वस्थ व सुखी जीवन के लिए शरीर में तीनों गुण समान व संतुलित अवस्था में रहने चाहिए। अधिक सत्त्वगुण से नींद बिगड़ने लग जाती है, और दैनिक कार्य दुष्प्रभावित होने लगते हैं। अधिक रजोगुण से दुष्कर्म की संभावना बढ़ जाती है। अधिक तमोगुण से अज्ञान बढ़ता है। इसीलिए कुण्डलिनीयोग के साथ यौनयोग करना आवश्यक प्रतीत होता है , क्योंकि उससे सतोगुण के साथ-२, पर्याप्त रजोगुण व तमोगुण भी बना रहता है। तंत्र में तमोगुण की कमी को पूरा करने के लिए ही पञ्च-मकारों का सेवन विहित है, यद्यपि उससे उत्पन्न तमोगुण को संभालना अपेक्षाकृत अधिक कठिन हो सकता है, इसलिए सिद्धांततः तो गुरु की देखरेख में ही करना चाहिए। बदलते हुए गुणों के प्रति अनासक्ति या अद्वैतभाव बना कर रखना आवश्यक होता है, तभी उससे आध्यात्मिक विकास भी होता है, अन्यथा द्वैत से तो आध्यात्मिक हानि की संभावना बनी ही रहती है। इसी तरह, पूर्णतंत्र का पञ्चमकारयोगान्तर्गत आमिषयोग भी यौनयोग की तरह ही काम करता है। साधारण परिस्थितियों में, आमिषोपभोग से प्राप्त शक्ति का उपयोग बहुमुखी चित्तवृत्तियों के पोषण के लिए किया जाता है , जिससे अज्ञान बढ़ता है। परन्तु आमिषयोग में आमिषोपभोग से प्राप्त शक्ति का उपयोग एकमुखी वृत्ति अर्थात कुण्डलिनी के पोषण के लिए किया जाता है। यह शक्ति मुख्य रूप से, उसमें स्थित पूर्ण अद्वैतशाली देहपुरुषों के सान्निध्य से प्राप्त होती है (विशेषतः, यदि यह वास्तविकता-संपन्न भावना धारण कर के रखी जाए)। यद्यपि यौनयोग की तरह इससे रजोगुण की स्वतः प्राप्ति नहीं होती, इसलिए इस योग में अनवरत रूप से क्रियाशील रहने की आवश्यकता होती है। इससे भी यौनयोग की तरह के ही चमत्कारिक परिणाम प्राप्त होते हैं, यदि अद्वैतभाव को निरंतर बना कर रखा जाए। तंत्र के सभी नुस्खों की तरह ही , यह भी 'सब कुछ या कुछ नहीं' के सिद्धांत के अनुसार ही काम करता है, इसलिए बहुत सावधान व गुरु के सान्निध्य में रहने की आवश्यकता होती है। इसी तरह, अंडे के अन्दर वह पूर्वोक्त सर्वगुणसंपन्न देहदेशराजकुमारी विद्यमान होती है, जो अपने सहज अद्वैतभाव के साथ पूरी देह-सृष्टि के निर्माण के लिए पूर्णतः सज्ज होती है। वह ताओ (tao) की तरह ही, निरंतर परिवर्तनशील (changing) रहते हुए भी परिवर्तनरहित (unchanging) होती है। अनेक अध्यात्मविद लोगों का मानना है कि रजोगुण व तमोगुण से बचते हुए , निरंतर के सत्त्वगुण से ज्ञान होता है। परन्तु, वास्तव में तंत्रानुसार, एकसाथ तीनों गुणों को अद्वैतभाव से धारण किए बिना, वास्तविक, प्रगाढ़ व स्वयंसिद्ध सत्त्वगुण उत्पन्न ही नहीं हो पाता। इससे वे अपने मध्यम स्तर के सत्त्वगुण के ऊपर इतराते रहते हैं, और आगे का विकास ही नहीं कर पाते। पुस्तकोक्तानुसार, प्रेमयोगी वज्र यद्यपि स्वयं तो सत्त्वगुणशाली आहार-विहार में स्थित रहा, परन्तु उसे समसामयिक परिस्थिति के अनुसार बलशाली रजोगुण व तमोगुण की भी गहरी संगति करनी पड़ी थी, जिसके प्रभाव से उसका मन अछूता नहीं रह पाया था। यह अलग बात है कि पारिवारिक संस्कारों के प्रभाव से, वह उन गुणों के प्रति अद्वैतभाव से स्थित रहा। तभी तो वह उस घनघोर सत्त्वगुण के अन्दर प्रविष्ट हो पाया, जिससे उसे उस क्षणिकात्मज्ञान की उपलब्धि हुई।

उपरोक्त तंत्र-सिद्धांत भगवान शिव के तंत्र-रहस्य प्रतीत होते हैं, जो समय के साथ विलुप्त हो गए। ये सभी रहस्य अद्वैतवान देहपुरुषों से ही प्राप्त किए हुए प्रतीत होते हैं। वास्तव में हम उन्हें अद्वैतवान शिव का ही रूप समझ सकते हैं। बकरे के सिर को राजा दक्ष के धड़ के ऊपर प्रतिस्थापित करने का अर्थ यही प्रतीत होता है कि एक आदमी पशुदेहस्थित देहपुरुषों से भी शक्ति प्राप्त कर सकता है , और उससे अपनी कुण्डलिनी को जागृत कर के, उससे अपने मस्तिष्क को उन्नत कर सकता है। तांत्रिक बलि -प्रथा के पीछे भी यही रहस्य प्रतीत होता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि देहपुरुषों का सान्निध्य केवल बलि-भोज में ही प्राप्त होता है। पशुसेवा से उससे भी अधिक सान्निध्य मिलता है। प्रेमयोगी वज्र ने देहपुरुषों के ध्यान के साथ , खूब पशुसेवा की, और बीमार पशुओं की चिकित्सा की। बलि-भोज तो वह दुर्लभ स्थिति में ही लेता था, वह भी तब, जब पशुओं की उचित सेवा/चिकित्सा में और उनके/अपने शरीर में स्थित देहपुरुषों के ध्यान में कोई विशेष विघ्न उपस्थित होता था , जो अन्य साधारण विधियों से नहीं टलता था। इससे सब कुछ ठीक-ठाक हो जाता था, और प्रेमयोगी वज्र अपनी कुण्डलिनी के विकास को पुनः पूर्ववत अनुभव करने लग जाता था। इसी तरह, जब भगवान शिव दक्ष के यज्ञ में मृत पार्वती को कंधे पर उठा कर अंतरिक्ष में घूम रहे थे , तब देवी के विभिन्न अंग विभिन्न स्थानों पर गिर गए, और वे विशेष भू-स्थान शक्तिपीठों के रूप में संपन्न हो गए। यह हमने पुस्तक में अन्यत्र भी सिद्ध किया है कि वे शक्तिपीठ देहपुरुषों से किस प्रकार से जुड़े हुए हैं।

जिन जंगली बीहड़ों से देहदेश खड़ी फसल का आयात करता है , वहाँ पर कई बार सूखा पड़ जाता है। फिर जब वहाँ वर्षा होती है , तो फसल एकदम से बड़ी हो जाती है, जिससे उसमें कुछ अत्यावश्यक पौष्टिक तत्त्वों की भारी कमी हो जाती है , और मिट्टी के जहरीले तत्त्व भी जल्दबाजी के कारण, उसमें और फिर उससे निर्मित खाद्यान्न में प्रविष्ट हो जाते हैं। भरपूर फसल से उत्साहित देहपुरुष, उससे तैयार खाद्यान्न को जी भर कर खाते हैं। इससे कुछ देहपुरुष जहरीले तत्त्वों के कुप्रभाव से मर जाते हैं। कुछ देहपुरुष अत्यावश्यक तत्त्वों की कमी से प्रभावित होकर , अजीबोगरीब से शारीरिक व मानसिक लक्षण प्रकट करने लग जाते हैं। वे अपने-२ कार्य करने में अस्मर्थ हो जाते हैं। देहदेश की सत्ता के ऊपर संकट के बादल मंडराने लगते हैं। राजा भी अपने मंत्रियों व अधिकारियों के पागलपन को देखकर, स्वयं भी पगला जाता है। वह उस विषाक्त फसल के आयात पर प्रतिबन्ध लगवा देता है। उसके मंत्री अपने देश से, उस अत्यावश्यक तत्त्व के निर्यात पर पूर्णप्रतिबन्ध लगवा कर, उस तत्त्व को समस्त देशवासियों में वितरित करवा देते हैं। भण्डारघरों से भी भारी मात्रा में उस तत्त्व को बाहर निकलवा कर , वितरित करवा दिया जाता है। उस तत्त्व का दुरुपयोग करने वाले के लिए सजा निर्धारित कर दी जाती है। जलशोधन विभाग को भी उस बहुमूल्य तत्त्व का विशेष ध्यान रखने के लिए आदेश जारी कर दिए जाते हैं। राजा उस तत्त्व के आयात को बढ़ावा देता है। इस प्रकार के उपायों को शीघ्रतम रूप से न करने पर, कई बार देहदेश की सारी व्यवस्था ही चौपट हो जाती है।

यह सत्य प्रतीत होता है कि आत्मज्ञान के लिए कामोन्माद की भी आवश्यकता होती है , विशेषतः समाधि का प्रारम्भ कराने के लिए। समाधि तो दूर की बात है, धारणा-ध्यान की छोटी-मोटी आग को भड़काने के लिए भी कामोन्माद की चिंगारी आवश्यक है। कामोन्माद की चिंगारी से या तो स्थूल संसर्ग के रूप में स्थूल अग्नि (भौतिक जगत) प्रज्वाल्यमान रहती है, या फिर सूक्ष्म व मानसिक संसर्ग के रूप में सूक्ष्म अग्नि (मानसिक जगत) प्रज्वलित रहती है। स्थूल अग्नि केवल भौतिक सुख देती है, जबकि सूक्ष्म अग्नि भौतिक सुख के साथ आत्मज्ञान भी उपलब्ध कराती है। स्थूल संसर्ग की राह में विघ्न भी बहुत होते हैं, जैसे कि सामाजिक अव्यवस्था व यौन रोगों के संक्रमण का संचार आदि। सूक्ष्म संसर्ग की राह में ऐसे कोई विघ्न नहीं होते, इसीलिए जगत में अंतरलैंगिक हंसी-ठिठोलियाँ काफी मशहूर हैं। अतः सूक्ष्म यौनसम्बन्ध एक आश्चर्यमयी कलाकारी है। इससे शारीरिक व मानसिक शक्ति का रक्षण भी होता है। यह प्राचीन तंत्र का एक सामाजिक व आधुनिक रूप है। यदि कोई पुरुष आत्मज्ञान को बिना किसी यौन-प्रेम के अनुभव से प्राप्त करता है, तो उसे इसका अनुभव अपने पूर्व के जीवन में या पूर्वजन्मों में अवश्य ही होया हुआ प्रतीत होता है , या बालपन में अतितीव्र स्त्री-ममता व स्त्री-स्नेह की पात्रता प्राप्त होने से उसे अप्रत्यक्ष रूप में यौनाकर्षण का अनुभव मिला हुआ होता है , क्योंकि तीव्र ममता में भी वह शक्ति है , जो यौनाकर्षण की कमी को काफी अधिक सीमा तक पूर्ण कर देती है। यह लगता है कि आत्मज्ञान , और कुछ नहीं, अपितु परम मानसिक यौनप्रेम ही है। एक यौन-प्रेमी से अधिक दृढ़ता से, भला कौन मन में स्थिर हो सकता है? अधिकाँश यौगिक रचनाओं में शब्द, सूर्य, प्रकाश, ज्योति, आकाश आदि नीरस वस्तुओं पर जबरदस्ती ध्यान लगाने को कहा जाता है। अभ्यास से ध्यान तो लग जाता है , परन्तु वह शीघ्र फलदायक नहीं होता। यौन-प्रेमी से अधिक रुचिकर वस्तु क्या हो सकती है , ध्यान लगाने के लिए? यदि गुरु आदि किसी अन्य प्रेमी पुरुष पर भी ध्यान लगता है , तो उसमें भी यौन-प्रेमी का योगदान अवश्य होता है, क्योंकि यौन-प्रेमी का मानसिक चित्र उस प्रेमी पुरुष के मानसिक चित्र के साथ समारोपण (पुस्तकोक्त यौनसम्बन्धसिद्धांत) के कारण जुड़ जाता है। यही तो तांत्रिक गुरु व तांत्रिक प्रेमिका (consort) की एकसाथ संगत करने के पीछे का छिपा हुआ रहस्य है। एक जीवंत , प्रिय, स्वभावानुकूल व समराही अंतरलैंगिक मित्र से अधिक आकर्षक वस्तु क्या हो सकती है ? ऐसे रुचिकर मित्र की संगति मात्र से ही साधना का आधे से अधिक मार्ग तय हो जाता है। यदि ऐसा मित्र , देहपुरुष की तरह द्वैताद्वैत से सम्पन्न हो , तब तो परस्पर आकर्षण व सम्बंधित ध्यान अपने चरम पर

आसानी से पहुँच जाता है। शेष मार्ग सद्वृद्ध/गुरु की कृपा व थोड़ी सी साधना के अतिरिक्त बल से अनायास ही तय हो जाता है , और आत्मज्ञान हो जाता है। क्योंकि केवल भौतिक कामोन्माद से ही समाधि दृढ़ नहीं हो सकती व मानसिक कामोन्माद के बिना भी समाधि असंभव-सदृश ही है, इसलिए साँकेतिक रूप में भौतिककामोन्माद का आश्रय लेने का माध्यमिक तंत्रमार्ग ही श्रेष्ठ प्रतीत होता है। तंत्र के साथ , विशेषतः पूर्वोक्तानुसार विषमवाही तंत्र (जिसमें कुण्डलिनीवाहक अन्य होता है, और कुण्डलिनी कोई अन्य ही होती है) के साथ गुरु इसलिए भी आवश्यक हैं, क्योंकि यदि मन में गुरुरूपी कुण्डलिनी नहीं बसी होगी, तो तंत्र की अपार शक्ति से उसके मन में व्यर्थ के , मोहकारक व अज्ञानकारक विचार पुष्ट होंगे, जिससे बंधन होगा; परन्तु यदि मन में गुरु के रूप की कुण्डलिनी बसी होगी , तब उस शक्ति से वह कुण्डलिनी पुष्ट होती रहेगी , जिससे मुक्ति प्राप्त होगी। समवाही तंत्र में , गुरु यौनसीमा के उल्लंघन से बचाता है, और मानसिक यौनोन्माद को निरंतर रूप से चरम पर बना कर रखता है।

वास्तव में, आत्मज्ञान को हम प्रणय-सम्बन्ध (romance) से ही अच्छी तरह से समझ सकते हैं, सीधे तौर पर नहीं, क्योंकि वह तो अनिर्वचनीय है। यदि कई वर्षों तक, मन में प्रणयसंबंधी (consort) का चित्र निरंतर रूप से बना रहे, तब हम उसे सर्वोत्तम प्रणयसम्बन्ध कहेंगे। परन्तु यदि सर्वोत्तम प्रणयसम्बन्ध के साथ, प्रणयसंबंधी के साथ अनासक्ति भी विद्यमान हो, तब तो हम उसे परम प्रणयसम्बन्ध कहेंगे। आत्मज्ञान भी प्रभावरूप में परम प्रणय की तरह ही होता है। इसका अर्थ है कि आत्मज्ञान हो जाने पर , सर्वोत्तम प्रणय भी परमप्रणय के रूप में रूपांतरित हो जाता है। एक प्रकार से, परमप्रणय से आत्मज्ञान की क्षणिक अनुभूति तो नहीं भी हो सकती, परन्तु आत्मज्ञान के पूर्णप्रभाव के जैसा अनुभव तो हो ही सकता है। पूर्णतः संभव है कि उसके प्रभाव से, कालान्तर में वह भी हो जाए, क्योंकि कारण व कार्य एक-दूसरे को उत्पन्न करते रहते हैं। देवी मीरा को भी इसी परमप्रणय से आत्मज्ञान हुआ था। कुण्डलिनीयोग भी इसी परमप्रणय को सिद्ध करता है। यह जो समाज में प्रणयसम्बन्ध व आत्मज्ञान को भिन्न -२ करके देखा जाता है, उसी से आत्मज्ञान के बारे में भ्रम बना हुआ है। वास्तव में ये दोनों क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

पूर्वोक्तानुसारं स्पष्टे कथिते च , यौनाङ्गः मस्तिष्कः च उभयौ युग्मितौ। चेत् कुण्डलिनी यौनाङ्गे , तस्य संवेदनायां प्रसारणे च ध्याता, तर्हि सा यौनान्गसंकुचनेन स्वयमेव मस्तिष्कं धावति तत्र च प्रज्वलति, अपि च दीर्घकालपर्यन्तं (न्यूनतमेन एकदिवसपर्यन्तं) मस्तिष्के एव प्रतिष्ठति। एवमेव तंत्रानुसारमेव वज्रप्रक्षालनकाले, चेत् कुण्डलिनी वज्रसंवेदानायाम् ध्याता, तर्हि सा सहसा प्रज्वलिता जायते।

उपरोक्त यौनयोगसिद्धांत के अनुसार ही, यौनयोग के साथ-२, गुरु इसलिए भी अत्यधिक आवश्यक है, क्योंकि यौनयोग के समय सद्गुरु की निकट की संगति से, उनका जीवन-चरित्र धीरे-२, यौनयोगी की कुण्डलिनी के रूप में स्वतः व अनायास ही मन में उभर जाता है, जैसा कि पूर्वोक्त विषमवाही तंत्र (इसमें कुण्डलिनी अन्य होती है, व कुण्डलिनीवाहक अन्य) में होता है। उपरोक्त बात पूर्णतः सत्य है कि यदि गुरु साथ नहीं होंगे, तब यौनयोग की ऊर्जा, शरारतपूर्ण, व्यर्थ व कई बार हानिकारक विचारों के झुण्ड के रूप में बर्बाद हो जाएगी। यदि साथ में गुरु अद्वैतशाली भी हों, तब तो उनके रूप के मानसिक चित्र (कुण्डलिनी) से विकसित अद्वैत के साथ, अतिरिक्त अद्वैत भी विकसित हो जाता है; जिससे कुण्डलिनीजागरण, आत्मज्ञान व मुक्ति, तीनों को एकसाथ प्राप्त कराने वाला महान बल प्राप्त हो जाता है। उसके साथ, यदि शरीरविज्ञान दर्शन का भी साथ में सहयोग लिया जाए, तब तो उससे भी अद्वैत प्राप्त हो जाता है, और "सोने पे सुहागा" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो जाती है। वास्तव में अद्वैत, आनंद व कुण्डलिनी; ये तीनों एकसाथ रहते हैं, और एक-दूसरे को बढ़ाते रहते हैं। निर्धारित लक्ष्य के अनुसार, तंत्र के पञ्चमकार (मैथुन, मद्य, माँस, मत्स्य व मुद्रा) जगत/पाप को भी उपलब्ध करवा सकते हैं, और मुक्ति/कुण्डलिनी/पुण्य को भी। यह कहना कि वाममार्गी-तंत्र को उन लोगों के लिए बनाया, जो भौतिक पञ्चमकारों में डूबे हुए होते थे, ताकि वे उनको धीरे-२ करके छोड़ देते, जिससे वे भी मुक्ति को प्राप्त कर पाते; तंत्र को गौण रूप में प्रदर्शित करता है। परन्तु इसके विपरीत, वास्तव में तंत्र तो शक्ति प्राप्त करने का मुख्य साधन है, और सबके लिए श्रेयस्कर है। शक्ति से ही सभी कुछ संभव है। शक्ति/कुण्डलिनी का जागरण इसीसे प्रतीत होता है, अन्यथा नहीं। शक्ति-जागरण के बाद तो साधक को पञ्चमकारों की आवश्यकता कम ही पड़ती है, अतः वह उनका प्रयोग बंद या बहुत कम कर देता है। तथाकथित, आधुनिक बियर-योग (beer-yoga) व अप्सरा-योग भी तो तांत्रिक-योग/पञ्चमकार-योग पर ही आधारित प्रतीत होते हैं।

प्रेमयोगी वज्र भी किशोरावस्था के प्रारम्भ में अंतरलैंगिक-अंतर्जातीय प्रेमसंबंध से प्रभावित हुआ था। वह प्रेम शुद्ध, मानसिक, साँकेतिक व तांत्रिक प्रकार का था। तांत्रिकता का कारण था, प्रेमयोगी वज्र व प्रेमिका (consort) के बीच में संयोगवश व अप्रत्यक्ष रूप में (मानवीय उद्देश्य की पूर्ति करते समय, जैसे कि नाटक, मंच आदि में यौन-मुद्राओं के चित्रादि के अप्रत्यक्ष रूप में चलन के कारण, सिने कलाकारों की तरह) या यूं कहो; पूर्णतया शुद्ध, मानसिक व सात्विक रूप में यौनसम्बन्ध का अनायास अर्थात संयोग से व बिना इच्छा के ही बन जाना , जिसे हम तंत्र की भाषा में इनिशिएशन (initiation) अर्थात शारीरिक आकर्षण की शुरुआत भी कह सकते हैं। अतः यह शुरुआत इच्छारहित, प्राकृतिक व अहंकार से रहित थी। फिर एक दिन प्रेमयोगी वज्र की तन्त्रसम्मत अग्निपरीक्षा का दिन था। वह उस दिन समयपूर्व ही अपनी कक्षा में पहुँच गया था। वह कक्षा में अकेला ही , कमरे के

मध्यस्थ व गोलाकार मेज (central table) के चारों ओर रखे बैंच के एक भाग पर बैठा हुआ था। तभी कक्षा में प्रेमिका -देवीरानी (consort) भी प्रविष्ट हो गईं। वह कुछ असहज व कामोत्तेजित सा हो गया, जिससे वह कुछ बोल भी नहीं सका। वह अपनी पुस्तक मेज पर रखकर, कुछ पढ़ने का दिखावा जैसा करने लगा। देवीरानी भी उसी के जैसी स्थिति में थीं। उसने ऊब जैसे जाने का दिखावा किया व किसी दिव्य प्रेरणा से उस मेज पर पीठ के बल लेटकर छत की ओर देखने लगी, पैरों को भूमि पर ही लगाए हुए। प्रेमयोगी वज्र उसके ऊपर पल भर के लिए भी दृष्टि नहीं टिका सका, क्योंकि वह अत्यधिक कामोत्तेजित हो गया था। उसमें यौनांगों में प्रसार के साथ, अत्यधिक व अपने जीवन की अभूतपूर्व उत्तेजना (genital orgasm) उत्पन्न हो गई। अपने यौनांगों की ओर दौड़ता हुआ रक्त-संचार उसे स्पष्टता से अनुभव हो रहा था। उसकी वज्र-उत्तेजना पूरे शरीर में व्याप्त होकर, पूर्णशरीर-उत्तेजना (whole body orgasm) का रूप ले चुकी थी। उसे अपना हृदय जोर-२ से उछलता हुआ स्पष्ट रूप से सुनाई दे रहा था, जिसका कम्पन पूरे शरीर में व्याप्त हो रहा था। वह अपने शरीर की रक्त -वाहिनियों में दौड़ते हुए रक्त की आवाज को स्पष्ट रूप से अनुभव कर पा रहा था। उसके पूरे शरीर, विशेषतया मुख पर सुर्ख लाली छा गई थी। उसके शरीर में अत्यधिक गर्मी उत्पन्न होने से, उसका शरीर जैसे एक जीवित अंगारा बन गया था। रक्तदाब की उच्चता के कारण उसे अपना मस्तिष्क भारी , दबावयुक्त व धड़कता हुआ सा प्रतीत हो रहा था। उसके मन में कामोन्माद की लहरें ताबड़तोड़ ढंग से कुलांचें मार रही थीं। मन संकल्प-विकल्प की तरंगों से भर गया था, मुख्यतया देवीरानी से सम्बंधित क्षेत्रों से। उसके मन में चारों ओर उमंग व प्रकाश का बोलबाला हो गया था। प्रेमयोगी वज्र अपने जीवन में पहली बार अपने आप को इतने अधिक व्यक्त रूप में अनुभव कर रहा था। जहाँ-२ पर भी उत्तेजना अनुभव हो रही थी, वहीँ-२ पर प्रेमयोगी वज्र को देवीरानी का बहुत ही स्पष्ट व मनमोहक रूप दिखाई दे रहा था। मन की उमंग-तरंग के बीच भी, रानी का चित्र उतने अधिक स्पष्ट व प्रचंड रूप में विद्यमान था, जितना अधिक चक्षु आदि इन्द्रियों के माध्यम से, प्रत्यक्ष रूप में भी अनुभव नहीं होता। प्रेमयोगी वज्र को एक अद्वितीय, दिव्य, सूक्ष्म व इन्द्रियातीत आनंद का अनुभव हो रहा था। उसने बाहर को ज़रा सा भी यह जाहिर नहीं होने दिया कि वह उस सब से उत्तेजित या विशेष प्रभावित था। वह पूर्णतः शाँत होने का जबरदस्त दिखावा कर रहा था। अध्यापक के कक्षा में आने के भय, उन वृद्ध व आध्यात्मिक पुरुष के मानसिक चित्र से प्राप्त सद्प्रेरणा के कारण, तथा देवीरानी के द्वारा संभावित रूप से फंसाए जाने के भय से वह मर्यादा का उल्लंघन करने से बच गया। तभी किसी दिव्य प्रेरणा से , प्रेमयोगी वज्र मेज पर पड़ी पुस्तक में कुछ पढ़ने-समझने के लिए, अपने दिमाग पर कुछ जोर जैसा डालने लगा। इससे उसके मन में कुछ दूसरे विचार भी उमड़ने लगे। तभी एकदम से उसके यौनांगों का प्रसार व उनकी उत्तेजना शाँत हो गई। हृदय की धड़कन व रक्त संचार सामान्य हो गए। प्रेमयोगी वज्र के शरीर का कम्पन समाप्त हो गया , और वह सामान्य, स्थिर व लम्बे-गहरे श्वास लेने लगा। ऐसा लगा, जैसे कि यौनांगों का, शक्ति से भरपूर रक्त मस्तिष्क को चला गया हो। उसी रक्त के साथ देवीरानी का चित्र भी वहाँ से निकलकर मस्तिष्क में प्रविष्ट हो गया, अर्थात कुण्डलिनी क्रियाशील हो चुकी थी। तंत्रयोग के रहस्य का द्वार प्रेमयोगी वज्र के समक्ष खुल चुका था। देवीरानी भी लगभग आधे मिनट के बाद उठकर चहलकदमी करने लग गई थीं। प्रेमयोगी वज्र के आत्मसंयम से देवीरानी हमेशा के लिए अचंभित सी व प्रभावित सी हो गई। उसके बाद तो प्रेमयोगी वज्र ने बिना थके -रुके, जी-जान से अपनी पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन करना शुरु कर दिया। वह विवशता के साथ, ऐसा इसीलिए कर रहा था, ताकि उसकी कुण्डलिनी के रूप में, प्रेमयोगिनी (उपरोक्त प्रथम देवीरानी) का मानसिक चित्र, सदैव उसके मस्तिष्क में स्थित रह सकता, न कि वहाँ से नीचे उतरता, क्योंकि नीचे उतरकर वह चित्र शारीरिक यौनोत्तेजना (body orgasm), शारीरिक बेचैनी व यौनप्रसारण (erection) को उत्पन्न कर देता था। इस तरह से, समाधि के साथ-२, उसकी भौतिक उन्नति भी सुदृढ़ होती गई। तंत्र के द्वारा भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की विधाओं के एक साथ विकसित होने के पीछे संभवतः यही रहस्य छिपा हुआ है।

उपरोक्त प्राकृतिक तंत्र में, प्रेमयोगी वज्र को मुख्यतः केवल ३ चक्रों का ही अनुभव होता था, जहाँ पर अधिकाँशतः प्रथम देवीरानी (कुण्डलिनी) का वास हुआ करता था। वे चक्र थे; यौनचक्र, हृदयचक्र व मस्तिष्कचक्र। कुण्डलिनी इन चक्रों के बीच में दोलायमान रहती थी। हो सकता है कि अन्य क्षेत्रों का भी योगदान रहा हो, परन्तु ये ३ क्षेत्र मुख्य थे। वास्तव में, ये तीनों चक्र लगभग इकट्ठे ही अभिव्यक्त होते थे। हो सकता है कि बारी -२ से व कुछ क्षणों के अंतर से अभिव्यक्त होते हों, इसलिए इकट्ठे लगते हों, क्योंकि मानसिक चित्र को तीनों स्थानों पर तो एकसाथ अनुभव नहीं किया जा सकता। ये तीनों क्षेत्र एक-दूसरे को प्रभावित करते थे, अर्थात बढ़ाते थे। वास्तव में, तांत्रिक प्रेमिका (consort) के सुदृढ़ मानसिक चित्र को ही तांत्रिक-कुण्डलिनी कहते हैं। उसके बाद तांत्रिक गुरु की अप्रत्यक्ष व अनायास कृपा से वह कुण्डलिनी दिनोंदिन सुदृढ़ होती गई। देवीरानी के रूप के मानसिक चित्र को संतुलित करने के लिए, अंततः प्रेमयोगी वज्र को लोकमर्यादा की सीमा के उल्लंघन से बचाने के लिए, उसके तांत्रिक गुरु का चित्र भी उसके मन-मंदिर में छा जाता था। अब प्रेमयोगी वज्र को भौतिक यौन सम्बन्ध से भी कहीं अधिक स्पष्ट, आनंददायक व चेतानापूर्ण, वह मानसिक समाधि-सम्बन्ध लगता था। एक प्रकार से मानसिक-यौनसम्बन्ध ने भौतिक यौनसम्बन्ध को हरा दिया था। उसके बाद यद्यपि उसमें अत्यधिक आत्मसंयम उत्पन्न हो गया था ,

परन्तु पूर्ण संयम तो उसमें आत्मज्ञान होने के बाद ही उत्पन्न हो पाया था, जब वह उच्च से उच्च यौन प्रलोभन को भी अनायास ही ठुकरा देता था, यद्यपि तांत्रिक यौनसंबंध के प्रति उसकी इच्छा बनी रहती थी, जो उसे योग्य गुरु की अनुपलब्धता के कारण उपलब्ध नहीं हो सका। प्रेमयोगी वज्र की इच्छा तो किसी भी प्रकार से उसके साथ मानसिक समाधि-सम्बन्ध (tantric orgasmic samadhi) बनाए रखने की होती थी। जब प्रेमयोगी वज्र का वह सम्बन्ध बिना किसी भी बाह्य प्रयास के स्वतः ही बन गया था , तो उसे व्यर्थ के जंजालों में पड़ने की क्या आवश्यकता थी। यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से अपमान तो प्रेमयोगी वज्र का भी बहुत होता था। अप्रत्यक्षतः या कुछ संकेतों में कई लोग उसे मूर्ख समझते थे कि एक स्त्री को वह मन में बसा कर रखता था, कुछ बोलता नहीं था, कुछ करता नहीं था आदि-२। कई निकट के मित्र तो हास्य-विनोद में, तद्सम्बंधित अश्लील बातें भी करने लग जाते थे, प्रेमयोगी वज्र जिसका बुरा नहीं मानता था , अपितु उसमें प्रेमिका की मानसिक कुण्डलिनी , और अधिक पुष्ट हो जाया करती थी , यद्यपि उसमें यौनोत्तेजना भी छा जाती थी, इसलिए वह वैसी बातों से अधिकाँशतः बचता ही था; विशेषकर जब यौनोत्तेजना सीमा से ऊपर जाने लगती थी, उसकी साँसें अनियमित होने लगती थी, व उसे अपना दम घुटा हुआ सा महसूस होने लगता था ; साथ में विचारों की क्रियाशीलता/चमक गिरने लगती थी। तेज दिमाग रखने वाली देवीरानी को उसकी भनक संकेतों व हाव-भावों से मिल जाती थी, यद्यपि वह भी बुरा न मानकर केवल सावधान ही रहती थी, और साथ में तंत्रसम्मत मानसिक आनंद भी उठाती थी, जैसा कि उसकी मधुर मुस्कान से परिलक्षित होता भी था। एक बार तो उसने प्यार , रोमांच, चमक, मधुर मुस्कान/आनंद, आत्मगौरव व उत्तेजना के साथ हँसते हुए, तथा बच्चे को बहलाने-फुसलाने की तरह, प्रेमयोगी वज्र को इस बारे में कम से कम शब्दों व संकेतों में बताया भी था। उससे वह बड़ा संतुष्ट, प्रसन्न व गौरवान्वित हो गया था। फिर भी, वह मित्रों की अटखेलियों से, टस से मस नहीं हुआ। वैसे भी प्रेमयोगी वज्र को लगता था कि प्रत्यक्षयौनसंसर्ग से वह समाधिकारक आकर्षण समाप्त हो जाता व आत्मज्ञान प्राप्त न होता , क्योंकि भौतिकता में कुछ न कुछ विकार तो होते ही हैं, जिनके साक्षात्कार से मानसिक चित्र कुछ न कुछ तो धूमिल हो ही जाता है। जब भौतिक रूप से भी अधिक स्पष्ट व आनंददायी, मानसिक रूप बन जाए, तो भौतिक विकारों को गले लगाने से भला क्या लाभ हो सकता है ? यही सिद्धांत कुण्डलिनीयोग का सिद्धांत है। तंत्र में भौतिक रूप/विकारों को अनदेखा करते हुए, भौतिक रूप की सहायता से मानसिक रूप को सुदृढ़ किया जाता है। वैसे, भौतिक विकारों को द्वैतयुक्त मनुष्य अनदेखा नहीं कर सकता, तभी तो द्वैतपूर्ण पुरुष के लिए यौनयोग हानिकारक भी हो सकता है। इसीलिए यौनयोग का आश्रय लेने से पहले यौनाश्रयरहित व आधारभूत कुण्डलिनीयोग, शविद, पुराणों आदि के आश्रय से द्वैताद्वैत निष्ठा को सुदृढ़ किया जाता है। प्रेमयोगी वज्र उस समय द्वैतपूर्ण स्थिति में था, अतः आत्मप्रेरणा से उसने ठीक ही निर्णय लिया। पूर्ण आत्मसंयम की वह स्थिति , कालांतर में हुए क्षणिकात्मज्ञान के बाद के केवल ३-४ वर्षों तक ही रह सकी। वास्तव में आत्मज्ञान का अधिकाँश प्रभाव ३-४ वर्षों तक ही रहता है। वह उस दौरान कनिष्ठ ब्रम्ह (junior god) जैसा ही होता है। उस दौरान वह सही बोलता है, सही लिखता है, व सही करता है। उस दौरान उसके द्वारा गहनता से विचारी, बोली व लिखी गई अधिकाँश बातें सत्य सिद्ध हो जाती हैं। यद्यपि वह क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठा हुआ होता है, और जगत के कल्याण के लिए ही चेष्टा करता है, वह भी यदि अत्यावश्यक हो, तभी। उसके बाद वह ईशत्व-प्रभाव धीरे-२ क्षीण होने लगता है। फिर उसे अंशमात्र में कायम रखने के लिए, द्वैताद्वैत शास्त्र (शविद, पुराण आदि) तथा/या कुण्डलिनीयोग का आश्रय लेना पड़ता है। यदि दोनों विधियों का आश्रय एकसाथ लिया जाए, तो सर्वोत्तम प्रभाव बना रहता है। प्रेमयोगी वज्र को केवलमात्र शविद का ही आश्रय लेना पड़ा था , क्योंकि उस समय योग का बोलबाला नहीं था, व पुराण-प्रेमी भी उसे दूर-२ तक नहीं दिखाई देते थे। शविद इसलिए भी उसे अपने अनुकूल प्रतीत हुआ , क्योंकि वह स्वयं भी स्वास्थ्य क्षेत्र से ही सम्बंधित था।

प्रेमयोगी वज्र तो वृद्धाध्यात्मिकपुरुष के जीवनचरित की कुण्डलिनी की दिनोंदिन हो रही वृद्धि से अधिकाधिक आनंद व उन्नति प्राप्त करता गया , क्योंकि संभवतः वह कुण्डलिनी यथोक्त प्रथम देवीरानी के सान्निध्य से सिद्ध तांत्रिकयौनबल से शक्ति प्राप्त कर रही थी। इससे उसकी यौनसंपर्क की जिज्ञासा भी क्षीण/इच्छारहित हो गई थी। परन्तु देवीरानी की मानसिक प्यास संभवतः बुझ नहीं रही थी , क्योंकि उसके मन में संभवतः कोई कुण्डलिनी क्रियाशील ही नहीं थी, या फिर निर्बलता के साथ क्रियाशील थी, जिसे वह तांत्रिक यौनसम्बन्ध से पुष्ट करना चाह रही हो। संभवतः उसे किसी ज्ञानयुक्त प्रेमी का वैसा साथ नहीं मिल रहा था , जैसा कि प्रेमयोगी वज्र को उन वृद्ध पुरुष /गुरु का मिल रहा था। संभवतः तभी उसकी कुण्डलिनी विकसित न हो पाई हो। संभवतः इसी कारणवश, बाद-२ में, उसमें प्रेमयोगी वज्र के प्रति मानसिकद्वेष उत्पन्न हो गया था, जिसका आभास प्रेमयोगी वज्र को क्षणिकात्मज्ञान के बाद हुआ, अन्यथा संभवतः आत्मज्ञान ही न होता। यह भी अनेक अनुकूल परिस्थितियों में से एक थी। फिर भी , उसके विचित्र, द्वेषयुक्त व आरोपकारी जैसे मुख का मानसिक चित्र, प्रेमयोगी वज्र को कई वर्षों तक बीच-२ में व कुछ-२ तो परेशान करता ही रहा। वैसे, उस देवीरानी के प्रति प्रेमयोगी वज्र की अनासक्ति भी गजब की थी। उससे अत्यंत प्रेम करते हुए और उसके रूप की नित्य समाधि को अनुभव

करने पर भी वह कभी भी, यहाँ तक कि अपने को भी यह विश्वास नहीं दिला पाया कि वह उससे प्रेम करता था, अन्य लोगों को तो कैसे विश्वास दिला पाता। उसने यौनयोग का लगभग पूर्ण आनंद लिया, फिर भी उसके और उसकी प्रेमिका (consort) के यौनाचरण के ऊपर कोई भी, कभी भी उंगली नहीं उठा सकता। यदि यह आश्चर्य नहीं है , तो और क्या है। ऐसा ही अनासक्ति -कौशल उसने द्वितीय देवीरानी के प्रति भी दिखाया था। वैसे चाहे वैवाहिक हो या अन्य प्रेमसम्बन्ध, योगी व योगिनी को कभी भी एक-दूसरे के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं करनी चाहिए, तभी यौनयोग की दृढ़ नींव (foundation) तैयार होती है। वास्तव में, तांत्रिक सहयोगी के भौतिक रूप के प्रति अनासक्ति का होना अत्यावश्यक है , अन्यथा सारा ध्यान मन की कुण्डलिनी से हट कर, सहयोगी के भौतिक शरीर पर चला जाता है, जिससे मानसिक कुण्डलिनी का क्षरण होता है।

प्रेमयोगी वज्र के अनुभव के आधार पर, आत्मज्ञान का पूर्णप्रभाव तो व्यक्ति में कुछ ही क्षणों तक, अर्थात तब तक रहता है, जब तक वह अनुभव हो रहा होता है। उसके बाद तो उसे यह अनुभव होता है कि उसने सब कुछ पा लिया है , अर्थात वह आप्तकाम हो गया है, और उससे उसमें अनासक्ति व अद्वैतनिष्ठा स्वयमेव छा जाती है। पूर्णसंतुष्टि व अद्वैतनिष्ठा की अनुभूति तो बिना आत्मज्ञान के , केवल शविद/पुराणों के निरंतर परिशीलन से भी हो जाती है। आत्मज्ञान का शेष प्रभाव लगभग ३-४ वर्षों तक ही रहता है। इन वर्षों में वह द्वैताद्वैतनिष्ठा को अपनाना , अच्छी तरह से सिखा देता है। प्रेमयोगी वज्र के अनुभव के आधार पर , आत्मज्ञान के बाद, पुरुष में देहपुरुष की तरह का अद्वैतभाव/द्वैताद्वैतभाव दृढ़ हो जाता है। इसका अर्थ है कि द्वैताद्वैतभाव ही मुक्ति के लिए प्रत्यक्षरूप से उत्तरदायी है , आत्मज्ञान नहीं, क्योंकि पूर्वोक्तानुसार, आत्मज्ञान का प्रत्यक्ष प्रभाव तो नश्वर है। यह तो आत्मज्ञान के द्वारा सिखाया गया द्वैताद्वैत का भाव ही है , जो मुक्ति तक ले जाता है। देवता -प्रेमी देवलोक को, भूत-प्रेमी भूतलोक को, मानव-प्रेमी मानवलोक को व पश्वाचारी पशुलोक को जाता है। फिर जो अद्वैत से सभी कुछ को एकसमान रूप से प्रेम करता है, वह कहाँ जाएगा? वास्तव में वह हर स्थान पर एकसाथ उपस्थित रहेगा। यह तो तभी संभव है, यदि वह ब्रम्हलीन हो जाए, क्योंकि ब्रम्ह ही सदैव व सर्वत्र विद्यमान होता है। इससे सिद्ध होता है कि अद्वैतशाली पुरुष मुक्त हो जाता है। इसलिए मुक्ति के इच्छुक को शविद के जैसे द्वैताद्वैतशास्त्र से बंधे रहना चाहिए , जीवनभर, आत्मज्ञान के पीछे भागने की अपेक्षा। ऐसे में, यदि आत्मज्ञान होना हो, तो वह स्वयं ही हो जाता है, क्योंकि आत्मज्ञान के पीछे जितना अधिक भागते हैं, वह उतना ही दूर चला जाता है। वास्तव में आत्मज्ञान की कल्पना करना ही व्यर्थ है, क्योंकि इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। आत्मज्ञान तो उस मस्त-मौला आदमी के तरह की एक स्थिति होती है, जो वास्तव में किसी भी प्रकार का ज्ञान लगती ही नहीं। इसलिए आत्मजागरण कहना अधिक युक्तियुक्त होगा। आत्मज्ञान के पीछे भागने से, अद्वैतनिष्ठा के ऊपर भी संकट मंडराने लग जाता है। विरले व्यक्ति को ही कुण्डलिनीजागरण या आत्मज्ञान का अनुभव इसीलिए होता है ताकि वे अद्वैत के महत्त्व को समझ सकें व औरों को भी समझा सकें। यदि कोई व्यक्ति अद्वैत को छोड़ कर , कुण्डलिनीजागरण या आत्मज्ञान की ओर भागे; तो वह वैसा ही मामला होगा, जिसमें कोई व्यक्ति अपने अध्ययनपूर्ण दैनिक जीवन को छोड़ कर अध्यापकवृत्ति की ओर भागे , परन्तु दोनों से ही हाथ धो बैठे। या यह इस तरह का मामला है कि कोई व्यक्ति स्वर्णभूमि को त्याग कर, सूर्य की लालिमा से चमक रहे पर्वत-शिखर को स्वर्ण-शिखर समझ कर, उसे प्राप्त करने के लिए दौड़ पड़ता है। शविद से जब यह अच्छी तरह से पता चल जाता है कि सृष्टि के हर स्थान पर अनगिनत देहें हैं, व अनगिनत देहपुरुष हैं, तो वह अपनी व अन्य जीवों की देहों के प्रति आसक्त नहीं होता , जिससे उसके पुनर्जन्म का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। कुण्डलिनीजागरण के समय, प्रेमयोगी वज्र, शविद के प्रभाव से उत्पन्न अद्वैत दृष्टिकोण से संपन्न था। उसने उस समय कुण्डलिनी को इसलिए नीचे उतारा, क्योंकि उसे उसमें, उस समय कोई विशेषता प्रतीत नहीं हुई। उसे क्षणिक तड़क-भड़क व उंच-नीच वाले अनुभव से अच्छा व लाभदायक तो अद्वैत की समरसता वाला अपना वही आत्मरूप लग रहा था। फिर भी , प्रकाश व अन्धकार (जगत), दोनों को सरलता से व सदैव के लिए नतमस्तक करने के लिए कुण्डलिनीजागरण का होना आवश्यक है। उसे कुण्डलिनी को नीचे उतारने का भी कोई विशेष दुःख नहीं हुआ। इसका सीधा सा अर्थ है कि शविदप्रेमी कुण्डलिनीजागरण की भी परवाह नहीं करता। इससे यह भी सिद्ध होता है कि अद्वैतदृष्टिकोण कुण्डलिनीजागरण से भी बड़ा है , और मुक्ति के लिए अत्यावश्यक है। कुण्डलिनीजागरण तो केवल अद्वैत को ही पुष्ट करता है। वास्तव में , आत्मज्ञान व कुण्डलिनीजागरण, दोनों ही क्षणिक, तीक्ष्ण व सर्वोत्तम प्रकार की मानसिकता को उत्पन्न करते हैं। मन उस स्तर की मानसिकता के लोभ में छटपटाता रहता है , और उसकी खोज में यहाँ-वहाँ भागता फिरता है। उसे अद्वैत के अतिरिक्त कहीं पर भी , उससे अधिक मिलती-जुलती मानसिकता प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार से वह अप्रत्यक्ष रूप से ही अद्वैतभाव को निरंतर रूप से धारण करना सीख जाता है, जो मुक्ति के लिए अत्यावश्यक है। उस अद्वैत से, उसकी शक्ति व्यर्थ के क्रियाकलापों व विचारों में बर्बाद होने से बचती रहती है। इससे अगले व पूर्व वाले से अधिक बलवान कुण्डलिनीजागरण की संभावना भी उसमें निरंतर बनी रहती है। यदि कुछ न कर सको तो अन्तर्यामी देहपुरुष, भगवान् श्रीकृष्ण की तरह कहते हैं, “सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं हि त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः”। इसका अर्थ यह है कि यदि तन्त्र का ज्ञान न हो, कुण्डलिनी क्रियाशील न हुई हो व यौनयोग भी करना न आए, तो केवलमात्र

इतना तो करना ही चाहिए कि किसी भी प्रेम विशेषतः यौनप्रेम के समय , अपने शरीर व अपनी प्रेमिका (consort) के शरीर के प्रत्येक स्थान पर महान देहपुरुषों का ध्यान किया जाए। इससे अद्वैतदृष्टिकोण स्वयं ही पुष्ट होता रहता है, व कुण्डलिनी भी क्रियाशील होने लग जाती है।

इसी तरह से, कुण्डलिनीजागरण भी मुक्ति जैसी किसी विशेष वस्तु को उपलब्ध न करा कर , अनासक्ति को ही उत्पन्न करता है (क्योंकि पूर्वोक्तानुसार, इससे विश्वास हो जाता है कि सभी कुछ मस्तिष्क के अन्दर ही है , और अपना ही रूप है), जिससे अद्वैत (द्वैताद्वैत/द्वैत के बीच में रहते हुए भी अद्वैत) स्वयं ही उत्पन्न होने लगता है, और बढ़ने लगता है। इसीलिए तो बहुत से अद्वैतसिद्धपुरुष, कुण्डलिनीजागरण व आत्मज्ञान की अभिलाषा भी नहीं रखते। वे शविद के जैसी स्वाभाविकता को ही स्वीकार करते हैं , अन्य कुछ नहीं। वे आत्मज्ञान, कुण्डलिनीजागरण आदि किसी भी विशेष व प्रयत्नप्राप्त अवस्था की सत्ता को ही स्वीकार नहीं करते , फिर भला अहमियत क्यों देंगे? अतः ऐसी अवस्थाओं की वे अभिलाषा ही नहीं करते। उन्हें वास्तव में सब कुछ स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। इसका अर्थ है कि शविद में सभी कुछ विद्यमान है। शविदप्रेमी के मन में कोई प्रश्न नहीं होता , केवल स्वाभाविकता होती है, और आनंद ही आनंद होता है। वे जिस किसी भी स्वतःप्राप्त अवस्था में सदैव प्रसन्न रहते हैं। वे ऐसी -वैसी विशेष अवस्थाओं को मानसिक भ्रम से उत्पन्न द्वैत की उपज मानते हुए , उन्हें मिथ्या समझते हैं। उनके दृष्टिकोण से सभी कुछ शविद की तरह ही अद्वैतपूर्ण , सामान्य व स्वाभाविक है। इन सभी तथ्यों से प्रतीत होता है कि द्वैताद्वैतनिष्ठा में ही वास्तविक धर्म, वास्तविक कल्याण व वास्तविक मुक्ति छिपी हुई है।

एक बार लेखक ने देखा कि पूर्वोक्त, हवा के झंझावात से पूर्ण जलाशय की ओर वायु का प्रवाह रुक सा गया था। वास्तव में जंगली बीहड़ों से , जिन संकरी घाटियों व गुफाओं से होकर वह वायु का प्रवाह आता था, उसमें कुछ वायुयान, हवा के खिंचाव में फँस कर अन्दर घुस आए थे। वैसे तो जब-तब उस हवा के प्रवाह में फँस कर वायुयान अन्दर घुसते रहते हैं; परन्तु स्टिंगर मिसाइल (stinger missile) धारण किए हुए, घाटियों व गुफाओं के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थान पर तैनात सैनिक, उनको आसमान से नीचे गिराते रहते हैं, और नष्ट करते रहते हैं। कई बार तो बड़े-२ व चित्र-विचित्र आकार-प्रकार के माँसभक्षी पशु-पक्षी भी, देहदेश के पालतु पशु-पक्षियों की गंध से आकृष्ट होकर, तेज हवा के झोंकों की सहायता से अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। कई बार तो वे नरभक्षी भी बन जाते हैं। उन सभी को भी सैनिकों के द्वारा मार गिरा दिया जाता है। उस दिन तो बहुत अधिक संख्या में वायुयान नजर आ रहे थे, व उनमें बैठे लोग भी दुष्ट प्रकृति के लग रहे थे। सैनिक उनसे निपट नहीं पाए और वे बहुत अन्दर तक प्रविष्ट हो गए। वे अपने बमवर्षक विमानों से चित्र-विचित्र प्रकार के विध्वंसक बमों को गिराए जा रहे थे , जो उन वायुमित्र घाटियों व गुफाओं को अत्यधिक हानि पहुंचा रहे थे। स्थान -२ पर गड्ढे पड़ गए थे, व चट्टानें उखड़ गई थीं। उनके मलबे से घाटियाँ व गुफाएँ संकरी हो रही थीं। जैसे -२ बमवर्षक आगे-२ बढ़ रहे थे, वैसे-२ ही घाटियों व गुफाओं की संकीर्णता बढ़ती जा रही थी। कई संकरी गुफाओं को तो उन्होंने पूर्णतः अवरुद्ध कर दिया था। इससे जलाशय तक पहुँचने वाला , वायु का प्रवाह बहुत कम हो गया था। पूर्वोक्त वायुवाहक कर्मचारी बहुत तेजी से काम कर रहे थे , ताकि देहदेश में हवा की कमी न पड़ जाती। वे काम के बोझ से क्षीण हो रहे थे। सारे देहदेश में उच्चसतर्कता व आपातकाल का दौर घोषित किया जा चुका था। जलविभाग अपनी पूरी क्रियाशीलता दिखा कर , अधिक से अधिक जल को पूरे देहदेश में प्रसारित कर रहा था, जिससे उसमें तैर/बह रहे, वे पूर्वोक्त वायुवाहक कर्मचारी शीघ्रता से हर स्थान पर वायु को उपलब्ध करा सकते। जलाशय तक वायु को पहुँचाने के लिए, घाटियों व गुफाओं के द्वारों पर बड़े-२ पम्प (pump) फिट (fit) कर दिए गए थे, जो अपनी पूरी क्षमता से काम करते हुए , अधिक से अधिक हवा को खींच रहे थे। वे देहदेश की बहुमूल्य बिजली का जम कर उपयोग कर रहे थे। अधिक बिजली पैदा करते हुए, देहदेश के कोयले व पैट्रोल (petrol) आदि ऊर्जास्रोतों के भंडार खाली होने की कगार पर थे। बड़े-२ पम्प व उन पर काम करने वाले कर्मचारी भी काम के अत्यधिक बोझ के कारण हाँफने लग गए थे। पूरे देहदेश के लाखों -करोड़ों देहपुरुषों का दम घुटने लग गया था। ऐसा लग रहा था कि वे हवाई -दुश्मन, पूरे देहदेश को ही नष्ट करने पर तुले हुए थे। देहदेश का राजा भी अपने देश की , मंत्रियों की व अधिकारियों की वैसी दयनीय हालत देखकर, बार-२ गश खा कर गिर रहा था। राजा ने स्वयं भी बहुत से उपाय किए, जो वह कर सकता था। वह स्वयं ही बड़े-२ पम्पों को व बहुत से कर्मचारियों को अपने साथ लेकर, प्रभावित क्षेत्र की ओर चल पड़ा। उसने जी-तोड़ मेहनत करके, हवा के प्रवाह को बना कर रखा, परन्तु वह स्वयं भी थक गया था। उसने स्वयं कर्मचारियों के साथ मिलकर, ऊपर-२ से जितना हो सकता था, घाटियों व गुफाओं से बहुत सा मलबा बाहर निकाल कर, उन्हें साफ किया, परन्तु फिर भी बहुत सा मलबा अन्दर रह गया था, जो वायु-प्रवाह को अवरुद्ध कर रहा था। वह थकान के मारे चूर हो चुका था। जब उसे और कुछ नहीं सूझा, तब वह अपने मित्र राजाओं के पास सहायता की आशा से पहुंच गया। कई बार , पुरानी शत्रुता या उदासीनता के कारण, दूसरे राजा सहायता करने से मना भी कर देते हैं। इसी तरह, बहुत विरले मामलों में, कई दुष्ट-प्रकृति वाले राजा तो उल्टी सलाह भी दे देते हैं, या उल्टे प्रकार से भी सहायता करते हैं। कई बार तो सहायता के बदले में , दूसरे राजा मुद्रा भी मांग लेते हैं। परन्तु वे राजा परोपकारी -स्वभाव के थे। अतः पुरानी शत्रुता को भुलाकर, उन्होंने प्रभावित राजा की बहुत सहायता की। उन्होंने उस राजा के लिए श्रमदान किया। जब उससे भी बात नहीं बनी, तब

वे सभी राजा इकट्ठे होकर, चक्रवर्ती सम्राट के पास पहुंचे। उसने उन्हें बहुत से अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध करवाए। उन अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से, सारे वायुयान व ड्रोन (drone) आदि शत्रुचालित व स्वचालित प्रकार के सभी चित्र-विचित्र अंतरिक्षगामी वाहन गिरा दिए गए व नष्ट कर दिए गए। फिर वे घाटियाँ व गुफाएँ भयमुक्त हो गई थीं। राजा ने भी कुछ राहत की साँस ली। फिर भी, घाटियों व गुफाओं में जमा पड़ा हुआ मलबा हटाने में, देहदेश के कर्मचारियों को बहुत अधिक समय लगा, क्योंकि वे पहले ही बहुत क्षीण हो चुके थे, ऊपर से अन्दर दम घुटाने वाला वातावरण भी मौजूद था। दूसरा कारण यह था कि वह मलबा घाटियों व गुफाओं में ऊपर, चढ़ाई की ओर ढोना पड़ रहा था, क्योंकि नीचे-२ को तो घाटियाँ व गुफाएँ संकरी होती जा रही थीं, जिससे उनका मलबे से पूर्णतः बंद होने का खतरा बना रहता था। वैसे भी यदि सबसे नीचे स्थित जलाशय तक वह मलबा पहुँच जाता, तो देहदेश के लिए वायु का प्रवाह पूर्णतः रुक जाता, जो देहदेश के जीवों व वनस्पतियों के लिए बहुत घातक सिद्ध होता। इस तरह से , बाद के कई दिनों तक भी जनता व उनका राजा, तनाव व बेचैनी के साथ जीवन बिताते रहे। जब घाटियाँ व गुफाएँ पूरी तरह से साफ कर दी गईं, तब स्वच्छ देहदेश के सभी देहपुरुषों को लेखक ने पुनः प्रसन्नता से झूमते हुए देखा।

उस उपरोक्त तालाब के निकट ही, जलविभाग का एक बहुत बड़ा मोटर-पंप लगा होता है, जो बहुत हलचल के साथ बहुत शोर भी करता रहता है। वह पूरा क्षेत्र, एक बहुत बड़े पहाड़ के द्वारा, शेष देहदेश से विभाजित जैसा किया गया प्रतीत होता है। यह उसी तरह होता है , जिस तरह सेना की अत्यधिक क्रियाशील छावनी को आसपास के, अपेक्षाकृत शाँत नागरिक क्षेत्रों से अलग किया हुआ होता है। यह युक्तियुक्त भी है , क्योंकि वह क्षेत्र अत्यधिक क्रियाशील होता है, जिससे देहदेश के शाँतिपूर्ण भागों को उससे परेशानी हो सकती है। वह क्षेत्र वायु के तेज झोंकों से भरा होता है। वह ठंडी, धूल-मिट्टी वाली, तूफान-बवंडर वाली व हवाई हमलावरों से युक्त वायु, कहीं देहदेश के अन्दर न प्रविष्ट हो जाए, इसीलिए वह हिमालय-सदृश पहाड़ वहाँ पर प्राकृतिक रूप से बना होता है। शविद से जब पुरुष को यह ज्ञान हो जाता है कि जो कुछ भी सृष्टि में है, वह सभी कुछ हमारे अपने शरीर में भी है, तो वह संपूर्ण सृष्टि (व्यक्त व अव्यक्त,दोनों) के प्रति अनासक्त हो जाता है।

इस तरह से, तांत्रिक रहस्य का द्वार प्रेमयोगी वज्र के समक्ष खुल चुका था। फिर प्रेमिका (consort) का चित्र/कुण्डलिनी, उसके निचले व ऊपरी चक्रों के बीच में स्वयं ही घूमता रहा, जिससे वह कुछ महीनों के प्राकृतिक/स्वतःस्वाभाविक अभ्यास से, उसके मस्तिष्क में समाधि के रूप में स्थिर हो गया। प्रेमयोगी वज्र की संगति में जो एक वृद्ध आध्यात्मिक पुरुष थे , वे उसके प्राकृतिक तंत्र-गुरु के रूप में स्वयं ही सिद्ध हो गए , क्योंकि वे शान्ति-स्थापक के रूप में अनजाने में ही तांत्रिक -कार्य कर रहे थे, अर्थात उसकी यौन ऊर्जा को जोखिम-भरी सीमा के ऊपर जाने से रोक रहे थे। उससे वह ऊर्जा बर्बाद न होती हुई, मस्तिष्क में जाकर कुण्डलिनी का पोषण व वर्धन कर रही थी। क्षणिक दृष्टि से देखते हुए ही , प्रेमयोगी वज्र को अपनी मानसिक प्रेमिका (consort) के भौतिक शरीर में अपनी कुण्डलिनी दृष्टिगोचर होती थी। वह कुण्डलिनी , और कुछ नहीं, अपितु उसके अपने तांत्रिक गुरु का मानसिक चित्र ही था, अर्थात अपने तांत्रिक गुरु के रूप को उसने अनजाने में ही, प्रेमिका (consort) की देह में स्थित, तंत्रदेवस्वरूप देहपुरुष को प्रदान किया हुआ था। इसी तरह से प्रेमयोगी वज्र को अपनी प्रेमिका (consort) का मानसिक चित्र (स्त्रीलिंग कुण्डलिनी) अपने तंत्र गुरु के देहपुरुष के रूप में दृष्टिगोचर होता था। इस तरह से प्रेमयोगी वज्र के मन में दोनों कुण्डलिनियों का समावेश दृढ़ हो गया। एक कुण्डलिनी पुरुषरूप थी तो दूसरी स्त्रीरूप। वे दोनों कुण्डलिनियां एक दूसरे को प्रवृद्ध कर रही थीं। वे दोनों वैसी ही थीं , जैसी कि तांत्रिक बुद्धवाद/बुद्धिस्म में विजुवलाईजड डाईटी (visualized deity) व तंत्रगुरु के साथ, उनकी अपनी-२ प्रेमिकाएं (consorts) होती हैं। वास्तव में देहपुरुष में पुरुष-स्त्री, दोनों के गुण होते हैं, परन्तु उस उभयलैंगिक (bigender) रूप तक पहुँचने के लिए हमें देहपुरुष को पुलिंग -देहपुरुष व स्त्रीलिंग-देहपुरुष में विभक्त करना पड़ता है। ये परस्पर आकर्षक रूप एक दुसरे को तब तक बढ़ाते रहते हैं, जब तक कि संपूर्ण देहपुरुष (आत्मज्ञान) की उपलब्धि नहीं करा देते। यही शरीरविज्ञानदर्शन का तंत्रसम्मत सार है। उपरोक्त दोनों कुण्डलिनियोंके बीच में बढ़ते हुए परस्पर लैंगिक आकर्षण से , प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी को सहस्रार तक उठाने वाला एक महान बल तीव्रता से उत्पन्न हो गया। संभवतः वे दोनों कुण्डलिनियां एक साथ सहस्रार तक उठीं व वहाँ मिश्रित होकर आत्मज्ञान के रूप में परिणत हो गईं। क्षणिकात्मज्ञान के शिखर से उतर कर , वह कुछ क्षणों के लिए अपनी प्रेमिका (consort) की मुख्य सखी के भौतिकरूप से निर्मित मानसिक चित्र के साथ समाधिस्थ हो गया था, अर्थात उसे पूर्णरूपता व प्रचंडता के साथ, केवल प्रेमिका (consort) की उस सखी के रूप का अनुभव हुआ, बाकी का नेपथ्य-दृश्य (background scene) तो बहुत धीमा था। इससे यह संभावना भी प्रबल हो जाती है कि उसने प्रेमिका (consort) के रूप के साथ लगे समाधि-रूपी प्रक्षेपण-स्थान से, सीधे ही आत्मज्ञान के शिखर के लिए उड़ान भरी हो , अर्थात असम्प्रज्ञात समाधि के प्रारम्भ में ही आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो। कई वर्षों के बाद, जब प्रेमयोगी वज्र ने केवल पुरुष-कुण्डलिनी को सहस्रार तक उठाया, तो केवलमात्र १० पलों/सैकंड की समाधि से ही संतोष करना पड़ा , बिना आत्मज्ञान के। वह उस समाधि को स्थिरता नहीं दे सका , क्योंकि उस समय कुण्डलिनियों के मध्य में

अंतरलैंगिक आकर्षण नहीं था, यद्यपि वह पुरुष-कुण्डलिनी को उठाने के लिए अंतरलैंगिकसंसर्ग का सहयोग ले रहा था। अतः सिद्ध होता है कि स्त्री - पुरुष संबंधित मानसिक-प्रणय (mental romance) वाले पूर्णरूपेण (full-fledged) तंत्रयोग के बिना, पूर्ण रोमांच से भरा हुआ आत्मज्ञान-अनुभव बहुत कठिन व अव्यावहारिक जैसा है। यह वर्णन तो केवल समझने मात्र के लिए ही है। सिद्धांतदर्शनानुसार तो कुण्डलिनी स्त्रीलिंग ही प्रतीत होती है।

उपरोक्तानुसार ही, कई बार प्रेमयोगी वज्र ने स्त्री (प्रथम देवीरानी) के रूप की कुण्डलिनी बना कर भी द्वितीय देवीरानी के साथ तांत्रिकसम्बन्ध बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसका अर्थ है कि विषमवाही तंत्र में , तांत्रिक साथी से विपरीत लिंग की कुण्डलिनी बना कर ही प्रभावकारी अंतरलैंगिक आकर्षण उत्पन्न होता है।

किसी दिव्य वरदान/आशीर्वाद से ही, दोनों की सटीक किशोरावस्था में , प्रेमयोगी वज्र व उसकी तांत्रिक प्रेमिका (consort) के मध्य में वह मानसिक तांत्रिक प्रारम्भ (visualized tantric initiation) स्थापित हो गया था। उससे प्रेमयोगी वज्र तंत्रयोग के अभूतपूर्व तेज से भर गया था। आश्चर्य की बात है कि तांत्रिक प्रेमिका (consort) की सखी-सहेलियाँ भी प्रेमयोगी वज्र के साथ मानसिक प्रेमिका (consort) के जैसा ही व्यवहार करती थीं, यद्यपि कुछ अधिक अप्रत्यक्षता के साथ। वे संभवतः वैसी ही थीं , जैसी कि शविद-वर्णित देहदेश की राजकुमारी का अनुगमन करने वाले उसके सखी-समूह व किंकर आदि। प्रेमयोगी वज्र के तांत्रिक तेज से प्रभावित होकर, उसके गुरु भी उसकी ओर स्वतः ही आकर्षित होने लगे, व अपने पूरे जीवन की साधना का फल अनजाने में ही उसे दे बैठे। उस साधना के अद्वितीय व पौरुषीय तेज के प्रकाश से प्रभावित होकर , प्रेमयोगी वज्र की प्रेमिका (consort) भी प्रेमयोगी वज्र की ओर , मानसिक रूप से, और अधिक आकर्षित हो गई। उससे, प्रेमयोगिनी का चित्र, प्रेमयोगी के मन में, और अधिक सुदृढ़ हो गया। उसके परिणामस्वरूप, प्रेमयोगी वज्र में परिलक्षित उसकी प्रेमिका (consort) के, और अधिक तेज से प्रभावित होकर, उसके गुरु उसकी ओर पहले से भी अधिक आकर्षित हो गए। इस तरह से वह सिलसिला चलता रहा , और प्रेमयोगी वज्र के गुरु व उसी की तांत्रिक प्रेमिका (consort), दोनों ही प्रेमयोगी वज्र के मन में एक दूसरे के ध्यान को बढ़ाते गए। वृद्ध -गुरु के सान्निध्य से प्रेमयोगी वज्र को आत्मसंयम की शक्ति भी मिलती रही , जिससे वह प्रेमिका (consort) के साथ प्रत्यक्षतांत्रिकयौनसंसर्ग से बचा रह सका, व मानसिक यौन-आकर्षण को पूरी प्रचंडता के साथ कायम रख सका, जिससे जल्दी ही प्रेमयोगी वज्र के मन में प्रेमिका (consort) के रूप के साथ सम्प्रज्ञात समाधि (प्रेमिका के चित्र का निरंतर रूप से मन में बस जाना) लग गई। फिर प्रकृति की किसी दिव्य योजना के प्रभाव से प्रेमयोगी वज्र व उसकी प्रेमिका (consort) का वियोग हो गया। उससे पतंजलि-योग के सिद्धांतानुसार, प्रेमयोगी वज्र असम्प्रज्ञात समाधि (अ=नहीं, सम्प्रज्ञात=प्रचुरता से जाना गया, अर्थात प्रेमिका (consort) के साथ जुड़ा हुआ, प्रेमयोगी वज्र का सभी कुछ क्षीण व निष्प्रभावी हो गया ; यह आनंदमयी व संकल्पशून्यता जैसी अवस्था होती है) में प्रविष्ट हो गया , जिसके अन्दर वह क्षणिकात्मज्ञान छिपा हुआ था। प्रेमिका के साथ तो प्रेमयोगी वज्र का सभी कुछ जुड़ा हुआ था , यहाँ तक कि उसकी अपनी मन-आत्मा भी। इसलिए वह स्वयं भी शून्य हो गया। वह शून्यता आभासिक थी। वास्तव में था तो सभी कुछ, परन्तु शून्य जैसा था। संभवतः वह महान अनासक्ति व महान अद्वैत की स्थिति होती है। वास्तव में, प्रेमयोगी वज्र की तरह का, अपनी प्रेमिका (consort) को मन में बैठाने का काम तो बहुत से लोग कर लेते हैं, परन्तु बाद में वे अपने मन से, उसका पूर्ण रूप से त्याग नहीं कर पाते। इसी कारण से उन्हें आत्मज्ञान नहीं हो पाता। दूसरे शब्दों में , वे सम्प्रज्ञात समाधि की मोह-माया को त्याग कर, पूर्णत्याग-रूपी उस असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त ही नहीं कर पाते , जिसमें आत्मज्ञान छिपा हुआ होता है। वास्तव में वे प्रेमिका (consort) को इसलिए नहीं भुला पाते, क्योंकि उन्होंने प्रेमिका (consort) से, आसक्ति के साथ प्रेम किया हुआ होता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रेम के समय भी शविद, पुराण, सद्गुरु, सद्वृद्ध आदि अद्वैतपरकों की संगति का अप्रतिम महत्त्व है। यह तंत्रसिद्धांत के अनुरूप ही है।

उस समय तो प्रेमयोगी वज्र को ऐसा लगा, जैसे कि समाज में भय का होना भी आवश्यक होता है। यदि उसे समाज का भय न होता, तो वह मर्यादा का उल्लंघन कर देता, जिससे यौनाकर्षण से उत्पन्न सम्प्रज्ञात समाधि में विघ्न पड़ जाता। इसी तरह से , यदि भय न होता, तो प्रेमयोगी वज्र व उसकी मानसिक प्रेमिका (consort/प्रेमयोगिनी) का वियोग न हुआ होता, जिससे वह असम्प्रज्ञात समाधि (शून्यत्व समाधि) न उत्पन्न हुई होती, जिसने प्रेमयोगी वज्र को आत्मज्ञान कराया। उपरोक्त भयनिर्मित अनुकूल परिस्थितियों के न होने से , योगी व योगिनी, दोनों ही भौतिक रूप से अवश्य चमक जाते, मुक्तसंस्कृति वाले पाश्चात्य लोगों की तरह, यद्यपि फिर उनका आध्यात्मिक विकास नहीं, अपितु संभवतः आध्यात्मिक हानि ही हुई होती।

प्रेमयोगी वज्र को यह भी लगा कि वह आत्मज्ञानकारक व प्रचंड मानसिक यौनाकर्षण तब भी संभव न हुआ होता , यदि प्रेमयोगी वज्र व प्रेमयोगिनी, दोनों ही किशोरावस्था के प्रवेशद्वार पर न होते। उसे यह भी लगा कि वह तब भी संभव नहीं हुआ होता , यदि दोनों लगभग एकसमान आयु के व एकसमान व्यवहार वाले न होते। वह तब भी संभव न हुआ होता , यदि उनके बीच में, कभी एकांत में बातचीत भी हुई होती। वह तब भी संभव न हुआ होता, यदि दोनों में से किसी ने भी परिपक्व आयु में प्रत्यक्षयौनसम्बन्ध का , किसी भी रूप में या कभी भी आस्वादन किया होता। वह तब

भी नहीं हुआ होता, यदि उतने स्तर का निकटपरिचय (close interaction) उनके बीच में पहले भी कभी हुआ होता। वह तब भी न हुआ होता, यदि दोनों एक दूसरे के आत्मीय मित्र (soul mate) व शिव-शक्ति (twin flame) न होते। वह तब भी न हुआ होता, यदि दोनों आपस में भौतिक रूप से बंध जाते। वह तब भी न हुआ होता, यदि प्रेमयोगिनी ने प्रेमयोगी वज्र के साथ अप्रत्यक्ष तांत्रिक सम्बन्ध (indirect tantric initiation) बनाने के लिए अत्यल्प सी पहल न की होती। वह तब भी न हुआ होता, यदि प्रेमयोगी वज्र ने स्वतःप्राप्त अप्रत्यक्षतांत्रिक प्रारम्भ (initiation) को बनाने में संकोच किया होता। वह तब भी न हुआ होता, यदि प्रेमयोगी वज्र उस पूर्वोक्त तांत्रिक प्रारम्भ (tantric initiation) में अपने प्रत्यक्ष जुड़ाव (involvement) का, प्रेमयोगिनी को जरा भी भान होने देता। वह तब भी नहीं हुआ होता , यदि प्रेमयोगी वज्र तांत्रिक इनिशिएशन को अहंकार व स्वेच्छा से करता। वह तब भी नहीं हुआ होता, यदि प्रेमयोगिनी निरंतर अपने हावों-भावों से उसके मन में अपने प्रति आकर्षण न बढ़ा रही होती। वह तब भी न हुआ होता, यदि प्रेमयोगिनी उसे अत्यधिक सुन्दर, चतुर, हँसमुख व आकर्षक रंग-रूप वाली न प्रतीत होती। वह तब भी न हुआ होता, यदि प्रेमयोगिनी प्रेमयोगी वज्र के आत्मज्ञान से पहले ही, उससे नाराज हुई होती। वैसा होने पर, प्रेमयोगिनी का श्राप (बददुआ) प्रेमयोगी वज्र को लगता, जिससे क्षणिकात्मज्ञान होने में अत्यधिक बाधा पहुंचती। यह तो अच्छा हुआ कि उसकी साँकेतिक नाराजगी का सामना , प्रेमयोगी वज्र को क्षणिकात्मज्ञान के बाद करना पड़ा। यहाँ तक कि जिस दिन उसकी अध्यापिका ने कक्षा में प्रजनन -सम्बंधित अंगों व उनकी कार्यप्रणालियों का सचित्र वर्णन किया था, उस दिन वह कक्षा में किसी दैवीय संयोगवश अनुपस्थित था। यदि वह उस दिन उपस्थित होता , तो उसके व देवीरानी के बीच में यौनाकर्षण संभवतः कम हो जाता, जिससे उस समाधि में क्षीणता उत्पन्न हो जाती , जो आत्मज्ञान कराती है। वह तब भी न हुआ होता , यदि सभी अध्यापकों व अध्यापिकाओं ने उसे उचित सहयोग व मार्गदर्शन न दिया होता। वह तब भी न हुआ होता , यदि प्रेमयोगी वज्र प्रेमयोगिनी का , मन से अत्यधिक आदर न करता। वह तब भी न हुआ होता, यदि प्रेमयोगी वज्र को उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष की संगति न मिली होती। अति निकट के व परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध के कारण ही, कालांतर में उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष का मानसिक चित्र प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी बन गया। संभवतः इसीलिए कहा जाता है कि तंत्र में गुरु की अत्यधिक आवश्यकता होती है। वे वृद्धाध्यात्मिक पुरुष (पितामह) तो उसके गुरु स्वयं ही व अनजाने में ही बन गए थे , जिससे प्रेमयोगी वज्र को बिना किसी विशेष साधना के , आत्मज्ञान के केवल २० वर्षों के बाद, इतनी शीघ्रता व सरलता से कुण्डलिनीजागरण का अनुभव हो सका। प्रेमयोगी वज्र के गुरु, वे पूर्वोक्त वृद्धाध्यात्मिक पुरुष, उसके कुण्डलिनीजागरण से लगभग २० वर्ष पूर्व ही स्वर्ग सिधार गए थे। इसका अर्थ है कि उन पुराने गुरु पर भी ध्यान लगाया जा सकता है , और उन्हें भी कुण्डलिनी के रूप में जागृत किया जा सकता है , जो कई वर्ष पहले ही मर्त्यलोक से मुक्त हो गए हों। जीवंत व्यक्ति को कुण्डलिनी बनाना तभी सफल होता है, यदि उसके भौतिक रूप के प्रति अनासक्ति विद्यमान रहे, अन्यथा उसके भौतिकरूप के सम्बन्ध से, उसका शुद्धरूप में मानसिक ध्यान करना कठिन हो जाता है। फिर भी , जीवित गुरु के ऊपर निःसंकोच ध्यान लगाया जा सकता है। इसीलिए तो गुरु के प्रति श्रद्धा व आदर का भाव बनाया जाता है, ताकि उनके भौतिक रूप के प्रति आसक्ति न उत्पन्न हो पाए। प्रेमयोगी वज्र ने तो प्रथम देवीरानी के भौतिक रूप के सम्बन्ध को भी ठुकरा दिया था , तभी तो उसके मन में देवीरानी के रूप की नित्यसमाधि लग पाई थी , जिससे उसे क्षणिकात्मज्ञान होने में सहायता मिली। यद्यपि वैसा कर पाना कठिन होता है , फिर भी अभ्यास से सरल हो जाता है। उन वृद्धाध्यात्मिक पुरुष/गुरु की संगति से ही प्रेमयोगी वज्र वैसा कर पाया था। इस तरह से हम देख सकते हैं कि व्यावहारिक जीवन में आत्मज्ञान कराने के लिए , कितनी अधिक अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, व कितने अधिक जन्मों के पुण्यों के फल की, सद्गुरु के आशीर्वाद की व दैव-कृपा की आवश्यकता भी होती है; फिर भी युक्तियुक्त व शुभ प्रयासों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। वैसे, शविद या वेद-पुराण तो केवल अनुकूल मानसिक परिस्थितियों को ही तैयार करते हैं, भौतिक परिस्थितियों को नहीं या बहुत अल्परूप में। भौतिक परिस्थितियों की अनुकूलता के लिए तो भौतिक प्रयास करना ही पड़ेगा। वैसे तो न्यूनाधिक रूप से शविद सदैव लाभकारी है, परन्तु भौतिक प्रयासों व भौतिक परिस्थितियों की अनुकूलता के साथ तो यह सर्वाधिक लाभकारी होता है।

वियोग के बाद, समय बीतता गया, और वह देवीरानी व वृद्धाध्यात्मिकपुरुष के मानसिक चित्रों के रूप में विद्यमान कुण्डलिनी के सहारे आनन्दमय जीवन जीता गया। परन्तु लम्बे समय के बाद , प्रेमयोगीवज्रः स्वकुण्डलिनीम अर्थात् प्रथमदेवीरानीचित्रं वृद्धाध्यात्मिकपुरुषचित्रं च विस्मरन् आसीत। तद्कुण्डलिनी स्वयमेव तं यौनयोगप्रति प्रेरयन् आसीत। सः तद्प्रेरणां साधारणयौनसंबन्धं निर्मातुं प्रदत्तां अवागच्छत्, यतोहि सः यौनयोगसंबन्धे अपरिचितः आसीत। परं सः गर्भधारणभयात् समाजसंस्कृतिभयाच्च स्त्रीं अन्वेषितुम् अस्मर्थः अभवत्। अतः सः पुरुषप्रति एव आकर्षितः भूत्वा , तद्सह एव अंतरंगसम्बन्धं स्थापितुं अग्रसरः अभवत्, परं ईश्वरस्य दिव्यप्रेरणया रक्षितः येन् तद्संबन्धं सान्केतिकं एव । अनेन लेखकलिखिततन्त्रसूत्रबलेन च पर्याप्तबलं लब्ध्वा तद्कुण्डलिनी पुष्टा अभवत्। ततः कुण्डलिनीधारणेन सः अतीव कार्यक्षमः अभवत् तदुद्वाहपर्यन्तं। ततः तद्कुण्डलिनीं तद् पत्नीदेवी

अर्थात द्वितीयदेवीरानी अपोषयत्। उसकी कुण्डलिनी उसे यौनसंबंध बनाने के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित कर रही थी , क्योंकि यौनसंबंध के विचार के साथ ही, उसकी कुण्डलिनी जगमगा जाया करती थी। इससे यह प्रतीत होता है कि तीव्र यौनेच्छा वाले अधिकाँश लोगों में , कुण्डलिनी क्रियाशील होती है, या क्रियाशील होने के लिए ललायित रहती है, और वह अपने क्रियाशीलन या जागरण के लिए, उन्हें यौनसंबंध बनाने के लिए प्रेरित करती रहती है। यद्यपि अधिकाँश लोग इस बात को समझ नहीं पाते, और उन्हें उचित मार्गदर्शन भी नहीं मिल पाता, जिससे उनमें से बहुत से, या तो यौनापराधी बन जाते हैं, या फिर वे कुण्डलिनीजागरण के लिए, यौनयोग की सहायता ही प्राप्त नहीं कर पाते।

देहदेश का राजा, देहदेश के सर्वाधिक सुरक्षित स्थान पर बने हुए, एक वातानुकूलित भवन में बैठा होता है। वह कभी भी वहाँ से बाहर नहीं निकलता, क्योंकि वहाँ पर ही उसे सारी सुविधाएँ उपलब्ध होती रहती हैं। उसके भवन में एक अत्याधुनिक दूरदर्शन-यन्त्र लगा होता है, जिससे वह पूरे देहदेश का हालचाल जानता रहता है। देहदेश के परिचालन के लिए विभिन्न आदेशों का, विशेषतः विदेशव्यवहारसंबंधी आदेशों को वह वहीँ से, संचार के आकाशीय कृत्रिम उपग्रहों व दूरसंचार-उपकरणों के माध्यम से, पूरे देश में प्रसारित करवाता रहता है। इसी तरह से , पूरे देश में फैले हुए उसके पत्रकार, सम्पूर्ण देहदेश की जानकारी को अपने विद्युतयंत्रों से इकट्ठा करते रहते हैं, और सम्पूर्णदेश में फैली हुई दूरसंचार (telecommunication) की डोरियों (cables) के माध्यम से व बेतार-उपग्रहों (wireless satellites) के माध्यम से प्रसारित करते रहते हैं; जो राजकक्ष के दूरदर्शन पर, लिखित व श्रुत सूचना के रूप में राजा को उपलब्ध होती रहती हैं। राजा के कुछ गुप्तचर -कैमरामेन (camera-men) देहदेश-सीमा के कुछ विशेष व महत्त्वपूर्ण स्थानों पर भी तैनात रहते हैं, और बाहर के हालचाल के बारे में राजा को सूचित करते रहते हैं। पूरे देहदेश की सीमा स्पर्श-सेंसरों (touch-sensors) से ढकी होती है, ताकि देहदेश की, विविध प्रकार के वातावरणीय विघ्नों से सुरक्षा की जा सके। इसी तरह से , राजा विभिन्न मंत्रालयों व विभागों को अपने कक्ष से ही आदेश देता है। उसके कक्ष में अनेक प्रकार के विद्युतसंवेद -उत्पादकयंत्र (electric signal generator) लगे होते हैं, जिनसे भिन्न-२ प्रकार की विद्युत सूचनाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। प्रत्येक कार्य के लिए एक विशेष प्रकार का सिग्नल (signal) निर्धारित किया गया होता है। विभिन्न कार्यों के अनुसार, राजा अपने आरामदायक पलंग पर लगे बटनों को मात्र छूता भर है, जिससे किसी विशेष कार्य को करने का आदेश विद्युत-सिग्नल के रूप में, स्वर्णिम-तारों (golden wires) के माध्यम से, विभिन्न मंत्रालयों को प्रसारित होता रहता है। उस विद्युतीय आदेश (electronic-order) को मंत्रालयों में लगी डिकोडर (decoder) मशीनों से डिकोड कर लिया जाता है, जिससे वह सन्देश उनके कंप्यूटर (computer) पर, पढ़ी जाने वाली भाषा के रूप में प्रकट हो जाता है, और पढ़ लिया जाता है। एक बार लेखक ने देखा कि बाहरी दृष्यों के चलचित्रों (videos) को दर्ज (record) करने वाले, तद्संबंधित मुख्य दल के देहपुरुष बीमार हो गए थे। इससे वे कोई भी चित्र नहीं खींच पा रहे थे , जिससे राजा अपने देश के बाहर की परिस्थितियों को अपने दूरदर्शन पर नहीं देख पा रहा था। उससे उसके देहदेश का आयात -निर्यात कुप्रभावित हो रहा था। तभी उन चित्रकों की चिकित्सा करवाई गई, परन्तु वे फिर भी ठीक न हो सके। अंततः उनके स्थान पर नए चित्रकों/कैमरामेनों को नियुक्त करना पड़ा। कई बार उनके कैमरों के लेंस (lenses) ख़राब हो जाते हैं, जिन्हें बदलवाना ही पड़ता है। उसके लिए , विदेशों से शीशे मंगवाए जाते हैं। गंगसाजपुर नामक एक मनोरम देहदेश के अन्दर, वाणी दर्ज करने वाले (audio recorder) देहपुरुष बीमार हो गए थे। उससे राजा के दूरदर्शन पर चित्र तो आ रहे थे , परन्तु उनकी आवाज गायब थी। एक अन्य देहदेश में, दोनों ही प्रकार के देहपुरुष काम छोड़ कर भाग गए थे। उस समय राजा बाहर के हालचाल से , पूरी तरह से अनभिज्ञ हो गया था। उसे केवल सीमा -संवेदकों (border-sensors) द्वारा प्रसारित की गईं, छोटी-मोटी सूचनाएँ ही प्राप्त हो रही थीं। उससे उस देहदेश का वैश्विक-व्यापार सबसे निचले स्तर तक लुढ़क गया था। राजा फिर अपने ही विचारों में खोया रहता था , और अनेक प्रकार की कल्पनाओं व यादों के सहारे जी रहा था। कई देहदेशों के तो दूरदर्शन -यन्त्र ही खराब हो जाते हैं। कई देहदेशों में तो , उनके अस्तित्व में आने से लेकर ही , ऐसे महत्त्वपूर्ण देहपुरुष या यन्त्र या दोनों ही , उपलब्ध ही नहीं होते हैं। ऐसे में उन देहदेशों को , बाहरी व्यापारों के लिए, पूरी तरह से दूसरे देहदेशों के आश्रित रहना पड़ता है।

यह एक विचित्र विरोधाभास ही है कि प्रेमयोगी वज्र को प्रथम देवीरानी के साथ अप्रत्यक्षयौनयोग से ही क्षणिकात्मज्ञान -अनुभव उपलब्ध हो पाया; जबकि द्वितीयदेवीरानी के साथ प्रत्यक्षयौनयोग से ही उसकी कुण्डलिनी जागृत हो सकी। प्राचीनतंत्र में लिखा भी है कि प्रत्यक्षयौनयोग से आत्मज्ञान सर्वाधिक सुलभ होता है। इसका अर्थ यह है कि यौनयोग आवश्यक है, अप्रत्यक्ष हो या प्रत्यक्ष। हो सकता है कि उसे प्रथम देवीरानी के साथ प्रत्यक्षयौनयोग से पूर्णात्मज्ञान (अधिक देर तक टिकने वाला या जागृतावस्था में आत्मज्ञान) मिलता, परन्तु अप्रत्यक्षयौनयोग से उसे केवल क्षणिकात्मज्ञान (स्वप्नकालिक) से ही संतुष्ट होना पड़ा। फिर भी, प्रत्यक्षयौनयोग की क्या आवश्यकता है, यदि अप्रत्यक्षयौनयोग से ही सर्वाधिक सुदृढ़ समाधि उत्पन्न हो जाए। प्रत्यक्षयौनयोग के साथ तो बहुत से विघ्न भी उपस्थित रहते हैं , विशेषतः तथाकथित आधुनिक सभ्य समाज में, जो आत्मज्ञान

में रुकावट डाल सकते हैं। वैसे, आजतक यह जानने-सुनने में नहीं आया यदि स्वप्न में भी किसी को पूर्ण आत्मज्ञान हुआ हो। फिर भी , वास्तव में स्वप्नकालिक आत्मज्ञान अत्यधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है, क्योंकि उसमें किसी बाह्य-इन्द्रिय के सहयोग के बिना ही परमानन्द मिल रहा होता है। इसलिए उसमें आनंद के लिए इन्द्रियों की व्यर्थता का सबसे अधिक पता चलता है। फिर भी , अपने व्यवहारकाल में या अन्य लोगों के लिए तो जागृतावस्था का आत्मज्ञान ही अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है। स्वप्नकाल के आत्मज्ञान को तो अधिकाँश लोग केवलमात्र एक स्वप्न ही समझते हैं। यदि उसका स्वप्नकालिक आत्मज्ञान पूर्ण होता, तो उसमें आत्मज्ञान की ललक बरकरार न रहती। परन्तु उस आत्मज्ञान से उसका मन नहीं भरा था, और वह लम्बे समय तक दूसरी झलक की प्रतीक्षा करता रहा। हो सकता है कि प्रथम मामले में , उसे आत्मज्ञान के लिए प्रत्यक्षयौनसम्बन्ध इसलिए हानिकारक लगा, क्योंकि उसमें उसे तांत्रिकयौनयोग सिखाने वाले कोई तांत्रिकगुरु उपलब्ध नहीं हुए। यह सैद्धांतिकरूप से सत्य/स्वाभाविक ही है कि तांत्रिकयौनयोगविहीन-यौनसम्बन्ध से आध्यात्मिक अवनति ही होती है।

वह पूर्वोक्त तांत्रिक इनिशिएशन-सम्बन्ध (सिने कलाकारों की तरह) भी अद्वितीय संयोगवश ही था। प्रतियोगिताएँ आदि तो विद्यालय में चलती ही रहती हैं। एतादृशायां एव एकायां दाम्पत्यप्रबंधनशिशुप्रबंधनसम्बंधितायां आयोज्यमानप्रश्नोत्तरीप्रकारप्रतिस्पर्धायां प्रेमयोगीवज्रतद्प्रियतमायुगलः अन्यान्तरलैङ्गिकयुगलसमूहसह ज्ञानयुद्धार्थम् सज्जीभूतः। सज्जाकाले एकः प्रियतमावांछिततद्विषयसम्बंधितग्रन्थः तद्याचनोपरांतम् प्रेमयोगीवज्रेन उपलब्धीकृतः। तद्सार्वजनिकप्रकाराधुनिकग्रन्थे द्वे दंपत्तिबालसंख्यानिवारकोपाये कामोत्तेजकवर्णरहितरेखाचित्रसह वर्णिते (एका सचित्रवज्रावरणविधिः एका च सचित्रनीरजावरणविधिः)। संभवतया अनेन एव उभयपक्षयोः कोमलमनमन्दिराभ्यां परस्परयौनसहमतिः कल्पिता, येन् अनुकूलतासहचरेण मानसिकयौनाकर्षणेन् शीघ्रमेव नभोच्चता स्पृष्टा। तद्परस्परमानसिकसहमतिक्षणमेव उभय पक्षमध्ये सूक्ष्माप्रत्यक्षतांत्रिकप्रारम्भक्षणम्। तत्क्षणात् सम्प्रज्ञातसमाधिपर्यंतम् यौनाकर्षणम् विवर्धमानम् सुदृढमानं च निरन्तरं। इसी बीच , एक बार अज्ञात आत्मप्रेरणा से देवीरानी ने हास्य-विनोद के साथ प्रेमयोगी वज्र को, तीसरे नेत्र को खोल कर अनर्थ ढाने की संभावना वाला त्रिनेत्रधारी भी कहा था। इससे भी सिद्ध हो जाता है कि वे दोनों ही शिव -शक्ति/ ट्विन फ्लेम (twin flame) के रूप में अवतरित थे। यह पूर्वजन्मों का एक सम्बन्ध होता है, जिसमें एक पूर्ण आत्म-ज्योति यिन व याँग (yin and yang) नामक दो विपरीत लिंग की अपूर्ण ज्योतियों में विभक्त हो जाती है , जो फिर पुनः पूर्ण होने के लिए एक-दूसरे को आकर्षित करती रहती हैं। इनको वास्तव में एक -दूसरे के अन्दर अपना पूर्णरूप दिखाई देता है। अधिकाँशतः ये आपस में भौतिक सम्बन्ध नहीं बना पाते, क्योंकि पुरुष को अपनी शिवशक्ति-प्रेमिका (twin flame-consort) में अपना ही रूप दिखाई देता है, फिर अपने आप से भौतिक सम्बन्ध कैसा? ये अधिकाँशतः मिलते व बिछुड़ते रहते हैं। ये अपनी उपस्थिति -मात्र से ही एक-दूसरे को आत्मरूप से पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं। इसमें कुण्डलिनी /आत्मा के जागृत होने की अत्यधिक संभावना होती है , जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ हुआ। देवीरानी अप्रत्यक्षरूप से प्रेमयोगी वज्र को त्रिनेत्रधारी कह कर , वास्तव में उसे प्रेम के साथ चिढ़ा रही थी , अर्थात अपने को भौतिकवादी व विज्ञानवादी समझते हुए , उसकी आध्यात्मिक जैसी शाँत अवस्था को प्रेम से अपमानित कर रही थी। प्रेमयोगी वज्र को इससे अपने आप को आध्यात्मिक सिद्ध करने के लिए बहुत अधिक प्रेरणा मिली थी। इससे सिद्ध होता है कि अनाध्यात्मिकता भी यदि प्रेम -भरे हास्य-विनोद, उचित विधि व सहनशीलता के साथ हो, तो वह भी आध्यात्मिकता की सहयोगी ही होती है, क्योंकि वह आध्यात्मिकता को गति व सही दिशा प्रदान करती रहती है। प्रेमयोगी वज्र को भी एक बार , जब वह अनाध्यात्मिकता का बल, अन्य अनाध्यात्मिक पुरुषों से, उनके असहयोगात्मक रवैये के कारण नहीं मिला था , तो उसे भी स्वयं अपने आप को ही , आभासिक अनाध्यात्मिक (virtual non-spiritual) /देहपुरुष की तरह द्वैताद्वैत से पूर्ण कर्मयोगी बनना पड़ा था। कुछ वर्षों के अभ्यास के बाद उसे आवश्यक आध्यात्मिक बल मिला, और वह पूर्वोक्त क्षणिक समाधि/कुण्डलिनीजागरण को अनुभव कर पाया। उसके उन अप्रत्यक्षतांत्रिकप्रेमसंबंधों व क्षणिकात्मज्ञान के समय, अत्यधिक प्रगति का आधुनिक दौर आरम्भ नहीं हुआ था, जैसा कि पुस्तक के समर्पण-भाग में स्पष्ट किया जा चुका है। प्रेमिका (consort) का परिवेश शहरी होने के कारण, कुछ अधिक सुविधापूर्ण था। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आत्मज्ञान व समाधि पुरातन युग में ही संभव हैं, क्योंकि प्रेमयोगी वज्र को प्रत्यक्षतांत्रिकसमाधि का पूर्ण अनुभव, जैसा कि पूर्व में वर्णित किया भी जा चुका है, आधुनिकता के चरम पर होने के समय ही हुआ। उस समय वह तकनीकी आधुनिकता के चरम का पूरा लाभ उठा रहा था। अतः सिद्ध होता है कि शविद व कुण्डलिनीयोग का मिश्रण आधुनिक समय के लिए सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म-साधना है। शविद-अभ्यास व कुण्डलिनीयोग, दोनों साथ मिलकर अच्छा काम करते हैं। कुण्डलिनीयोग से भरपूर प्राणवायु मिलती है , जिससे मन को चिंतन की शक्ति प्राप्त होती है। उस चिंतनशक्ति से शविदचिंतन भी सुलभ व सुकर हो जाता है। शविदचिंतन से व्यर्थ का चिंतन भी रुक जाता है, जिससे जीवनी-शक्ति (चिंतन-शक्ति) की बहुत बचत होती है, जो बहुत आवश्यक है, क्योंकि आजकल

के आपाधापी के युग में शक्ति या ऊर्जा की सदैव बहुत मांग बनी रहती है। जिस चिंतन शक्ति से काम -काज चलते हैं, उसी से शविद-प्रदर्शित द्वैताद्वैत भी सिद्ध हो जाता है।

आत्मज्ञान का विश्लेषण करने वाले आधुनिक वैज्ञानिक भी यही सिद्ध करते हैं कि अत्यधिक मानसिक क्रियाशीलता के उपरान्त, एकदम से अत्यधिक मानसिक स्तम्भन होने पर आत्मज्ञान की संभावना बढ़ जाती है। दोनों परस्पर विपरीत मानसिक स्थितियों की क्रियाशीलता के मध्य में जितना अधिक अंतर होता है, आत्मज्ञान की संभावना उतनी ही अधिक होती है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो वही हुआ। उस सम्प्रज्ञात समाधि से अधिक मानसिक क्रियाशीलता क्या हो सकती है, जिसमें वस्तु का मानसिक रूप उसके भौतिक रूप से भी अधिक स्पष्ट व वास्तविक प्रतीत होता है। प्रथम देवीरानी के वियोग के बाद भी वह उसके रूप की मानसिक समाधि को कायम रख सकता था , परन्तु परिवार व सामाजिक परिवेश के संस्कारों के कारण वैसा नहीं हुआ, क्योंकि सनातन-संस्कृति में परस्त्री को मन में बसा कर रखना पाप समझा जाता है। उससे प्रेमयोगी वज्र ने उसको पाने की आशा का भी परित्याग कर दिया, और वह पूर्ण मानसिक क्रियाशीलता के आकाश से पूर्ण मानसिक स्तम्भन के गर्त में एकदम व अचानक से गिर गया। वास्तव में प्रेमयोगी वज्र ने किसी का भी परित्याग नहीं किया , अपितु परित्याग स्वयं ही हो गया, जैसे फल पक कर वृक्ष से स्वयं ही गिर जाता है। वियोग आदि तो केवलमात्र बाहरी बहाने हैं। मन में सब कुछ स्वयं ही होता है। साधक का काम तो केवलमात्र यही है कि कुण्डलिनी का ध्यान निरंतर बनाए रखे, नियमित व निरंतर साधना से। फल की तरह, कुण्डलिनी भी पक कर स्वयं ही तैयार हो जाती है, और फिर स्वतः गिर भी जाती है। प्रगति करना प्रत्येक जीव का स्वतोस्वभाव है। पूर्णसमाधि की स्थिति अभीव्यक्त मन की सर्वोच्च अवस्था होती है। अतः यह स्वयंसिद्ध है कि समाधि से उच्चतर अवस्था केवल आत्मज्ञान की ही है। इस तरह से, समाधिस्थ पुरुष को आत्मज्ञान में प्रविष्ट होने से कोई नहीं रोक सकता, समयावधि में अंतर हो सकता है। यदि समाधि के आकाश से मनोहीनता के अभावरूपी गर्त में गिरने की बात करें , तो वह अभाव भौतिक अभाव की तरह अंधकारमय व अज्ञानमय नहीं होता है। वह गर्त तो पूर्ण द्वैताद्वैत व पूर्ण अनासक्ति के स्वरूप वाला ही होता है, देहपुरुष की तरह। वह गर्त तो प्रकाशपूर्ण, आनंदमय व शान्तरूप होता है। वह गर्त समता से परिपूर्ण व वासना से रहित होता है। मात्र यही अंतर होता है कि सम्प्रज्ञात -समाधिरूपी आकाश में कुण्डलिनी विशेष रूप से व अत्यंत प्रचंडता से प्रज्वलित रहती है, परन्तु असम्प्रज्ञात-समाधिरूपी गर्त में चारों और समानता छाई होती है। असम्प्रज्ञात समाधि का वह गर्त , इतना सुन्दर इसलिए होता है, क्योंकि उसकी कारणभूत सम्प्रज्ञात-समाधि में अनासक्ति की प्रचुरता होती है। इस गणना से तो शविद का आचरण भी सम्प्रज्ञात समाधि की तरह ही है, क्योंकि उसमें भी अनासक्ति की प्रचुरता होती है। इसीलिए शविद या पुराणों के परिशीलन या उनकी संगति के साथ विद्यमान सम्प्रज्ञात-समाधि से आत्मज्ञान की संभावना अत्यधिक बढ़ जाती है , जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ , क्योंकि अपनी सम्प्रज्ञात समाधि के समय, वह अपने पुराण-पाठी पितामह की संगति में था। आकाश व गर्त के इसी अंतर से समाधि की प्रगाढ़ता का पता चलता है। स्वाभाविक है कि समाधि जितना अधिक प्रगाढ़ होगी, उसकी परिपक्वता से उत्पन्न आनंदमयी व शून्यरूपी गर्त भी उतना ही अधिक प्रगाढ़ होगा। तो हम देख सकते हैं कि इस तरह से विज्ञानवादी भी अप्रत्यक्ष रूप से समाधि की ही महिमा का बखान करते हैं। रही बात नियमित व निरंतर अभ्यास की , तो इसके लिए “करो या मरो” वाला प्रण लेना पड़ता है। चाहे कैसी भी घोर परिस्थिति क्यों न आए , साधना के नियम को चालू रखना पड़ता है, बेशक बीमारी आदि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में अपेक्षाकृत थोड़े समय के लिए ही साधना की जाए। प्रेमयोगी वज्र को ऐन्काईलोजिंग स्पोंडीलोआर्थराईटस (ankylosing spondyloarthritis) नामक एक आनुवंशिक अस्थि-रोग भी था, जिसके साथ सुखपूर्वक व लंबा जीवन जीने के लिए, नियमित व्यायाम करना सर्वाधिक आवश्यक होता है। इस बहाने से भी प्रेमयोगी वज्र को नियमित साधना करने का बल मिला। इस तरह के कोई न कोई बहाने सभी साधकों को ढूंढ लेने चाहिए। बहानों से मन संतुष्ट हो जाता है , व सम्बंधित कार्य को प्रसन्नतापूर्वक करने लगता है। त्याग का फल भी इसी भीषण अवस्थांतरण के सिद्धांतानुसार प्राप्त होता है। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि आदि गुरुजन लोग राजाओं को अचानक ही राज्य का त्याग करके, ज्ञान-प्राप्ति के लिए वन में जाने को कहते थे, जिससे इसी सिद्धांत से उन्हें अधिकाँशतः आत्मज्ञान हो जाया करता था।

एक बार लेखक ने देखा कि देहदेश से विदेशों की ओर जाने वाला वायुमार्ग, कई दिनों तक चले खराब मौसम के कारण अवरुद्ध हो गया था। इससे देहपुरुषों को विदेश से लाने व उन्हें विदेश ले जाने वाले यात्री-विमानों का आवागमन अवरुद्ध हो गया था। साथ में, उससे व्यापारिक-वार्ता करने वाले अधिकारीगण भी विदेश नहीं जा पा रहे थे। उससे देहदेश का व्यापार बहुत कुप्रभावित हो गया था। देहदेश की अर्थव्यवस्था भी लड़खड़ा गई थी। वैसे , पड़ौसी देहदेशों में से कुछेक देहदेशों के व्यापारी -देहपुरुष, आपातकालीन मार्गों से, प्रभावित देहदेश के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए, अतः उसे संबल प्रदान करने के लिए, प्रभावित देहदेश से मिलने निरंतर आ रहे थे। कुछ समय के बाद परिस्थितियाँ सुधर गईं, और व्यापार पुनः पूर्ववत चालू हो गया।

आजकल नशीली दवा आदि के प्रयोग से भी आत्मज्ञान व कुण्डलिनीजागरण को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। प्राचीनकाल में भी यह प्रथा प्रचलित थी, जब साधु लोग भोले शिव के नाम पर भांग का सेवन किया करते थे। संभवतः यह आदमी के मन में सर्वाधिक बैठी हुई , एक ही वस्तु की ओर निरंतर ध्यान लगाने के लिए प्रेरित करती है। इसी कारण से इससे आध्यात्मिक लाभ मिलता है। यद्यपि कोई न कोई वस्तु या व्यक्ति-विशेष, पहले से ही, मन में दृढ़ता से अवश्य बैठा होना चाहिए , तभी यह विधि कारगर हो सकती है। इसके दुष्प्रभाव भी होते हैं , जैसे कि यह स्मरणशक्ति, सोच-विचार करने की शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति व कार्य करने की शक्ति को क्षीण करती है। साथ में, इससे कुण्डलिनीजागरण को सहन करने की, मस्तिष्क की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। कुण्डलिनीजागरण के समय , मस्तिष्क में अत्यधिक दबाव उत्पन्न हो जाता है, जिसे उचित समय तक सहन करने के लिए, योगसाधना से सुदृढ़ किए हुए, पूर्ण स्वस्थ मस्तिष्क का होना नितांत अनिवार्य है। वैसे तो कुण्डलिनीजागरण की छोटी -मोटी झलक अधिकाँश साधकों को देर-सवेर मिल ही जाती है। अब तो इनका परिष्कृत रूप भी अवसादरोधी दवाओं (antidepressants) के रूप में बाजार में उपलब्ध है, जिसे लगभग डेढ़ महीने तक नियमित खाने से , व्यक्ति लगभग सदैव के लिए रूपांतरित जैसा हो जाता है। वह रूपांतरण भी आत्मज्ञान व कुण्डलिनीजागरण से उत्पन्न रूपांतरण से मिलता-जुलता है, यद्यपि अपेक्षाकृत निम्नस्तर का व उपरोक्त दुष्प्रभावों से युक्त होता है। इस पुस्तक की अन्य सभी उक्तियों की तरह ही, मैं यह सैद्धांतिक पक्ष भी प्रेमयोगी वज्र के अपने अनुभव के आधार पर ही लिख रहा हूँ, क्योंकि उसने भी ३५-४० दिनों तक, चिकित्सक के परामर्शानुसार, अवसादरोधी दवाओं का सेवन किया था।

यदि हम प्राकृतिक समाधि-अवस्था को लें, तो यह अन्य कुछ विशेष नहीं, अपितु उत्कट प्रेम की ही एक अवस्था होती है। प्रेमयोगी वज्र की पूर्वोक्त प्राकृतिक व अप्रत्यक्ष तांत्रिकसमाधि के समय, उसके मन-मस्तिष्क सहित पूरे शरीर में प्रेमिका (consort) के रूपाकार का समावेश हो गया था। उसे हर स्थान पर अपनी मानसिक प्रेमिका (consort) दृष्टिगोचर होती थी। प्रेमयोगी वज्र एक प्रकार से प्रेमिका (consort) के रूपाकार में पूरी तरह से ढल चुका था। लोगों को बाहर से वह कुछ और (पुरुष/प्रेमयोगी वज्र) प्रतीत होता था, परन्तु वास्तव में अन्दर से वह कुछ और (स्त्री/प्रेमिकारूप) ही होता था। वह तांत्रिक-समाधि उसके मन में कई वर्षों तक निरंतर चलती रही, लगभग २ वर्षों तक क्षणिकात्मज्ञान के पूर्व व १५-२० वर्षों तक उसके पश्चात। वास्तव में यही समाधि की परिभाषा है, यद्यपि इसके अनेक स्तर होते हैं। इसमें केवल समाधि का चित्र ही सदैव प्रमुख रूप से विद्यमान होता है, शेष सभी कुछ गौण होता है। इस समाधि को हम एकाग्रता भी कह सकते हैं। उस समाधि के समय वह सबका प्रिय व मित्र होता था। उसके चारों ओर एक दिव्य आकर्षण व हर्षोल्लास का वास हुआ करता था। प्रारम्भ में , समाधि की उत्कटता व यौन -उत्तेजना के समय तो कभी -कभी उसके मूत्रोत्सर्जन की पहली धारा कुछ श्वेत वर्ण की होती थी। उसका अर्थ था कि उसमें यौन -स्राव प्रचुरता के साथ उत्पादित हो रहा था, परन्तु वह उसका संरक्षण कर रहा था, जिससे उसकी यौन-शक्ति उसके मस्तिष्क में लगी हुई कुण्डलिनी-समाधि को सुदृढ़ कर रही थी, और कुछ शेष बचा हुआ श्वेत वर्ण, एक अपशिष्ट के रूप में त्यागा जा रहा था। उससे उसका यौन -द्रव्य, रक्त-संचार के साथ उसके पूरे शरीर में प्रसारित हो जाता था , जिसकी मनमोहक सुगंध उसके रोमकूपों से निकलकर, चहुँ ओर प्रसारित हो जाती थी। पालतु पशु (विशेषकर धेनुएँ) उससे आकर्षित होकर, ममता के साथ उसके शरीर को बार-२ सूंघकर व चाटकर प्रसन्न-विभोर हो जाते थे। गौवें तो उसके साथ सर्वाधिक विशिष्ट व मूक प्रेम दिखाते हुए, वहीं पर चरना पसंद करती थीं, जहाँ पर प्रेमयोगी वज्र उपस्थित होता था। वह स्वयं भी कई बार अपने को सूंघ कर , समाधि के गहरे आनंद में मग्न हो जाया करता था। संभवतः वही ऋषि-मुनियों द्वारा तथाकथित ओज होता है।

केवलमात्र देवीरानी का ही रूप-रंग प्रेमयोगी वज्र के मन में बस गया था। अतः सिद्ध होता है कि एक ही के ध्यान से आत्मज्ञान होता है। कहते भी हैं, "एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाए"। अतः कुण्डलिनीयोग व तंत्रयोग में भी केवलमात्र एक ही मानसिक चित्र का ध्यान करते रहना चाहिए। वह चित्र अपने अन्दर भिन्नता लिए हुए हो सकता है, परन्तु चित्र वही, एकमात्र होना चाहिए, जैसे कि देवीरानी कभी हँसते हुए, कभी गंभीर मुद्रा में, कभी भ्रमणरत, कभी एकांत में, कभी भीड़ में आदि-२ प्रतीत हो सकती है। इसी तरह, एक ही गुरु, कभी बोलते हुए, कभी हँसते हुए, कभी हल चलाते हुए, कभी घास उखाड़ते हुए, कभी पूजा-साधना करते हुए आदि-२ प्रतीत हो सकते हैं। इसी प्रकार, एक ही शिव, कभी पार्वती के साथ, कभी तांडव नृत्य करते हुए, कभी कैलाश में, कभी बैल के ऊपर, कभी प्रसन्न मुद्रा में, कभी क्रोधित आदि-२ रूपों में दिखाई दे सकते हैं। कुण्डलिनीयोग में भी प्रत्येक चक्र के लिए जो एक बीज मंत्र, एक रंग, एक देवी की विशेष अवस्था व कमल की विशेष संख्या की पंखुड़ियों का रूप दिया गया है ; वह केवल सूक्ष्म अंतर ही है। उनका अर्थ यह नहीं है कि चित्र बदलते रहते हैं , अपितु यह है कि एक ही चित्र सूक्ष्म भिन्नताओं के साथ रूप बदलता रहता है , ताकि बोरियत से बचा जा सके। उदाहरण के लिए, किसी एक विशेष चक्र पर, देवी को विशेष रंगों के वस्त्रों के साथ, विशेष बीजमंत्रों के साथ, विशेष मुद्रा में व विशेष कमल के साथ स्थित देखा जा सकता है। इसी तरह, भिन्न-२ चक्रों पर वही एक देवी रहती है, केवल उसके हाव-भाव व सम्बंधित वस्तुएँ ही

बदलती रहती हैं। अपनी प्रेमिका (consort) को कोई भी व्यक्ति तंत्र-देवी का रूप दे सकता है। यदि कोई, गुरु, देव आदि पुरुष-रूप का ध्यान करता है, तो वह अपनी गौण प्रेमिका (consort) के साथ, युगलरूप में उसका ध्यान कर सकता है। इससे उस ध्याता-पुरुष के द्वारा ध्येय-दर्शन/विजुवलाईजेशन (visualization), और अधिक सरल व प्रगाढ़ हो जाएगा, दोनों चित्रों के बीच में परस्पर यौनाकर्षण के कारण। हो सकता है कि रंगों, बीजमंत्रों आदि से ध्यान मजबूत हो जाता हो। वैसे, प्रेमयोगी वज्र ने केवल अपने गुरु, उन्हीं आध्यात्मिक वृद्ध पुरुष/that spiritual old man (पुस्तक के समर्पण भाग में वर्णित) का ही, कुण्डलिनी के रूप में ध्यान किया था; उनकी विभिन्न मुद्राओं, अवस्थाओं व जीवन-चरित्रों के साथ; शेष सभी औपचारिकताओं की उपेक्षा करते हुए। संभवतः तभी तो उसे अत्यधिक शीघ्रता से, जागृत-कुण्डलिनी के रूप में (१० सेकेंड की पूर्वोक्त समाधि) उनके दर्शन हो सके। वास्तव में अधिकाँश लोग उपरोक्त विभिन्न औपचारिकताओं में उलझ कर रह जाते हैं, और उस वास्तविक व एकाग्र ध्यान से वंचित रह जाते हैं, जो कि योग का मुख्य ध्येय है। संभवतः ये औपचारिकताएं केवल प्राचीन युग के अत्यंत मूढ़ लोगों को ध्यान करना सिखाने के लिए ही बनाई गयी थीं। आजकल के तीक्ष्णबुद्धि लोगों के लिए, ये औपचारिकताएं केवल उलझनें ही पैदा कर सकती हैं, मेरे विचार से। एक अन्य धारणा भी शंकापूर्ण प्रतीत होती है, जिसके अनुसार एक-२ चक्र पर बारी-२ से, कई-२ महीनों तक अभ्यास करना होता है। वास्तव में प्रेमयोगी वज्र एक साथ ही सभी चक्रों पर, प्रत्येक पर कुछ क्षणों के लिए रुकता हुआ, ध्यानाभ्यास करता था, जिससे ही संभवतः उसे शीघ्रता से फल मिला। संभवतः जिन साधकों को विशेष शक्ति चाहिए होती है, वे ही, एकमात्र चक्र पर दीर्घकाल तक ध्यानाभ्यास करते रहते हैं। उदाहरणतः विशुद्धिचक्र पर , दिव्यवाक् प्राप्त करने के लिए व हृदयचक्र पर , दिव्यप्रेम प्राप्त करने के लिए। यौनयोग में तो इतनी अधिक शक्ति प्रतीत होती है कि उससे सभी चक्रों पर एकसाथ आसानी से अभ्यास किया जा सकता है।

समाधि के बदलने के साथ मानसिक व्यक्तित्व भी बदल जाता है। मानसिक व्यक्तित्व ही वास्तविक व्यक्तित्व होता है , शरीर तो केवलमात्र एक दिखावा भर होता है। ऐसे बदलते व्यक्तित्व को आधुनिक विज्ञान मल्टिपल परसोनेलिटी डिसओर्डर (multiple personality disorder) कहते हैं। यह तो उसी तरह की सतही बात हुई, जिस तरह की बात आत्मज्ञानी को विक्षिप्त कहकर बनती है। आजकल पूर्णरूपेण कोई नहीं जान पाता कि कौन व्यक्ति आत्मज्ञानी है, व कौन नहीं, चाहे जो मर्जी वैज्ञानिक विधियाँ प्रयुक्त की जाएं। समाज में व्याप्त सत्यनिष्ठा व आपसी विश्वास से ही यह पता चल सकता है, जैसा कि प्राचीन भारत में अधिकाँशतः होता था। किसी के आत्मज्ञान पर विश्वास न करना तो मनुष्यमात्र का स्वभाव है। भगवान कृष्ण तो चमत्कारी कार्य भी करते थे, फिर भी अधिकाँश लोग उनको एक साधारण ज्ञानी तक नहीं मानते थे, अपितु एक साधारण या मूर्ख ग्वाला ही समझते थे। पहले अधिकाँश लोग, विशेषतः पाश्चात्य व वैज्ञानिक प्रकार के लोग कुण्डलिनीजागरण या आत्मज्ञान जैसे गहरे आध्यात्मिक अनुभवों को मानसिक दोष या भ्रम समझते थे, परन्तु अब वे भी इस बात को समझ गए हैं कि वे अनुभव मानसिक क्षीणता को नहीं, अपितु मानसिक तीक्षणता को प्रदर्शित व विकसित करते हैं। अब वे अनुभव भौतिक रूप से भी सत्य सिद्ध किए जाने लगे हैं।

प्रेमयोगी वज्र के मन का प्रेमिका (consort) के रूपाकार में ढलना, उसके प्रति स्वाभाविक व प्रचंड यौनाकर्षण से ही संभव हो पाया था। वह केवल खाली यौनाकर्षण नहीं था, अपितु उसमें प्रेम के सारे भाव व रस विद्यमान थे। यौनाकर्षण तो एक अतिरिक्त बल की तरह था, जिसने मानसिक प्रेम को समाधि के स्तर की, अत्यधिक दृढ़ता प्रदान कर दी थी। उसे उसमें प्रेम के सभी मूक भाव , जैसे कि मातृत्व भाव, पितृत्व भाव, पत्नीत्व भाव, भगिनी भाव, गुरु भाव, पुरुषमित्र भाव, स्त्रीमित्र भाव, पुरुषशत्रु भाव, स्त्रीशत्रु भाव, दया भाव, हिंसा भाव, अहिंसा भाव, देवी भाव, स्वेच्छाचारिणी भाव, परित्यक्ता भाव, समर्पण भाव, आत्मसम्मान भाव, परसम्मान/ परप्रशंसा का भाव , चिंता भाव, मेहनत का भाव, लगन/निष्ठा का भाव , विज्ञानवादी भाव, भौतिकता का भाव, आध्यात्मिकता का भाव, भविष्य निर्माण का भाव, जीवन के संघर्ष/सत्य का भाव, मदमस्त भाव, शिशु भाव, पुत्री भाव, पुत्र भाव, धोखा भाव, अप्रसन्नता भाव, प्रसन्नता भाव, हास्य भाव, पराश्रित भाव, उत्तरदायित्व का भाव, आज्ञापालन का भाव, आसक्ति भाव, अनासक्ति भाव, द्वैत भाव, अद्वैत भाव, क्रोध भाव, ईर्ष्या भाव, लज्जा भाव, भय भाव, सामाजिकता-असामाजिकता भाव, स्वदेशी-विदेशी भाव, ज्ञात-अज्ञात भाव, लौकिक-पारलौकिक भाव, जीवन-मृत्यु भाव, सुख भाव, दुःख भाव, उबाऊपन का भाव, नेतृत्व भाव आदि-२। यह आश्चर्य की बात है कि उसे उसमें घृणा का भाव नहीं दिखा। उसमें घृणाभाव तो उसे अपने आत्मज्ञान के बाद प्रतीत हुआ। हो सकता है कि पहले भी उसका कुछ आँशिक प्रभाव रहा हो, क्योंकि बीज में वृक्ष पहले से ही होता है। वैसे भी, द्वैतयुक्त भौतिकवाद का भाव आत्मज्ञान के अद्वैतयुक्त भाव के साथ घृणा ही करेगा। आग और पानी का मेल कैसा? इससे यह भी सिद्ध होता है कि आत्मज्ञान के लिए सभी भावों का प्राप्त होना आवश्यक है , यद्यपि अद्वैत के साथ। प्रेमयोगी वज्र भाग्यवान था, जो उसे सभी भाव उतनी अधिक शीघ्रता से मिले , जिससे वह अपने गुरु की निरंतर संगति से , प्रेमयोगिनी के सान्निध्य वाले उतने से थोड़े काल के लिए, अपने मन में अद्वैतभाव को स्थापित करके रख सका। भौतिकवादी युग में, अद्वैतभाव को लम्बे समय तक धारण करना

कठिन हो सकता है, अतः किसी का आध्यात्मिक विकास उसके द्वारा सभी भावों को प्राप्त करने में लगने वाले समय पर भी निर्भर करता है। यह भी आश्चर्य ही है कि प्रेमयोगी वज्र ने कभी भी उसके साथ वार्तालाप नहीं किया , यहाँ तक कि उसको संबोधित करके एक शब्द भी नहीं कहा , न ही वह उससे एकांत में मिला , और न ही उसका या उसकी वस्तुओं का स्पर्श ही किया। यह उसके द्वारा अभिव्यक्त अत्युच्च कोटि का अद्वैतयुक्त व पूर्ण मानसिकप्रेम ही तो था , तभी तो उसके वियोग का भी उसे दुःख नहीं हुआ। किसी भी प्रकार के प्रेम से कुण्डलिनीजागरण हो सकता है , यद्यपि योजनाबद्ध रूपरेखा व तांत्रिक यौनाकर्षण से मिश्रित प्रेम सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। अतः सिद्ध होता है कि सब कुछ प्रेममयी ही है। उस तांत्रिकयौनाकर्षणमिश्रितप्रेम से उस ग्रामीण प्रेमयोगी वज्र व उसकी शहरी प्रेमिका (consort) के मध्य में, मानसिक रूप से अत्यद्भुत व सहयोगात्मक मित्रता उत्पन्न हो गई थी , भौतिक रूप से कुछ भी नहीं। प्रेमयोगी वज्र अपने विद्यालय आते -जाते, प्रतिदिन प्रकृति के बीच से होकर गुजरता था। विद्यालय सहित उसके आसपास के क्षेत्र में कर्मठता, अनुशासन व मानवता का बोलबाला होता था; क्योंकि वह क्षेत्र सेना के अंतर्गत स्थित था। साथ में, उससे यह भी स्वाभाविक था कि वहाँ पर पशु -हिंसा (वैदिक विधि-विधान से बलिप्रथा) भी होती थी, जो संभवतः वहाँ की आध्यात्मिकता के साथ मिलकर, वहाँ पर छाए हुए वेदोक्त/शविदोक्त अद्वैत को उत्पन्न करती थी। अद्वैतमयी संस्कृति /आध्यात्मिकता के साथ मिश्रित होकर, छुटपुट मानवीय हिंसा भी कल्याणकारी बन जाती है। प्रेमयोगी भी वहाँ के अद्वैत को अनुभव करके आश्चर्यचकित था। चारों ओर हरे-भरे पेड़ हुआ करते थे। दूर-दराज में बिखरे हुए शाँत व भोले-भाले पहाड़ी घर हुआ करते थे। चारों ओर गहरी शान्ति छाई होती थी। कुछ दूर तक कच्ची सड़क पर चलकर, फिर उससे नीचे उतरकर, विरले व छोटे-मोटे पेड़-पौधों के साथ प्रकाशमय वनों से होते हुए, बरसाती नाले को पार करके फिर उसी सड़क के, नाले का मोड़ काट कर आए हुए हिस्से तक ऊपर चढ़ना, व उस पर कुछ दूर तक चलकर वही क्रम आगे भी उसी तरह से २-३ बार दोहराना, उसकी रोजमर्रा की जिंदगी का एक हिस्सा था। यात्रा के अंतिम पड़ाव के निकट , एक बहुत ऊंची व खड़ी पहाड़ी लांघ कर घर पहुँचना , जिसके उच्चतम से निम्नतर व कुछ समतल शिखर की दूसरी ओर, हल्की ढलान पर थोड़ा उतरकर, एक चौड़े मार्ग पर भगवान शिव व ग्राम देवता का युग्मित रूप से, एक भव्य मंदिर होता था; व फिर घर के खेत-खलिहान के काम में घर वालों की सहायता करते हुए अध्ययन भी करना, भी उस दिनचर्या में शामिल था। उस खड़ी पहाड़ी को चढ़ते हुए, उसकी एक वृद्ध व लघु दुकानदार से मित्रता हो गयी थी, जो कि पशुओं के लिए उगे हुए घास के बीच में बनी पगडंडी के ठीक सामने , एक छोटे से मिट्टी-लकड़ी के बने कमरे में बिस्कुट -टॉफ़ी आदि थोड़े से सामान के साथ बैठा होता था। वे लम्बी कद -काठी, मध्यम सौष्ठव; मस्तमौले व हँसमुख स्वभाव के धनी थे। उनके सिर पर चोटी व माथे पर बड़ा सा लाल तिलक सजा होता था। कंधे उनके थोड़े से झुके हुए रहते थे। उन्होंने साधारण प्रकार का कुर्ता-पायजामा पहना होता था। उनके स्वभाव में योगियों वाली एकलहरता , अर्थात तथाकथित टेर भी विद्यमान होती थी, जिससे समाज में उनकी छवि एक बावले भक्त के रूप में भी थी। उनकी उस यौगिक मानसिक लहर को उनके आसपास के कई लोग मनोरोग भी समझते थे। वे इसलिए भी इरादे के पक्के थे, क्योंकि उन्होंने कुछ समय के लिए सेना में भी काम किया हुआ था। मानसिक तंत्रयोग की शक्ति से प्रफुल्लित व पहाड़ी से नीचे की ओर तेजी से उड़ते हुए बालक को प्रतिदिन देखकर, वह उसको चोट लगने की आशंका से डर जाया करते थे। एक दिन उन्होंने प्रेमयोगी वज्र को अपने कमरे में बैठाया व प्यार के साथ समझाया। साथ में उन्होंने अपने आप को भवानी माता के द्वारा दर्शन दिए जाने की एक बात भी बताई व आँखों को कुछ सफ़ेद सा करते हुए, क्षणभर के लिए ध्यानमग्न हो गए। फिर उन्होंने पूछने पर भी कुछ नहीं बताया व २-३ टोफियाँ (candies) पकड़ाते हुए, प्रेम से बहला-फुसला कर, प्रेमयोगी वज्र को चलता कर दिया। प्रेमयोगी वज्र को वे रहस्यमयी लगे। हो सकता है कि प्रेमयोगी वज्र के तद्समकालिक क्षणिकात्मज्ञान के पीछे उनका भी कुछ हाथ रहा हो। वह बस/वाहन की अपेक्षा पैदल ही यात्रा करना पसंद करता था, परन्तु थकान के कारण कभी-२ या बीच-२ में बस में भी चला जाता था। पैदल चलते हुए , कई बार भिन्न-२ प्रकार के मित्रों के साथ अपने अनुभवों को साझा करने का मौक़ा भी प्रेमयोगी वज्र को मिल जाया करता था। वे सभी मित्र भी प्रेमयोगी वज्र की तांत्रिक -तरंगों को अनुभव करके, उसके साथ प्रसन्नचित्त व हँसमुख दिखाई दिया करते थे। वैसे सारे नज़ारे उसकी प्रेमिका (consort) के मानसिक चित्र के साथ स्वतः ही जुड़ते गए। वे वृद्धाध्यात्मिक पुरुष पुराणों के जिन -२ अद्वितीय व आनंदमयी आख्यानों का वर्णन करते थे, उन-२ से निर्मित प्रेमयोगी वज्र के मन की सुन्दरता व उन्मुक्तता पूरी तरह से प्रेमिका (consort) के ऊपर आरोपित हो रही थी, अर्थात प्रेमिका (consort) प्रेमयोगी वज्र के मन में एक प्रकार से पुराणों की दिव्य अप्सरा बन चुकी थी। अनेक प्रकार का संगीत भी देवीरानी के कोकिला जैसे मधुर स्वर के साथ जुड़कर, उसके मानसिक चित्र को पुष्टि प्रदान करता था। प्रेमिका (consort) अपने शहर के बंद, गली-गूचों/नालियों की गन्दगी से युक्त व घुटन भरे जैसे वातावरण में भी प्रसन्नचित्त व हँसमुख रहती थी , इसी कारणवश प्रेमयोगी वज्र ने एक बार अपने मित्र को बताया था कि वह कीचड़ का कमल थी। आश्चर्य की बात यह है कि प्रेमयोगी वज्र ने प्रेमिका (consort) के साथ कभी भी, सीधे तौर पर बात ही नहीं की, विद्यार्थी-समूहों के बीच में उसकी प्रेमभरी बातें सुनीं तो कई बार थीं। संभवतः इसी कारणवश, एकबार उसने सभी के सामने

प्रेमयोगी वज्र को प्रेम व मधुर/तंत्रमयी हास्य से भरे हुए विनोद के साथ, कोयल के जैसी मीठी आवाज में, कमंडलु वाला बाबा कहा था। वैसे उसके हाथ में विज्ञानसम्बंधित एक कमण्डलुनुमा आकृति थी भी उस समय। कहते हैं कि मुंह से निकली हुई बात कई बार सत्य सिद्ध हो जाती है , क्योंकि प्रेमयोगी वज्र के लिए कही गई वह बात भी कालांतर में सत्य सिद्ध हो ही गई , जब उसे सच्चे बाबाओं वाले अतीन्द्रिय अनुभव प्राप्त हुए। यद्यपि आम लघुशहर-वासियों की सोच की तरह ही, कई बार शहर में कैद होने के जैसा भाव भी वह अनुभव करती थी, जो उसके मुख पर अत्यल्प व क्षणिक झलक के रूप में प्रकट हो ही जाता था। प्रेमयोगी वज्र का कोमल मन उस समय अत्यंत करुणा से भर जाया करता था , यद्यपि अनासक्ति के साथ। प्रेमयोगी वज्र व उसकी प्रेमिका (consort) की मानसिक मित्रता से, जैसे सभी कुछ आपस में मिलकर एकरूप हो गया था। गाँव शहर के साथ , अध्यात्म भौतिकता/विज्ञान के साथ, सतोगुण रजोगुण व तमोगुण के साथ, मुक्ति बंधन के साथ, आसक्ति अनासक्ति के साथ, इन्द्रियलोलुपता इन्द्रियसंयम के साथ, अधिकार/आत्मसम्मान आत्मसमर्पण के साथ, परिश्रम विश्राम के साथ, सुविधा समस्या के साथ, सुख दुःख के साथ, चतुरता मूढ़ता के साथ, बुद्धिमत्ता बुद्धिहीनता के साथ, सौन्दर्य कुरूपता के साथ, प्रेम उपेक्षा के साथ, चाल निश्चलता के साथ व पहाड़ मैदान के साथ घुल-मिल कर, जैसे पूरी तरह से एकरूप हो गए थे। यिन (yin) और याँग (yang) एक हो गए थे। इस तरह से, सभी विपरीत भावों को एकसाथ ग्रहण करने से, अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति आसक्ति का नाश हो जाता है; जिसका (वास्तविकता का) अनुभव प्रेमयोगी वज्र को हो गया था। फिर तो यिन और याँग एक-दूसरे को तेजी से बढ़ा रहे थे। अपने मस्तिष्क में डेरा डाल चुकी यिन-ऊर्जा (देवीरानी का समाधि-चित्र) को संतुलित करने के लिए, प्रेमयोगी वज्र की याँग-ऊर्जा (उसका अपना पुरुष व्यक्तित्व) अपने आप को बढ़ा रही थी, ताकि प्रेमयोगी वज्र अपना पुरुष-व्यक्तित्व न खो बैठता और उसकी जगहसाई न होती। उसके लिए उसके मन में, उसके पुरुष-गुरु का मानसिक चित्र प्रवृद्ध हो रहा था। वास्तव में, वास्तविक लिंग-भेद तो मन में ही होता है। इस हिसाब से, यदि किसी के मन का समाधि-चित्र पुरुष-रूप है, तो वह मन/व्यक्ति स्वयं भी पुरुषरूप है, अन्यथा स्त्रीरूप। कई बार, किसी का एक समाधि-चित्र पुरुष-रूप होता है, तो दूसरा स्त्री-रूप। वैसा मन/व्यक्तित्व अधिकाँशतः तांत्रिक का होता है। ऐसी ही हालत प्रेमयोगी वज्र के मन की भी थी। वे वृद्धाध्यात्मिक पुरुष उसके पुरुष-गुरु थे, और वह प्रथम देवीरानी उसकी स्त्री-गुरु की तरह थी। दोनों ही गुरु-रूपों का समाधि-चित्र उसके मन में सदैव विद्यमान रहता था। संभवतः इसी तरह, देवीरानी के मस्तिष्क में डेरा डाल चुकी प्रेमयोगी वज्र की याँग -ऊर्जा (प्रेमयोगी वज्र का समाधि-चित्र) को संतुलित करने के लिए, देवीरानी की यिन-ऊर्जा (उसका अपना स्त्री-व्यक्तित्व) विकसित हो रही थी, ताकि वह अपना स्त्रीत्व न गवां बैठती और उसकी भी जगहसाई न होती। उसके लिए संभवतः उसके मन में भी स्त्री -रूप वाला समाधि-चित्र बन रहा हो, या प्रेमयोगी वज्र के मन की तरह ही दोनों लिंगों के समाधि-चित्र बन रहे हों। इस तरह से, धीरे-२ करके प्रेमयोगी वज्र के अन्दर एक अति महान पुरुष-ऊर्जा (याँग/yang) व देवीरानी के अन्दर एक अति महान स्त्री-ऊर्जा (यिन/yin) विकसित हो गई थी। वे दोनों ही ऊर्जाएँ एक-दूसरे के प्रति महान आकर्षण उत्पन्न कर रही थीं, जिससे प्रेमयोगी वज्र की तांत्रिक समाधि कुण्डलिनी-जागरण से निर्मित समाधि से भी अधिक बलवान व स्थिर बन गई थी। वास्तव में याँग /यिन-ऊर्जा जितनी अधिक बलवान होती है, और दोनों की गहराई के बीच का अंतर जितना कम होता है, उतना ही अधिक प्रचंड आकर्षण दोनों के बीच में बना होता है, जिससे उतनी ही अधिक बलवान तांत्रिक समाधि की उपलब्धि हो जाती है। इसी यिन -याँग योग को कई स्थानों पर अप्सरा-योग के नाम से भी जाना जाता है। प्राकृतिक रूप से तो स्त्री के रूप से बनी मानसिक समाधि, पुरुष के मन में अधिकता से वांछित है, तभी तो स्त्री को सुन्दर रूप-लावण्य प्रदान किया गया है। पुरुष यौनता की ओर अपेक्षाकृत रूप से अधिक आकर्षित इसीलिए होता है, क्योंकि संभवतः वह यौनता से, स्त्री की अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त करता है। यद्यपि तंत्रविज्ञान में उस आकर्षण -शक्ति का प्रयोग गुरु, देवता आदि महान पुरुषों के भौतिकरूप की सहायता से उनके मानसिकरूप की समाधि लगाने के लिए किया गया है। गुरु के रूप की समाधि लगाने से तो द्विगुणित या अधिक व तीव्र फल प्राप्त होता है , क्योंकि उससे गुरु की अद्वैतमयी साधना-शक्ति के साथ-२, उनका सच्चा प्रेम भी प्राप्त हो जाता है।

प्रेमयोगी वज्र बचपन से ही कुछ विशेषता लिए हुए था। उसने मात्र ३ साल की अल्प आयु में ही अपने माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी व पुरोहित पितामह के एक प्रतिष्ठित यजमान परिवार के साथ, उस समय की अति कठिन माने जाने वाली तीनों धामों की तीर्थयात्रा (उत्तराखंड वाले चतुर्थ धाम को छोड़कर) कर ली थी। उस यात्रा के अंतर्गत दो-तीन स्थानों पर, उसकी भक्ति-निष्ठा के बहुत अच्छे व अचंभित करने वाले उदाहरण देखने को मिले थे। घर से निकलते ही उसका अनवरत रूप से रुदन प्रारम्भ हो गया था, जिससे सभी लोग परेशान हो गए थे, परन्तु हरिद्वार पहुंचते ही उसका रुदन चमत्कारिक रूप से बंद हो गया था, और उसके बाद सब कुछ ठीकठाक हो गया था। इसी तरह, यात्रा के बीच में वह गंभीर रूप से बीमार भी हो गया था, परन्तु चमत्कारिक रूप से ठीक भी हो गया था। समुद्रतट पर उसने बहुत सी सीपियाँ इकट्ठी की हुई थीं , जिन्हें वह द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण के चारों ओर घूमते हुए व बड़े प्रेम से कुछ गुनगुनाते हुए, अर्धबद्ध-अंजलि से छोड़ते हुए, उन्हें समर्पित करता रहा। वह नजारा देखकर तो उस

मंदिर के पुजारी भी आश्चर्यचकित व भावविभोर हो गए थे। गया में, जहाँ निरंतर शवदाह चलता रहता था, और जहाँ उस दिन एक सौभाग्यवती स्त्री का रानी की तरह सजा-धजा हुआ पार्थिव शरीर एक स्वर्णजटित डोली में ले जाया जा रहा था, वहाँ पर सामूहिक स्नान के समय वह खो गया था, और बड़ी खोजबीन के बाद, रेतीले तट पर थोड़ी दूर, एक गड्ढे के थोड़े से पानी में नंग-धड़ंग होकर, मस्ती व खुशी के साथ, एक मेंढक की तरह नहाता हुआ मिला। एक बार उसका हाथ रेलगाड़ी के अन्दर, सीट (seat) के नीचे बने फर्श के छिद्र में ऐसे विचित्र ढंग से फँस गया था कि बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी से नहीं निकल रहा था। तभी कोई चमत्कारी व्यक्ति वहाँ आए व उसका हाथ रहस्यमयी युक्ति से बाहर निकाल दिया, जिससे सभी आश्चर्यचकित हो गए। एक बार लगभग १०-१२ वर्ष की आयु में, जब वह अपने चाचा के विवाह की बारात के साथ एक ऊंचे पहाड़ के निचले भाग पर बनी पगडंडी से गुजर रहा था, तब उसे एक पत्थरनुमा स्थान पर बैठे हुए एक वृद्ध देवता के दर्शन भी हुए थे। हो सकता है कि वे उसके पिछले जन्म के गुरु हों , जो पूर्वजन्म की साधना के प्रभाव से उसके मस्तिष्क में उजागर हो गए हों। वैसे उस पत्थर पर लोग फूल -पत्ते आदि चढ़ाते थे, क्योंकि उसके थोड़ा ऊपर एक देवता का मंदिर बना हुआ था। ये सभी बातें प्रेमयोगी वज्र के क्षणिकात्मज्ञान के पीछे के पूर्वजन्म के सम्बन्ध को दर्शाती हैं।

वास्तव में प्रेमयोगी वज्र व उसकी प्रेमिका (consort) के मध्य में मानसिक यौन-आकर्षण अकस्मात् नहीं बना था। प्रेमयोगी वज्र जन्म से लेकर ही अपने आप को कुछ विशिष्ट व ईश्वर-प्रिय जैसा अनुभव करता था। हो सकता है कि उसमें पूर्वजन्म का भी प्रभाव हो। वह अपने अति बालपन -काल से ही अपने घर पर रह रहे, दूर-पार के अनाथ-सदृश रिश्तेदार, आयु में मात्र २-३ वर्ष बड़े व नटखट-चपल बालक के साथ पला-बढ़ा था। उसे वह बहुत अधिक प्यार करता था। प्यार के साथ झूठा, नाटकीय व क्षणस्थायी लड़ाई-झगड़ा भी चलता रहता था; परन्तु प्रेम कम होने की अपेक्षा बढ़ता ही गया। प्रेमयोगी वज्र अपनी गंभीरता , चपलताहीनता व संतुष्ट-प्रकृति के चलते, बड़ों-बुजुर्गों को अधिक प्रिय होता था , यद्यपि वह दूसरा बालक अधिक मेहनती व आज्ञापालक था। उस नटखट बालक के आचरण रोमांच पैदा करने वाले होते थे। जंगल में गौवों को चराते समय वह आस -पास से लेकर दूरदराज तक के क्षेत्रों के बालकों का सरदार हुआ करता था, वैसे ही जैसे बालकृष्ण गोप-गोपियों के सिरमौर हुआ करते थे। उस बालक में लज्जा आदि के कुछ स्त्रियोचित गुण भी विद्यमान थे। वह घर से घी, गुड़, नारियल आदि खाने-पीने की वस्तुएँ ले जाकर, उन वानर-मित्रों में बाँट दिया करता था। उसके बदले में वह उन्हें अपनी अँगुलियों पर नचाता, उनसे अपनी गौवें चरवाता, उनके पशुओं को आपस में लड़वाता, उनके बीच में कुश्तियां करवाता व और भी बहुत से छोटे-मोटे करतब करवाता, जो कुछ वह चाहता। कभी-२ तो वह उनसे चित्रविचित्र व अजीबोगरीब शरारतें भी करवाता। कभी वह उन्हें साथ ले जाकर, दूर ऊंची पहाड़ी की चोटी पर स्थित मक्की के खेत पर धावा बोलता। वे सभी बाल -बन्दर उन्हें जंगल में ही भून कर खा जाते। कभी वह दूसरों की घासनियों में लगी बाड़ को हटाकर, उनमें अपनी गौवों को प्रविष्ट करा देता व स्वयं कहीं दूर चला जाता। कभी वह विद्यालय आते-जाते हुए, घर से बाहर गए हुए लोगों के बगीचे से केले चुरा लेता। प्रेमयोगी वज्र उसकी उन सभी लीलाओं को रोमांच के साथ देखता -सुनता रहता व दूसरों को भी सुना कर रोमांचित करता रहता। स्त्रियों का भी वह बहुत शौक़ीन हुआ करता था, और कई बार तो खेल-२ में, उनके साथ बड़े-२ मजाक भी कर लिया करता था। वह बहुत चुस्त-दुरुस्त, चंचल, बलवान व चतुर होता था; परन्तु बुद्धिमत्ता के मामले में अधिकाँशतः, प्रेमयोगी वज्र से पीछे ही रहता था। प्रेमयोगी वज्र उसकी अंधी दौड़ के बीच में ऐसे-२ पेच फंसाता रहता था कि वह हैरान होकर तिलमिलाता ही रह जाता था, कर कुछ नहीं पाता था। वैसे तो उस समय, आस-पास के बहुत से लोग प्रेमरोग से ग्रस्त थे, जिनमें कुछ तथाकथित अवैधसम्बन्ध के मामले भी सम्मिलित थे। लेखक को तो वह सभी कुछ, तांत्रिक प्रेमयोगी वज्र की संगति का अदृष्य व सूक्ष्म प्रभाव प्रतीत होता है। इस तरह से प्रेमयोगी वज्र के बचपन के दिन अधिकाँशतः हंसी-खेल व रोमांच के साथ बीतते गए। प्रेमयोगी वज्र को जन्म से ही कई प्रकार की बाधाओं का सामना भी करना पड़ा था , जैसे कि गंभीर व जन्मजात रोगों का प्रकोप, जिनसे उसकी निकटस्थ एक ज्येष्ठ व निकटस्थ ही एक कनिष्ठ भगिनी मुक्तलोक में प्रविष्ट हो चुकी थी। अधिकाँशतः यह होता है कि जो लोग अपने जीवन में आध्यात्मिक शिखर को छूते हैं, उन्होंने बालपन में बहुत से कष्ट व विघ्न झेले होते हैं, क्योंकि बुरी आत्माएँ व शत्रु-आत्माएँ कभी नहीं चाहतीं कि जगत का, विशेषतः उनकी घृणा/शत्रुता से सम्बंधित धर्म-बिरादरी का भला हो। इसके बहुत से उदाहरण उपलब्ध हैं, जैसे कि योगी श्री गोपीकृष्ण का बालजीवन। उससे, कुछ करने, सहने व आगे बढ़ने की पूरी जिम्मेदारी प्रेमयोगी वज्र के ऊपर आ गई थी। ऐसे ही अनेक कारणों से होनेवाला प्रेमयोगी वज्र का अवसाद उस नटखट बालक की चपलता को देखकर पल भर में ही छूमंतर हो जाता था। प्रेमयोगी वज्र के घर में आध्यात्मिक साधना आदि के संस्कार तो अनवरत रूप से विद्यमान थे ही , जो उसे जैसे निःशुल्क ही मिले हुए थे। उन संस्कारों के कारण ही उसका उस नटखट बालक के प्रति प्रेम सच्चा व समाधियुक्त था।

इस तरह से १०-१५ वर्षों तक साथ रहने के बाद, प्रेमयोगी वज्र व उसके घरेलु मित्र का वियोग हो गया था। वह मित्र अपना स्थायी , स्वतन्त्र व निष्कंटक जीवन बिताने के लिए अपने वास्तविक गृह की ओर अग्रसर हो चुका था। उस वियोग से पतंजलि -योगानुसार, प्रेमयोगी वज्र का मन बहुत

शाँत हो गया था। उस मित्र बालक से जुड़ा हुआ , प्रेमयोगी वज्र का अधिकाँश मानसिक संसार लगभग मृतप्राय (पूर्ण अनासक्ति/अद्वैत के साथ विद्यमान) हो गया था, यद्यपि आत्मजागरण को उत्पन्न करने वाला तांत्रिकबल उस असम्प्रज्ञात-समाधि में उत्पन्न नहीं हो सका। उसी भावपूर्ण शून्यता के बीच में, उसका परिचय प्रेमिका (consort)/पूर्वोक्त प्रथम देवीरानी से हुआ था। वह प्रेमिका (consort) उसे पूर्णतया उस नटखट बालक की तरह प्रतीत हुई। इस प्रकार से प्रेमयोगी वज्र की समाधि अकस्मात् व अनजाने में ही उस बालक के ऊपर से हट कर , प्रेमिका (consort) के ऊपर को स्थानांतरित हो गई। आदि शंकराचार्य जी ने पतंजलि -योगसूत्रों के अपने भाष्य में समाधि के स्थानान्तरण के सिद्धांत को प्रकाशित किया है। उस नटखट बालक व प्रेमिका (consort) की तरह के परम प्रिय मित्रों को साऊल मेट (soul mate) भी कहा जाता है। प्रेमयोगी वज्र की उस द्वितीय समाधि को अंतरलैंगिक आकर्षण का तीव्र तांत्रिक बल भी मिल गया था , जिससे वह पहले से भी कहीं अधिक मात्रा में प्रज्वलित हो गई थी। वैसे , प्रेमयोगी वज्र की प्रेमिका (consort) के संपर्क में आने की कहानी भी दिलचस्प है। प्रेमयोगी वज्र किसी अन्य विद्यालय में पढ़ता था। एक दिन कक्षा में, एक नौजवान अध्यापक ने उसकी लात-घूंसों से जमकर पिटाई की थी। पहली बार प्रेमयोगी वज्र की इस तरह से पिटाई हुई थी , वह भी किसी अध्यापक के द्वारा व बिना किसी ठोस कारण के। प्रेमयोगी वज्र हताश हो गया और उस कक्षा की परीक्षा के बाद उसने विद्यालय ही बदल दिया , जहाँ पर उसका प्रेमिका (consort) के साथ मानसिक-परिचय हुआ। वैसे, विद्यालय छोड़ने के कुछ अन्य कारण भी थे। सबसे बड़े गुरु तो प्रेमयोगी वज्र को वे अध्यापक महोदय लगते हैं, जिन्होंने उसे सही व सीधा रास्ता दिखाया।

गुरु के मामले में भी भ्रम की सी स्थिति बनी रहती है। जो वस्तु-भाव मन में बैठ जाए, वही गुरु होता है। बलपूर्वक गुरु बनाने से भला क्या लाभ हो सकता है, विशेषकर पहले से ही मन में बैठे हुए गुरु को छोड़कर? गुरु के रूप में कुण्डलिनी का जागरण तभी हो सकता है, यदि गुरु के जीवन-चरित का अच्छी तरह से, हृदय से अनुभव हो। ऐसे में, किसी का गुरु, उसके पितामह से अधिक अच्छा भला क्या हो सकता है। अधिकाँश लोग घर के उजाले को छोड़कर, बाहर के अँधेरे में भटकते रहते हैं। श्राद्ध मनाने के पीछे भी तो यही रहस्य छिपा हुआ है। जब लोगों को अपने पूर्वजों के इन्द्रियातीत जीवनचरित्र को, अपनी कुण्डलिनी के रूप में जागृत करने का अधिकार है, तब उन्हीं का यह कर्तव्य भी बनता है कि वे उनके प्रति कृतज्ञता को भी प्रकट करें। उसी कृतज्ञता को प्रकट करने की विधि को ही श्राद्ध कहते हैं। श्रीकृष्ण , श्रीराम आदि अवतारी पुरुष भी तो विशेष व आकर्षक जीवन -चरित्र दिखाने के लिए ही प्रकट होते हैं। इसीलिए, यदि मुक्तिकारक ध्यान लगाने के लिए जीवन-चरित्र की नहीं, अपितु केवल देह-चित्र की ही आवश्यकता होती, तो वे अवतारी पुरुष केवल अपना सुन्दर मुख ही प्रदर्शित करते, अपने मनमोहक व आकर्षक जीवन-चरित्र को न दिखाते। तीर्थों में भी तो इसी कारण से महापुरुषों के जीवनचरित्र-स्थान बने होते हैं, जहाँ पर घूमना भी अत्यावश्यक होता है। अपने आप से सम्बंधित जीवन-चरित्र का आश्रय लेने से, एक लाभ यह भी होता है कि उससे ध्यान अच्छा व लगातार बना रहता है। इसीलिए, अवतारों के जीवन-चरित्र में, लगभग हर प्रकार के क्षेत्रों का समावेश होता है, जैसे कि श्रीकृष्ण सभी विद्याओं व कलाओं में पारंगत थे। जब कबूतर , बादल आदि २४ प्रकार के सजीव व निर्जीव पदार्थ ऋषि दत्तात्रेय के गुरु हो सकते हैं, तो मानवसदृश सजीव देहपुरुष हमारे गुरु क्यों नहीं हो सकते? वास्तव में गुरु प्रत्येक स्थान पर सदैव उपलब्ध हैं, केवल आँखें खोलने की आवश्यकता है मात्र। इसी तरह से, लोग चित्र-विचित्र मूर्तियाँ बना लेते हैं, और ध्यान उनका करते नहीं। अद्वैत का कुछ लाभ तो उनसे मिल जाता है, परन्तु समाधि का पूर्ण लाभ नहीं मिलता , या बहुत देर से व अनुकूल परिस्थितियों की सहायता से ही मिलता है। संभवतः इसीलिए अधिकाँश मंदिरों में, देवमूर्तियों के साथ-२ कुछ उन सम्बंधित ज्ञानी वृद्ध-पूर्वजों की मूर्तियाँ भी लगाई जाती हैं, जिनके साथ, सम्बंधित आम लोगों ने जीवन बिताया हुआ होता है। इससे उनमें अच्छे से ध्यान लगता है, और शीघ्रतापूर्वक फलदायी भी होता है। साथ में, उनसे भी (यदि उनका वास्तविक जीवन-चरित्र भी अद्वैतमयी रहा हो) या अन्य देवमूर्तियों से अद्वैतलाभ की प्राप्ति भी होती रहती है। इस तरह से, शविद के सिद्धांतानुसार ही, अद्वैत व कुण्डलिनी एक-दूसरे को पुष्ट करते रहते हैं। इसी सिद्धांतानुसार ही तो वैदिक कर्मकांडों व अनुष्ठानों के बीच -२ में, प्राणायाम व ध्यान आदि का नियम बना हुआ है। वैदिक क्रियाकलाप अद्वैतभाव को पुष्ट करते हैं, जिससे कुण्डलिनी भी पुष्ट होती रहती है। प्राणायाम व ध्यान से कुण्डलिनी को अतिरिक्त बल मिल जाता है, क्योंकि उनसे कुण्डलिनी पर ध्यान एकाग्रित हो जाता है। यदि उन वैदिक क्रियाकलापों के साथ शविद का भी अनुशीलन किया जाए, तो चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। यदि कोई चाहे, तो केवल शविद से भी काम चला सकता है। वैदिक क्रियाकलापों में प्राणायाम -ध्यान गौण होते हैं, जबकि कुण्डलिनीयोगसाधना में मुख्य। यह भी सत्य प्रतीत होता है कि जीवन में गुरु का होना अत्यावश्यक है। वास्तव में , जब-२ भी शविद आदि के कर्मयोग से मन में अद्वैतभाव छाता रहता है, तब-२ उन गुरु का चित्र मनमंदिर में बसता या दृढ़ होता रहता है। वैसा इसलिए होता है, क्योंकि वे गुरु भी अद्वैतसाधना में लीन रहने वाले होते हैं। साथ में, वे वृद्धावस्था के निकट भी होते हैं, जिन्होंने जीवन के सारे अनुभव ले लिए होते हैं, अतः वे स्वतः ही अनासक्त भी होते हैं। शिक्षक तो कोई भी हो सकता है। गुरु व शिक्षक के बीच में अंतर है। गुरु अधिकाँशतः एक ही होता है , परन्तु

शिक्षक तो बहुत सारे भी हो सकते हैं। वही गुरु साधक की कुण्डलिनी के रूप में भी होता है। यहाँ पर कुण्डलिनी का अर्थ , सर्वाधिक दृढ़/स्पष्ट/प्रिय/बार-२ उजागर होने वाला मानसिक चित्र ही है। हो सकता है कि लम्बे समय के बाद गुरु बदल जाए , परन्तु एक समय में तो एक ही गुरु होता है, जैसे एक समय में एक ही मन होता है। यह भी हो सकता है कि पूर्वोक्तानुसार दो अंतरलैंगिक तांत्रिक चित्र या बहुत सारे सुदृढ़ मानसिक चित्र मन में बसे हुए हों, जो परस्पर एक-दूसरे को पुष्ट कर रहे हों, परन्तु उनमें मुख्यतम तो एक ही होता है, जैसे कि प्रेमयोगी वज्र के लिए मुख्यतम मानसिक चित्र उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष का ही था। प्रेमयोगिनी के रूप वाला मानसिकचित्र दृढ़ तो सर्वाधिक था , परन्तु वास्तव में वह मुख्यतम मानसिकचित्र का सहयोगी ही था , और उसे ही संबल प्रदान कर रहा था। वैसा इसलिए था , क्योंकि प्रेमयोगी वज्र के मुख्यतम मानसिकचित्र का भौतिकरूप अपनी अद्वैतसाधना के बल से अत्यधिक प्रभावशाली था , और प्रेमयोगी वज्र उसके साथ गुरुवत आदरभाव के सहित सर्वाधिक भौतिक संपर्क में रहा। अतः सारी मानसिक शक्ति वही खींचता गया। यही तो गुरु की दिव्य महिमा है। वास्तव में , सबसे प्रिय शिक्षक व मित्र को ही तो गुरु कहते हैं। गुरु मित्र व शिक्षक, दोनों ही रूपों में एकसाथ होता है।

आत्मज्ञान होने के बाद भी प्रेमयोगी वज्र को आत्मज्ञान होने का भान तो था ; परन्तु वह उसे निरंतर, प्रचंड व व्यावहारिक नहीं बना पा रहा था। वह निष्क्रिय व असहाय जैसा रहता था। मानो जैसे कि वह प्रकृति के दिव्य नियम-कानूनों के प्रति अपने आप को पूर्णरूपेण समर्पित जैसा कर चुका था। उसे अनुभव होता था कि प्रेमिका (consort) के साथ प्रत्यक्षतांत्रिकसम्बन्ध बनाने से ही उसका आत्मज्ञान पूर्णतया सुदृढ़ हो पाता। उसे उस समय कोई पूर्णसिद्ध तांत्रिक गुरु भी उपलब्ध नहीं हो सके। उससे व अन्य अनेक सामाजिक , साँस्कृतिक, धार्मिक, पारिवारिक, आर्थिक, व्यक्तिगत व व्यावहारिक समस्याओं के कारण जब उसे जीवन की कोई भी स्पष्ट व सकारात्मक राह नहीं दिखाई दी ; तब उसने शरीरविज्ञान दर्शन की रचना की। इस दर्शन ने प्रेमयोगी वज्र की अँधेरी गलियों को रौशनी से चकाचौंध कर दिया। अप्रत्यक्षप्रेमिका (indirect consort) से क्षणिकात्मज्ञान होने के उपरांत, प्रेमयोगी वज्र अपने में एक ही कमी महसूस करता था। वो यह कि क्षणिकात्मज्ञान यदि स्वप्नावस्था की अपेक्षा जागृतावस्था में होता , तो अधिक अच्छा होता। संभवतः इसी कमी के कारण, अप्रत्यक्षप्रेमिका (indirect consort) के साथ प्रत्यक्षतांत्रिकसम्बन्ध बनाने का उसका बहुत अधिक मन करता था, परन्तु अनेक सामाजिक बाध्यताएं विद्यमान थीं। क्योंकि उसके चित्त में अपनी प्रेमिका (consort) व उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष, दोनों के चित्र अत्यधिक दृढ़ता के साथ जमे हुए थे, अतः प्रेमिका (consort) के साथ प्रत्यक्षतांत्रिकसम्बन्ध से उसके चित्त में , उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष के रूप की समाधि लगने की सम्भावना अत्यंत प्रबल थी। उस समाधि से उसकी उपरोक्त अनुभूतन्यूनता पूर्ण हो जाती , क्योंकि उससे उसके स्वप्नकाल के क्षणिकात्मज्ञान का अद्वैत उसकी जागृतावस्था की समाधि के अद्वैत के ऊपर आरोपित हो जाता। वास्तव में , प्रेमयोगी वज्र की वह कमी लगभग २० -२२ वर्षों के बाद, द्वितीय प्रेमिका (consort) के सहयोग से पूरी हुई (१० सेकेंड की वह पूर्ववर्णित समाधि)।

विज्ञान के अध्ययन के दौरान जब प्रेमयोगी वज्र रंगीन चित्र बना कर, विषय को अत्यधिक स्पष्ट व रोमांचकारी कर देता था, तो उसे कुण्डलिनी के पुष्ट होने का व उसके ऊर्ध्वगमन का अनुभव होता था। यह रंगीन-चित्रों की परम्परा तो कुण्डलिनीयोग में प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। इसी तरह से, प्रतिदिन आते-जाते समय, बस के अन्दर बज रहे गानों से भी उसे कुण्डलिनी का विकास अनुभव होता था ; और साथ में वह बहुत ही रोमांचित, संयमित व संतुलित हो जाता था। इसका सीधा सा अर्थ है कि कुण्डलिनीयोग के पश्चात व प्रारम्भ में संगीत लाभकारी होता है। कुण्डलिनीयोग के समय, केवल संगीत या अन्य अपरिचित भाषाओं में संगीत को सुनना अधिक लाभकर प्रतीत होता है, क्योंकि ऐसे संगीत से ध्यान के विरुद्ध काम करने वाला शाब्दिक व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। समाधि अवस्था की शुरुआत के साथ ही प्रेमयोगी वज्र का तीनों कालों से सम्बंधित, अर्थात सभी प्रकार का अनुभव कुण्डलिनी के साथ जुड़ना शुरु हो गया था। वैसे समाधि के भी , ध्यान की प्रगाढ़ता के अनुसार विभिन्न स्तर होते हैं। इस पुस्तक के पूर्वभाग में जिस १० सैकेंड की समाधि का वर्णन किया गया है, वह वास्तव में पूर्ण-समाधि थी, जिसे अधिक देर तक सहन नहीं किया जा सकता। उसे कुण्डलिनी का जागरण भी कहते हैं। वैसी पूर्णसमाधि आत्मज्ञान का ही एक निम्नतर रूप होती है। प्रथम देवीरानी के मानसिकचित्र के साथ, लगभग एक साल तक वह प्रबल तांत्रिक समाधि-अवस्था बनी रही। उस एक साल के दौरान , भौतिक/स्थूल रूप में भी प्रथम देवीरानी निरंतर रूप से प्रेमयोगी वज्र को उपलब्ध होती रही, यद्यपि उसने उसे सीधे तौर पर कभी भी विशेष अहमियत नहीं दी , अपितु उसकी सहायता से उसके मानसिक रूप की तांत्रिक समाधि को ही अपने मस्तिष्क में स्वतःप्राप्त अप्रत्यक्ष /मानसिक तंत्र से पुष्ट होने दिया। उसके बाद उन दोनों का वियोग हो गया। उससे कुण्डलिनी शिथिल होती गई व साथ में उससे जुड़ा हुआ त्रिकालगत संसार भी। इस तरह एक साल से कम समय में ही , वह कुण्डलिनी तंत्र-गुरु की संगति से शून्य हो गई व साथ में उससे जुड़ा हुआ संसार भी। प्रेमयोगी वज्र के मन में पूरी तरह से आनंदमयी शून्यता छा गई। तंत्र -गुरु की स्वाभाविक संगति से ही वह आनंदमयी शून्यता कुछ महीनों तक कायम रह सकी, अन्यथा साँसारिक माया-मोह के आकर्षण से नष्ट हो गई होती। वह आनंदमयी शून्यता विचित्र

व अलौकिक थी, क्योंकि सारा संसार पहले की तरह ही अनुभव हो रहा था, परन्तु वह निष्प्रभावी जैसा था, व उत्कट इच्छा (क्रेविंग) पैदा करने वाला न था। उस दौरान के अनुभव, साधारण काल के अनुभवों से कहीं ज्यादा तीव्र, स्पष्ट व मजबूत थे, यद्यपि तार्किक (लौजिकल)/द्वैतपूर्ण नहीं थे, व इच्छा पैदा करने वाले भी नहीं थे। सभी अनुभवों में समानता-एकता प्रतीत होती थी।

उसी शून्यता के बीच में प्रेमयोगी वज्र को क्षणिकात्मज्ञान/ऐनलाईटनमेंट (glimpse enlightenment) हुआ था। वह उसका वर्णन अपने शब्दों में इस प्रकार करता है, "मैं मीठी निद्रा में एक स्वप्न देख रहा हूँ कि मैं अपने घर से लगभग २०० मीटर नीचे, घाटी की नदी के ऊपर बने हुए एक पुल पर खड़ा हूँ। मैंने अचानक अपने को पूरा खुला हुआ अनुभव किया और मेरी अन्धकार से भरी आत्मा में अचानक प्रकाश छा गया। ऐसा लगा, जैसे कि मेरी आत्मा एक जकड़न से मुक्त हो गई। मेरे मन का प्रकाश जैसे मेरी आत्मा में फैल गया था। मैंने नदी में बहते जल को देखा। वह वैसे ही रंग -रूप का था, जैसा कि होता है, परन्तु वह मुझे अपनी आत्मा व पुल से अलग नहीं लग रहा था। पुल भी वैसा ही था, पर अनुभव-रूप में मेरी आत्मा व नदी-जल से अलग नहीं था। नदी के दूसरी ओर, सामने एक पहाड़ था, जिसका लगभग २० मीटर का मलबा, कई दिनों पहले, निरंतर हो रही भारी वर्षा के कारण गिरकर, नदी को संकरा किए हुए था। वह चमत्कारिक रूप से सीधे ही नीचे फिसला था, जिससे उसपर उपस्थित सभी पेड़-पौधे भी जीवित व सुरक्षित थे। उपरोक्त दिव्य, विचित्र व आत्मज्ञान से भरे स्वप्न में; मैंने उसकी ओर भी देखा, तो उस सब का अनुभव भी अलग नहीं था। फिर मैंने आसमान में चमकते हुए महान सूर्य को देखा। उसका अनुभव भी सभी के जैसा था , और यहाँ तक कि चमक भी सभी के जैसी ही थी। इस सारे घटनाक्रम का अनुभव लगभग ५-१० सैकेंड में ही हो गया था। उस समय मैं परमानंद से ओत-प्रोत था। मुझे उस अनुभव में वह सभी कुछ मिल गया, जो कि मिलना संभव है। उन चंद क्षणों के लिए, मानो कि मैं संपूर्ण सृष्टि का राजा बन गया था। उस अनुभव में रात और दिन जुड़े हुए थे। उस अनुभव में प्यार -घृणा, दोनों जुड़े हुए थे। इसका अर्थ है कि उस अनुभव में सभी कुछ विद्यमान था। वह एक पूर्ण अनुभव था। उस पूर्ण अनुभव -सागर में लग रहा था कि जैसे नदी, पुल, सूर्य, पहाड़ आदि के रूप में लहरें उठ रही थीं, जोकि उस एकमात्र अनुभव सागर (आत्मा) से अलग नहीं प्रतीत हो रही थीं। अगली सुबह जब मैं शय्या से ऊपर उठा, तो अपने को पूर्ण, पूर्णकाम, आप्तकाम, नवजात-बालक सदृश, तनाव-रहित, शाँत, आनंदमय, इच्छाहीन पाया, व अपने को अपने स्वाभाविक आत्मरूप में महसूस किया। ऐसा लगा, जैसे कि मैंने अपने आप को अब वास्तविक रूप में पहचाना है, और अज्ञात समय से चली आ रही जिंदगी की दौड़ को पूरा कर लिया है। ऐसा लगा कि घर से भटका हुआ, मैं अपने वास्तविक घर में पहुँच गया हूँ। उस अनुभव ने मेरे जीवन को एकदम से, पूर्णतया व सकारात्मक रूप से परिवर्तित कर दिया"।

आमतौर पर हमारा व्यक्तित्व, एक अँधेरे कमरे में चल रहे एक दूरदर्शन यंत्र /चलचित्रपट (theatre screen) की तरह होता है। इस दृष्टांत में आत्मा को अँधेरे कमरे की उपमा दी गई है , और मन को दूरदर्शन/चलचित्रपट की। वैसी अवस्था में, आत्मा (अँधेरा कमरा) व मन (प्रकाशमान दूरदर्शन/चलचित्रपट) के बीच में भिन्नता दिखाई देती है। परन्तु जब अँधेरे कमरे में विद्युत प्रकाशक (electric bulb) जला दिया जाता है, तब कमरे (प्रकाशयुक्त) व दूरदर्शन/चलचित्रपट (प्रकाशयुक्त) के बीच में कोई भिन्नता प्रतीत नहीं होती। वे दोनों, एकसमान रूप से प्रकाशपुंज ही प्रतीत होते हैं। उसी तरह जब आत्मज्ञान होता है, तब अँधेरी आत्मा (अपना आप/ गहरी नींद के जैसी अवस्था/जड़ अवस्था में या संकल्प-विकल्प रहित अवसाद की अवस्था में, अपना अन्धकारपूर्ण आपा) में प्रकाश छा जाता है। उससे आत्मा और मन, दोनों एक जैसे ही, प्रकाशरूप प्रतीत होते हैं। वैसा ही प्रेमयोगी वज्र को अनुभव हुआ। वास्तव में वह प्रकाश, कमरे व दूरदर्शन/चलचित्रपट के प्रकाश की तरह साधारण प्रकाश नहीं होता, अपितु परमचेतनामयी व परमानंदमयी प्रकाश होता है। उपमा तो केवल समझाने के लिए दी गई है। इस तरह से, मुख्य व प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रंथों में ब्रम्ह का जैसा वर्णन आता है, प्रेमयोगी वज्र को वह पूर्णतः वैसा ही प्रतीत हुआ। वास्तव में सभी बुराइयाँ हमें अपनी अन्धकारपूर्ण आत्मा के रूप में अनुभव होती हैं। इसी तरह से सभी अच्छाइयाँ हमें अपनी चित्तवृत्तियों के रूप में अनुभव होती हैं। आत्मज्ञान में हमें अपनी आत्मा व चित्तवृत्तियाँ एक जैसी व एकाकार रूप में अनुभव होती हैं। तभी तो उपरोक्तानुसार ऐसा अनुभव होता है कि उस अनुभव में सभी विरोधी भाव इकट्ठे हो गए हैं। किसी भी ज्ञान/वस्तु/कर्म/फल की अभिव्यक्ति का आधार चित्तवृत्तियाँ ही तो हैं। जिस समय आत्मा जागृत होती है , उस समय सभी चित्तवृत्तियाँ उससे अलग नहीं, अपितु उसी की विविध आकार-प्रकार की हलचलें जान पड़ती हैं, जैसे कि सागर में विविध प्रकार की तरंगें। इसी कारण से प्रेमयोगी वज्र को लगा कि उसने सभी कुछ पा लिया था, व सभी कुछ कर लिया था।

एक बार लेखक ने देखा कि किसी कारणवश देहदेश में व्यापारी-देहपुरुषों की कमी पड़ गई थी। बड़े-२ जलयान समुद्रतट पर खड़े थे, और उन पर ताले लटके हुए थे। समुद्रतट पर बहुत सारा सामान इकट्ठा हो गया था। सामान को जलयान पर चढ़ाने वाले कर्मचारी व मजदूर आदि लोग, आसपास कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहे थे। क्योंकि दूसरे देशों को माल नहीं भेजा जा रहा था , इसलिए वे भी उस समस्याग्रस्त देश को अपना माल नहीं भेज

रहे थे। इससे उस देहदेश की हालत दिनोंदिन बिगड़ती गई। तभी वह बात राजा के नोटिस (notice) में लाई गई। राजा ने विदेश-व्यापार से सम्बंधित मंत्रियों व उच्चाधिकारियों को, उस कुव्यवस्था को दुरस्त करने के लिए सख्त आदेश जारी कर दिए। उन्होंने थोड़ा-बहुत विरोध किया, परन्तु फिर मान गए। फिर मंत्रियों व अधिकारियों ने बंदरगाहों के स्थानीय अधिकारियों को सख्त आदेश जारी कर दिए। कई दिनों तक नाकाम बने रहने से , उनकी आदत बिगड़ गई थी, इसलिए उन्होंने आदेशों को अनसुना कर दिया। फिर जवाबी कार्यवाही करते हुए, उच्चाधिकारियों ने चेतावनी से भरे हुए लिखित आदेश जारी कर दिए। उससे उन व्यापारीगणों की आँखें खुलीं, और वे धीरे-२ करके अपने काम पर लौट गए। शुरु-२ में काम को धीरे-२ करते हुए, कुछ अभ्यस्तता प्राप्त हो जाने पर , उन्होंने काम करने की गति बढ़ा दी। इससे धीरे -२ देहदेश की व्यवस्था सुधरती गई, और कुछ समय बाद वह अपनी पूर्वावस्था की तरह हो गई।

आजतक यह जानने में नहीं आया कि स्वप्न में भी किसी को पूर्ण आत्मज्ञान हुआ। वास्तव में जीवन जीने का पूरा व सही तरीका आत्मज्ञान के बाद ही सीखने में आता है। आत्मज्ञान से व्यक्ति शाँत , समझदार व प्यारा बन जाता है। अधिकाँश लोग आत्मज्ञान को किसी विशेष दृष्टिकोण से देखते हैं , जैसे कि वह प्रकाश ही प्रकाश है, या आनंद ही आनंद है, या उसमें दोनों हैं, या उसमें सकारात्मकता व चेतनता के सभी गुण हैं। आश्चर्य तो तब होता है, जब अनुभव के समय आत्मज्ञान में सभी गुण, यहाँ तक कि विरुद्ध गुण भी एकसाथ प्रतीत होते हैं। उसमें प्रकाश भी है, व अन्धकार भी; आनंद भी है, व दुःख भी; सकारात्मकता भी है, व नकारात्मकता भी; चेतनता भी है, व जड़ता भी आदि-२। वह विचित्र है। उसमें सभी कुछ है। वास्तव में वह मिलता तो सकारात्मकता से ही है, परन्तु सकारात्मकता के प्रति भी आसक्ति-मोह नहीं होना चाहिए, तभी मिलता है। आत्मज्ञान इतना सस्ता नहीं है कि किसी विशेष विचारधारा से चिपक कर उसे प्राप्त किया जाए। उसे कोई, अन्य पुरुष को प्रदान भी नहीं कर सकता, केवल उसकी ओर की दिशा को ही दिखा सकता है। आत्मज्ञान तो आत्म-अज्ञानियों के लिए वैसा ही है, जैसा कि एक हाथी अंधों के लिए। कोई अंधा पूंछ पकड़कर हाथी को खम्बे जैसा बताता है, तो कोई कान पकड़ कर केले के पत्ते जैसा। यह धारणा भी प्रचलित है कि आत्मज्ञान के बाद पुरुष लोक -परलोक आदि के बारे में सभी कुछ जान जाता है, व उसमें बहुत सी शक्तियां आ जाती हैं। वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता। वह सभी कुछ अप्रत्यक्षरूप से जानता है , न कि प्रत्यक्ष रूप से। वह केवल अपने आप को जान जाता है, अपने असली रूप को जान जाता है, और साथ में यह भी जान जाता है कि सभी कुछ मेरे अपने रूप की ही झलकें हैं, बाकी कुछ नहीं। उदाहरण के लिए, प्रेमयोगी वज्र को सिनेमाघर में हिट मूवी (hit movie) देखकर उस क्षणिकात्मज्ञान की चकाचौंध का कुछ अतिक्षुद्र सा स्मरण हो आता था। उसी तरह से, चकाचौंध वाले अन्य साँसारिक अनुभवों से भी, उसमें क्षणिकात्मज्ञान का कुछ अत्यल्प सा प्रभाव छा जाता था। वह किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं जान जाता, अपितु उसे मिथ्या संसार के बारे में उत्तर पाने की जिज्ञासा ही नहीं रहती, अर्थात उसके सारे प्रश्न ही समाप्त हो जाते हैं। शविदप्रेमी के मन में भी कोई प्रश्न नहीं रहता है। जब उसके शरीर में ही सब कुछ होता है , तो प्रश्न किस बात का? वैसे भी वह महान देहपुरुषों का उपासक होता है, जिनमें कोई भी प्रश्न नहीं होता। स्वतः व मानवीय रूप से जो कुछ भी होता है , वह उसे होने देता है, और प्रसन्न रहता है। इसका अर्थ है कि शविद में आत्मज्ञान के समतुल्य शक्ति है। उसमें कोई भी शक्ति नहीं आती। वह औरों की तरह ही , पहले जैसा एक मनुष्य रहता है। कई बार उसके द्वारा कही गई या सोची गई बात सत्य भी सिद्ध हो जाती है , वह इसलिए नहीं कि वह दुनिया को बदलने की शक्ति रखता है, अपितु इसलिए कि भविष्य की घटनाएँ कई बार उसके मन में अप्रत्यक्ष रूप में (अर्थात उसके जाने बिना ही) समयपूर्व ही संकेत रूप में प्रकट हो जाती हैं। फिर भी इसमें कुछ संदेह है कि क्या आत्मज्ञानी के मुख से, भविष्य में स्वतः होने वाली घटना के सम्बन्ध में, स्वतः ही शब्द निकलते हैं, या उसके द्वारा बोले गए शब्द कालान्तर में सत्य हो जाते हैं? यदि होनी ही प्रबल हुआ करती, तो लोग आत्मज्ञानी-साधुपुरुषों के आशीर्वाद के लिए क्यों ललायित रहा करते? संभवतः तभी तो, किसी भी मनुष्य से शत्रुता न मोल लेते हुए, सभी मनुष्यों की सेवा में तत्पर रहने के लिए शास्त्रों में कहा गया है। इस मामले में यह लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है, "न जाने किस रूप में, नारायण मिल जाएं"। वैसे वह अत्यधिक सहनशील होता है, और कुछ बोलने से बहुत बचता है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि अधिक बोलने से भी पुष्टता को प्राप्त कुण्डलिनी क्षीण होती रहती है , विशेषकर अहितकारी बोलों से, यद्यपि कुण्डलिनी को जगाने के लिए तो व्यावहारिकता व अद्वैत में रह कर बोलना भी पड़ता है। लिखित माध्यम से संकल्पाभिव्यक्ति से कम क्षीण होती है। वैसे अति होने पर ही, उसके मुख से या कलम से, बिना क्रोध व विकार के ही, द्वयर्थी शब्द निकल सकते हैं, जो सच्चे मन वाले को लाभ व कपटी मन वाले को हानि पहुंचा सकते हैं। वह छोटी -मोटी व स्वार्थपूर्ण इच्छा कभी नहीं करता , अपितु सबके कल्याण की, वैश्विक (worldly) या ब्रम्हांडीय (universal) इच्छा ही करता है। वास्तव में , आत्मज्ञान एक प्रकार का ऊर्जा-तालाब (energy sink) ही है, जो कुण्डलिनी-ऊर्जा को अवशोषित करता है। अपनी कुण्डलिनीमिश्रित मानसिक ऊर्जा के उफान में होने पर, प्रेमयोगी वज्र आध्यात्मिक विषय वाले सोशल मीडिया (social media) से जुड़ गया था, और वहाँ पर उसने घोषणा कर दी थी कि वह कुण्डलिनी के रहस्य का पता अवश्य लगाएगा। उससे उत्पन्न तीव्र इच्छा से ,

उसकी विशाल मानसिक ऊर्जा, उसकी व्यर्थ की बातों या व्यर्थ के अभियानों आदि में नष्ट होने से बची रही , और उसकी कुण्डलिनी के उत्थान में लगी रही। फिर कालान्तर में कुण्डलिनीजागरण के साथ, उसकी वह संचित कुण्डलिनी-ऊर्जा एकसाथ बाहर निकल गई। संचित मानसिक-ऊर्जा में बहुत अधिक शक्ति होती है। उसके उफान के समय बोली गई बातें अधिकाँशतः सत्य सिद्ध हो जाती हैं , इसलिए बहुत सावधान रहना पड़ता है। उस मानसिक-ऊर्जा के बाहर निकलने का अर्थ है कि महान कुण्डलिनी के दर्शन के आगे वह संचित ऊर्जा -भण्डार फीका पड़ गया, जैसे दीपक के आगे जुगनू फीका पड़ जाता है। कुण्डलिनीजागरण से भी बड़ा ऊर्जा-शोषक (energy sink), आत्मज्ञान होता है। वह जागृत कुण्डलिनी से भी महान होता है, अतः उसको भी सोख लेता है। प्रथम देवीरानी के रूप की अतिक्रियाशील कुण्डलिनी को प्रेमयोगी वज्र के क्षणिकात्मज्ञान ने ही सोखा था। देवीरानी की कुण्डलिनी ने प्रेमयोगी वज्र का सभी कुछ भक्षण कर लिया था , फिर बाद में प्रेमयोगी वज्र के आत्मज्ञान ने उसका भी भक्षण कर लिया। यद्यपि वह आत्मज्ञान अपूर्ण व क्षणिक था, इसलिए कुण्डलिनी को पूरी तरह से नहीं मिटा पाया था। अतः धीरे -२ उस कुण्डलिनी की शक्ति बढ़ती रही, और वह प्रचंड हो गई। उस शक्ति को उतारने के लिए, उसके द्वारा पूर्वोक्त जगद्हितैषी एकश्लोकी शविद अनायास ही उद्भूत हो गया। यह भी हो सकता था कि यदि वह जल्दबाजी में कुण्डलिनीशक्ति को शक्तिशाली वचनों -लेखनों आदि से न उतारता, तो वह कालान्तर में पूर्णात्मज्ञान के रूप में विस्फुटित हो जाती, परन्तु प्रकृति को कुछ और ही मंजूर था।

आत्मज्ञान से यह पूर्णतः ज्ञात नहीं हो जाता कि क्या उचित है, व क्या अनुचित। वह तो पूर्ण विश्वास के साथ, एकमात्र यही बात जानता है कि मानवता का ही पक्ष लेना चाहिए, अमानवता का नहीं। क्या मानवता है, और क्या अमानवता, इस का निर्धारण तो वह अपनी सीमित बुद्धि व अनुभव के आधार पर ही तय कर सकता है , जिससे निर्धारण के स्तर में न्यूनाधिकता होना तो स्वाभाविक ही है। ऐसे व्यावहारिक अनुभव तो साँसारिक क्रियाशीलता व संपर्कों से धीरे-२ बढ़ते रहते हैं। आत्मज्ञानी को तो केवल इस बात का पता चलता है कि काम करने का कौन सा तरीका उचित है, और कौन सा अनुचित। अर्थात उसे उचित दृष्टिकोण (अनासक्ति व द्वैताद्वैत/अद्वैत) की महिमा का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। इसी तरह , आत्मज्ञानी लोग किसी भी स्वभाव के हो सकते हैं। स्वभाव को अधिकाँशतः प्रकृति व समसामयिक परिस्थितियाँ निर्धारित करती हैं, आत्मज्ञान नहीं। यद्यपि कुछ प्रभाव तो आत्मज्ञान का भी पड़ता है, क्योंकि एकसमान बाह्यपरिस्थितियों से युक्त दो व्यक्तियों के बीच में, आत्मज्ञानी व्यक्ति का स्वभाव श्रेष्ठतर होता है।

ऐसी भी आम धारणा है कि आत्मज्ञानी के सभी पापकर्म क्षमा कर दिए जाते हैं। परन्तु ऐसा नहीं होता , क्योंकि वैसे तो उससे पापकर्म होते ही नहीं, परन्तु यदि वह बलपूर्वक करता भी है, तो उसका आत्मज्ञान उतनी ही अधिक तीव्रता से क्षीण होता चला जाता है, जितनी तीव्रता से वह पापकर्म करता है। पूर्ण आत्मज्ञान-विस्मृति के बाद, वह भी जनसाधारण की तरह बद्ध होकर पापकर्म के फल का भागी बन जाता है , यद्यपि औरों की अपेक्षा कहीं अधिक शीघ्रता से, क्योंकि उसे उनका फल अपने उसी जीवन में पूरा भोगना होता है, उसके अगले जन्म की संभावना न होने के कारण। आत्मज्ञान होने के बाद पुरुष सतही सामाजिक व धार्मिक व्यवस्थाओं को नहीं मानता, अपितु वह मानवता को धर्म व अमानवता को अधर्म मानता है। यद्यपि वह विशेष परिस्थितियों में, सामाजिक सुव्यवस्थाओं को प्रभावी रखने के लिए व औरों को सद्प्रेरणा देने के लिए उनका आचरण करता भी है। जैसा कि श्रीकृष्ण ने गीता में लिखा है , "धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-२", जिसके अनुसार वह मानवता के धर्म की स्थापना के लिए , बड़ी चतुराई व युक्तियुक्तता के साथ, पूर्णरूप से अनासक्त/निर्लिप्त रहते हुए, महान प्रयास भी करता है। वह केवल औरों की प्रेरणा से व औरों को प्रेरणा देने के लिए ही, बुझे मन से/अनासक्ति के साथ कर्म करता है, क्योंकि उसे अनुभव होता है कि उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है , और अब कुछ करना शेष नहीं है, तथा उसके लिए तो केवल निरंतर योगसाधना से आत्मज्ञान को प्रभावी रखने व उसे बढ़ाते रहने का कार्य ही शेष बचा हुआ है। यद्यपि आत्मज्ञपुरुष समुचित व आत्मज्ञानयुक्त कर्मों को ठुकराता भी नहीं है। एक भ्रम और प्रचलित है कि आत्मज्ञानी अपने आत्मज्ञान को किसी के भी समक्ष प्रकट नहीं करता। ऐसा नहीं है। वह अपने अनन्य प्रेमी के पास उसे अवश्य प्रकट करता है। वैसे तो उसके लिए भी विश्वास करना कठिन हो जाता है , क्योंकि आत्मज्ञानी का अहंकार इतना अधिक क्षीण हो चुका होता है कि वह नीचों से भी अधिक नीच प्रतीत होता है। यह पृथक वार्ता है कि वह अनन्य प्रेमी उसे समाज में आगे प्रसारित कर पाए या नहीं, क्योंकि वह भी तो अपने अनन्यप्रेमी को ही आगे बता पाएगा , संभवतः। इस तरह से, प्रेमपूर्ण समाज में ही आत्मज्ञान आगे से आगे प्रसारित हो पाता है , व स्थिर रह पाता है। आत्मज्ञान उत्कट प्रेम का ही तो दूसरा नाम है। यहाँ तक कि मन की बात भी अपने गहन प्रेमी मित्र को ही बताई जा सकती है , फिर आत्मा तो मन से भी कहीं अधिक गहरी व गूढ़ है। कहा भी गया है , "पोथी पढ़े-२ जग मुआ, पंडित भया न कोय; ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय"। वैसे, प्रेमयोगी वज्र को किसी चिरपरिचित आध्यात्मिक व्यक्ति ने भी उस आत्मानुभव को गुप्त रखने को कहा था। संभवतः उनका उद्देश्य यही था कि उस घोषणा से उसके विकास व अध्ययन में बाधा उत्पन्न न होती या उसकी सुरक्षा को कोई खतरा न होता। फिर भी, अधिकाँशतः, आत्मज्ञानोपरांत २० वर्षों के पूर्व, अधिकतर लोग अपने आत्मज्ञान के विषय में औरों को तब तक नहीं बता

पाते, जब तक उनका कोई अत्यंत गहरा प्रेमी, पूरी निष्ठा व भक्ति से उनके पीछे नहीं पड़ जाता। तभी तो आत्मज्ञान को गूंगे का गुड़ भी कहते हैं। श्री गोपी कृष्ण व श्री रमन महर्षि भी २० वर्षों तक कुछ नहीं बता पाए थे। प्रथम के ३ वर्षों में तो , यदि कोई उसे हृदय से प्रसन्न कर ले या उसका आशीर्वाद प्राप्त कर ले, तो संभवतः देर-सवेर उसको आत्मज्ञान होना निश्चित प्रतीत होता है। यद्यपि यह कार्य कठिन होता है, क्योंकि आत्मज्ञानी अपने भक्त के हृदय को उसके स्वयं से भी अधिक जानता है। २० वर्षों के बाद तो उसमें वैसी कोई दिव्य शक्ति नहीं रहती , क्योंकि वह आत्मज्ञान के अपने वास्तविक भावनामय अनुभव को लगभग पूर्णतः विस्मृत कर चुका होता है। उस समय तो वह केवल दिशा-निर्देशन ही कर सकता है, अन्य कुछ नहीं। वैसे तो आत्मज्ञान कभी भी हो सकता है , परन्तु आत्मज्ञान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त आयु किशोरावस्था की ही है , विशेषतः यदि अनुभवी गुरु की संगति प्राप्त हो तो। इस आयु में जिम्मेदारियां सबसे कम होती हैं , जबकि शक्ति सर्वाधिक होती है। इस आयु में अधिकाँश अवसरों पर तांत्रिकयौनबल भी मिल जाता है।

संभवतः वह अपने आत्मज्ञान की बात औरों को इसलिए भी नहीं बताता है , क्योंकि उसे संकेत मिल जाते हैं कि उसकी बात पर किसी के द्वारा विश्वास करना लगभग असंभव के समान है, यहाँ तक कि लोग उसके दावे को विपरीत रूप में भी ले सकते हैं। उससे उसे आत्मज्ञान के महत्त्व /प्रकाश के कम होने की आशंका प्रतीत होती है। वह सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु का महत्त्व , इस प्रकार के प्रचार से कम नहीं होने देना चाहता। वास्तव में अपने को कोई जान ही नहीं सकता। ज्ञान तो दूसरी वस्तु का ही होता है। यदि कोई कहे कि मैं अपने को जानता हूँ , तो वह पागल कहलाएगा। अतः आत्मज्ञानी किस मुंह से बोले कि मैंने अपने को जान लिया है, क्योंकि ऐसा बोलते ही वह अपना नहीं, अपितु किसी दूसरी वस्तु का ज्ञान बन जाता है, अर्थात आत्मज्ञान कुछ समय के लिए अनुभवदृष्टि से ओझल सा हो जाता है, जिससे बोलने और सुनने वाले, दोनों को लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। न बताने का कारण यह भी प्रतीत होता है कि उसके आसपास का आचार-विचार अज्ञानयुक्त होता है, जिससे उसके द्वारा सही बात बताए जाने पर, उसे अहंकारी समझा जा सकता है, और उसकी सुरक्षा पर संकट भी छा सकता है। सबसे बड़ा कारण तो यही प्रतीत होता है कि उसे स्वयं भी उसे प्राप्त करने की विधि पता नहीं होती, क्योंकि उसे प्राकृतिक रूप से अनायास ही वह उपलब्ध हुआ होता है। यदि उसे साधना विधि का प्रत्यक्ष अनुभव हो , तब तो वह औरों को बताए और सिखाए भी, अन्यथा हंसी का पात्र भी बन सकता है।

लेखक ने देहदेश में नित नई समस्याएँ आते-जाते देखीं। वास्तव में देहदेश बहुत अधिक जटिल होता है, अतः वहाँ पर समस्याओं का होना, कोई नई बात नहीं होती। कभी वहाँ पर, वातानुकूलित कक्षों में बैठे हुए, विदेशव्यापार-विभाग के मंत्री व उच्चाधिकारी, काम के बोझ से परेशान होकर, जोर-२ से चिल्लाने लगते हैं। विदेशव्यापार से जुड़े मुद्दों में बहुत सिर खपाना पड़ता है। उसमें घाटा होने का डर भी उन्हें हमेशा ही सताता रहता है। उनका अपना देहदेश कहीं दूसरे देहदेशों से पीछे न रह जाए, इसके लिए वे कई बार अपनी क्षमता से कहीं अधिक कार्य करने लग जाते हैं, और शीघ्र ही थक जाते हैं। जब राजा को उनकी चीख-पुकार सुनाई देती है, तब वह उन्हें आराम करने की सलाह देता है। आराम करके वे शाँत हो जाते हैं , और पुनः अपना कार्य उत्तम रीति से करने लग जाते हैं।

क्षणिकात्मज्ञान के उपरान्त वह अपने तांत्रिक गुरु (master) व अपनी तांत्रिक प्रेमिका (consort) के भौतिकरूपों से प्रतिबिंबित, अपने मानसिक चित्रों के साथ निरंतर व प्रचुर समाधि में , बिना किसी प्रयास के ही कई वर्षों तक स्थित रहा। वह अपने को कृतकृत्य (one who has done everything) समझकर, सदैव ईश्वर-भक्ति में डूबा रहता था। लौकिक कार्य पूर्ववत ही चलते रहते थे , परन्तु अब दिव्यानंदयुक्त समाधि के साथ। कभी दोनों चित्र मन में बसे रहते थे। कभी वे बारी -बारी से आते-जाते थे। कभी-कभी वे परिस्थिति के अनुसार आते-जाते थे, जैसे कि रोमांटिक-प्रकार (romantic) व भौतिक/वैज्ञानिक प्रकार के क्षणों में प्रेमिका (consort) का व शेष कालों में गुरु (master) का चित्र प्रभावी रहता था। इसका अर्थ यह है कि मस्तिष्क में दो-२ कुण्डलिनियाँ भी एकसाथ रह सकती हैं, यद्यपि जागृत तो एक ही हो सकती है, उसके निरंतर अभ्यास से, जैसे कि प्रेमयोगी वज्र के मन में गुरु (master) के रूप की एतद्पुस्तकवर्णित कुण्डलिनी जागृत हुई। यह अच्छा ही हुआ, जो उसने गुरु के रूप से निर्मित अपनी मानसिक कुण्डलिनी को ही मुख्य बनाया, क्योंकि संभवतः वही पूरी आयु भर के लिए क्रियाशील रहती है , प्रेमिका के रूप की कुण्डलिनी तो संभवतः साधक के यौवन तक ही सीमित रहती है। आत्मज्ञान के बाद समाधिचित्र इसीलिए मन में निरंतर बना रहता है , क्योंकि आत्मज्ञान से गिरा हुआ मन , समाधिचित्र को ही परमचेतन-आत्मज्ञान के बाद की, दूसरे नंबर की चेतना (consciousness) समझता है; अतः स्वतः रूप से उसी की शरण ग्रहण करता है। इसी तरह, आत्मज्ञानी एक समाधि के टूटने पर दूसरी समाधि को अनायास ही पकड़ लेता है , और आवश्यकता पड़ने पर उसे कुण्डलिनीयोग से निरंतर भी बनाए रखता है।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि प्रेमयोगी वज्र को संयोगवश या पूर्व -कर्मों के प्रभाव से, एक दिव्य, अप्रत्यक्ष व आत्मज्ञानकारक तंत्र का सहयोग मिला। प्रेमयोगी वज्र शविद आदि से प्राप्त द्वैताद्वैतकारक धारणाओं व चेष्टाओं से , २० वर्षों तक अपनी अवनति से बचा रहा , अर्थात लगभग उसी आत्मज्ञान वाली स्थिति के आसपास स्थित रहा, यद्यपि वह पूर्वकाल में प्राप्त अपने आध्यात्मिक स्तरों से और अधिक ऊपर नहीं उठ सका, यहाँ तक कि अपने आत्मज्ञान-स्तर को तो स्पर्श भी नहीं कर पाया। यद्यपि वह भौतिकरूप से , अपेक्षाकृत रूप से अत्यधिक विकसित हो गया था। शविद अप्रत्यक्ष रूप में तंत्रयोग में सहायता करता है , क्योंकि यह उस उत्तम स्तर की अनासक्ति को निरंतर बनाए रखता है , जो कि तांत्रिक प्रेमिका (consort) व यौनसंसर्गयोग के प्रति होनी चाहिए। वास्तव में यौनयोग अन्य कुछ विशेष नहीं , अपितु यौन-आकर्षण का आध्यात्मिक रूपांतरण ही है। फिर शविद की सिद्धि से उत्पन्न दिव्य प्रेरणा से उसने कुण्डलिनीयोगसाधना के साथ -२, प्रत्यक्षतंत्र का आश्रय लिया व लगभग एक वर्ष से भी कम समय के पूर्ववर्णित अभ्यास से, पूर्वोक्त १० सैकेंड की पूर्णसमाधि को अनुभव किया।

प्रेमयोगी वज्र के अप्रत्यक्षतंत्र में , प्रत्यक्ष यौनसंपर्क के बिना ही , उसके मन में चिरसमाधि जैसी निरंतर ध्यान की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। वह ध्यान, पूर्णसमाधि (कुण्डलिनीजागरण) की उपलब्धि के बिना ही, इसलिए दृढ़ हो गया था, क्योंकि वह प्राकृतिक यौनाकर्षण से उद्भूत था, योगसाधना के द्वारा बलपूर्वक नहीं बनाया गया था। दूसरी ओर , उसके प्रत्यक्षतंत्र में यौनाकर्षण नहीं था , इसलिए उसने बलपूर्वक योगाभ्यास (हठयोग-हठपूर्वक योग) किया, जिससे उसे उस पूर्ण व क्षणिक समाधि (कुण्डलिनीजागरण) का अनुभव हुआ, जो अपनी आकर्षकता से, चिरसमाधि जैसी, निरंतर ध्यान की अवस्था को उत्पन्न करती है। यद्यपि उसने गुरुकुण्डलिनी को पूर्व में ही प्रेमिका -कुण्डलिनी से पुष्ट किया हुआ था, तभी तो वह कालान्तर में सरलता से जागरण के योग्य बन सकी, और अंततः जागृत हो गई। चिरसमाधि जैसी निरंतर ध्यानावस्था, जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष, दोनों प्रकार के तंत्रों का ध्येय है, वह एकसमान ही है, जो कालान्तर में क्षणिकात्मज्ञान कराती है। इसका अर्थ है कि बाहर से ही , नैतिकता की दृष्टि से ही दोनों में अंतर है, अन्दर से तो दोनों तंत्र एकसमान हैं। अप्रत्यक्षतंत्र इसीलिए अधिकाँशतः सफल होता है , क्योंकि उसे प्रत्यक्षतंत्र की अपेक्षा कहीं अधिक सामाजिक मान्यता मिलती है। दूसरा कारण यह है कि प्रत्यक्षतंत्र से कई बार अत्यधिक आध्यात्मिक शक्तियां मिल जाती हैं, जिनसे कई बार, विशेषतः प्रतिशोध की भावना से, समाजविरोधी काम भी हो जाते हैं। यही ज्ञानयोग व भक्तियोग के बीच का वाकयुद्ध है। ज्ञानयोगी कृत्रिम योगाभ्यास करता है , और उससे अपनी कुण्डलिनी को जागृत करके, समाधि-अवस्था को प्राप्त करता है, या विरले मामलों में संभवतः बिना समाधि के ही, जैसे कि साक्षीकरण-अभ्यास आदि से भी जगत को मन में विलीन कर सकता है। परन्तु भक्तियोगी कुण्डलिनीजागरण नहीं करता , अपितु सीधे ही; प्राकृतिक, स्वाभाविक व एकाग्र प्रेम से अपने सबसे प्रियतम व्यक्ति, भगवान आदि के चित्र को मन में निरंतर बसा कर रखता है ; अर्थात स्वाभाविक व प्राकृतिक समाधि-अवस्था को प्राप्त करता है। यद्यपि भक्तियोग सर्वाधिक सुखदायक होता है, परन्तु यह कुछ चुने हुए भाग्यशाली लोगों को ही प्राप्त होता है , जबकि ज्ञानयोग का अभ्यास हर कोई कर सकता है। प्रगाढ़प्रेमसम्बन्ध के कारण ही भक्तियोगी/प्रेमयोगी रस से भरे हुए होते हैं, और दुनिया को भी प्रेमानंद-रस से भर देते हैं, जैसे कि भगवान श्रीकृष्ण। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तंत्रयोग व भक्तियोग का मूलभूत सिद्धांत एक ही है , केवल थोड़ा सा अंतर यह है कि भक्तियोगी शुद्ध प्रेम करते हैं, जबकि तंत्रयोगी यौनाचरण का सहारा भी लेते हैं। वास्तव में सभी आध्यात्मिक मार्गों का मूलभूत सिद्धांत एक ही , अर्थात समाधि (सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात) ही है। दूसरी ओर, ज्ञानयोगी बाहर से नीरस प्रतीत होते हैं, और अधिकाँशतः अपने तक व अपने सीमित शिष्यों तक ही सीमित होते हैं। प्रेमयोगी वज्र ने इन दोनों प्रकार के योगों को क्रियान्वित करके दिखाया।

वास्तव में कुण्डलिनीजागरण (पूर्ण समाधि) कोई अंतिम पड़ाव नहीं है, अपितु आत्मज्ञानरूपी तथाकथित अंतिम पड़ाव का प्रारम्भ मात्र है। धीरे-२ करके जगत कुण्डलिनी में विलीन होता हुआ, अंततः शून्य हो जाता है। अप्रत्यक्षतंत्र के समय, प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी, प्रचंड यौनाकर्षण के कारण, न जागते हुए भी अत्यधिक क्रियाशील थी , अतः उसने बिना जागे ही , अपनी तीव्र क्रियाशीलता से ही , क्षणिकात्मज्ञान उपलब्ध करा दिया था। प्रत्यक्षतंत्र के समय तो उसकी कुण्डलिनी प्रत्यक्ष रूप से जाग चुकी थी (१० सेकण्ड की पूर्वोक्त समाधि)। श्रीमद्भागवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण का यह कहना कि मैं किसी भी भक्त को अपने किसी भी रूप में दर्शन दे सकता हूँ , कुण्डलिनीजागरण को ही रेखांकित करता है। वास्तव में ईश्वर के किसी भी रूप का ध्यान करने से, वह रूप, कुण्डलिनी बन जाता है। कुण्डलिनीयोग की सहायता से ध्यान करना, और अधिक सरल हो जाता है। वही कुण्डलिनी जब जागृत हो जाती है, तब उसे ही ईश्वरदर्शन कहते हैं। शास्त्रों में ऐसा वर्णन आना कि ईश्वरदर्शन से मुक्ति अवश्य मिल जाती है , यह दर्शाता है कि कुण्डलिनीजागरण के बाद आत्मज्ञान, देर-सवेर हो ही जाता है।

देहदेश की मिट्टी भिन्न-२ स्थानों पर भिन्न-२ गुण लिए हुए होती है। कहीं पर वह अम्लीय होती है, तो कहीं पर क्षारीय। अम्लीय भूमि में वे फसलें उगाई जाती हैं, जो अम्लता को पसंद करती हैं। क्षारीय भूमि में वे फसलें उगाई जाती हैं, जो क्षारता को पसंद करती हैं, और उसमें अच्छी पैदावार देती

हैं। कई बार अम्लीय भूमि की अम्लता, आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है, जिससे फसलों की पैदावार, विशेषतः क्षारताप्रेमी फसलों की पैदावार काफी घट जाती है, और खाद्यान्न में अम्लता भी उत्पन्न हो जाती है। उस अम्लतायुक्त खाद्यान्न से कई बार , कुछ देहपुरुष जलन व बेचैनी महसूस करने लग जाते हैं। इसी तरह से, कई बार क्षारीयभूमि की क्षारता आवश्यकता से अधिक हो जाती है। उससे भी विभिन्न फसलों की, विशेषतः अम्लताप्रेमी फसलों की पैदावार काफी घट जाती है, और वह क्षारता, खाद्यान्न के द्वारा देहपुरुषों के शरीर में भी पहुँच जाती है, जिससे वे कुछ सुस्त जैसे हो जाते हैं।

प्रेमयोगी वज्र के क्षणिकात्मज्ञान के समय तो कुण्डलिनी -वाहक भी देवीरानी स्वयं ही थीं , व कुण्डलिनीरूपी वाह्य भी वे स्वयं ही थीं , अर्थात देवीरानी अपनी प्रजनन शक्ति के अप्रत्यक्ष प्रयोग (अप्रत्यक्षतंत्र) से, अपने ही चित्र की कुण्डलिनी को प्रेमयोगी वज्र के मन में सुदृढ़ कर रही थीं , प्रेमयोगी वज्र की अखंड समाधि तक। वे वृद्ध आध्यात्मिक पुरुष तो पुराणों के निरंतर अभ्यास से द्वैताद्वैताभिमुख रहते थे , अतः वे अपनी संगति से ही, अप्रत्यक्ष रूप के साथ प्रेमयोगी वज्र को मानसिक संविभ्रम, मनोदोलन, आसक्ति व यौनसीमा के उल्लंघन से बचाते रहे (उन वृद्ध के चित्र की कुण्डलिनी तो तब प्रभावी हुई, जब आत्मज्ञान के बाद देवीरानी के चित्र की कुण्डलिनी शाँत हो चुकी थी)। परन्तु बाद की कही गई क्षणिक समाधि के समय कोई अन्य देवीरानी (संभवतः पत्नीदेवी) वाहक थीं, और वृद्ध आध्यात्मिक पुरुष वाह्य थे, अर्थात देवीरानी अपनी प्रजनन शक्ति के प्रत्यक्ष प्रयोग (प्रत्यक्षतंत्र) से वृद्ध आध्यात्मिक पुरुष के चित्र (मानसिक) के रूप में अनुभूत कुण्डलिनी को प्रेमयोगी वज्र के मन-मंदिर में सुदृढ़ कर रही थीं। इस तरह से हम देख सकते हैं कि तंत्रयोग दो प्रकार से काम कर सकता है। द्वितीय विधि के अनुसार तो देवीरानी के बाह्य रूप -सौन्दर्य आदि गुणों के ऊपर आसक्त होने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि मनोनुकूल रूप-सौन्दर्यादि गुणों से संपन्न देवीरानी न मिल सके , व उससे प्रतिबिंबित मानसिकचित्र को नित्यस्थायिनी कुण्डलिनी के रूप में परिवर्तित करने में कठिनाई आ रही हो , तो भी वह गुरु, देवता आदि के मानसिक चित्र की कुण्डलिनी को जागृत करने में पूरी सहायता कर सकती है। साथ में, बढ़ती हुई कुण्डलिनी के प्रभाव से धीरे-२ वे अरुचिकर देवीरानी भी मनोनुकूल बन जाती हैं। संभवतः अप्रत्यक्षयौनतंत्र में ही (प्रत्यक्ष में नहीं) या भार्यातिरिक्त मनोनुकूल देवीरानी के साथ प्रत्यक्षतंत्र में ही ऐसा हो सकता है कि एक ही देवीरानी कुण्डलिनी-वाहक भी बने व वाह्य (कुण्डलिनी) भी। प्रेमयोगी वज्र को द्वितीय देवीरानी के साथ, पूर्वोक्त क्षणिक व पूर्णसमाधि का अनुभव हुआ। प्रथम देवीरानी के दिव्य रंग-रूप के साथ तो उसका मानसिक सम्बन्ध इतना प्रगाढ़ था कि प्रेमयोगी वज्र के मन में उसके रूप की सामान्य समाधि स्वयं ही निरंतर बनी रहती थी , अतः क्षणिकात्मज्ञान के लिए पूर्णसमाधि की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। पूर्णसमाधि अपने आप में पूर्णता नहीं है , वह तो केवल आकर्षण/ध्यान बनाए रखने के लिए मात्र एक आधार/आकर्षण का बिंदु है। यदि वह आकर्षण स्वयंभूत ही है, तो पूर्णसमाधि के आधार बिंदु की भी क्या आवश्यकता हो सकती है? इसका अर्थ है कि अप्रत्यक्ष/मानसिक तंत्र अधिक प्रभावशाली है, परन्तु उसमें मनोनुकूल देवीरानी की आवश्यकता होती है। साथ में, उसमें भौतिक रूप से अत्यधिक उच्च स्तर का आत्मसंयम/अनुशासन/अलगाव बना कर रखने की व एक योग्य गुरु की नितांत आवश्यकता होती है। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि प्रत्यक्षतंत्र में देवीरानी के रूप-रंग का भी कोई विशेष योगदान नहीं होता, यौनांगों के स्वास्थ्य को व तांत्रिक तकनीक के साधारण ज्ञान को छोड़कर, क्योंकि उसमें कुण्डलिनी को गुरु-देवता आदि का रूप दिया जाता है , देवीरानी तो केवल कुण्डलिनी-वाहक का ही काम करती हैं। बहुत आकर्षक रूप-रंग वाली देवीरानी तो उसमें विघ्न भी उत्पन्न कर सकती है , क्योंकि वह अपने अहंकार के कारण, अपने रूप-यौवन को छोड़कर किसी दुसरे के रूप की कुण्डलिनी को आश्रय देना, पसंद भी नहीं कर सकती है। उसके भौतिकरूप का निरंतर साथ होने के कारण , उसके रूप की मानसिक कुण्डलिनी, बनाई भी तो नहीं जा सकती। इसका एक अर्थ यह भी निकलता है कि प्रत्यक्षतंत्र में , मनोनुकूल या आसक्तिपूर्ण देवीरानी उतनी प्रभावशाली नहीं होती , जितनी प्रभावशाली अनासक्तिपूर्ण या मन के विपरीत स्वभाव वाली देवीरानी होती है। संभवतः यही तो स्त्री -सम्बंधित, तथाकथित मोहमाया के पीछे का अनुभूत व तर्कसंगत कारण है। परदेवीरानियाँ काम के अत्यधिक बोझ , असुरक्षा की भावना व मन की चंचलता के कारण ही अधिक अच्छी लगती हैं, केवल अल्पकाल के लिए ही। उनसे आध्यात्मिक लाभ होने की अपेक्षा, हानि ही प्राप्त होती है। इन समस्याओं/विघ्नों के निराकरण के बाद तो निजदेवीरानी ही सर्वोत्तम प्रतीत होती है, व सिद्ध भी सर्वोत्तम ही होती है।

प्रत्यक्षतंत्र के रूप में आजकल बहुत सा पुस्तकीय ज्ञान विद्यमान है, विशेषतः पाश्चात्य व बौद्ध प्रकार के समाजों में, परन्तु प्रेमयोगी वज्र ने अपने समाधिकारक प्रत्यक्षतंत्र के अभ्यास को अपने शब्दों में इस प्रकार लिखा है, " अहं ८-९ माहपर्यन्तं आधारभूतकुण्डलिनीयोगाभ्यासं कृतवान्। तदा मया तद्साधारणकुण्डलिनीयोगाभ्याससह यौनयोगसम्मेलनं प्रारब्धं। अधिकान्शकाले स्वप्रेमिकां सवस्त्रां चुम्बनालिङ्गनं दत्तवान्। यौनान्गस्य विवर्धमानेन प्रसारेण सह, अहं तदोपरि, स्वस्पष्टतां विवर्धमानां पुलिन्गकुण्डलिनीं ध्यायामि स्मः। यदैव प्रसारः असहनीयः येन् च स्खलनाशङ्का, तदैव अहं मूलबन्धं स्थापयति स्मः, येन् अङ्गं तद्क्षणमेव शिथिलं भवति स्मः कुण्डलिनी च मस्तिष्के प्रविशति स्मः। एतद्नियमितभ्यासेन्, मस्तिष्के कुण्डलिनी स्थिरीभूता। एतद्सह समाधेः दिव्यं, स्थिरं सूक्ष्मं च आनन्दं विवर्धमानं। पूर्णयौनसंसर्गस्य अभिलाषायां, तनावरहितस्थितिः पर्याप्तारिक्तकालं च प्रतीक्ष्यते स्मः। तदा

कस्मिंश्चित काले (यद्यपि भोजनोपरान्ते २ घण्टावादनकालपर्यन्तम्, क्लान्तिकालम्, मूढताकालम् निद्राकालम् च हित्वा), पूर्णसकारात्मकविचारैः, देवीप्रति प्रेमादराभ्यां प्रसन्नमुखाभ्यां च सह; पूर्णदिगंबरमुद्रया सह, शीघ्रतां हित्वा; कुण्डलिनीध्यानपूर्वकं विविधकामशास्त्रीयाचारविचारैः आवाभ्यां उत्तेजना विधिपूर्वकं चरमं प्रति उपनीयते स्मः। कुण्डलिन्यः ध्यानं प्रेमिकायाः सर्वेषु चक्रेषु एकं -२ कृत्वा, स्पर्षेण यौगिकबन्धैः च सह क्रियते स्मः। मूलबन्धेन ध्यानं स्थिरं क्रियते स्मः कामोत्तेजना च वशीक्रियते स्मः। ततः यबयुमासने (yab-yum) उभयौ आलिङ्गनबद्धमुद्रायां उपविशतः स्मः वज्रः च नीरजे स्थाप्यमानः भवति स्मः। अहं कुण्डलिनीं मूलबन्धेन मूलाधारात् मेरुदण्डमार्गात् मस्तिष्कपर्यन्तं उन्नयति स्मः ततः च तां मुखयोगमार्गात् प्रेमिकायाः सर्वेभ्यः पुरस् चक्रेभ्यः , प्रत्येकचक्रे तां किञ्चित् ध्यायन्, अवनयति स्मः। प्रेमिकायाः कमलात् सा मम् वज्रे प्रविशति स्मः ततः च द्वितीयप्रक्रियाचक्रः प्रारभति स्मः। किञ्चित्प्रक्रियाः विपरीतक्रमाः , अर्थात् कुण्डलिनी प्रेमिकायाः मेरुदण्डमार्गात् उन्नीयते स्मः मम् च पुरस् चक्रेभ्यः अवनीयते स्मः। तद्श्रान्ते भूते, यौनसहचरी शयनमुद्रायां ऊर्ध्वमुखा स्थिरीभवति। तद्सहचरः तद्नीरजे पुनः-२ वज्रप्रवेशनात् स्ववज्रे रोमाञ्चं अनुभवति। तदा सः किञ्चित् विश्रमति तद्रोमाञ्चं च योगबन्धसहायतया स्वमस्तिष्के उन्नयति। तदा तद्वज्रः संकुचितः जायते। ततः सः पुनः -२ उपरोक्तक्रियां पुनरावर्तते। सः लम्बमानमुद्रायामेव तस्यां स्वयं वज्रासनसदृशे आसने पादाग्रोपरि स्थित्वा स्ववज्रं पुनः -२ प्रवेशयति ततः स्वयौनद्रवोत्सर्जनसहनसीमापूर्वं एव देव् यां अर्धलम्बमानमुद्रायां ऊर्ध्वमुखायां उत्तानपादायां पादाग्रोपरि असन्तुलितः श्रान्तः च भूत्वा यदा स्खलनबिन्दुं उपगच्छति, तदा तेन् पूर्णपादयोः स्थिरीभूते विश्रमिते च तस्य मूलबन्धः विशेषलाभकरः। पर न्तु देव्यः देवस्य च पूर्णलम्बमुद्रायां; उड्डीयानबन्धः विशेषलाभकरः, स्थिरतादायकः, सरलः, सुलभः, स्वाभाविकः अधिकप्रभावशाली च। एवमेव पुनः-२ कृत्वा श्रान्तिपर्यन्तं, कुण्डलिनी मस्तिष्के दृढतया प्रभवति, येन् कुण्डलिनीजागरणं शीघ्रं। सहचरेण सह सहचरी अपि यौगिकबन्धैः स्वकुण्डलिनीं स्वयौनाङ्गात् उन्नयति। प्रेमिका तद्यौगिकप्रक्रियासु स्वकुण्डलिनीं ध्यायति स्मः। एवमेव न्यूनमतेन १ घण्टावादनकालपर्यन्तं तद्यौगिकप्रक्रिया चलायमाना। उत्तेजनायाम् असहनीयां वज्रः कमलात् अपसृयते स्मः बन्धाभ्यां च कुण्डलिनी मस्तिष्के पुष्यते स्मः, येन् उत्तेजना स्वतः शान्ता भवति स्मः। दीर्घाः नियमिताः च श्वास-प्रश्वासाः धार्यन्ते स्मः। ततः वज्रः पुनः कमले प्रवेष्यते स्मः। प्रारंभिकाभ्यासकाले स्खलनबिन्दुः अज्ञातः भवति स्मः , परं किञ्चिदभ्यासात् विशेषज्ञता प्राप्ता। प्रारम्भकाले अहं क्षुद्रयौनरोगैः प्रभावितः आसीत्, परं तत्पश्चात् अहं स्ववज्रं यौनयोगान्तक्षणे एव श्रेष्ठपरिमार्जनविधिभिः पूर्णतया मार्जयति स्मः येन् वज्रः स्वस्थः तिष्ठति स्मः। मैंने सभी विधियाँ तांत्रिक पुस्तकों से पढ़ी थीं, व बहुत से कदम मैंने अपनी आतंरिक प्रेरणा से भी उठाए। इस तरह से, मात्र एक महीने के प्रतिदिन के निरंतर अभ्यास से, मैं पूर्णसमाधि (कुण्डलिनीजागरण) के स्तर तक पहुँच गया। उस पूरे महीने भर तक, बाहरी रूप से मैं एक यौनसनकी-साधु की तरह लगता था, परन्तु अन्दर से पूरी तरह से एकाग्रयोगी बना हुआ था, और अपने शरीर के साथ अपनी पत्नीदेवी के शरीर में भी अपनी कुण्डलिनी (देहपुरुषरूपी) मुझे निरंतर दृष्टिगोचर हो रही थी, क्योंकि देहपुरुष प्रत्येक शरीर के प्रत्येक भाग में स्थित होते हैं, केशों में भी होते हैं, चमड़ी में भी होते हैं, नखों में भी होते हैं, प्रत्येक स्राव में भी होते हैं आदि-२। मैं किसी भी समय उनका आलिंगन कर लेता था, और बड़े भारी प्रेम-सत्कार के साथ उनके पैरों को सहलाते हुए, उन्हें अपने वक्षस्थल से लगाने लग जाता था। वे सभी प्रेम-सत्कार आदि भाव, बनावटी न होते हुए, सच्चे व हृदय से थे। मेरा वैसा व्यवहार देख कर, वे प्रारम्भ में आश्चर्यचकित हो गईं, क्योंकि वैसा दिव्य-सम्बन्ध उससे पहले हमारे बीच में कभी नहीं बना था, यहाँ तक कि कई बार तो हमारे बीच के सम्बन्ध बहुत कटु भी हो जाते थे। पत्नीदेवी की रुचि को भांपते हुए , मैंने उन्हें भी यौनयोग सिखाया। उन्होंने भी मेरा बड़े प्रेम-सत्कार के साथ सहयोग किया। इससे मेरे द्वारा पत्नीदेवी के साथ किया गया सारा व्यवहार, मेरी कुण्डलिनी को लग रहा था, जिससे वह अत्यधिक संतुष्ट व पुष्ट होते हुए, अत्यंत स्पष्ट व जीवंत हो गई थी। मेरे द्वारा साधारण कुण्डलिनीयोग के अंतर्गत लगाया जाने वाला साधारण ध्यान, यौनयोग की सहायता लेने पर विशिष्ट हो जाता था , और कई दिनों तक अत्यधिक तीखा व स्पष्ट (sharp and clear) हो जाया करता था। यद्यपि भौतिक शक्ति का बहुत कम अपव्यय हो रहा था, फिर भी कुछ अतिरिक्त शक्ति व अतिरिक्त समय की आवश्यकता तो होती ही है, जो कि किसी दैवीय संयोग से अकस्मात् पूर्ण हो गई थी"।

प्रेमयोगी वज्र के साथ उपरोक्त सभी कुछ, देवी की कृपा से ही संभव हुआ। प्रेमयोगी वज्र के उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि कुण्डलिनी के अंतिम विकास के समय, थोड़े-२ बल की अपेक्षा, इकट्ठे व तीव्र बल की आवश्यकता होती है; जो पूर्णरूपेण कुण्डलिनीसमर्पित व तीव्र स्तर के यौनयोग से ही संभव है। वास्तव में तांत्रिकप्रेमिका (consort) का देवी की तरह ही आदर-सत्कार किया जाता है, व महान प्रेम के साथ, उसे सदैव प्रसन्न रखा जाता है (प्रेमयोगी वज्र तो उसके चरणकमलों की पूजा भी करता था), क्योंकि तांत्रिक-देवी में ही वह दिव्य-शक्ति है, जिससे वह एक ही जन्म में आत्मज्ञान उपलब्ध करवा सकती है। देवी को भी चाहिए कि वह अपने साथ ही , सदैव अपने प्रेमी (consort) के कुण्डलिनीजागरण व आत्मज्ञान के लिए भी प्रयासरत रहे। प्रेमयोगी वज्र के उपरोक्त अनुभव से प्रेरित होकर लेखक ने भी यह अनुभव किया कि साँसारिक व्यस्त जीवन के अंतर्गत , कुण्डलिनीयोग

के नियमित अभ्यास के साथ-२, बीच-२ में यौनयोग की सहायता से भी कुण्डलिनी को पुष्ट करते रहना चाहिए , अन्यथा कुण्डलिनी बहुत क्षीण हो जाती है, जिससे कुण्डलिनीयोग धीरे-२ उबाऊ (boring) व कठिन लगने लगता है। वास्तव में कुछ समय तक कुण्डलिनीयोग करने के बाद, जो उससे मन हटने लगता है, वह अधिकान्शतः तकनीकी खामियों से नहीं, अपितु यौनयोग के द्वारा कुण्डलिनी को पुनः-२ प्रतिष्ठित न करते रहने से होता है। यौनयोग से कुण्डलिनीजागरण तभी संभव हो पाता है, जब साँसारिकता के जंजालों को छोड़कर, कुण्डलिनीयोग व यौनयोग के ही आश्रित हुआ जाता है। परन्तु कुण्डलिनी पहले से ही, साँसारिकता से व/या साधारण कुण्डलिनीयोग से पुष्ट की हुई होनी चाहिए। यौनयोग से तो उसे केवल जागरण के लिए अपेक्षित मुक्तिगामी वेग (escape velocity) ही प्राप्त होता है, अन्य कुछ विशेष नहीं। उस जंजालहीनता की अतिरिक्त सहायता से , जिस जीवनी-ऊर्जा (life energy) की बचत व वृद्धि होती है, वह संसार की अपेक्षा कुण्डलिनी के उचित पोषण व जागरण में प्रयुक्त हो जाती है।

एक बार लेखक ने देखा कि एक देहदेश में कोई संक्रामक रोग फैला हुआ था। उस संक्रमण को कीटाणु उत्पन्न कर रहे थे, और एक देहपुरुष से दूसरे देहपुरुषों के बीच में संचारित भी कर रहे थे। वे कीटाणु विशेष आकार, प्रकार, आयु, जाति व व्यवसाय आदि के देहपुरुषों को ही अपना निशाना बना रहे थे। संभवतः वे प्रभावित देहपुरुष, कृषिविभाग व विदेशव्यापारविभाग से सम्बंधित थे। उस संक्रमण से इन दोनों विभागों के देहपुरुष बीमार होकर लाचार हो गए थे, और बिस्तर पर पड़ गए थे। चिकित्सक उनका इलाज भी कर रहे थे, परन्तु फिर भी बहुत से देहपुरुष ठीक नहीं हो पा रहे थे। किसानों की कमी से खाद्यान्न का उत्पादन काफी घट गया था। उस आपातकालीन स्थिति में, भण्डारघरों से खाद्यान्न निकाले जा रहे थे, और पूरे देश में वितरित किए जा रहे थे। अन्नभंडारों में बहुत कम अन्न शेष रह गया था। राजा से यह स्थिति देखी नहीं गई। उसने प्रभावित किसानों को बचाने के लिए, बाहर से दवाइयों का आयात करवाने का निश्चय किया। परन्तु विदेशवाणिज्यविभाग के कर्मचारियों के भी बीमार होने से, वह ऐसा न कर सका। अतः पड़ौसी राजाओं ने उसके लिए दवाओं का आयात करवाया। देश की हालत कुछ ठीक होने के बाद , विदेशवाणिज्यविभाग के देहपुरुषों ने भी देहदेश की दुर्दशा को देख कर, पहले से भी अधिक जोर-शोर से काम करना शुरु कर दिया। उससे फसलों के लिए आवश्यक बीज, खाद, कीटनाशक, यन्त्र आदि साजो-सामान; पहले से भी कहीं अधिक मात्रा में आयात किए जाने लगे। उससे , पहले से भी अधिक अन्न का उत्पादन हुआ, जिससे सारे देशवासी पूर्ववत तृप्त हो गए, और अन्नभण्डार भी पुनः भर गए।

कुण्डलिनीजागरणोपरान्तं, बहुधा प्रेमयोगी वज्रः स्वप्रेमिकायाः सह दिगंबरमुद्रायां कुण्डलिनीयोगान्तर्गतान् प्राणायामयोगासनान् करोति स्मः। ततः पूर्वोक्तं यौनयोगं कुर्वन्; तस्मिन् संयमशक्तिः, आनन्दं ध्यानम् च अत्यधिकरूपेण वर्धिताः भवन्ति स्मः। तेन् यौनसंक्रमणं उपचारितुं भविष्ये च तद्बाधितुं वज्रावरणछेदनं (circumcision) कृतं आसीत। वास्तवेन, यौनाङ्गेषु, विशेषतः स्त्रयाङ्गेषु विविधानि संक्रमणानि, येषु यीस्टसंक्रमणं (yeast infection) मुख्यतमम्। तद्परिहारार्थं स्वच्छतायां ध्यानं आवश्यकं, अपि च यौनान्गक्षेत्रेषु निरन्तरं शुष्कता स्थापितव्या।

यौनयोग से यदि प्रचंडता से चमकती हुई कुण्डलिनी या कुण्डलिनीजागरण की एक झलक भी मिल जाए , तो भी पर्याप्त है, क्योंकि इससे व्यक्ति फिर नियमित रूप से की गई कुण्डलिनीयोगसाधना से, उस झलक का पीछा कर सकता है, और उसे आत्मज्ञानकारक, निरंतरसमाधि के स्तर तक प्रवृद्ध कर सकता है, जैसा कि महान तंत्रज्ञानी आचार्य श्री रजनीश ने भी कहा है। संभवतः समय के साथ यह विकास स्वयं भी हो जाता है, यद्यपि नियमित योगसाधना के अतिरिक्त बल से यह कुछ अधिक शीघ्र हो जाता है। अधिकाँशतः, यौनयोग को अनेक प्रकार के समस्यागत कारणों से निरंतर भी नहीं किया जा सकता है। वैसे भी यौनयोग से कुण्डलिनीजागरण इतना शीघ्र हो जाता है कि अधिकाँशतः यौनयोगसाधक उसे क्षणिक झलक से अधिक देर तक सहन करने के लिए अभ्यस्त ही नहीं हुआ होता है। संभवतः पूर्व की समुचित तैयारी से या कई बार के अभ्यास से , कुछ दीर्घकाल तक भी, इससे कुण्डलिनीजागरण का अनुभव हो सकता हो। उनका यह कथन भी सत्य प्रतीत होता है कि वास्तव में यौनसंबन्ध समाधि -प्राप्ति के लिए ही बनाया जाता है, परन्तु आम आदमी को इस बात का पता ही नहीं चलता। जब कोई आदमी समाधि की अवस्था में , एक आम जनजीवन व्यतीत कर रहा हो, तब उसका मन स्त्री-माया से, अधिक विचलित नहीं होता। इसलिए इससे भी स्पष्ट है कि स्त्री के प्रति आकर्षण का वास्तविक उद्देश्य समाधि -अवस्था की प्राप्ति ही है। उनका कहना है कि अधिकाँश लोगों को यौनसम्बन्ध बनाने की वास्तविक व आध्यात्मिक कला ही नहीं आती। वे पुनः कहते हैं कि यह उसी तरह से होता है, जैसे कि चालक लोगों को गाड़ी चलानी तो आती है, परन्तु उन्हें उसके पीछे चल रहे ताम-झामों की समझ नहीं होती। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य के लिए, यौनसंबंध का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य तो समाधि -अवस्था की प्राप्ति ही है। उनकी यह बात भी युक्तियुक्त प्रतीत होती है कि यौनयोग (sexual yoga) में अच्छाई है, परन्तु यौनता (sexuality; sex related talks, funs, photos, videos etc.) में बुराई है; क्योंकि पूर्वपक्ष से शक्ति का संचय व सदुपयोग होता है, जबकि उत्तरपक्ष से शक्ति का अपव्यय व दुरुपयोग होता है। यौनता/कामुकता का अर्थ यहाँ पर बाहरी रूप से ही सुन्दर दिखने का प्रयत्न करना, बाहरी व झूठा अहंकार आदि ही तो है। अर्थात वैसी यौनता या यौनचिंतन, जिसमें समाधिभाव न हो,

वही कामुकता/यौनता की श्रेणी में आता है। समाधिभाव के साथ यौनचिंतन तो अप्रत्यक्ष यौनयोग ही है, क्योंकि यौनचिंतन व समाधिभाव एक-दूसरे को पुष्ट करते रहते हैं।

यौनयोगः दिवसकाले पूर्णजागृतावस्थायामेव श्रेष्ठतरः, यतोहि रात्रेः कश्चिदपि भागे मूढ़ता व्याप्ता , येन् आत्मसंयमन्यूनता, यद्यपि अभ्यासे दृढे तु रात्रौ अपि कर्तुं शक्यते। एवमेव, यौनयोगात् पूर्वं न्यूनतमेन अर्धघन्टावादन कालपर्यन्तं कुण्डलिनीयोगेन मूढ़ता क्षीयते। अपि च अनेन मानसिकजागरूकता, आत्मसंयमः, ध्यानं चापि विवर्धन्ते। प्राचीनकालिकयौनयोगे विविधाः औपचारिकताः, यथा यौनयोगप्रारंभात् पूर्वं दशवर्षपर्यन्तं दुष्कराचारविचारैः साधारणकुण्डलिनीयोगाभ्यासः, एतस्मिन् च विभिन्नबीजमन्त्रवर्णचित्रप्रथापर्वादिनां अनुसरणं। प्रेमयोगीवज्रेन यौनयोगः सरलीकृतः। एतस्मिन् सः केवलं मनुष्याकृतकुण्डलिनेः (स्वपूज्यपितामहस्य मानसिकचित्रस्य) ध्यानं एव अकरोत्, अन्याः सर्वाः औपचारिकताः हित्वा। अनेन सः एकवर्षपर्यन्तं साधारणकुण्डलिनीयोगाभ्यास म् कृतवान् तदो परान्तं च एकमाहपर्यन्तं यौन योगकुण्डलिनीयोगाभ्यासाभ्यां एव स्वकुण्डलिनीजागरणं प्राप्तवान। यौनयोगे, यौनस्रावे पूर्णात्मनियन्त्रणं अपेक्ष्यते। प्राचीनकाले, चेत् यौनस्रावः आत्मनियन्त्रणं बिना स्वतः एव भवति स्मः, तर्हि तस्मिन अधिकान्शतः योगिनी एव दोषयुक्ता मन्यते स्मः। तेन एव योगिनी एव गुरुरूपा मन्यते स्मः, यतोहि पुरुषयौनस्रावनियन्त्रणे योगिन्यः भूमिका महत्त्वपूर्णतरा। यौनस्रावात्मनियन्त्रणात् कुण्डलिनेः यौनस्रावोपरि आरोपणं सुलभं येन् तस्य महती शक्तिः कुण्डलिन्या गृह्यते। यौनस्रावाय महती मानसिका चैतन्यमयिनी च ऊर्जा आवश्यका। यौनयोगात् सा ऊर्जा रक्ष्यते कुण्डलिनीपोषणे च सा व्ययीभूयते। अनेन यौनस्रावबिना एव यौनसन्तुष्टिः अपि प्राप्ता भवति, अपि च कुण्डलिनी अपि पुष्टा भवति। अनेन शारीरिकशक्तेः अनावश्यकक्षरणं अपि रुध्यते। एवमेव, यौनयोगोपरान्तं चेत् अश्लीलदृष्याणि दृष्यन्ते वा अश्लीलवार्ताः श्रूयन्ते , तर्हि अपि तैः मनः न दुष्प्रभाव्यते , अर्थात मनोदेहे उत्तेजना न उद्भूयते। वास्तवेन संपूर्णमानसिकशक्तिः कुण्डलिनीं पुष्टुं व्ययीभूता येन् विकारं जनयितुं शक्तिः न शेषा। संभवतः यौनस्रावस्य निरन्तरतया दीर्घकालपर्यन्तरोधनं अपि यौनाङ्गेभ्यः हानिकरं। अतः संभवतः प्राचीनतन्त्रशास्त्रेषु योगिन्यः ऋतुकाले एव यौनस्रावोत्सर्जनं विहितं। संभवतः एतद्ऋतुकालः रक्तोत्सर्जकमाहवारीकालात् एकसप्ताहपूर्वात् एकसप्ताहपश्चात् पर्यन्तं कथितः, यतोहि एतद्काले गर्भाधानसंभावना नगण्या। अनेन एव एतद्कालः यौनयोगप्रशिक्षणकाले यौनयोगप्रारम्भिककाले वापि यौनयोगं शिक्षितुं सर्वोत्तमः।

प्राचीनकाल में, यौनयोग से अधिकाँश लोग भयभीत रहते थे; क्योंकि इसकी असफलता से उन्हें अपने जप, तप, व्रत, उपवास, दान, तीर्थ व अन्य धार्मिक क्रियाकलापों के क्षीण होने का भय सताता रहता था। आजकल तो अधिकाँश लोग धार्मिक क्रियाकलापों को करते ही नहीं, और यदि चंद लोग करते भी हैं, तो युक्तियुक्त ढंग से व ध्यान (विशेषतः कुण्डलिनी का) लगाकर नहीं करते, अतः उपरोक्त भय की संभावना भी नहीं है। साथ में, आजकल अधिकाँश लोग बिना विवेक-वैराग्य व आत्मसंयम के; देहक्षायी यौनसंसर्ग में लिप्त रहते हैं। यौनयोग में स्त्री को गुरु व देवी की तरह अतिपूज्य माना जाता है, जिससे आजकल के गिरते हुए नारीसम्मान को भी बचाया जा सकता है। प्राचीनभारत में ऐसा होता था , जिसके उदाहरणस्वरूप बहुत से शक्तिपीठ व बहुत सी देवीमाताएं हैं, परन्तु मध्ययुग से लेकर आजतक बरकरार उथल-पुथल व आपाधापी से वह परम्परा अब क्षीणप्राय ही प्रतीत होती है। उपरोक्त कारणों से स्पष्ट है कि आजकल के समय में, यौनयोग में चाहे सफलता मिले या असफलता, दोनों ही मामलों में लाभ ही लाभ है। यदि यह आध्यात्मिकता नहीं भी देगा, तो भी भौतिक प्रगति तो देगा ही, जिसकी आधुनिक युग में बहुत मांग है। इससे सिद्ध होता है कि यौनयोग आज के समय में सर्वाधिक प्रासंगिक है।

यौनयोग सबसे अच्छा तब रहता है, जब योगी-योगिनी अनेक वर्षों से, अपने मूल निवासस्थान पर ही देहपुरुष की तरह द्वैताद्वैत के साथ; भरपूर व्यस्त, व्यावहारिक व कर्मठ जीवन बिता रहे हों; दोनों को शविद व तंत्ररहस्य का ज्ञान हो व दोनों ही तंत्रयोग से शक्ति ले रहे हों; और यौनसम्बन्ध से आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होने के सिद्धांत पर विश्वास करते हों आदि-२। यदि इन रहस्यों का अप्रत्यक्ष रूप से भी ज्ञान हो, यहाँ तक कि यदि इन पर केवलमात्र दृढ़ विश्वास भी हो, तो भी अधिकाँश मामलों में काम चल पड़ता है। यदि कुण्डलिनीयोग का अभ्यास कर रहे हों, तब तो और भी अधिक अच्छा, परन्तु प्रेमयोगी वज्र ने अनुभव किया कि देहपुरुष की तरह, पूर्ण व्यस्तता से भरे हुए अद्वैतजीवन के साथ, नियमित कुण्डलिनीयोग करना कुछ कठिन होता है। वैसे तो ऐसा अभ्यास की कमी से ही होता है। अद्वैतयुक्त जीवन -व्यवहार भी कुण्डलिनीयोग की तरह ही काम करता है। वैसे अद्वैतजीवन में, मुख्यतया शविद/पुराणों, वैदिक कर्मकांडों आदि से अद्वैतभाव को निरंतर रूप से धारण करके रखा जाता है। परन्तु कुण्डलिनीयोगमुखी जीवन में, मुख्यतया कुण्डलिनी की सहायता से अद्वैतभाव को निरंतर बना कर रखा जाता है। वैसे तो कुण्डलिनी अद्वैतजीवन के लिए भी आवश्यक होती है, नहीं तो इसके बिना अद्वैतभाव में मन नहीं लगता। इसलिए कुण्डलिनी को सदैव क्रियाशील रखना चाहिए। कुण्डलिनी ही अद्वैतभाव वाले नीरस जीवन में उत्तम प्रकार की आनंदमयी मानसिकता प्रदान करती रहती है। वैसे तो हठपूर्वक व कुण्डलिनीविहीन अद्वैतजीवन जीते हुए भी ,

कालान्तर में स्वयं ही कोई कुण्डलिनी क्रियाशील हो जाती है। कुण्डलिनी व अद्वैत एक-दूसरे को बढ़ाते रहते हैं। प्रेमपूर्ण व संयुक्त परिवार/समाज में ही कुण्डलिनी के क्रियाशीलन व अंततः उसके जागरण की संभावना सर्वाधिक होती है। इस प्रकार के समाज में ही विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से प्रगाढ़ सम्बन्ध बनते हैं। फिर कालान्तर में, किसी न किसी व्यक्तिविशेष के भौतिकरूप का मानसिकचित्र किसी भाग्यवान व्यक्ति के मन-मंदिर में कुण्डलिनी बन कर उभर ही जाता है। ऐसा ही प्रेममयी समाज प्राचीन भारत (ancient India) में होता था। तभी तो प्राचीन भारत की संस्कृति आजतक बेजोड़ है। फिर वे दोनों उपरोक्त यौनयोगी किसी शाँत , प्रकृति से पूर्ण व आध्यात्मिक स्थान पर कुछ सालों के लिए प्रवास पर चले जाएं (पति-पत्नी, संतानसहित भी, इससे संतानों में भी आध्यात्मिक गुण प्रविष्ट हो जाते हैं)। वहाँ पर वे दोनों अपने को तनावरहित , शाँत, प्रसन्नचित्त व एक-दूसरे के प्रति समर्पित अनुभव करते हैं। फिर दोनों नियमितरूप से कुण्डलिनीयोग का अभ्यास करें , और अभ्यास के दृढ़ हो जाने पर, उसे यौनयोग के साथ जोड़ें। बीच-२ में, अपनी कुंडलिनियों से सम्बंधित स्थानों का भ्रमण भी करते रहें। इन सभी उपायों से कुण्डलिनीजागरण की संभावना बढ़ जाती है। संभवतः उपरोक्तानुसार, यदि लम्बे समय तक प्रेमिका (consort) के साथ अद्वैतपूर्ण, कर्मठ व संयमपूर्ण जीवन जिया जाए, तभी कालान्तर में उसके साथ यौनयोग से, सरलता से कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। इसका कारण यह है कि लम्बे समय तक के अद्वैतमयी जीवन से कुण्डलिनी का पोषण होता रहता है। तांत्रिक की वह सर्वप्रिय कुण्डलिनी, उसी की उस तांत्रिकप्रेमिका/तांत्रिकार्धान्गिनी के साथ भी जुड़ती रहती है, जो लम्बे समय से उसके साथ रह रही होती है। इसलिए कालान्तर में उसके प्रति परिचयहीनता, असुरक्षा आदि की विघ्नकारक भावनाएं भी उत्पन्न नहीं होतीं। यौनयोग तभी सर्वश्रेष्ठ फल प्रदान करता है, यदि दैनिक जीवन में थकान, तनाव, मानसिक दोष, व्यर्थ के ताम-झाम, कुप्रबंधन, विकृत समयसारणी, अपमान का दंश, सामाजिक बहिष्कृति, अशाँति, रमणीकतारहित पर्यावरणता; कुटिल व प्रेमहीन पड़ौसीपन; भ्रष्ट/प्रेमहीन व व्यवधानपूर्ण सामाजिकता; तथा पर्यावरणीय प्रदूषण आदि विघ्नपूर्ण कारक उपस्थित न हों।

कुछ बड़े देहदेश, छोटे व गरीब देहदेशों का विभाजन जानबूझ कर, अपनी मनमर्जी के मुताबिक़ भी करवाते रहते हैं। वे अपने विज्ञान व अपनी असीमित शक्ति का प्रयोग करके, गरीब देशों को बहका कर, उन्हें विभाजन के लिए राजी कर देते हैं। कई बार वे उन्हें ललचाने के लिए बहुत सारा धन व बहुत सारी अन्य बहुत सारी सुविधाएँ भी उपलब्ध करवाते हैं। यदि ऐसे भी बात न बने, तो वे उन्हें डराते-धमकाते भी हैं। कई बार तो वे उनके ऊपर बल का प्रयोग भी कर देते हैं। ऐसे में अधिकाँश गरीबदेश, बड़े देश के सामने घुटने टेक देते हैं। विभाजन के बाद, बड़ा देश नए देश को अपनी अँगुलियों पर नचाता है, और उससे अपने लिए बहुत सी सुविधाएँ उपलब्ध करवाता है। विभाजन से बने नए देश के प्रति मोह -ममता से बंधा हुआ उसका मातृदेश भी उसकी प्रत्येक बात मानने को विवश हो जाता है, जिससे वह भी परोक्षरूप से बड़े देश की सहायता ही कर रहा होता है। एकबार लेखक ने देखा कि प्रजनपुर नामक एक छोटा परन्तु कुछ संपन्न देहदेश , बहुत सारे गरीबदेशों का नेता बना हुआ था। वह अपने लाभ के लिए , उनका जरूरत से ज्यादा विभाजन करवा कर, अपना उल्लू सीधा कर रहा था। परन्तु उससे छोटे-२ देशों की भरमार हो गई थी। उससे, उनके बीच में लड़ाई-झगड़े भी बढ़ गए थे। वे गरीबी से ऊपर भी नहीं उठ पा रहे थे। भोजन-पानी की समस्या भी उत्पन्न होने लग गई थी। उन छोटे-२ व गरीब देशों में उग्रवादी भी पलने-बढ़ने लग गए थे, जो अन्य देशों को अपना निशाना बना रहे थे। विकसित देशों से वह सब देखा नहीं गया। उन्होंने उस नेता -देश पर कार्यवाही करने का विचार किया। पहले तो उन्होंने उसको बहुत समझाया। परन्तु वह मान ही नहीं रहा था। फिर उसे डराया गया , धमकाया गया। उसके चाल-चलन पर निगरानी रखते हुए, उसे बंधक की तरह भी बना कर रखा। वह फिर भी नहीं माना। अंततः विकसित देशों को इकट्ठे होकर , उसके ऊपर हमला करना पड़ा। उन्होंने उसकी शक्ति को इतना क्षीण कर दिया था कि वह पड़ौसी देशों के अन्दर फूट डालने की हिम्मत फिर कभी भी नहीं जुटा सका। विकसित देहदेशों ने अपनी दया दिखाते हुए , कुछ दुष्प्रभावित व गरीब देहदेशों को इतना अधिक सशक्त कर दिया था कि फिर कोई भी धूर्त देहदेश उनको विभाजित करने का प्रयास नहीं कर सका। कई देहदेश तो स्वयं ही इतने अधिक सुस्त व निष्क्रिय जैसे होते हैं कि वे नए देशों का निर्माण न तो स्वयं कर पाते हैं, और न ही कोई उनसे बलपूर्वक ही निर्माण करवा पाता है।

अब नेतादेश के ऊपर किए गए उपरोक्त हमले के बारे में विस्तार से कहते हैं। कई विकसित देहदेशों के राजाओं ने आपस में मिलकर , मित्रराष्ट्रों का एक समूह बनाया होता है। वे सभी इकट्ठे होकर, एक षड्यंत्रकारी योजना बनाते हैं। वे उस नेतादेश को बहला-फुसला कर, उसे अपने वश में कर लेते हैं। उसे वे बहुत सारा लालच देते हैं, तथा उसके लिए बहुत सी अंतर्राष्ट्रीय कल्याणकारी योजनाओं की घोषणा भी करवाते हैं। इससे वह सहर्ष उनके झांसे में आ जाता है। अन्यथा, वे उस देश के राजा की किंचित सहमति से, उसको शराब पीने की गहरी आदत डलवा देते हैं। इससे वह राजा बेसुध सा रहने लगता है। अवसर का लाभ उठाते हुए , उन मित्र-राजाओं के पाले हुए गुंडे , उस नेता देश के अन्दर घुसकर, उसकी विघटनकारी शक्तियों व उसके अलगाववादी उग्रवादियों को कुचल देते हैं। वहां के जो लोग दूसरे देशों में अनधिकृत रूप से हस्तक्षेप करते हैं, उन्हें वे चुन-२ कर अपनी गाड़ियों में भर

देते हैं, और उस देश के बाहर स्थित बीहड़ों में फ़ेंक देते हैं, जहाँ वे जंगली जानवरों व लुटेरों के द्वारा शीघ्र ही मार दिए जाते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि उन उग्रवादियों को नियंत्रित करके व कुछेक उग्रवादियों को मारकर , मित्र-राजाओं द्वारा प्रेषित बाहुबली, वापिस अपने देशों को लौट आए थे। परन्तु धीरे-२, उस नेतादेश के अन्दर बचे हुए उग्रवादी पुनः क्रियाशील हो गए, तथा जो मारे गए थे, उनकी कब्रगाहों के आस-पास बहुत से उग्रवादी इकट्ठे होकर, वहाँ से देशद्रोह फैलाने की प्रेरणा ले रहे थे। साथ ही अच्छा मौक़ा जानकर, वहां पर छिटपुट मात्रा में उपस्थित बाहरी शत्रु भी प्रबल हो गए थे। उन सबने मिलकर, देहदेश के विरुद्ध एक व्यापक युद्ध छेड़ दिया था। नेतादेश के राजा ने फिर से उन मित्रदेशों का सहयोग माँगा , जिनकी लापरवाही से वह विद्रोह पनपा था। मित्रदेशों ने अपने उन्नत हथियार व अन्य संसाधन भेजकर, बड़ी मुश्किल से उस देश को उन शत्रुओं से बचाया था। फिर मित्रदेश अपने-२ कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं। नेता देश की शराब पीने की लत भी धीरे -२ छूट जाती है। जिसने अपनी सहमति से अपने अलगाववादी उग्रपंथियों को नियंत्रित करवाया हो, वह नेतादेश प्रसन्न हो जाता है। परन्तु जिस नेतादेश को बलपूर्वक नियंत्रित किया जाता है , वह अपने को लुटा हुआ व ठगा हुआ सा महसूस करता है। फिर वह नेतादेश कभी भी दूसरे गरीब देशों के ऊपर अपनी बुरी दृष्टि नहीं डालता।

कुण्डलिनीजागरण के १-२ साल पहले से ही प्रेमयोगी वज्र को कुछ अजीबोगरीब सा अनुभव होना शुरु हो गया था, जैसे कि सिर का भारी रहना, सिर में दबाव जैसा महसूस होना, सिरदर्द होना, शारीरिक शक्ति का क्षीण होना, शरीर में विशेषतः हाथों-बाजुओं में कम्पन महसूस होना, अपने स्वास्थ्य के प्रति शंका रहना, व्यक्तित्व का बदलना, परमप्रेमी का विस्मरण होना; चित्र-विचित्र व सपष्ट रूप के स्वप्न आना, आगे होने वाली घटनाओं के संकेत स्वप्न में मिलना, दिवंगत महान आत्माओं से साक्षात्कार होना आदि-२। उसके सिर में दबाव, विशेषतः तब उत्पन्न होता था, जब उसके मन में क्रोध आदि की बलवान व अहितकर स्फुरणाएँ उत्पन्न होती थीं। ऐसा लगता था, जैसे कि उस दबाव से वे भड़काऊ स्फुरणाएं दब जैसी जाती थीं। क्रोध तो उसका बहुत क्षीण हो गया था। वैसे तो उसने लगभग डेढ़ माह तक क्रोध-निवारक मानसिक-दवा (antidepressant) भी कुछ समय पूर्व खाई हुई थी। उससे भी उसका क्रोध एकदम से कम हुआ था। परन्तु उस दवा का कई महीनों -वर्षों तक, स्थायी प्रभाव कैसे रह सकता था? संभवतः वे सभी परिवर्तनात्मक लक्षण, उसकी उस पुरानी कुण्डलिनी (प्रथम देवीरानी/अनोद्वाहित) के क्षीण होने से उत्पन्न हो रहे थे, जिसके रिक्त स्थान को भरने के लिए, नई कुण्डलिनी (वृद्धाध्यात्मिक पुरुष) उभर रही थी। उसकी अर्धांगिनी (द्वितीय देवीरानी) को भी वह रूपांतरित/परिवर्तित/बदला-बदला जैसा लग रहा था। प्रेमयोगी वज्र को कुण्डलिनीजागरण से लगभग एक वर्ष पूर्व ही स्वप्न में दिखा था कि वह रात्रिकाल में दो -२ चमकते हुए; बहुत स्पष्ट व देवतुल्य सूर्यों को देख रहा था, जिससे रात्रि जगमगा गई थी। वह विचित्र रात्रि थी, क्योंकि उसमें अन्धकार व प्रकाश, दोनों एकसाथ थे। वास्तव में उसे सूर्य व चन्द्रमा एक साथ दिखाई दिए, और चन्द्रमा की चमक भी सूर्य के समकक्ष लग रही थी। उस स्वप्न ने उसे कई दिनों तक आनंद से भर दिया था। उस वर्ष गर्मी भी बहुत पड़ी थी। हो सकता है कि वह स्वप्न उसका संकेत भी हो। उसी से कुछ समय पहले , उसे भगवान शिव, गाजों-बाजों व अपने अनुचरों के साथ, बहुत स्पष्ट रूप में दिखे थे (सारी संगीतमयी आवाजें भी स्पष्ट सुनाई दी थीं), जिससे उसके मन में कई दिनों तक शान्ति छाई रही थी। २० वर्ष पूर्व, क्षणिकात्मज्ञान के बाद भी उसे कुछ रहस्यमयी व स्पष्ट स्वप्न आए थे। एक बार उसे दिखा कि लोगों की बड़ी भारी भीड़ एक पहाड़ी के ऊपर, पंक्तिबद्ध होकर चढ़ी जा रही थी, और उसके सभी लोग बारी-२ से वहां एक गुफानुमा कक्ष में, एक सूक्ष्मदर्शीयंत्र में किसी परमसूक्ष्म परमाणु को देखे जा रहे थे, तथा उस परमाणु को भगवान मानकर संतुष्ट व प्रसन्न हो रहे थे। हो सकता है कि वह देहपुरुष को इंगित कर रहा हो। उसी के आसपास, एक बार उसे विशाल अन्तरिक्ष के अन्दर, ब्रम्हांडीय पिंड विचित्र व आश्चर्य भरे तरीके से उड़ते हुए दिखाई दिए, जिसके साथ कोई अदृश्य आकाशीय पुरुष आश्चर्यमयी व रहस्यमयी विधि से मौखिक व्याख्या भी कर रहा था, जैसे कि "सृष्टि के निर्माण के प्रारंभ में बड़े -२ ग्रह साँय-२ की आवाज करते हुए चलते थे"। वह दृश्य भी बहुत स्पष्ट व प्रभावशाली था। उपरोक्तानुसार , कुण्डलिनीजागरण से पहले वाले लक्षणों में , वह अपने को अर्धचेतन (stunned) जैसा अनुभव करता था। उसकी स्मरणशक्ति; मानसिक व शारीरिक क्रियाशीलता काफी घट गई थी। उसे अपना सिर घुमा हुआ सा महसूस होता था। वह अपने को नशे में जैसा महसूस करता था, व थका-२ सा रहता था। हो सकता है कि इन लक्षणों में कुछ योगदान उसके शारीरिक रोग (inflammatory disease) आदि का भी हो, परन्तु ये लक्षण कुण्डलिनी-क्रियाशीलता व परिपक्वता के साथ भी मेल खाते हैं। सबसे बड़ी परीक्षा/वास्तविकता की पहचान तो स्वानुभव से ही होती है। वह उन १ -२ सालों में प्रचंड अद्वैतभाव वाले संघर्षपूर्ण व विकासपूर्ण जीवन के साथ अपनी द्वितीय कुण्डलिनी (वे वृद्ध पुरुष) को प्रचंडता से अनुभव कर रहा था। उन लक्षणों के कारण उसने चिकित्सालयों के दौरे किए , अपने मस्तिष्क का सीटी-स्केन (ct scan) करवाया व अन्य शारीरिक परीक्षण भी करवाए, यद्यपि सभी कुछ ठीकठाक निकला। चिकित्सक के परामर्शानुसार, वह अपनी शारीरिक शक्ति को कामचलाऊ बना कर रखने के लिए, कभी-कभार माँसाहार का सेवन भी करने लग गया था, शविदप्रेरित अद्वैतदृष्टिकोण के साथ (यद्यपि कुण्डलिनीजागरण से लगभग एक वर्ष पहले से, अज्ञात आत्मप्रेरणा से या योगसाधना के प्रभाव से, वह पूर्णरूप से शाकाहारी बन गया था)।

माँसाहार से उसमें कुछ तमोगुण उत्पन्न हो जाता था, यद्यपि उससे उसके शरीर व मन के साथ ही, उसकी कुण्डलिनी भी पुष्ट हो जाया करती थी। तमोगुण तो उसका, शविद के चिंतन से स्वयं ही दब जाया करता था। उसने यह भी अनुभव किया कि आमिष भोजन से उत्पन्न उसके क्षुद्र पापकर्म, उसके जीवन में छुटपुट रूप में होने वाली देहहानिकारक व देहहानिचेतावनीकारक घटनाओं से शीघ्र ही नष्ट हो जाया करते थे, जिससे उसे तमोगुण के बोझ के एकदम से घटने का आभास स्वयं को भी होता था। इससे इस धारणा पर भी प्रश्नचिन्ह लगता है कि केवल शाकाहारियों की कुण्डलिनी ही जागृत हो सकती है। यद्यपि प्रेमयोगी वज्र ने क्षणिकात्मज्ञान होने तक किसी भी रूप में माँसाहार नहीं किया था। आमिषभोजन करने की आवश्यकता रखने वाले शरीरविज्ञानदार्शनिक तो आमिषान्न खाते हुए भी यही भावना करते हैं कि वे अद्वैतनिष्ठ देहपुरुषों का ही भक्षण कर रहे हैं, जिन्हें न तो पीड़ा होती है, और न ही जिनकी मृत्यु होती है। इससे उनका अद्वैतमय दृष्टिकोण तीव्रता से पुष्ट हो जाता है। कुछ पाप तो उससे लगता ही है, कर्म-फल के सिद्धांतानुसार, यद्यपि उन पापरूपी कर्मों के फलों को भोगते हुए भी उनके अन्दर वही अद्वैतनिष्ठा छाई रहती है, उपरोक्त भावसमारोपण के सिद्धांतानुसार। इससे उनका अद्वैतदृष्टिकोण दुगुने वेग से वृद्धि करता है, और साथ में कुण्डलिनी भी, क्योंकि अद्वैतदृष्टिकोण व कुण्डलिनी साथ-२ ही रहते हैं। ऐसा भी प्रतीत होता है कि माँसाहार करने वाले साधारण पुरुषों में जो साँसारिक व्यावहारिकता की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा विद्यमान होती है, वह देहपुरुषों के अप्रत्यक्ष प्रभाव से ही उत्पन्न होती है। प्रेमयोगी वज्र ने भी माँसाहार से अपनी कुण्डलिनी को संतुलित व पुष्ट होते हुए महसूस किया। संभवतः वैसा उसके देहदेश के संतुलितपोषण, उसके नागरिक देहपुरुषों के अप्रत्यक्ष प्रभाव व शविद के प्रत्यक्ष प्रभाव (सीधे शविद-चिंतन से) के फलस्वरूप होता था।

योगशास्त्रों में उल्लेख आता है कि कुण्डलिनीयोग से पुराने समय में किए हुए पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में, जिन कर्मों (प्रारब्ध) से यह वर्तमान योनि का मानवजीवन निर्धारित हुआ होता है, वे कर्म तो नष्ट न होते हुए, अपना फल प्रदान करके ही शाँत होते हैं (यद्यपि उनका प्रभाव बहुत कम अवश्य हो जाता है)। परन्तु जो कर्म संचितावस्था में, अवचेतन मन में पड़े हुए हैं, और जिनसे अगला जन्म निर्धारित नहीं हुआ है, वे कुण्डलिनीयोग से पूर्णतः क्षीण हो सकते हैं। कर्म वास्तव में अव्यक्तरूपी बीज की अवस्था में अवचेतन मन में पड़े रहते हैं, जैसा कि शविद में भी एक स्थान पर वर्णित किया गया है। कुण्डलिनीयोग के प्रभाव से जब सर्वाधिक अव्यक्त आत्मा भी कुण्डलिनी के रूप में जागृत हो जाती है, तब दूसरे व उससे कमतर अव्यक्त भाव (कर्मों के बीज) भी सोए हुए नहीं रह सकते, अपितु वे भी स्वप्नकाल में व्यक्तरूप में प्रकट होते रहते हैं, जिससे वे उसी तरह से नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह से बीज अंकुरित हो कर नष्ट हो जाता है। क्योंकि वे संचित कर्म वर्तमान जन्म के लिए निर्धारित नहीं हुए होते हैं, अतः फल देने वाले वृक्ष के रूप में भी नहीं पनप पाते, अपितु केवल अंकुरित होकर, उसी तरह से भस्म हो जाते हैं, जैसे कि खेत के अवांछित खरपतवार आदि। कुण्डलिनीजागरण से पहले भी कुण्डलिनीयोग के द्वारा बहुत से संचितकर्म नष्ट हो जाते हैं। उन संचितकर्मबीजों पर आधारित स्वप्नों के अतिरिक्त, कुण्डलिनीयोगी को अन्य भी, अनेक प्रकार के स्वप्न आते रहते हैं, जैसे कि भविष्य में होने वाली घटनाओं का आभास कराने वाले या अन्यानेक कारणों से आने वाले स्वप्न। क्योंकि प्राचीनकाल में अधिकाँश लोग कुण्डलिनीयोगी हुआ करते थे, अतः उस समय भविष्य का आभास कराने वाले स्वप्नों का बोलबाला हुआ करता था, जिससे स्वप्नशास्त्र का उदय हुआ।

एक बार लेखक ने देखा कि देहदेश में बाढ़ आ गई थी। खेतों में खड़ी सारी फसलें बह कर नष्ट हो गई थीं। पूरे देहदेश में भोजन की कमी पड़ गई थी। खाद्यान्नभंडारों के द्वार पूरी तरह से खोल दिए गए थे, ताकि भूखे देहपुरुषों के लिए अन्न वितरित किया जा सकता। अन्य वस्तुओं के भण्डारघर भी खोल दिए गए थे, ताकि जरूरत के अन्य साजो-सामान भी उपलब्ध करवाए जा सकते। खनिजों की खदानों में भी पानी भर गया था, जिससे धातुओं का व नमक का उत्पादन भी बहुत कम हो गया था। बड़े-२ जंगल पानी में डूब गए थे, जिससे इमारती व अन्य प्रकार की लकड़ियों के दामों में भी भारी उछाल दर्ज किया जा रहा था। कपास के खेत भी पानी में डूब गए थे, व रुई को परिवर्धित करके, वस्त्र तैयार करने वाले विभिन्न प्रकार के उद्योग भी पानी में समा गए थे। देहपुरुष ऊंचे-२ पर्वत-शिखरों पर चढ़ कर, वहाँ पर अपने आप को सुरक्षित कर पा रहे थे। वहाँ से वर्षा का पानी नीचे की ओर बहता व रिसता हुआ, बाढ़ के गंदे पानी के साथ मिश्रित हो रहा था, जिससे वह पानी पीने के लायक नहीं रह गया था। प्राकृतिक जलस्रोत काफी नीचे रह गए थे, जिनको बाढ़ के पानी ने गन्दा कर दिया था। इस कारण से, बहुत से देहपुरुष प्यास के मारे भी मर रहे थे। तभी लेखक ने देखा कि अज्ञात कारणों से वह अतिवृष्टि रुक गई थी, जिससे बाढ़ का पानी नीचे उतर रहा था। फिर बाढ़ का पानी प्राकृतिक जलस्रोतों से भी नीचे उतर गया, जिससे उनमें शुद्ध व साफ-सुथरा जल पुनः पूर्ववत प्रकट होने लगा। प्यासे देहपुरुष भी पानी को देखकर नीचे उतर आए, और वे निर्मल जल पीकर अत्यंत प्रसन्न व तृप्त हो गए। नई बोई गई फसलें खेतों में लहलहाने लग गई थीं। फिर बहुतायत में अन्न उपलब्ध होने से, देहपुरुषों ने जी भर कर भाँति-२ के व्यंजनों का भरपूर आनंद उठाया। खाद्यान्न-भण्डार भी पुनः भर दिए गए। भूमिगत खदानों का जल भी जमीन के अन्दर रिसने से व धुप आदि की गर्मी

से सूख चुका था, जिससे उनसे पुनः धातु की आपूर्ति होने लगी। धातुओं की तरह ही, अन्य सभी वस्तुओं के भण्डार भी भरने लगे। इस तरह से, देहदेश की मशीनरी फिर से चालू हो गई थी। कई बार क्या होता है कि अतिवृष्टि बहुत अधिक समय तक रुकती ही नहीं, जिससे उत्पन्न प्रचंड बाढ़ में देहदेश के सारे संसाधन बह जाते हैं। परिणामस्वरूप भूख और प्यास के कारण बहुत अधिक संख्या में देहपुरुष मारे जाते हैं। इससे वह देहदेश बहुत क्षीण हो जाता है। इससे वह या तो सदैव के लिए दूसरे देशों के आश्रित हो जाता है, या फिर नष्ट हो जाता है। कई बार तो बाढ़ के पानी को रोक दिया जाता है, व उसे मशीनों के द्वारा पीने योग्य बनाया जाकर, देहपुरुषों तक, ऊपर की ओर चढ़ाया जाता रहता है। परन्तु ऐसा भी कुछ समय के लिए ही किया जा सकता है, और इसके अलग से, अपने दुष्प्रभाव भी हैं। कई बार बाढ़ के पानी को स्वच्छ व पीने योग्य बनाए रखने के लिए, उसमें कीटाणुनाशक दवाइयां भी डाली जाती रहती हैं।

इसी तरह से, साधारण अभ्यास के दृढ़ हो जाने पर, स्विंग रिसाईटेशन (swing recitation), सबटल एनर्जी योग (subtle energy yoga) व क्लीयर लाईट योग (clear light yoga) का अभ्यास भी किया जा सकता है। प्रेमयोगी वज्र के अनुभव के आधार पर, इनकी आवश्यकता कम ही पड़ती है। मुख्य तो कुण्डलिनीयोग व यौनयोग ही हैं। उपरोक्त तीनों साधनाएं उन्नत तांत्रिक तकनीकों में प्रतिष्ठित हैं। ये सभी तांत्रिक साधनाएं पहले साधारण रूपों में की जाती हैं, फिर अभ्यास दृढ़ हो जाने पर, ये यौन-मुद्राओं के साथ की जाती हैं।

चेत् च्युतिना अगर्भकस्खलनं, तदा तस्य सूक्ष्मशक्तिः (तस्मिन् आरोपितं कुण्डलिनीचित्रं) यौगिकबन्धैः वज्रशिखायाः ऊर्ध्वदिशायां मस्तिष्कपर्यन्तं उन्नीयते। अनेन बिन्दुपतनं निवार्यते। वास्तवेन, कुण्डलिनीचित्रं एव बिन्दुः इति कथ्यते। अनेन भौतिकशक्तेः अपेक्षाकृतः अल्पतरह्रासः, यद्यपि कुण्डलिनीशक्तेः (समाधेः) परिपक्वतायां अकस्मात् वृद्धिः। तान्त्रिकयौनसंसर्गे पुरुषयौनस्रावः चिरकालपर्यन्तं न अवरोध्यते, अपितु तदोत्सर्जने पूर्णनियन्त्रणं स्थाप्यते। अधिकान्शतः यौनस्रावः योगिन्यः अगर्भकऋतुकाले उत्सृज्यते। संभवतः शिवलिङ्गस्य (शिव+लिङ्गस्य), अर्धारीश्वरस्य शिवपार्वतयोः (शिवशक्तयोः) च अराधनाधारे तान्त्रिकरहस्यं एव। वज्रशिखरे कुण्डलिनीध्यानं तन्त्रस्य एकाद्भुतकला। यौनयोगे वज्रशिखरस्य पार्श्वक्षेत्रेषु यद्संवेदना, तेन् शक्तिस्खलनं जायते। तद्संवेदनायां कुण्डलिनीध्यानात् तद्बिन्दुस्खलनं बाधितं। तेन् कुण्डलिनी अतीव पुष्टा अपि च यौनसंतुष्टौ पूर्णता। एतद् अतीव शनैः -२ कर्तव्यं अपि च तदोपरि कुण्डलिनीध्यानकाले अतिसतर्कता आश्रयणीया, अन्यथा स्खलनसंभावना। महदभ्यासादेव अस्मिन् निपुणता। यदैव बिन्दुस्खलनं अति निकषा, तदैव वज्रस्य गतिः बाधितव्या कुण्डलिनी च बन्धैः उन्नीतव्या। पूर्णाभ्यासात् पूर्वं स्खलनसीमा न स्पर्शणीया, अपितु किञ्चिदेव संवेदनां अनुभूय, शान्तः भूत्वा कुण्डलिनी उन्नीतव्या। वज्रोद्भूतया तद्संवेदनया संपूर्णशरीरे एकरोमाण्चः उत्पद्यते। तन्त्रे बिन्दुरक्षणं निर्दिष्टं, यतोहि बिन्दुस्खलनात् वज्रः शिथिलः अनेकदिवसपर्यन्तं। अनेन तदोपरि कुण्डलिनीध्यानं न सुलभं। यदा वज्रे एव कुण्डलिनी न पुष्टा, तदा सा मस्तिष्के कथं पुष्टा भवितुं अर्हति, यतोहि वज्रादेव कुण्डलिनी मस्तिष्कं उपसरति। शब्दान्तरतः कुण्डलिनीवर्धकयन्त्रः किन्चिद्दिवसपर्यन्तं त्रुटिपूर्णः, यत् देहपुरुषाः पुनः साधयन्ति अपि, यद्यपि हानिपूर्तिः दीर्घकालपर्यन्तं न संभवा।

स्विन्गरिसाईटेशने (in swing recitation), तान्त्रिकः तद्प्रेमिका च यबयुमासने बद्धौ परस्परविपरीतक्रमेण श्वसतः। यदा तान्त्रिकः प्रश्वसति, तदा तस्य प्रेमिका निःश्वसति यदा च सः निःश्वसति तदा सा प्रश्वसति। निःश्वसन तान्त्रिकः परिकल्पयति यत् तस्य कुण्डलिनी तद्मूलाधारात् उत्पतन् तद्नासिकया बहिः निस्सरति, यां प्रेमिका स्वप्रश्वासेन आकर्षति स्वमूलाधारं च अवनयति। प्रेमिकायाः निःश्वसनेन सा कुण्डलिनी तद्मूलाधारात उत्पतन तद्नासिकया बहिः निस्सरति, यां तान्त्रिकः स्वप्रश्वासेन अन्तःप्रति आकर्षति स्वमूलाधारं च अवनयति। एवमेव एतद्क्रमम् असन्ख्यवारं विभिन्नाभिः गतिभिः च पुनः -२ कर्तुं शक्यते। तान्त्रिकप्रेमिका अपि स्वकुण्डलिनीं एवमेव उभयोः शरीरयोः मध्ये दोलायमानां पश्यन् तिष्ठति। एतद्प्रक्रिया कश्चिदपि चक्रावधिपर्यन्तं कर्तुं शक्यते।

सबटल एनर्जी योग/ इन्नर हीट योग (subtle energy yoga/inner heat yoga) में, नाभि चक्र पर यज्ञ करती हुई कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए। यह सत्य भी है, क्योंकि नाभि-क्षेत्र के देहपुरुषों का मुख्य काम ही अग्नि जलाकर भोजन को पकाना होता है, जिससे पूरे देहदेश के देहपुरुष भोजन कर पाते हैं। मन के सभी संकल्पों को उस अग्नि में दग्ध किया जाता है। वास्तव में संकल्प एक प्राणवायु का पुंज ही तो है, जो कि उस जठराग्नि को भड़काने में व्यय हो जाता है। मूलाधार से संकल्प -वायु उपरोक्त अग्नि के चुसाव द्वारा ऊपर खींच ली जाती है। वह वायु फिर नाभि के स्तर की ऊँचाई पर, मेरुदंड में स्थित अग्नि को भड़काती है। उस अग्नि की ऊंची लौ के साथ, वह संकल्प-वायु भी मेरुदंड के चक्रों से होते हुए, ऊपर की ओर उठती हुई मस्तिष्क में पहुँचती है। वहाँ पर ठंडी, अतः भारी होते हुए, आगे के चक्रों से होकर नीचे गिर जाती है। मूलाधार से वह फिर अग्नि द्वारा ऊपर खींच ली जाती है। इस तरह से कुछ चक्रों के बाद वह संकल्प-वायु शाँत हो जाती है। इस प्रकार सभी संकल्प शाँत कर लिए जाते हैं। इससे, उन संकल्पों की शक्ति लेकर, यज्ञ करती हुई मानवाकार कुण्डलिनी प्रवृद्ध हो जाती है। यौनतंत्र में मुख्य चक्र, मूलाधार व सहस्रार, ये दो ही होते हैं। उच्च साधक की

कुण्डलिनी मस्तिष्क व मूलाधार के बीच में निरंतर झूलती रहती है। मूलबंध /उड्डीयानबंध लगाने पर वह मस्तिष्क में स्थित हो जाती है , व मूलबंध/उड्डीयानबंध को ढीला छोड़ने पर वह फिर से मूलाधार में स्थित हो जाती है। तभी तो कुण्डलिनी की उपमा उस नागिन से की गई है, जो कभी पूरा खुलकर अपना फन ऊपर को उठा लेती है, तो कभी कुंडल जैसा रूप बना कर संकुचित हो जाती है। क्लीयर लाईट योग उच्चतम कोटि का योग है। इसमें सभी संकल्पों/जगत को चिदाकाश में विलीन कर दिया जाता है। इन आधारभूत तांत्रिक साधनाओं को साधक अपनी आवश्यकता व अनुकूलता के अनुसार, कुछ सीमा तक ढाल भी सकता है। मुख्य उद्देश्य व दिशा-निर्देशक बिंदु तो कुण्डलिनी को सुदृढ़ करना ही है। ये सभी साधनाएं पहले शुद्ध यौगिक रूप में सिद्ध की जाती हैं, फिर उन्हीं साधना-रूपों को तांत्रिक यौनसंसर्ग के साथ मिलाकर, पूर्णसमाधि व आत्मज्ञान की शक्ति, तीव्रता से प्राप्त की जाती है।

एक बार लेखक ने देखा कि देहदेश का मुख्य परिष्करण उद्योग क्षतिग्रस्त हो गया था। संभवतः कोई घातक पदार्थ (पत्थर, कंकड़, धातु आदि) कच्चे माल के साथ मशीनों के अन्दर प्रविष्ट हो गया था , जिसने मशीनों के नाजुक पुर्जों को क्षत-विक्षत कर दिया था। उस उद्योग की काम करने की गति बहुत धीमी हो गई थी। उससे देहपुरुषों को उच्च कोटि के खाद्यान्न, वस्त्र, जूते, औजार, विविध उपकरण व अन्य साजो-सामान पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे। देश की अर्थव्यवस्था डूब रही थी। मुद्रा का बहुत अधिक अवमूल्यन हो गया था। देहपुरुष क्षीण व बीमार जैसे प्रतीत हो रहे थे। कर्मचारियों की लम्बी-चौड़ी फौज को साथ लेकर, बहुत से इंजीनियर भी वहाँ पहुँच गए थे। वे उद्योग के प्रत्येक हिस्से की बारीकी से जांच -पड़ताल कर रहे थे। कहीं पर भी कोई खराबी पाए जाने पर , प्रभावित कलपुर्जों की मुरम्मत करके, उन्हें चालू कर रहे थे। उस तरह से, कई दिनों के अनवरत प्रयास के बाद, वह उद्योग कामचलाऊ रूप से चलने लगा, जिससे देहदेश की हालत धीरे-२ सुधरने लगी। यद्यपि देहदेश को पूर्ववत सामान्य अवस्था में लौटने के लिए बहुत अधिक समय लग गया। कई बार वह उद्योग इतना अधिक क्षतिग्रस्त हो जाता है कि उसकी मुरम्मत ही नहीं की जा सकती। वैसी हालत में, पूरे उद्योग को ही बदलना पड़ता है। पुरानी मशीनों को हटा कर, उनके स्थान पर नई मशीनें फिट (fit) कर दी जाती हैं। उसमें बहुत अधिक खर्चा आ जाता है, जिसे कई बार गरीब देश वहन नहीं कर पाते। कई बार पड़ौसी देश मिलकर गरीबदेश की मदद के लिए आगे आ जाते हैं। उद्योग के अधिकाँश हिस्से देहदेश में ही बन कर तैयार हो जाते हैं। परन्तु यदि पूरा उद्योग ही बदलना पड़ जाए , तब तो उसे विदेशों से ही मंगवाना पड़ता है। ऐसे में, नैष्ठिक देशभक्त बहुत बवाल मचाते हैं। उन्हें समझाना बहुत मुश्किल हो जाता है। अतः विशेषज्ञ संधिकर्ताओं को भी विदेशों से बुलवा कर , हमेशा के लिए उन्हें प्रभावित देहदेश में बसा कर रखना पड़ता है , ताकि वे देहपुरुषों को निरंतर रूप से समझाते-बुझाते रहें, जिससे देहदेश के विरुद्ध किसी भी प्रचंड विद्रोह की स्थिति न उत्पन्न हो पाए।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि लगभग २० वर्षों के कर्मठतापूर्ण शविद के व एक वर्ष के साधारण कुण्डलिनीयोग के अभ्यास के बाद ही प्रेमयोगी वज्र यौनयोग में कुछ सफल हो सका। कर्मठतायुक्त शविद के आचरण से उसकी कुण्डलिनी लगभग एकसमान रूप से व मध्यम स्पष्टता के साथ , कुछ स्थिर/स्थायी व निरंतर जैसी हो गई थी, जबकि साधारण कुण्डलिनीयोग से उसमें स्पष्टता व दृढ़ता आई। यौनयोग से उसे अतितीव्र बल मिला , और वह जागरण की ऊँचाई तक पहुँच गई। कुण्डलिनी को पुष्ट किए बिना , सीधी तांत्रिकयौनक्रिया से लाभ की अपेक्षा हानि भी हो सकती है। संभवतः यौनयोग को कुण्डलिनीयोग के नियमित अभ्यास के बिना नहीं करना चाहिए , क्योंकि यौनांगों पर बन रहा, अत्यधिक काम के बोझ का दबाव, यौनचक्रों पर कुण्डलिनी के ध्यान से ही शाँत होता है। कुण्डलिनीयोग को यौनयोग के बिना भी किया जा सकता है , परन्तु वैसा करने पर सद्गृहस्थी को पूर्ण सफलता मिलना दुष्कर है , यद्यपि पूर्णत्यागी या संन्यासी व्यक्तियों को कुछ अधिक आसानी से इसमें सफलता मिल जाती है , क्योंकि उनके त्याग की शाँति के कारण उनमें ध्यान की दृढ़ता होती है , अतः उन्हें कुण्डलिनी-आरोहण के लिए यौनसंसर्ग जैसे बाहरी बल की आवश्यकता कम ही पड़ती है। वास्तव में गृहस्थीपुरुष के लिए कुण्डलिनीयोग की पूर्णता , यौनयोग में ही निहित प्रतीत होती है। द्वैताद्वैत दृष्टिकोण व कुण्डलिनीयोग के अभ्यास से जब कुण्डलिनी काफी परिपक्व हो जाती है, तब वह अपने आप को सहस्रार तक पहुंचाने वाले मुक्तिगामी वेग (escape velocity) को प्राप्त करने के लिए , यौनयोग की ओर स्वतः ही आकर्षित हो जाती है। कई बार , उस समय कुण्डलिनीसाधक व्यक्ति एक आम यौनरोगी/यौनलोलुप/यौनसनकी की तरह प्रतीत होता है, यद्यपि वह उसकी कुण्डलिनी के द्वारा सत्पथ की ओर ही प्रेरित किया जा रहा होता है। यदि उस समय उसे उपयुक्त यौनयोग/तंत्र या तंत्रशास्त्र आदि का ज्ञान न मिले, तो साधारण यौनसम्बन्ध से उसकी कुण्डलिनी अत्यधिक क्षीण भी हो सकती है, अथवा वह पथभ्रष्ट होकर यौनापराधी भी बन सकता है। कुण्डलिनी को यदि मुक्तिगामी वेग न मिले , तो वह तद्धारक व्यक्ति के जीवन भर, जागरण के बिना ही, उसके शरीर में मंडराती रह सकती है। यह उसी तरह से होता है , जिस तरह से अंतरिक्षयान को मुक्तिगामी वेग (escape velocity) न मिलने से, वह धरती के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र को हरा कर, धरती की कक्षा से ऊपर नहीं जा पाता, और धरती के वातावरण के आसपास ही भटकता रहता

है। कुण्डलिनीयोग के द्वारा कुण्डलिनी को चक्रों पर सुदृढ़ किया जाता है। यौनयोग के समय वही कुण्डलिनी , आग के शोलों की तरह भड़क कर, अत्यधिक स्पष्ट हो जाती है, जिससे अन्य फालतू विचारों का शोर भी थम जाता है। इसका अर्थ है कि कुण्डलिनीयोग यौनक्षति से बचाने वाले एक सुरक्षक घेरे व कुण्डलिनी को ऊपर उठाने वाले एक पम्प, दोनों की तरह ही काम करता है। संभवतः यौनयोग, "सब कुछ या कुछ नहीं" की तरह काम करता है। इसका अर्थ है कि यदि इस जीवन में, इसके द्वारा कुण्डलिनी जागृत नहीं हुई, तो इससे आत्महानि (नरकप्राप्ति) की संभावना है। यद्यपि ठीक ढंग से करने पर, यह योग अन्य सभी प्रकार के योगों की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है, और इसमें सफलता भी शीघ्रता से मिल जाती है। आत्महानि की संभावना फिर अत्यधिक कम हो जाती है, यदि इसके साथ गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो, इसे एकपत्नीव्रत के साथ किया जाए व इसे उन्हीं, एक ही पत्नीदेवी तक सीमित रखा जाए। यौनयोग से हानि का भय संभवतः इसीलिए होता है, क्योंकि इससे आदमी मस्त जैसा, आत्मानंद से भरपूर जैसा व अद्वैतनिष्ठ सा (trans state) हो जाता है। इस वजह से उसमें निष्ठा, लगन, जुझारूपन व उत्तरदायित्व जैसे साँसारिक गुण उतने अधिक प्रकट नहीं रहते, जितने कि एक आम साँसारिक/कर्मजीवी मनुष्य में होते हैं। यौनयोग से, कुछ प्रत्यक्ष रूप से व कुछ उससे उत्पन्न मस्तमौलेपन से, एक व्यक्ति में कुछ न कुछ सामर्थ्यहीनता तो रहती ही है। इसलिए यदि वह यौनयोग से कुण्डलिनीजागरण नहीं कर पाता है, तो संतोषजनक साँसारिकता से भी वंचित रह जाता है, और आध्यात्मिकता से भी। यद्यपि वह उन नशेड़ी व आलसी प्रकार के लोगों से तो अच्छा ही होता है , जो साथ में रंगीनता का आनंद भी नहीं ले पाते, और संसार को भी नहीं सुहाते। योगहीन यौनसंसर्ग के समय , शरीर के विभिन्न स्थानों (यौन-क्षेत्र, हृदय-क्षेत्र, नाभि-क्षेत्र, ग्रीवा-क्षेत्र, मस्तिष्क-क्षेत्र) पर, व्यायाम के साथ, प्रचंडता से ध्यान जाता है, जिससे वहाँ पर मन के अच्छे-बुरे सभी भाव प्रगाढ़ता के साथ अनुभूत होते हैं। परन्तु इसके विपरीत, यौनयोग में केवल कुण्डलिनी का ही ध्यान करने से, सभी विचारों की शक्ति केवलमात्र उस कुण्डलिनी को लगती है, और वह अत्यधिक पुष्ट हो जाती है। यह भी एक सिद्धांत है कि जिस क्षेत्र में मन केन्द्रित हो जाता है, वह क्षेत्र पुष्टता को प्राप्त होता है, क्योंकि वहाँ के लिए रक्तप्रवाह बढ़ जाता है। इसी सिद्धांत से, कुण्डलिनीयोगमिश्रित यौनयोग से पूरा शरीर पुष्ट हो जाता है, क्योंकि कुण्डलिनी-चक्र (७ पूर्वोक्त चक्र) पूरे शरीर के आधार बिंदु हैं। इसी तरह से, साधारण कुण्डलिनीयोग में भी विभिन्न चक्रों पर कुण्डलिनी का ध्यान किया जाता है , व्यायाम के साथ। इससे कुण्डलिनी कुछ अधिक स्पष्ट व प्रगाढ़ हो जाती है। इसका अर्थ है कि कुण्डलिनीयोग , यौनयोग का ही कुछ निम्नतर शक्ति वाला , परन्तु कुछ उच्चतर सामाजिकता वाला रूपांतरण है। यौनयोग के बिना, केवल साधारण कुण्डलिनीयोग या अप्रत्यक्षतंत्र या दोनों का युग्मितरूप विशेषतः उनके लिए है, जो यौनयोग करने में अस्मर्थ हैं, जैसे कि वृद्ध, अस्वस्थ, बालक, अविवाहित व ब्रम्हचारी आदि।

साधारणयौनसम्बन्ध का वह प्रभावशाली रोमांच, वह दुनिया जीतने की मंशा रखने वाली उमंग, वह महान सत्ता-गौरव का अहसास आदि-२ सभी विलक्षण व समस्त लोकों में सर्वाधिक सुखप्रद माने जाने वाले, जो भी दिव्य अनुभव व क्रियाकलाप होते हैं; वे सभी, यौनयोग के प्रभाव से कई गुना अधिक वृद्धि को प्राप्त करते हैं, तथा साथ में कुण्डलिनी को भी पुष्ट करते हैं। यौनयोग से धीरे -२ सकारात्मक परिवर्तन महसूस होने लगते हैं। मन में ताजगी व उमंग छा जाती है। काम करने का उत्साह व काम करने की लगन बहुत बढ़ जाती है। योगी का मस्तमौलापन बढ़ने लगता है। वह दुनियादारी को मस्ती व ख़ुशी के साथ निपटाने लगता है। कोई बात उसके दिल पर नहीं लगती , अर्थात वह किसी भी बात का बुरा न मानते हुए, कुढ़ता नहीं है, अपितु अपने आप में खुश रहता है, क्योंकि उसमें हृदय-ग्रंथि (दिल की गाँठ) खुली हुई होती है। वह एक मस्त बच्चे की तरह हो जाता है। बच्चा तो अज्ञानी व अकर्मक होता है, परन्तु उसमें ज्ञान व कर्म के साथ ही मस्ती विद्यमान रहती है। कुण्डलिनी की स्पष्टता व उससे जुड़ा आनंद बढ़ने लग जाता है। कुण्डलिनी की गंध भी अनुभव होने लगती है। फिर कुण्डलिनी की आवाज भी , बहुत हल्के व सूक्ष्म रूप में, कभी-२ अनुभव होने लगती है। उसके व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ जाता है। उसकी प्रेमिका (consort) के साथ, अन्य परिचित-अपरिचित लोग भी उसके प्रति प्रेम, लगाव व आदर का भाव रखने लग जाते हैं। इस प्रकार के निष्ठापूर्ण यौनयोग से, उसकी कुण्डलिनी उसके मस्तिष्क में पूरी तरह से व्यक्त व जीवंत जैसी प्रतीत होती है, और कभी भी जागृत हो जाती है। वास्तव में यौनयोग के बिना, यौनसम्बन्ध का पूर्ण आनंद व पूर्ण लाभ, प्राप्त ही नहीं किया जा सकता। यौनचक्रों व मस्तिष्क के बीच में सीधा व प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। कुण्डलिनी को मस्तिष्क में स्थापित करने का कार्य जितनी शीघ्रता से यौनचक्र करते हैं , उतनी शीघ्रता से अन्य चक्र नहीं करते। यौनचक्र अत्यधिक ऊर्जावान होते हैं। यौनचक्रों से कुण्डलिनी सीधे व एकदम से मस्तिष्क में पहुँच जाती है। इन सभी का प्रत्यक्ष अनुभव प्रेमयोगी वज्र को, प्रत्यक्षतंत्र व अप्रत्यक्षतंत्र, दोनों ही के समय हुआ।

उपरोक्तानुसार, प्रेमयोगी वज्र ने २० वर्षों के, शविद के भरपूर, व्यावहारिक व कर्मठतापूर्ण अनुशीलन के बाद, जब कुण्डलिनीयोग का नियमित अभ्यास करना शुरु किया, तो वह लगभग १ वर्ष में ही सफलता के निकट पहुँच गया। इसका तात्पर्य है कि यदि लम्बे समय तक देहपुरुष की तरह द्वैताद्वैत व अनासक्ति से भरा हुआ अपना मानव जीवन , पूरी तत्परता, कर्मठता, युक्तियुक्तता व हर्षोल्लास के साथ जिया जाए , तो मन जीवन से

पूर्णतया संतुष्ट हो जाता है, और उसमें जीवन जीने की गहरी इच्छा (craving) नहीं दबी रहती। इससे कुण्डलिनीयोग में भी अच्छी तरह से मन लगता है, जिससे सफलता भी शीघ्र मिल जाती है। प्रेमयोगी वज्र ने यह भी अनुभव किया कि आम दुनियादारी के बीच में , लम्बे समय तक धारण की गई अद्वैतनिष्ठा के साथ कर्मयोग का आचरण (लगभग औसतन १५-२० वर्ष तक) करने के उपरांत यदि निवासस्थान का परिवर्तन (लगभग औसतन १-४ साल के लिए) हो जाए, तो नए स्थान पर कुण्डलिनी योग व यौनयोग करने से कुण्डलिनीजागरण की संभावना अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। इसीलिए तो प्राचीन भारत में पूरी आयु भर कर्मयोगी बन कर, जीवन के उत्तरार्ध में ज्ञान के लिए वन को प्रस्थान करने की प्रथा विद्यमान थी। इसका सीधा सा अर्थ है कि लम्बे समय की कर्मसम्मुखता के बाद , जब कोई व्यक्ति किसी कारणवश कर्मों से विमुख होकर , शाँत हो जाता है, तब उसकी बाह्यगामी शारीरिक ऊर्जा अंतर्गामी होकर, मानसिक बन जाती है, और कुण्डलिनीजागरण को उत्पन्न करती है। परन्तु ऐसा तभी होता है, जब अद्वैत के अभ्यास से उस व्यक्ति की कुण्डलिनी पहले से ही पुष्ट हो , और शाँतिकाल प्राप्त होने पर वह व्यक्ति कुण्डलिनीयोग का अभ्यास करे , अन्यथा उसकी अंतर्मुखी मानसिक ऊर्जा कुण्डलिनी के ऊपर केन्द्रित नहीं हो पाती, और इधर-उधर के विचारों/क्रियाकलापों में बिखर कर नष्ट हो जाती है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो पूर्णतया ऐसा ही हुआ था। आजकल भी तो ऐसा ही हो रहा है। अधिकाँश लोग भौतिकवाद से थककर व ऊबकर, वापिस अपने मन के घौंसले में लौट रहे हैं, और यही कारण है कि आजकल आत्मजागरण के मामले बढ़ रहे हैं।

यौनयोग के बारे में भ्रमित होने की अत्यधिक संभावना होती है। वास्तव में यह साधारण यौनसंसर्ग की तरह नहीं लगता , अपितु उससे बिल्कुल विपरीत लगता है। यौनयोग तो पूजा-अर्चना/अराधना/जप-तप/स्वाध्याय/व्रत-उपवास (कुण्डलिनी के लिए) आदि आध्यात्मिक गतिविधियों की तरह लगता है। बहुत से लोग भ्रम से अपने आप को यौनयोगी समझते हैं, परन्तु वास्तव में, उनमें से अधिकाँश लोग आत्महानिकारक साधारण यौनसंसर्ग में डूबे हुए होते हैं। यौनयोग के लिए दोनों अंतरलैंगिक योगियों का मन शाँत, थकानरहित, तनावरहित, पर्याप्त समय-शक्ति की उपलब्धता के साथ व स्पष्ट मानसिक समाधिचित्र (कुण्डलिनी) के साथ होना चाहिए। दोनों का ही, यौनयोग करने का एकमात्र उद्देश्य कुण्डलिनीजागरण होना चाहिए, जो किसी भी रूप में मन में प्रतिक्षण बसा होना चाहिए। महान तंत्रज्ञों व तंत्रशास्त्रों के द्वारा निर्धारित सर्वसाधारण नियमों का ज्ञान होना चाहिए , और उनका पालन भी किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, पूर्वोक्तानुसार, लोकमर्यादा का पूरा ध्यान रखते हुए, इसमें स्त्री को देवी की तरह पूज्य माना जाता है ओर किसी की धर्मभार्या व पुत्री को प्रेमिका (consort) नहीं बनाया जाता, क्योंकि इनको औरों की भावनात्मक संपत्ति के अंश के रूप में समझा जाता है। जहाँ तक हो सके, प्रेमिका (consort) /धर्मपत्नी को बदलने की अपेक्षा अन्य समस्याओं को दूर किया जाता है। यौनयोग में सम्मानयुक्त व मर्यादित विचारों, शब्दों व क्रियाकलापों का ही प्रयोग किया जाता है। कुण्डलिनीजागरण की सर्वाधिक प्रेममयी , मर्यादित व सर्वश्रेष्ठ विधि तो एकपत्नीव्रत के साथ यौनयोग ही है, जिसको अपनाकर ही प्रेमयोगी वज्र को कुण्डलिनीजागरण का त्वरितरूप से अनुभव हुआ। ऐसी अत्यावश्यक पूर्वौपचारिकताओं के पूरे न होने पर, आत्मसंयम में क्षीणता विद्यमान रहती है, जिससे यौनयोग के साधारण या निम्नस्तर के यौनसम्बन्ध में परिवर्तित होने की संभावना बनी रहती है। फिर भी, किसी भी रूप में मर्यादित यौनयोग, कुछ न कुछ तो लाभदायक है ही। इसमें व्यक्ति खुला हुआ (open minded) व मस्त-मौला होना चाहिए, "वसुधैव कुटुम्बकम्" को व्यावहारिक रूप में चरितार्थ करने वाला; संकीर्ण सोच वाला नहीं। यौनसम्बन्ध में जहाँ आत्मग्लानि का भाव होता है, वहीं यौनयोग में आत्मगौरव का भान होता है। यौनसम्बन्ध में जहाँ अवसाद या मानसिकताहीनता होती है , वहीँ यौनयोग में मानसिकतापूर्णता होती है। यौनसम्बन्ध में जहाँ घृणा का भाव भी विद्यमान होता है, वहीँ यौनयोग में लेशमात्र भी घृणा नहीं होती, अपितु यौनसंबंध से कई गुना अधिक प्रेम विद्यमान होता है। यौनसंबंध में जहाँ एक-दूसरे को नीचा दिखाने का भाव होता है, वहीँ यौनयोग में एक-दूसरे के प्रति आदर का भाव होता है। यौनसंबंध में जहाँ केवल अपनी प्रसन्नता व सुविधा को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है , वहीँ यौनयोग में एक-दूसरे की प्रसन्नता व सुविधा के ऊपर समान रूप से ध्यान दिया जाता है। यौनसंबंध के समय जहाँ साँसारिकता व भ्रम से भटके हुए मन का आश्रय लिया जाता है ; वहीँ यौनयोग के समय गुरु, वेद-पुराणों, शास्त्रों, शविद, देवताओं व कुण्डलिनी आदि के एकाग्रमयी ध्यान से भरे हुए मन का आश्रय लिया जाता है। यौनसंबंध जहाँ नकारात्मक व अज्ञानमयी सोच को बढ़ाता है , वहीँ यौनयोग सकारात्मक व ज्ञानमयी सोच को बढ़ाता है। यौनसंबंध के बाद जहाँ संसार की क्षणिक व भ्रमयुक्त चमक-दमक बढ़ती है, वहीँ यौनयोग के बाद आत्मा की स्थायी व स्थिर चमक बढ़ती है। यौनसंबंध जहाँ बंधन की ओर ले जाता है, वहीँ यौनयोग मुक्ति की ओर ले जाता है। यौनसंबंध जहाँ क्षणिक लाभ प्रदान करता है , वहीँ यौनयोग स्थायी लाभ प्रदान करता है। जहाँ यौनसम्बन्धी से घृणा के कारण लोग उससे दूर हटने लगते हैं , वहीँ यौनयोगी से लोग प्रेम के कारण आकर्षित होने लगते हैं। यौनसंबंध से जहाँ दुर्भाव विशेषतः हिंसकभाव उत्पन्न होते हैं, वहीँ यौनयोग से सद्भाव विशेषतः अहिंसकभाव उत्पन्न होते हैं।

भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक व शारीरिक रूप से, यौनयोग साधारणयौनसम्बन्ध की तरह ही होता है, यद्यपि मानसिक दृष्टिकोण, निर्धारित लक्ष्य तथा शारीरिकक्रियाविधि की भिन्नता के साथ। साधारण यौनसम्बन्ध में सर्वसाधारण जीवों की तरह का लौकिक , आसक्तिमय व द्वैतमय दृष्टिकोण विद्यमान होता है; जबकि यौनयोग में अनासक्तिमय व अद्वैतमय दृष्टिकोण होता है। इसी तरह, साधारण यौनसम्बन्ध में सर्वसाधारण एवं लौकिक लक्ष्य मन में होते हैं, जबकि यौनयोग में कुण्डलिनीजागरण का लक्ष्य मन में होता है। साधारण यौनसम्बन्ध सर्वसाधारण लौकिकविधि से बनाए जाते हैं , जबकि यौनयोग शास्त्रीयविधि व शास्त्रीयमर्यादा के साथ किया जाता है। इसी तरह से , साधारण यौनसंबंध में यौन-ऊर्जा, अनेक प्रकार के विचारों में विभक्त हो जाती है , जबकि यौनयोग में सारी यौन -ऊर्जा एक ही मानसिक कुण्डलिनी-चित्र को प्रज्वलित करती है , जिससे उसके जागृत होने की सम्भावना अत्यधिक बढ़ जाती है।

देहदेश का सबसे बड़ा जलशोधक -यंत्र, इसकी समुद्री सीमा के निकट बना होता है। उसमें अनगिनत प्रकार के विद्युतीय संवेदक (electronic sensors) भी लगे होते हैं, जो देहदेश से आए हुए प्रदूषित जल को भांप कर, देहदेश के हालचाल की जानकारी देते रहते हैं। इनसे सूचनाएँ इकट्ठी की जाती रहती हैं, और उन विशेष अधिकारियों को दी जाती रहती हैं, जिनके कार्यालय निकट में ही बने होते हैं। वे अधिकारीगण उन सूचनाओं के आधार पर, देहदेश की व्यवस्था को बदलने के लिए, विभिन्न प्रकार के आदेश प्रसारित करते रहते हैं। लेखक ने देखा कि एक बार प्राणवायु -संवेदकों (oxygen sensors) ने प्राणवायु की अपर्याप्त मात्रा को अनुभव (notice) किया। प्राणवायु-संवेदकों से वह सूचना सम्बंधित अधिकारियों को प्रेषित की गई। उन्होंने फिर जलविभाग के प्राणवायु-प्रेषकों (oxygen transporters) की संख्या को बढ़वाने के व वर्तमान प्रेषकों की कार्यक्षमता को बढ़वाने के आदेश जारी कर दिए। लेखक ने देखा कि फिर जोर-शोर से नई नियुक्तियों के लिए आवेदन प्रपत्र छपवाए गए। अनेक देहपुरुषों ने आवेदन -प्रपत्र भर कर, नौकरी के लिए आवेदन (apply) कर दिया। बहुत से देहपुरुष नए थे, व उनकी वह पहली नौकरी थी। बहुत से देहपुरुष पुराने समय के व्यवसायी थे, अतः अनुभवी थे, यद्यपि वे कुछ समय से आराम फरमा रहे थे। यह स्वाभाविक था कि पुराने कामगारों की दैनिक -आवश्यकताएँ अधिक थीं, अतः उनका वेतन भी अधिक था। वर्तमान देहपुरुषों को भी नए, पक्के, बड़े, आरामदायक व पीठ में बांधने के लिए अधिक लड़ियों वाले थैले उपलब्ध करवाए गए; जिनमें पहले वाले थैलों से अधिक प्राणवायु भरी जा कर, आराम से ढोई जा सकती। लेखक के देखते ही देखते, प्राणवायु का स्तर सामान्य हो गया और नई नियुक्तियां बंद करवा दी गईं। उस यन्त्र को स्वयं भी बहुत अधिक ऊर्जास्रोत व उसको जलाने के लिए , अत्यधिक मात्रा में प्राणवायु की आवश्यकता पड़ी रहती है। पूरे देहदेश से आए हुए मोटे -२ अपशिष्ट पदार्थों को, पहले बड़ी-२ यांत्रिक चक्कियों (machine-grinders) में पीस कर, बहुत छोटा करना पड़ता है, ताकि वे उसके लघु उपयंत्रों के छनन भाग में फँस कर , उन्हें कोई हानि न पहुंचा पाए। बहुत सी आवश्यक चीजें, जल के साथ बहुत जोर से चिपकी होती हैं, जिन्हें वापिस खींचने के लिए भी बहुत अधिक शक्ति लगानी पड़ती है, ताकि वे बर्बाद होकर समुद्र में न चली जाएं। यन्त्र की दीवारें लगातार घिसती-पिटती रहती हैं, जिनकी मुरम्मत करने के लिए नए माल की आवश्यकता पड़ती रहती है। उस नए माल को तैयार करने के लिए भी देश को बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है।

इसी तरह से, कई बार देहदेश के नैष्ठिक व देशभक्त सैनिक विजातीय पदार्थों का पीछा करते हुए , परिशोधक-यंत्र के अन्दर घुस जाते हैं, जिससे उसमें काम करने वाले कर्मचारियों को खासी परेशानी हो जाती है। इससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ने का भय भी बना रहता है। ऐसे में , यंत्र के अधिकारियों के लिए , इससे सम्बंधित सूचना को , निकटस्थ व सम्बंधित उच्चाधिकारियों के प्रति प्रेषित करना अनिवार्य हो जाता है। वे उच्चाधिकारी फिर उन नैष्ठिक सैनिकों की क्रियाशीलता को घटवाने के लिए मुख्यालय में गुहार लगाते हैं। प्रार्थना के स्वीकृत हो जाने पर , उच्चस्थ पदाधिकारियों के द्वारा उससे सम्बंधित वह आदेश प्रसारित कर दिया जाता है। इससे वे सैनिक कुछ शाँत होकर, वहाँ से वापिस चले जाते हैं। यद्यपि इससे शत्रुओं के अत्युत्साहित होने का खतरा भी बराबर बना रहता है। परिष्करण -यन्त्र में जल का दबाव भी आवश्यकता के अनुसार , घटाना या बढ़ाना पड़ता रहता है। इससे सम्बंधित सूचना भी इसके सूचक -कर्मचारी उन निकटस्थ अधिकारियों को भेजते रहते हैं, जो इससे सम्बंधित आदेश को प्रसारित करते रहते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि जलशोधक-यंत्र में कुछ खराबी आ गई थी। संभवतः यन्त्र में कुछ तेज रसायन घुस गए थे , जो यन्त्र के अंदरूनी, धातु से निर्मित भागों को क्षति पहुंचा रहे थे। या कुछ बड़े -२, सख्त व तीखे टुकड़े जल में बहते हुए आ गए थे, जो यांत्रिक चक्कियों के द्वारा पिसे नहीं जा पा रहे थे। वे घातक पदार्थ फिर छनन -भाग की जालियों में फँस गए थे। उससे वहाँ पर जल -भराव हो गया था। वह हानिकारक जल, आसपास के क्षेत्रों को हानि पहुंचा रहा था। पूरे देहदेश में बाढ़ के जैसी स्थिति बनती जा रही थी। जो थोड़े -बहुत टुकड़े उससे छन कर, यन्त्र के अन्दर घुस गए थे, वे अपने तीखेपन से, नालियों की धातु को कुरेद रहे थे। इससे , दूषितजल वहाँ से रिसकर, यन्त्र के नाजुक भागों में पहुंचकर , उन्हें हानि पहुंचा रहा था। फिर सूचना पा कर, कर्मचारियों के साथ अभियंता (engineers) लोग भी वहाँ पहुँच गए थे। यन्त्र की मुरम्मत बड़े जोर-शोर के साथ

चली हुई थी। वे उसे ठीक करते जा रहे थे, परन्तु नए पहुंचे हुए तीखे टुकड़े फिर से उसे हानि पहुंचाते जा रहे थे। जब मुरम्मतकर्ता -कर्मचारी भी थक-हार कर हताश होने लग गए, तो यन्त्र में काम करने वाले स्थानीय कर्मचारियों के दिल ही टूट गए , और उनमें से कमजोर दिल वाले कुछेक देहपुरुष जोर-२ से चीख-पुकार करने लगे। उसकी सूचना राजा को मिल गई , जिससे वह भी परेशान हो उठा। उसने अपने गुप्तचरविभाग को उस समस्या के बारे में खोजबीन करने के आदेश दिए। उन्हें पता चला कि वह समस्या देहदेश के अन्दर से नहीं, अपितु बाहर से उत्पन्न हो रही थी। जिस बीहड़ क्षेत्र से देहदेश के लिए जल की आपूर्ति की जा रही थी, वहाँ का जल प्रदूषित था। पड़ौसी देहदेश उस क्षेत्र में खतरनाक वस्तुओं को फ़ेंक रहे थे। राजा ने पड़ौसी देशों को मनाने की बहुत कोशिश की, पर वे नहीं माने। तब राजा ने उस क्षेत्र से जल की आपूर्ति बंद करवा कर , एक नए व साफ-सुथरे क्षेत्र से आपूर्ति शुरु करवा दी। धीरे-२ करके वह यंत्र ठीक हो गया। यदि कुछ अधिक देर की गई होती, तो यन्त्र की उतनी अधिक हानि हो गई होती कि वह कभी भी ठीक न हो पाता, और धीरे-२ करके, काम के बोझ से, पूर्णरूप से ख़राब हो जाता। उस हालत में, आपातकाल के लिए रखे गए, एक अन्य यन्त्र से काम चलाना पड़ता। यदि अशुद्ध जल को ही प्रयुक्त किया जाता रहता , तो वह दूसरा यंत्र भी धीरे-२ खराब हो जाता। फिर विदेश से नया यंत्र मंगवाने के सिवाय कोई चारा न बचता। फिर देशभक्त देहपुरुषों के आन्दोलन को शाँत रखने के लिए , सदा के लिए विदेशों के सहारे रहना पड़ता। उससे देहदेश की कार्यक्षमता में कुछ न कुछ क्षीणता तो अवश्य ही बनी रहती।

एक बार लेखक ने देखा कि कुफ़लदेव नाम के एक देश का जलशोधन यंत्र खराब हो गया था। उस समय उस देश की आर्थिक दशा अच्छी नहीं चल रही थी, अतः वह विदेशों से नए व बेशकीमती संयंत्र को खरीदने की सामर्थ्य भी नहीं रखता था। यद्यपि उस समय कुछ देशों ने मिलकर, बीहड़ों में भी एक जलशोधन संयंत्र लगा रखा था। वह संयंत्र गरीब देशों को सीमित शुल्क में जलशोधन की सुविधा प्रदान करता था। फिर कुफ़लदेव ने उस संयंत्र की सेवा लेने का मन बनाया। उसने अपने वहाँ से उस संयंत्र तक बहुत बड़े आकार व छिद्र (bore) की एक नालीरेखा (pipeline) बिछवा दी। जब उसके देश में बहुत सा विषाक्त जल इकट्ठा हो जाता था, तब वह उस जल को संयंत्र की ओर धक्का (pump) करवा देता था। वहाँ वह जल शुद्ध होकर, वहां से पुनः कुफ़लदेव-देश के अन्दर लौट जाता था। उस जल के अन्दर बहुत से पौष्टिक तत्त्व व खनिज होते थे। उस तरह से , उस देश ने बहुत सा समय सुखपूर्वक बिता लिया। परन्तु अपनी चीज तो अपनी ही होती है न। एक बार वह संयंत्र भी ख़राब हो गया, जिससे कुफ़लदेव बहुत बड़ी मुसीबत में पड़ गया। उसके लोग विषाक्त जल के प्रभाव से बीमार हो रहे थे। थक-हार कर उसे किसी दूसरे महाद्वीप में बसे एक अमीर देश तक पाईपलाईन बिछानी पड़ी। यद्यपि उसमें उसका बहुत सा खर्चा आ गया, फिर भी वह, नया संयंत्र लगाने से तो कम ही था।

अन्य व्यक्तियों की संतानों की अपेक्षा अपनी संतानों से जो अत्यधिक प्रेम होता है , वह यौनसंसर्ग के कारण ही तो होता है। यौनसंसर्ग में इतनी अधिक शक्ति होती है कि वह चित्र-विचित्र लोकों व योनियों से आए हुए अपने पुत्रों के प्रति इतना अधिक स्नेह व आकर्षण उत्पन्न कर देता है, बेशक वे पिछले जन्मों में घोर शत्रु ही क्यों न रहे हों। इसी तरह से , यौनसंसर्ग में अदृश्य (अव्यक्त) आत्मा को संतान के रूप में प्रकट करने की शक्ति होती है। यही शक्ति जब अदृश्य कुण्डलिनी को जीवित (जागृत) करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है, तब यह साधारण यौनप्रक्रिया, प्रभावशाली यौनयोग के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसमें यौनसंसर्ग को कुण्डलिनीयोग की तरह करते हुए , कुण्डलिनी का विधिवत ध्यान किया जाता है , जिससे सुप्त कुण्डलिनी सर्वाधिक शीघ्रता से जागृत हो जाती है। तंत्रयोग के इसी सिद्धांत के अनुसार ही , धर्मविवाह के अवसर पर वेदों, देवताओं, गुरुओं, मित्रों व सम्बन्धियों का विधिवत सत्कार व स्मरण किया जाता है, ताकि पूरे जीवनभर आध्यात्मिकता व भौतिकता का उचित स्तर बना रहे। संभवतः प्राचीन भारत में इसीलिए गुरु की व बड़े-बुजुर्गों की रुचि की स्त्री से विवाह किया जाता था, ताकि वह स्त्री तंत्रयोग के माध्यम से, उनके रूप की कुण्डलिनी को पुष्ट किया करती। यौनसंसर्ग के सम्बन्ध से घोर शत्रु भी आपस में परम मित्र बन जाते हैं। इसी वजह से यह प्राचीनकाल से लेकर , राजनीति का एक सर्वश्रेष्ठ हथियार सिद्ध होता आया है। राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक, साँस्कृतिक व अन्य वर्गसम्बंधित स्वार्थों को लक्ष्य में रखकर परस्पर विवाह-सम्बन्ध भी इसी कड़ी का एक हिस्सा है। अपवादस्वरूप, अवैध संबंधों के कारण जो अन्यायपूर्ण हिंसा होती है, वह क्रोध में, बहकावे में आकर, समाज को पाठ पढ़ाने के नाम पर, बलपूर्वक, हृदय के ऊपर पत्थर रखकर व प्रकृति के विरुद्ध जा कर की जाती है। यह सर्वथा अमान्य व निंदनीय कृत्य है , क्योंकि यौनसंसर्ग के प्रभाव से वे हिंसाएँ वीभत्स हो जाती हैं, व उनके परिणामस्वरूप, उनसे उत्पन्न पाप भी कई गुना बढ़ जाता है। सीधी सी बात है कि यौनसंसर्ग के प्रभावक्षेत्र में जो कुछ भी आता है , चाहे वह दैवीय कुण्डलिनी हो या फिर राक्षसी आचार-विचार, उसका प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। यौनसंसर्ग एक सर्वाधिक अद्भुत व रहस्यमयी जीवलीला है, जिस पर संकोचवश व अन्यानेक सामाजिक कारणों से पर्याप्त व निष्पक्ष शोध नहीं हुए हैं। वैसे इसका रहस्य तंत्रशास्त्रों में बखूबी छिपा हुआ है। यौनसंसर्ग को यदि नियमित रूप से किए जाने वाले कुण्डलिनीयोग के साथ होने दिया जाए, व उसे तांत्रिक विधि से किया जाए , तो यह कुण्डलिनी की क्रियाशीलता व उसके जागरण में सर्वाधिक सहयोग करता है। परन्तु यदि यौनसंसर्ग को

कुण्डलिनीयोग के नियमित अभ्यास के बिना व तांत्रिक विधि के बिना किया जाए, तो कुण्डलिनी को नष्ट करने में, सर्वाधिक अहम भूमिका भी यही निभा सकता है।

वास्तव में यौनसंसर्ग के प्रति भूख भी कुण्डलिनीजागरण के प्रति भूख का ही एक रूप है। कोई भी साधारण व्यक्ति यौनसंसर्ग का आश्रय , एक ऐसे आनंदरूपी अनुभव के लिए लेता है, जिसके आगे शेष सभी आनंदमयी अनुभव फीके पड़ जाएं। कुण्डलिनीजागरण भी ऐसा ही एक महान आनंद है, जो यौनसंसर्ग के आनंद से भी कहीं अधिक बड़ा होता है, परन्तु आम आदमी को यौनसंसर्ग ही सबसे बड़ा आनंद लगता है। दोनों ही प्रकार के अनुभवों के बीच में बहुत समानता होती है। वास्तव में , यौनानंद धीरे-२ बढ़ता हुआ, स्वयं ही समाधि-आनंद बनने की ओर अग्रसर होता रहता है , परन्तु अधिकाँशतः ऐसा नहीं हो पाता। इसके मुख्य कारण हैं, तांत्रिक विधि के द्वारा यौनसंसर्ग न करना, कामोन्माद (orgasm) को अधिकाधिक दिनों तक न बना कर रखना, मानसिक समाधि-चित्र का चिन्हित न होना , कुण्डलिनीयोग से नियमित ध्यान न करना, यौनसंसर्ग को यौनयोग (यौनसंसर्ग+कुण्डलिनीयोग) की तरह न करना तथा प्रेमिका (consort) के प्रति, विशेषतः उसके बाहरी रूपाकार के प्रति आसक्ति होना। प्रेमयोगी वज्र को यौनसंसर्ग से भी, उस क्षणिकात्मज्ञान की झलक का हल्का सा प्रभाव महसूस हुआ करता था। उसे यौनानंद व कुण्डलिनीजागरण के आनंद की प्रकृति के बीच में, अपेक्षाकृत रूप से अधिक निकटता अनुभव हुई, यद्यपि आनंद के स्तर में अंतर होना तो स्वाभाविक ही था। यौनसंसर्ग के बाद उसे अपनी कुण्डलिनी की क्रियाशीलता बढ़ी हुई प्रतीत होती थी। उसे कुण्डलिनीजागरण, यौनसंसर्ग का ही एक परिष्कृत, आध्यात्मिक/तांत्रिक, मानवीय व उच्च शक्ति वाला रूपांतरण प्रतीत हुआ था। इसी तरह से, उसे क्षणिकात्मज्ञान के बाद भी अपना रूपांतरण अनुभव हुआ था, व यौनयोग के बाद भी।

अदृश्य/इन्द्रियातीत कुण्डलिनी (देवता,गुरु आदि) के निरंतर ध्यान से साधक की मानसिक शक्ति पूर्णरूप से प्रस्फुटित /क्रियाशील रहती है। इससे कुण्डलिनी वास्तविक/भौतिक प्रतीत होती है। जब कालांतर में किसी वास्तविक प्रेमी से सामना होता है, तब उस प्रेमी का मानसिक चित्र वास्तविक से भी ज्यादा वास्तविक, अर्थात महावास्तविक प्रतीत होता है। इससे शारीरिक मोह से अछूते रहते हुए भी (बिना भौतिक संयोग के ही मानसिक चित्र को धारण करने की आदत तो योगादि से पहले से ही पड़ी होती है), उसके मन में प्रेमी के प्रति महान आकर्षण पैदा हो जाता है, और उसका मन उस मानसिक चित्र में समाधिस्थ हो जाता है। इसीलिए बालपन से ही साधना करने के लिए व साधकों की संगति करने के लिए प्रेरित किया जाता है , ताकि किशोरावस्था के प्रारम्भ में, ऊर्जा का उफान होने पर, जब उस साधक का रोमांटिक आदि प्रकार के वास्तविक प्रेमी से सामना होए , तब वह बिना किसी शारीरिक संपर्क के ही समाधि में स्थित हो जाए, और अपने को पूर्ण कर ले। इससे दोनों ही विपरीत लक्ष्य एकसाथ प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात सामाजिकता भी बनी रहती है, व तंत्रसम्मत साधना का फल भी मिल जाता है। वास्तव में योग-साधना व यौनसंसर्ग, दोनों ही आध्यात्मिक रूप से कुछ समानता साझा करते हैं। योग-साधना यौनसंसर्ग की कमी को अधिकाँशतः पूरा कर देती है, तभी तो बहुत से योगी लोग आजीवन ब्रम्हचारी बन कर रह पाते हैं। वास्तव में लोग समाधि की झलक प्राप्त करने के लिए ही यौनसंसर्ग का आश्रय लेते हैं। हालांकि यह सौदा बहुत महँगा पड़ता है। यदि बालपन से ही योग-साधना की आदत पड़ जाए, तो किशोरावस्था में यौनापराध से बचा जा सकता है। यदि साधनारत बालक, अपनी किशोरावस्था में अप्रत्यक्ष रूप से यौनाकर्षण का अनुभव करता है , तो उसकी प्रतिदिन की साधना एकदम से प्रज्वलित होकर उसे आत्मज्ञान तक ले जाती है। पूर्ववर्णनानुसार, प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो ठीक ऐसा ही हुआ था।

यौनसंसर्ग एवं यौनयोग, दोनों ही बाह्यदृष्टि से समान हैं, क्योंकि दोनों ही आत्मजागरूकता के साथ उत्कृष्ट मानसिकता को उत्पन्न करते हैं , परन्तु साधारण यौनसंसर्ग में यह मानसिकता/आत्मजागरूकता बिखरी हुई, बहुमुखी व बहिर्मुखी होती है; जबकि यौनयोग में यह कुण्डलिनी को महत्त्व देते हुए एकाग्रमुखी व अंतर्मुखी होती है, या केवल कुण्डलिनी तक ही पूर्णतया सीमित कर दी जाती है , जिससे शीघ्र ही कुण्डलिनी जागृत हो जाती है (अभ्यास के समय की स्वप्नवत चित्र की अवस्था से ऊपर उठकर , जागृतावस्था के भौतिक व स्थूल चित्र से भी अधिक व्यक्तरूप में अनुभव हो जाती है)। इसका यह अर्थ भी है कि जो-२ मानवीय वस्तुएँ व जो-जो मानवीय भाव उच्च मानसिकता को उत्पन्न करते हैं, वो-२ सारे ही कुण्डलिनीजागरण में भी सहायक होते हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य बात है कि अमानवीयस्रोतों से उत्पन्न मानसिकता से तमोगुण के साथ द्वैत उत्पन्न हो जाता है, जो कुण्डलिनी को हानि पहुंचाता है। इसका अर्थ है कि कुण्डलिनीयोगी यदि मानवता व मानसिकता से भरे हुए कर्मों -फलों का आश्रय ले, तो शीघ्रता से कुण्डलिनीलाभ प्राप्त करता है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी तो ऐसा ही हुआ। उसे सेवा , संगीत, मित्रता, लेखन, प्रेम, मेल-मिलाप, प्रणयसम्बन्ध, यौनसम्बन्ध आदि लौकिक/मानवीय कृत्यों से जो भी मानसिकता प्राप्त हुई, उसका प्रयोग उसने कुण्डलिनीयोग के माध्यम से कुण्डलिनी को उठाने के लिए किया। ऐसा वह तभी कर पाया, जब उपरोक्त लौकिककृत्यों को करते हुए, उसने देहपुरुष के द्वारा अपनाई जाने वाली द्वैताद्वैतनिष्ठा को अपनाकर, अपनी कुण्डलिनी को जीवित रखा। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति अपने मन में कुण्डलिनी को जीवित रखे बिना उच्च मानसिकता को बना कर रखता

है, तो इससे स्वाभाविक प्रतीत होता है कि उससे कुण्डलिनी पुष्ट नहीं होती , अपितु आत्मविभ्रम में ही वृद्धि होती है। लगता है , इसी मानसिक कुण्डलिनी को जीवित रखने के लिए ही सभी धर्मों में नियमित साधना के ऊपर विशेष बल दिया गया है। साधना व्यक्तिगत भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, बहुत समय तक प्रेमयोगी वज्र को पृथक रूप से धार्मिक साधना करने का समय नहीं मिला , परन्तु जो वह शविद का निर्माण कर रहा था, वही उसकी साधना बन गई, क्योंकि उसके द्वैताद्वैत के प्रभाव से उसकी कुण्डलिनी उसके मन में लगभग निरंतर ही विद्यमान रहती थी। इससे सिद्ध होता है कि जिस प्रकार अद्वैत को पुष्ट करने से कुण्डलिनी स्वयं ही पुष्ट हो जाती है, उसी प्रकार कुण्डलिनी को पुष्ट करने से अद्वैत स्वयं ही पुष्ट हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक कुण्डलिनी बसी होती है , क्योंकि सभी को मानसिक आनंद के लिए एक विश्वसनीय व बलवान स्रोत की आवश्यकता होती है, जो कि भौतिकन्यूनता व द्वैताद्वैतनिष्ठा के समय काम आए, परन्तु बहुत कम लोग ही अपनी उस कुण्डलिनी को महत्त्व देते हैं, या उसे पहचानते हैं। संभवतः वही कुण्डलिनी अनेक प्रकार की भौतिक लाचारियों, जैसे कि बुढ़ापे, बीमारी, कमजोरी, समाजबहिष्कृति आदि अवस्थाओं में व्यक्ति को आश्रय प्रदान करती है। वही कुण्डलिनी व्यक्ति को देहावसान के बाद, तब तक सहारा देती है, जब तक उसे कोई निर्धारित भौतिकशरीर या फिर मोक्ष नहीं मिल जाता।

शविद व वेदों-पुराणों के पीछे भी कुण्डलिनीसिद्धांत ही काम करता है, क्योंकि उनमें वर्णित देहपुरुषों व देवताओं की अराधना करते समय, मन की कुण्डलिनी उनके ऊपर आरोपित हो जाती है (क्योंकि इन्द्रियातीत देवताओं को इन्द्रियातीत/मानसिक कुण्डलिनी का स्वरूप स्वयमेव मिल जाता है), और वह पुष्ट हो जाती है। हिंदुदर्शन में अधिकाँश स्थानों पर जो लिखा है कि इन्द्रियों के बहकावे में न आओ , मोहमाया के बहकावे में न आओ, त्याग करो, सादगी से बर्ताव करो आदि-२; वह सब कुछ कुण्डलिनीजागरण की ओर ही इशारा करता है। वास्तव में कुण्डलिनीजागरण के बाद उपरोक्त जैसे सभी गुण स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह, देवता को या गुरु को जीवन का आधार इसीलिए माना जाता है, क्योंकि वही तो मन में विकसित होकर, कुण्डलिनी बन जाते हैं, जो जीवन का सर्वश्रेष्ठ आधार है। पुस्तक में यह सिद्ध भी हो गया है कि व्यायाम का , कर्म का व यौनता का आधार कुण्डलिनी ही है। जीवन वास्तव में व्यायाम, कर्म व यौनता ही से तो बना है। वास्तव में, गुरु या देव के रूप वाली कुण्डलिनी को मन में धारण करके रखना ही शिष्ट समाज में स्वीकार्य होता है, यौनप्रेमी के रूप वाली कुण्डलिनी को रखना नहीं। यौनप्रेमी की कुण्डलिनी को धारण करना व्यभिचार की श्रेणी में माना जाता है।

वैसे तो प्रेमयोगी वज्र का, अपनी द्वितीय कुण्डलिनी के भौतिक रूप के साथ सम्बन्ध, उसके अपने जन्म से लेकर था, व शविद के सहयोग से, वह कुण्डलिनीरूपी मानसिक चित्र उसके मन में लगभग पूर्वोक्त २० वर्षों से लेकर, बीच-२ में कौंध जाया करता था। शविदनिर्माण के प्रारम्भ में, एकबार प्रेमयोगी वज्र भी परमात्मा की दिव्य करुणा के कारण, यौनापराध से बाल-२ बच गया था, क्योंकि उस समय उसमें आत्मज्ञान का तनिक प्रभाव भी शेष था। उसे उस समय कुण्डलिनीयोग व यौनसंसर्गयोग, दोनों का किसी भी प्रकार से ज्ञान नहीं था, फिर भी वह अज्ञात प्रेरणा से, अप्रत्यक्ष रूप से (अनजाने में ही) यौनसंसर्गयोग के बहकावे में आ गया था। अतः साधारण मामलों में यह योग योग्य गुरु व उचित विधि के मार्गदर्शन में ही दुष्प्रभाव से रहित हो सकता है। इसका ज्ञान केवल तीव्र जिज्ञासु व सुपात्र पुरुष को ही देना चाहिए। इससे अनभिज्ञ लोगों के साथ तो यौनसंसर्गयोग से सम्बंधित हंसी-ठिठोली भी नहीं करनी चाहिए , क्योंकि वे लोग इसका विपरीत अर्थ निकाल सकते हैं , व इस विद्या का दुरुपयोग कर सकते हैं। अधिकाँश लोगों को यह भ्रम होता है कि तांत्रिक यौनयोग से साँसारिक कार्य दुष्प्रभावित होते हैं। उन्हें यह भ्रम इसलिए होता है , क्योंकि वे यौनयोग की तुलना साधारण यौनसम्बन्ध से करने लगते हैं। वास्तव में, इन दोनों के बीच में आकाश-पाताल का अंतर है। वे यौनयोगी की तुलना एक साधारण संन्यासयोगी से भी करने लगते हैं, क्योंकि वे दोनों बाहर से एक जैसे दिखाई देते हैं, यद्यपि अन्दर से तंत्रयोगी/यौनयोगी हरफनमौला (all-rounder) होते हैं। वास्तव में यौनयोग एक प्रचंड ऊर्जा है। यह ऊर्जा आध्यात्मिक व आधिभौतिक, दोनों क्षेत्रों की प्रगति में अप्रतिम सहायता करती है। यह सत्य प्रतीत होता है कि पूर्णरूप से यौनसंतुष्टि भी यौनसंसर्गयोग से ही संभव है। इसी संतुष्टि की कमी से ही , अधिकाँश मामलों में दाम्पत्य जीवन में कटुता आती है। प्रेमयोगी वज्र को भी इस योग से, इस प्रकार की कटुता के क्षीण होने का आभास हुआ था।

ऐसा प्रतीत होता है कि तंत्र में सन्निहित शक्ति ही तंत्र के अपने सामाजिक पतन का कारण बनी। तांत्रिकों में कुण्डलिनी व आत्मज्ञान का दिव्य तेज होता था, जिससे उनके द्वारा कही गई व हृदय से सोची गई अधिकाँश बातें सत्य सिद्ध हो जाया करती थीं। इसीलिए ऊटपटांग (उत्पथगामी) किस्म के लोग उनसे डरते थे। वे सीधे तौर पर तांत्रिकों का सामना नहीं कर पाए, इसीलिए उन्होंने षडयंत्र रच कर, तांत्रिकों व तंत्रविद्या को अधिकतर समाजों में बदनाम व लगभग बहिष्कृत सा ही करवा दिया। तांत्रिकों में अद्वैतभाव होता है , जिससे उनकी मानसिक शक्ति बर्बाद होने से बची रहती है। उस

संचित मानसिक शक्ति के तेज के कारण ही, उनकी दृष्टि बहुत तीखी व प्रभावशाली होती है। वह दृष्टि बुरे लोगों की बुराई को जला देती है , जिसे स्वभाव से बुरे लोग, अपने झूठे अहंकार के कारण सहन नहीं कर पाते। इसलिए वे अपने को दोष न देते हुए, तांत्रिकों को दोष देने लग जाते हैं।

कुण्डलिनीयोग आत्मज्ञान उत्पन्न करने वाली एक मैकेनिकल मशीन (mechanical machine) की तरह ही है। इसलिए मनुष्य को अपने प्रेम आदि मानवीय गुणों (प्राकृतिक आत्मज्ञान-कारक) को सावधानी से संभाल कर रखना पड़ता है, क्योंकि कुण्डलिनीयोग की चकाचौंध में आकर वह मानवीय भावों की उपेक्षा कर सकता है। वैसे तो मानवीय भावों के साथ कुण्डलिनीयोग , और अधिक प्रभावकारी होता ही है। आजकल तो कुण्डलिनीयोग का अभ्यास इंटरनेट (internet), ई-बुक रीडर (e-book reader) व क्वोरा (quora) जैसी शिक्षा-वेबसाईटों (education websites) की सहायता से भी सरलता से किया जा सकता है, क्योंकि सारा ज्ञान आजकल गूढ़ता के बंधन से मुक्त हो गया है।

कई शत्रु बड़े चालाक व कपटी होते हैं। उन्हें पता होता है कि देहदेश की राजधानी को अधिगृहीत करके , वे सर्वाधिक शीघ्रता से देहदेश को अपना गुलाम बना सकते हैं। इसलिए वे छल-कपट से, सीधे ही राजधानी में प्रविष्ट होना चाहते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि कुछ शत्रु , उनकी अपनी बिरादरी के द्वारा गुलाम बनाए गए देहदेश के व्यापारियों के बीच में घुस कर , उनके कारवाँ के साथ ही, एक नए देहदेश के अन्दर प्रविष्ट हो गए थे। व्यापारी तो अपना माल बेच कर, अपने देश को वापिस लौट गए थे, परन्तु वे शत्रु, आक्रमण की योजना बनाते हुए, वहीँ रुक गए। फिर एक गूढ़ योजना के तहत, वे शत्रु, डाक-विभाग के कर्मचारियों के बीच में अपनी पहचान छिपा कर प्रविष्ट हो गए। डाक -विभाग में सुरक्षा-व्यवस्था का ज्यादा इंतजाम नहीं होता, क्योंकि उग्रपंथियों को उसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं होती। उसके पास न तो मुद्रा होती है , न उन्नत प्रकार के साधन और न ही हड़पे जाने योग्य महंगे साजो-सामान। उस विभाग के लोग तो साधारण प्रकार के होते हैं, जो साधारण जीवन जीने के आदी होते हैं। वे किसी की भी रोक-टोक के बिना, चिट्ठी-पत्रियों को यहाँ से वहाँ पहुंचाते रहते हैं। सुरक्षा एजेंसियां भी उनसे ज्यादा पूछताछ नहीं करती हैं , ताकि वे तनावरहित व सम्मानपूर्वक ढंग से जी पाएं। वास्तव में, अपने-२ संदेशों के साथ सभी लोगों की भावनाएं जुड़ी हुई होती हैं, और उन भावनाओं के साथ डाक-विभाग के कर्मचारी जुड़े होते हैं। इसलिए समस्त देशवासी चाहते हैं कि वे कर्मचारी प्रसन्न व बेखौफ होकर घूमते रहें , और लोगों के संदेशों को प्रसन्नता का तड़का लगाते हुए, फिर उन्हें लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए , लोगों को भी प्रसन्न करते रहें। फिर वे शत्रु , डाक-विभाग के कर्मचारी बन कर, हाथ में चिट्ठियों के थैले पकड़ कर, राजधानी की ओर बढ़ने लगे। कुछ शंकालु व सतर्क सुरक्षाकर्मी जब उनको बंदी बना कर , उनसे पूछताछ करने लगे, तब उन शत्रुओं ने आसपास में स्थित लोगों का भावनात्मक शोषण (emotional blackmail) करके, उनकी सहानुभूतियाँ बटोर लीं। उस भावना से प्रेरित होकर, लोगों ने देशभक्त सुरक्षाकर्मियों को ही पीट -२ कर मार डाला। अपने बचाव के लिए क्रोध में आकर , सुरक्षाकर्मियों ने भी बहुत से लोगों पर गोलियां चला दीं। कई मानवाधिकार-एजेंसियों ने उन देशभक्त सैनिकों के ऊपर हिंसा व देशद्रोह का झूठा मुकद्दमा चलवाकर , उन्हें राजदंड दिलवा दिया। वे मूर्ख देशवासी आपस में लड़ते रहे , और उधर शत्रु, मौके का फायदा उठाते हुए , राजधानी में पहुँच गए। वहाँ पर पहुँच कर उन्होंने अपना असली रूप दिखाना शुरु कर दिया, और जमकर तबाही मचाई। उन्हें पता था कि देहदेश के नष्ट होने के साथ ही, वे भी मारे जाएंगे। अतः देश के नाश से बहुत पहले ही, उन्होंने अपने सभी शत्रु-साथियों को, दूसरे देशों पर आक्रमण करने के लिए भेजना शुरु कर दिया। वे दुष्ट शत्रु भी उसी डाक -विभाग वाले मार्ग से होते हुए , डाक-विभाग के कर्मचारियों की सी वेशभूषा बना कर , उनके साथ ही राजधानी से वापिस लौट आए। जब नैष्ठिक कर्मचारी उनके ऊपर संदेह प्रकट करने लगते थे, तब वे दुष्ट, उन भोले-भाले कर्मचारियों को बहला-फुसला कर भ्रमित कर देते थे, जिससे वे उनकी सूचना पुलिस-विभाग को नहीं दे पाते थे। वे उन कर्मचारियों को मृत्यु का भय दिखा कर, उन्हें खूब खिला-पिला कर व उनको खूब सारी रिश्वत देकर, उन्हें अपने वश में कर लेते थे। फिर वे शत्रु, बंदरगाह के निकट स्थित, व्यापारियों की टोलियों के बीच में घुस कर, उनके साथ घुल-मिल गए। जब वे व्यापारी व्यापार के सिलसिले में, अपने समुद्री जहाज में बैठ कर, विदेश की ओर रवाना हुए, तब वे शत्रु भी उनके साथ विदेश पहुँच गए। व्यापारी लोग तो अपना काम निपटा कर, अपने माल के साथ, अपने मूल निवासदेश को वापिस लौट आए, परन्तु वे शत्रु वहीँ ठहरे रहे, और उस नए देश पर हमले की योजना बनाने लगे। वे भी अपने पूर्वजों की तरह ही , डाक-विभाग के बीच में घुल-मिल गए, और उन्हीं की तरह, आगे की कार्यवाही करते गए। इस तरह से , वह सिलसिला समान रूप से चलता रहा, और शत्रुओं ने बहुत से देशों को नष्ट कर दिया। डर के मारे , बहुत से राजाओं ने, अंतर्राष्ट्रीय सम्मलेन में यह मुद्दा प्रमुखता से उठाया। कुछ राजाओं को चुन कर, एक कमेटी (committee) बनवाई गई, जिसको उस समस्या का हल ढूँढने की जिम्मेदारी दी गई। कमेटी ने बुद्धिजीवियों की बहुत सी बैठकें (meetings) बुलवाईं। अंतिम निष्कर्ष के अनुसार, देहदेश के द्वारा, उन खुंखार शत्रुओं से आक्रमित होने से पहले ही, उन शत्रुओं की उस बिरादरी के कुछेक शत्रुओं को , जो अपने राक्षसराज की पक्षपातपूर्ण नीतियों से संतुष्ट नहीं थी , बहलाना-फुसलाना शुरु कर दिया गया। उनका खूब सेवा-सत्कार किया गया। उससे वे शाँत हो गए , व देहदेशों के मित्र बन गए। फिर उन्हें भिन्न -२ राजाओं के द्वारा अपने-२ देशों के

अन्दर रहने के लिए आमंत्रित किया गया, जिससे वे उन देशों में ही प्रसन्नतापूर्वक/सुखपूर्वक निवास करते हुए, वहाँ के ही स्थायी निवासी बन गए। उन विभीषणों ने अपने राजा रावण की सारी युद्धनीति रामावतार देहपुरुषों को सिखा दी। जब उन आततायी राक्षसों ने उन देहदेशों पर आक्रमण किया , तब उन देवमित्रों की सहायता से पहले से ही उनकी युद्धनीति का अभ्यास कर रहे देवताओं ने उन्हें आसानी से व शीघ्र ही नष्ट कर दिया। वे भेदी - राक्षस लम्बे समय तक देहदेशों को अपनी सेवा देते रहे। जब वे वृद्ध होकर मर गए, तब देहदेशों ने दूसरे भेदी-शत्रुओं को ढूँढना प्रारम्भ कर दिया था।

यौनयोग से कुछ थकान भी विद्यमान रहती है। इस कारण से , कुण्डलिनीजागरण की अनुभूति/झलक, संभवतः कुछ क्षणों से अधिक समय तक सहन नहीं की जा सकती। पूर्णजागरण को अनुभव करने हेतु शरीर-मन की पूर्ण कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिए, संतुलित जीवन व संतुलित भोजन के साथ, संभवतः कुछ गुणवत्तापूर्ण माँसाहार की आवश्यकता भी पड़ती है। ऐसे सभी पंचमकारों से वह जीवन पद्धति (lifestyle) लगभग पूर्णतांत्रिक जीवन-पद्धति बन जाती है। यद्यपि यह पद्धति कठिन है, और संभवतः योग्य गुरु के बिना, गंभीर परिणामों वाली भी हो सकती है। बिना खतरे की व पूर्णजागरण की पद्धति तो केवलमात्र संन्यासयोगियों वाली , साधारण कुण्डलिनीयोग की पद्धति ही प्रतीत होती है। परन्तु इसमें तुरंत सफलता के लिए, संसार का त्याग करना ही पड़ता है। यद्यपि किंचित त्याग तो यौनयोग की सफलता के लिए भी करना पड़ता है। इसी तरह से , यौनपद्धति से, आत्मज्ञान की भी, संभवतः कुछ क्षणों की ही झलक अनुभव होती है, जैसी कि प्रेमयोगी वज्र को हुई थी। संभवतः पूर्णात्मज्ञान तो संन्यास व साधना के मिश्रित प्रयास से ही मिलता है। क्षणिकात्मज्ञान के बाद, प्रेमयोगी वज्र को कोई दिव्य प्रेरणात्मक शक्ति, संन्यासयोग की ओर लगातार धकेल रही थी, परन्तु अंततः उसने संसार के प्रतिरोध के आगे झुकते हुए , उसको लगातार अनसुना कर दिया। कोई राह न दिखने पर, उसे साँसारिक मार्ग को ही अपनाना पड़ा, यद्यपि तांत्रिक जीवन-पद्धति के साथ। इसे कर्मयोग का मार्ग या बौद्धों का मध्यमार्ग भी कह सकते हैं। इसी मार्ग की सफलता से प्रेरित होकर ही, उसने शरीरविज्ञान दर्शन की रचना की।

देहदेश के यातायातविभाग का अति विशाल मुख्यालय भी एक आश्चर्य की मूरत ही होता है। वह दिन-रात, बिना रुके-बिना थके काम करता रहता है। यह इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि प्राणवायु से भरे हुए टैंकर (tankers) भी यातायातविभाग की सड़कों पर ही दौड़ाए जाते रहते हैं। साँस लेने की आवश्यकता तो देहपुरुषों में भी स्थूल पुरुषों की तरह ही प्रतिक्षण बनी रहती है। फिर देहदेश में प्राणवायु को भंडारित करके रखने की भी समुचित व्यवस्था नहीं होती। उस मुख्यालय में अनगिनत कर्मचारी काम करते रहते हैं। वह विशाल मुख्यालय छोटे-२ हिस्सों को मिलाकर बना होता है। एक बार लेखक ने देखा कि उस मुख्यालय के एक हिस्से को ईंधन व प्राणवायु की आपूर्ति करने वाली सड़क अवरुद्ध हो गई थी। उससे वह हिस्सा ईंधन व प्राणवायु की कमी के कारण, अजीबोगरीब ढंग से काम करने लगा। वह देहदेश के लिए विभिन्न प्रकार की, माल से लदी हुई गाड़ियों का आवागमन ठीक ढंग से नहीं करवा पा रहा था, जैसे कि कई बार गाड़ियों को अड्डे पर ही बहुत समय तक ठहराते हुए, उन्हें जाने की अनुमति नहीं देता था, तो कई बार बहुत सारी गाड़ियों को एक साथ ही हरी झंडी दिखा देता था। उससे मुख्यालय के अन्य भाग, उस भाग की कमियों को पूरा करते हुए, उसके काम को संभाल रहे थे। उससे पूरा मुख्यालय ही अजीब ढंग से काम करने लगा। संभवतः काम का बोझ बढ़ गया था, या उस मुख्यालय के कर्मचारी मृत्यदंड के भय से घबरा गए थे, जिससे वे उसे उचित विधि से नियंत्रित नहीं कर पा रहे थे। उन्हें यह पता नहीं था कि मुख्यालय के एक भाग को , पीछे से ही ईंधन की आपूर्ति बाधित हो गई थी, जिससे वे उसकी खराबी के लिए अपने को ही दोषी मान रहे थे। वैसी सूचना मिलते ही , राजा ने पड़ौसी देशों की सहायता से, उस प्रभावित क्षेत्र में विशेष संदेशवाहकों को भेजा, जिन्होंने उन कर्मचारियों को वस्तुस्थिति से अवगत करवा के शाँत व नियंत्रित कर दिया। यद्यपि ईंधन की कमी से जूझता हुआ हिस्सा खराब हो गया था , क्योंकि उस हिस्से की मशीनों व उन्हें संभाल रहे कर्मचारियों ने , अपना काम करना बंद ही नहीं किया। उसका कारण था, उस मुख्यालय की मशीनों के सोफ्टवेयर (software) में, किसी भी हालत में, न रुकने का सूक्ष्म आदेश (programming code) भरा होना। उस हिस्से में काम करने वाले अधिकाँश कर्मचारी भी परलोक चले गए थे, क्योंकि उन्हें साँस लेने के लिए पर्याप्त प्राणवायु नहीं मिल पाई थी। देहदेश की व्यवस्था एक बहुत बड़े जोखिम से बच गई थी, यद्यपि यातायात-मुख्यालय (केन्द्रीय राजधानी से दूर/क्षेत्रीय, यद्यपि पूरे देश को समाहित करने वाला) के एक हिस्से के नाकाम होने से, उसमें क्षीणता तो आ ही गई थी। कई बार राजा चुस्ती दिखाते हुए, तुरंत ही उस बाधित सड़क को खुलवा देता है, जिससे मुख्यालय का वह भाग नष्ट होने से बच जाता है। वैसे तो धीरे-२ वहाँ के लिए नई सड़कें बना दी जाती हैं, परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। देहदेश के बाकी के क्षेत्र तो इधर -उधर से उधार मांग कर या बाधित मार्ग से आने वाली थोड़ी -बहुत प्राणवायु से भी गुजारा चला लेते हैं, जब तक नई सड़कें बन कर तैयार नहीं हो जातीं। परन्तु उस मुख्यालय के हिस्से अत्यधिक क्रियाशील होते हैं। अतः छोटी-मोटी आपूर्ति से उनका गुजारा ही नहीं चलता। वहाँ के कर्मचारी भाग कर भी अपनी जान नहीं बचाते , क्योंकि वहाँ पर विशेष जांबाजों को ही नियुक्त किया जाता है, जो अंत तक अपना काम नहीं छोड़ते। कई बार तो पीछे के मुख्य राजमार्ग ही बाधित हो जाते हैं। इससे पूरा मुख्यालय ही

दुष्प्रभावित हो जाता है। ऐसी हालत में यदि राजा तुरंत कार्यवाही करके, मलबे आदि अवरोध को नहीं हटाता है, तब मुख्यालय के अधिकाँश भूभाग चपेट में आ जाते हैं। उस समय देहदेशनिवासियों की समझ में ही नहीं आता कि हवा का बहना बंद क्यों हो गया है। कई धार्मिक लोग सोचते हैं कि वायुदेव किसी कारणवश अप्रसन्न हो गए हैं, और वे उन्हें मनाने के लिए अनेक प्रकार के जप-तप, यज्ञ-यागादि करना प्रारम्भ कर देते हैं। मुख्यालय के कर्मचारी व आसपास के लोग, जोर-२ से चिल्ला-२ कर राजा को सूचित करने लगते हैं। राजा भी उनकी दुर्दशा देख कर परेशान हो उठता है, और कई बार तो स्वयं भी चिल्लाने लगता है। पड़ौसी राजा इकट्ठे होकर उसकी भरपूर सहायता करते हैं। उस मुख्यालय का भूभाग अत्यंत दुर्गम व संवेदनशील स्थान पर स्थित होता है। वह अनेक प्रकार के नाजुक कलपुर्जों से भरा हुआ होता है। इसलिए इतनी शीघ्रता से , उसकी सड़कों से मलबे को हटाना , अधिकाँशतः संभव नहीं हो पाता। कई बार सफलता मिल भी जाती है। यदि मुख्यालय के पूरी तरह से ठप होने से पहले ही मुख्यालय को बदल दिया जाए, तो पुराने समय की, लगभग पूरी कार्यक्षमता वापिस मिल जाती है। परन्तु यह काम देहदेश के सबसे कठिन माने जाने वाले कामों में से एक होता है। उतने विशाल मुख्यालय को आपातकाल के लिए, अतिरिक्त रूप में रखना भी संभव नहीं है, क्योंकि पूरे देहदेश में उतना बड़ा अतिरिक्त भूभाग ही उपलब्ध नहीं होता, और न ही उतने अधिक महंगे व जटिल संरचना-जाल को बनाने के लिए, और फिर उसे संभाल कर रखने के लिए, पर्याप्त संसाधन ही होते हैं। अतः आपातकाल के समय , आवश्यकता पड़ने पर, उस मुख्यालय का सारा साजो-सामान, वैसे किसी दूसरे देश से मंगाना पड़ता है , जो विघटित हो रहा हो, इसलिए उसे उस मुख्यालय की, भविष्य के लिए आवश्यकता न हो। अत्यधिक विस्तीर्ण व जोखिम भरे उस साजो -सामान के भण्डार को ढोना व फिट (fit) करना भी अत्यंत कठिन होता है। पुराने मुख्यालय से मशीनों को खोल कर , नई मशीनों को एकदम से उनकी जगह में जोड़ना पड़ता है। यदि उसमें कुछ अड़चन आ जाए , तो देहदेश में प्राणवायु का संकट उत्पन्न हो जाता है। मुख्यालय के आकार -प्रकार आदि की भी उचित जांच व पैमाईश करनी पड़ती है।

साधना के लिए आभासिक संन्यास (त्याग) से भी काम चल पड़ता है। उदाहरणतः, प्रेमयोगी वज्र ने कुछ अकेलापन महसूस होने पर, धरती के दूसरे कोने के लोगों के साथ, इन्टरनेट (internet) पर कुण्डलिनीयोगचर्चा का सम्बन्ध बना कर रखा। उससे उसे आभासिक त्याग का फल भी मिला , और उसका कुण्डलिनीयोग से सम्बंधित ज्ञान भी बढ़ा। उससे वह त्याग जैसी साँसारिकता में व्यस्त था , क्योंकि इंटरनेट पर पूर्णापरिचितों के साथ अपूर्णसंपर्क से, त्याग जैसा फल प्राप्त होता है। साथ में, उससे रात और दिन भी इकट्ठे हो गए थे, जो ज्ञान का मुख्य चिन्ह है। वास्तव में, जब धरती के एक कोने में दिन होता है, तो दूसरे कोने में रात होती है।

फिर लेखक के देखते ही राजा ने राजमार्ग के अवरुद्ध होने का कारण जानने के लिए , जांच-पड़ताल शुरु करवा दी। बहुत खोजबीन के बाद पता चला कि राजमार्ग पर क्षमता से अधिक माल लादे हुए, भारी गाड़ियां पलायन कर रही थीं। वास्तव में वह अतिरिक्त माल राजमार्ग पर, बहुत समय पहले से ही लगातार गिरता जा रहा था, और उससे चिपकता जा रहा था, क्योंकि उसमें चिपचिपाहट अधिक थी। साथ में, गोंद, फैवीकोल आदि जैसे चिपकू पदार्थों के बड़े-२ ड्रम (drums), सामान के अधिक वजन/फैलाव व गाड़ी के झटकों के कारण खुल जाते थे, और उनमें रखा हुआ पदार्थ सारे सामान के साथ मिश्रित हो जाता था। धीरे-२ जमता हुआ वह माल, इतना ऊंचा उठ गया कि उसने मार्ग को अवरुद्ध ही कर दिया। राजा ने किसानों से उसका कारण पूछा। किसान-संगठन (farmers' union) के अध्यक्ष (president) ने जवाबी पत्र में किसानों को निर्दोष बताया। उसने कहा कि विदेशों से भारी मात्रा में कच्चा माल आयातित किया जा रहा था। उस आयातित माल में गोंद , फेवीकोल आदि जोड़ों को भरने वाले पदार्थ, आवश्यकता से अधिक मात्रा में थे। उन्होंने तो केवलमात्र कच्चे माल के दुरुपयोग को रोकते हुए, उसे तैयार माल में ही पूरी तरह से समाहित कर दिया था, क्योंकि वह कच्चा माल बहुमूल्य मुद्रा देकर खरीदा जाता था। राजा किसानों की देशभक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें बहुत से ईनाम /पारितोषिक देकर, भविष्य में भी उन्हें वैसा ही निष्ठापूर्ण कर्म करते रहने के लिए प्रोत्साहित किया। राजा को फिर अपने विदेशमंत्री की लापरवाही व उसके लालच का पता चला। वह वास्तव में बड़े अधिकारियों के साथ मिलकर कमीशनखोरी कर रहा था, और कमीशन के लालच में, आवश्यकता से अधिक कच्चे माल का आयात करवा रहा था। राजा ने मंत्री को बहुत लताड़ लगाई। राजा को भी दुःख हुआ , क्योंकि वह मंत्री से बहुत प्रेम करता था, और उसके ऊपर बहुत अधिक विश्वास भी करता था। राजा ने भविष्य के लिए, अधिक माल के आयात पर, विशेषतः जोड़ों को भरने वाले चिपचिपे पदार्थों के आयात पर रोक लगवा दी। राजा ने खाद्य एवं आपूर्ति विभाग तथा, वस्तु-आपूर्ति विभाग को, सभी प्रकार की वस्तुओं के मूल्य घटाने के निर्देश दिए। उससे उपभोक्तावाद बढ़ गया, जिससे लोग अधिक से अधिक माल खरीद कर, उनका उपभोग करने लग गए। उस बढ़े हुए उपभोग से उनकी क्रियाशीलता भी बढ़ गई , जिससे नए-२ निर्माण शुरु हो गए, नए-२ खेलों का विकास हुआ, खेतों में अन्न की पैदावार बढ़ गई व वस्तु-सेवा के आदान-प्रदान की गति भी बढ़ गई। उससे माल की मांग और भी अधिक बढ़ गई। माल की मांग बढ़ने से, राजमार्गों पर गिरे हुए सामान को आसपास के लोग, अपने प्रयोग के लिए तुरंत उठा

लेते थे। कर्मचारी भी मुनाफे के लालच में आकर, उस माल को उठा लेते थे, और औने-पौने दामों पर बेच देते थे। वैसे भी उस माल को उठाना तब थोड़ा आसान हो गया था, क्योंकि फिर वह राजमार्गों व लोगों के कपड़ों से , पहले की तरह अधिक नहीं चिपक पा रहा था। इस तरह से देहदेश की अर्थव्यवस्था सुधर गई थी, और समस्या का समुचित समाधान भी हो गया था।

कुण्डलिनीजागरण तो केवल अप्रत्यक्षरूप से ही आत्मज्ञान करवाता है। आत्मज्ञान का एकमात्र व प्रत्यक्ष कारण तो केवल एकाग्रध्यान ही है। यदि कुण्डलिनीजागरण के बिना ही, योगसाधना आदि से या यौनाकर्षण से या अन्य किसी भी कारण से , लम्बे समय तक एकाग्रध्यान होता रहे, तब भी आत्मज्ञान संभव है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ अप्रत्यक्षतंत्र के समय हुआ था। कुण्डलिनीजागरण तो केवल एकाग्रध्यान बनाए रखने में सहायता ही करता है, क्योंकि जागरण के समय अनुभूत की गई कोटिसूर्यमयी कुण्डलिनी , व्यक्ति को बार-२ अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। यदि कुण्डलिनीजागरण के बाद भी एकाग्रध्यान निरंतर न बना रह पाए, तो उस कुण्डलिनीजागरण का कोई विशेष महत्त्व प्रतीत नहीं होता। इसीलिए संभवतः कुण्डलिनीजागरण को अनुभव कर लेने के बाद , योगी को शाँत, तनावरहित, कर्मलोभमुक्त, युक्तियुक्त व अद्वैतपूर्ण जीवन जीने का परामर्श दिया जाता है, ताकि कुण्डलिनी के ऊपर निरंतर रूप से एकाग्रध्यान बना रह सके। विभिन्न धर्मों में , विशेषतः सनातन धर्म में, एकाग्रध्यान के महत्त्व का वर्णन प्रत्येक स्थान पर दृष्टिगत होता है। इसी एकाग्रध्यान से ही अद्वैत भी पुष्ट होता है, जो मुक्ति के लिए अत्यावश्यक है।

देहदेश में भी, स्थूलदेश की तरह ही, कार्यालयों में अवकाश होते रहते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि रविवार को छुट्टी का दिन था। देहपुरुषों को पूरे सप्ताह की थकान को मिटाने का अच्छा अवसर मिला था। मौसम बहुत खुशगवार था। बसंत की मध्यम गति की ठंडी -२ हवा चल रही थी। चारों ओर फूल ही फूल खिले हुए थे। आकाश साफ था, और गुनगुनी धुप चारों ओर बिखरी हुई थी। इतने सुन्दर मौसम को देखते हुए, कुछ व्यापारी देहपुरुष भी भ्रमणोत्सव (picnic) मनाने का मन बना चुके थे। वे समुद्रतट की ओर निकल पड़े। वहाँ पर उन्होंने बहुत समय तक, समुद्र की लहरों के साथ खेलते हुए, जी भर कर स्नान किया। कुछ भूख व ठंडक महसूस होने पर वे बाहर निकले, और भोजन करने के लिए बैठ गए। फिर उस रेतीले तट पर लेट कर, गुनगुनी धुप सेंकते हुए कुछ सुस्ताने लगे। उन्हें शीघ्र ही नींद आ गई, और वे देर शाम तक सोते ही रहे। नींद खुलते ही वे अपनी -२ गाड़ियों में सवार होकर, घर को लौट गए। घर पहुँच कर उन्होंने अपने रेफ्रीजरेटरों (refrigerators) से, सुबह का बना कर रखा हुआ भोजन निकाल कर खाया, और फिर वे सो गए। वे देर सुबह तक सोते ही रहे, परन्तु जब उनकी आँखें खुलीं, तो उनसे उठा ही नहीं गया। वे बहुत प्रयत्न करने लगे, परन्तु वे छटपटाते ही रहे, उठ न सके। फिर उन्होंने अपनी उस समस्या के बारे में , अपने परिवारजनों से एक पत्र लिखवाया , और उसे राजकार्यालय के पते पर प्रेषित करवा दिया। क्योंकि मामला विदेशव्यापार से सम्बंधित था, अतः उस पत्र को राजा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। राजा को व्यापारिक हानि की चिंता सताने लगी। राजा ने बहुत सारे मालिशिए व चिकित्सक, उनका इलाज करने के लिए भिजवाए। उनकी प्रभावित माँसपेशियों की जम कर मालिश की गई। चिकित्सकों को पता चला कि बहुत अधिक काम करने से, उनकी माँसपेशियों में अकड़न पैदा हो गई थी, जो छुट्टी वाले दिन भी दूर नहीं हो पाई, क्योंकि वे उस दिन सोते ही रहे, जिससे उन माँसपेशियों के लिए रक्त की आपूर्ति बाधित रही। चिकित्सा से वे ठीक हो गए , और अपने-२ कामों पर लौट गए। उससे देहदेश की अर्थव्यवस्था पुनः सामान्य हो गई। स्थूलपुरुषों में भी , विशेषतः भारी काम करने वाले श्रमिकों व किसानों में, यह समस्या पूर्णतः इसी प्रकार की होती है।

कुण्डलिनी-जागरण के समय, एक ही मानसिक चित्र (कुण्डलिनी) के ऊपर ही, पूरा मस्तिष्क अपनी सारी ऊर्जा लगा देता है। इससे वह चित्र जीवंत व प्रत्यक्ष हो जाता है। यह विश्वास न करने में कोई भी कारण प्रतीत नहीं होता कि आधुनिक नाड़ीविज्ञान (neuro-science), कृत्रिम रूप से ऐसी अवस्था को उत्पन्न नहीं कर सकता। आज तो विज्ञान बहुत आगे निकल चुका है। इसी तरह, प्रेमयोगी वज्र के अनुसार, यदि मन में निरंतर बस रहे, एक चित्र से ही आत्मज्ञान उत्पन्न होता है, तब तो संभवतः उस चित्र को आधुनिक मनोवैज्ञानिक-यंत्रों की सहायता से भी बना कर रखा जा सकता है। कुछ लोग मानते हैं कि योग के रूप में एकाग्र ध्यान लगाने की अपेक्षा साक्षीकरण -अभ्यास (संकल्पों के प्रति) करना चाहिए। वास्तव में कुण्डलिनीजागरण एकाग्रध्यान से ही होता है। वैसे आत्मज्ञान तो साक्षीकरण से , सीधे भी हो सकता है , परन्तु कुण्डलिनीजागरण ही आत्मज्ञान का तीव्रतम , सर्वाधिक प्राकृतिक, सर्वाधिक वैज्ञानिक, सर्वाधिक व्यावहारिक, सरलतम व विश्वसनीयतम उपाय है।

देहदेश की राजधानी में स्थित केंद्रीय मुख्यालय के साथ लगते क्षेत्र में , एक बहुत बड़ा तापमान-नियंत्रक (thermostat) बना होता है। उसको नियंत्रित करने वाला कार्यालय, मुख्यालय में ही बना होता है, जिसमें बहुत से देहपुरुष काम करते हैं। वह कार्यालय, परिस्थिति के अनुसार, देहदेश के लिए सर्वोत्तम तापमान निर्धारित करता रहता है, और उसके अनुसार ही थर्मोस्टेट को एडजस्ट (adjust) करता रहता है। पूरे देहदेश का तापमान स्थूलदेश की तरह ही, विभिन्न प्राकृतिक कारणों से स्थिर व नियंत्रित बना रहता है। परन्तु कई बार, देहदेश के बाहर के बीहड़ों में मौसम का मिजाज

बहुत बिगड़ जाता है। कई बार वहाँ अत्यधिक बर्फबारी हो जाती है, जिससे वहाँ ठंड, अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। वहाँ पर हड्डियों को जमाने वाली ठंडी हवाएँ प्रवाहित होने लगती हैं। वे ठंडी हवाएँ देहदेश के अन्दर भी प्रविष्ट हो जाती हैं। ऐसे में , देहदेश में ठण्ड काफी बढ़ सकती है, जिससे उसकी अर्थव्यवस्था पटरी से भी उतर सकती है। ऐसी परिस्थिति देहदेश को कभी भी मंजूर नहीं होती। देहदेश का तापमान जब निम्नतम निर्धारित सीमा से नीचे गुजरने लगता है, तब मुख्यालय-स्थित थर्मोस्टेट मशीन की धातु सिकुड़ जाती है , जिससे बिजली का चक्र (circuit) पूर्ण हो जाता है। उससे थर्मोस्टेट के निकट बने, देश के सबसे बड़े व विशेष तापविद्युतयंत्र (thermal powerhouse) को कार्य शुरु करने का संकेत मिल जाता है। उससे देश के भिन्न-२ स्थानों पर फिट (fit) किए गए बड़े-२ हीट-बलोवरों (heat-blowers) को विद्युत की आपूर्ति होने लग जाती है। उनके चलने से पूरे देश में गर्म हवाएँ प्रवाहित होने लगती हैं। उससे देहपुरुष पुनः राहत की साँस लेने लग जाते हैं , जिससे अर्थव्यवस्था पुनः पटरी पर लौटने लगती है। जब तापमान सामान्य हो जाता है, तब थर्मोस्टेट मशीन की धातु की पट्टी गर्मी से फैल जाती है, और परिपथ (circuit) में लगी हुई तार के स्पर्श से दूर हट जाती है। उससे परिपथ टूट जाता है, और तार में विद्युत का प्रवाह रुक जाता है। पुनः ठण्ड बढ़ने से , परिपथ फिर से जुड़ जाता है, और पुनः विद्युत-प्रवाह चालू हो जाता है। इस तरह से, यह चक्र निरंतर चलता रहता है, और देहदेश हमेशा खुशहाल बना रहता है। साथ में, तापमान घटने पर, देहदेश के बड़े-२ व्यायामालयों (gymnazium) में लगे ताले भी खोल दिए जाते हैं, जहाँ जाकर देहपुरुष खूब सारा व्यायाम (exercise) करते हैं, और अपने शरीर को गर्म रखते हैं। इसी तरह , शारीरिक-श्रम वाली मजदूरी के काम बढ़ा दिए जाते हैं , ताकि देहपुरुषों को मजदूरी ढूँढने के लिए कठिनाई का सामना न करना पड़े। प्रत्येक स्थान पर, मजदूरी से सम्बंधित पूरे लेखे -जोखे की सूचनाएँ उपलब्ध करवा दी जाती हैं। सारी सूचनाएँ घर बैठे ही , इंटरनेट पर, दूरदर्शन पर, स्मार्ट फोन पर व रेडियो पर उपलब्ध करवा दी जाती हैं। उससे सभी जरूरतमंद लोगों को शारीरिक काम करने का मौका मिल जाता है, जिससे उन्हें अपने शरीर को गर्म रखने में बहुत सहायता मिलती है। यह प्रयास किया जाता है कि देहपुरुषों को अपने -२ घरों के निकट ही, मजदूरी या शारीरिक श्रम करने के अन्य अवसर उपलब्ध हो जाएं , ताकि उन्हें घर से आते-जाते, रास्ते में ठण्ड का सामना न करना पड़े। पढ़ाई -लिखाई व बैठ-बिठाई का काम करने वाले देहपुरुष भी शारीरिक श्रम व व्यायाम आदि करना प्रारम्भ कर देते हैं। तापमान घटने से , राजा का इशारा मिलते ही, मुख्यालय-स्थित विद्युत-मंत्रालय भी क्रियाशील होकर, देहदेश के विद्युतविभाग को क्रियाशील कर देता है। उससे विद्युतविभाग के कर्मचारी भी, शारीरिक रूप से अधिक सक्रिय हो जाते हैं, और भरपूर विद्युत का उत्पादन करते हैं। वे दिन-रात भरपूर श्रम करते हुए, प्रत्येक घर तक विद्युत की भरपूर आपूर्ति को सुनिश्चित करते हैं। इससे मानसिक श्रम करने वाले देहपुरुषों को अपने घरों में रखे हुए हीटरों , बलोवरों व वातानुकूलित कक्षों को चलाने के लिए पर्याप्त रूप में विद्युत उपलब्ध हो जाती है। ठन्डे क्षेत्रों में , दूरदराज के क्षेत्रों में व सीमाओं के निकट बसने वाले देहपुरुष अपने घरों में बने चूल्हों में, स्थानीय रूप से बहुतायत में मिलने वाले ईंधनों, जैसे कि लकड़ियों, कोयलों, गोबर के उपलों व घास-पत्तियों आदि को जलाना बढ़ा देते हैं।

इसी तरह, कई बार भयंकर गर्मी भी पड़ जाती है। उससे बचाव के लिए , देश की राजधानी में एक विशिष्ट मंत्रालय बना होता है। वह देश के विभिन्न व महत्त्वपूर्ण स्थानों पर स्थापित, अत्याधुनिक व स्वचालित वायु-अनुकूलकों (air conditioners) और शीतकों (coolers) को, रेडियो-तरंगों (radiowaves) के माध्यम से, आवश्यकतानुसार नियंत्रित करता रहता है। परन्तु कई देश ऐसे होते हैं , जिनमें उच्च तकनीक के ऊष्णता -निवारक उपकरण नहीं होते, जिससे सम्बंधित मंत्रालय भी कुछ नहीं कर पाता। उससे उनके देशवासी सुस्त व ढीले पड़ जाते हैं, जिससे गर्मी के मौसम में देश की क्रियाशीलता बहुत घट जाती है। विशेषतः नवदेशविभाग की बैठकें स्थगित करवा दी जाती हैं, क्योंकि उनके लिए विशाल देश के दूर-२ स्थित, विभिन्न कोनों से, विभिन्न अधिकारियों को लम्बी यात्रा पूरी करके, एक स्थान पर इकट्ठे होना पड़ता है, परन्तु गर्मी के कारण वे यात्रा नहीं करना चाहते। देश की क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए , राजा को ही चिंता करनी पड़ती है। वह बीहड़ों से ठन्डे जल की विशेष व भारी आपूर्ति करवाता है , और फिर उसे पूरे देश में वितरित करवाता है, जिससे नहा-२ कर, देशवासी अपने शरीर को ठंडा करते रहते हैं, और अपनी क्रियाशीलता को बना कर रखते हैं। यात्री बसों को भी उसी पानी से ठंडा रखा जाता है।

रुचि-अरुचि भिन्न विषय है, और सत्यता भिन्न विषय है। किसी भी विषय को अरुचिकर कहा जा सकता है , परन्तु उसकी सत्यता को नहीं ठुकराया जा सकता। उदाहरण के लिए, अधिकाँश लोगों के लिए अध्यात्म अरुचिकर हो सकता है , परन्तु उसकी सत्यता के ऊपर संदेह नहीं किया जा सकता। सत्य को निरंतर स्वीकार करते रहने मात्र से ही, धीरे-२ अरुचि भी रुचि के रूप में परिवर्तित हो जाती है। महात्मा बुद्ध ने भी कहा है कि उठना-गिरना तो जीवन में चलता रहता है, परन्तु सत्य को सदैव स्वीकार करना चाहिए। जो सत्य की सत्यता को स्वीकार ही नहीं करते, सत्य के प्रति उनकी अरुचि कैसे समाप्त हो सकती है? जो सत्य को स्वीकार करते हैं, उनकी ओर सत्य स्वयं ही अग्रसर होता रहता है।

देहदेश की सीमा के बाहर घने जंगल होते हैं। उनमें अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ उगी होती हैं। कुछ छोटे आकार की होती हैं , तो कुछ बड़े आकार की। कहीं पर चट्टानें होती हैं, तो कहीं पर गड्ढे। उन गड्ढों में वर्षा का व देहदेश से बह कर आया हुआ जल भरा रहता है। उस जल में बहुत से मेंढक , मछलियाँ व अन्य जलीय जीव पनपते रहते हैं। वे अधिकाँशतः शाँतिप्रिय होते हैं, परन्तु कई बार उन जलीय जीवों की खोज में सर्प आदि उत्पाती जीव भी पहुँच जाते हैं, जो कई बार भूमिगत सुरंगें आदि बना कर, सीमाक्षेत्र को हानि भी पहुंचा देते हैं। इसी तरह, उत्तम प्रकार का मीठा घास ढूँढते हुए, वहाँ पर चूहे भी पहुँच जाते हैं। देहदेश के जल से सीमाक्षेत्र पर पर्याप्त नमी बनी रहती है , जिससे वहाँ पर उत्तम व मीठे प्रकार का घास बहुतायत में पाया जाता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के बड़े-२ वृक्ष होते हैं, जो आकाश को छूते हुए प्रतीत होते हैं। उनमें भिन्न-२ प्रकार के पशु-पक्षी अपना-२ डेरा डाले रखते हैं। अधिकाँश पशु-पक्षी शाँतिपूर्ण होते हैं। कुछ पशु-पक्षी शैतानी प्रकृति के भी होते हैं। वे जंगल को तो हानि पहुंचाते ही हैं , साथ में सीमाभित्ति को भी हानि पहुंचाते हैं। वे सुरक्षाबलों के भय से, अधिक अन्दर न घुसते हुए, सीमा पर ही बने रहते हैं। इन सभी कारणों से, सीमाभित्ति में छिपाए गए विद्युतीय संवेदक (electronic sensors), सीमा पर हो रही इस प्रकार की हरकतों की सूचना राजकक्ष को भेजते रहते हैं। इन विद्युतीय सूचनाओं (electronic signals) से राजकक्ष की भित्तियों में स्थापित किए गए ध्वनिसूचकयंत्र (sound alarms) निरंतर बजते रहते हैं। इससे राजा निरंतर बेचैन रहता है, और सीमाक्षेत्र के ऊपर विशेष ध्यान देते हुए, समस्त बाधाओं के निराकरण का प्रयास करता है। एक बार लेखक ने देखा कि देहदेश की सीमा के बाहर, उससे लगते घने जंगलों में, बीहड़ों में रहने वाले वनमाफियाओं के गिरोहों ने बड़ा भारी उत्पात मचाया हुआ था। वे छोटे-बड़े, हरे-सूखे व बेशकीमती दरख्तों को काटते ही काटते जा रहे थे। उन्हें रोकने वाला वहाँ पर कोई नहीं था , क्योंकि देहदेश के सुरक्षाकर्मी सीमा के बाहर जाते ही नहीं। उन्हें रक्षामंत्रालय के सख्त दिशा-निर्देशों के कारण ही अपने आप को संयमित करके रखना पड़ता है, अन्यथा वे अवश्य ही सीमा का उल्लंघन किया करते, क्योंकि सीमा को हानि पहुंचाते हुए उग्रपंथियों को देख कर , उनका मन क्रोध के कारण हुंकारें-फुन्कारें भरता रहता है, व उनकी बलवान भुजाएं फड़कती रहती हैं। वास्तव में सीमा के बाहर , देहपुरुषों का जीवन संकट में पड़ सकता है। सीमा के बाहर के बीहड़ों में न तो सड़कें होती हैं, जिन पर देहपुरुषों की हथियारबंद गाड़ियां दौड़ सकें, और न ही वहाँ पर पर्याप्त मात्रा में भोजन-पानी की उपलब्धता ही होती है। इसके विपरीत, बीहड़ों में रहने वाले उग्रपंथी, वहाँ की कठिन परिस्थितियों में रहने के अभ्यस्त होते हैं। वे जंगलों के टेढ़े-मेढ़े रास्तों व छोटी-२ पगडंडियों पर दौड़ने में माहिर होते हैं। वे जंगल के कंद-मूलों व फल-फूलों को भी अच्छी तरह से पहचानते हैं, जिससे उन्हें कभी भी भोजन-पानी की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। उन्हें जंगल के जल-स्रोतों की, विभिन्न स्थानों की भूमियों के आकार-प्रकार की व अन्य सभी जीवनोपयोगी जानकारियाँ होती हैं। एक प्रकार से उन्हें बीहड़ों के चप्पे-२ की जानकारी होती है। देसी विद्याओं व कलाओं में भी वे निपुण होते हैं। वे अपने जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं का निर्माण स्वयं ही कर लेते हैं। वे आत्मनिर्भर होते हैं। वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज के ऊपर निर्भर नहीं रहते। इसके विपरीत, देहपुरुषों को देहदेश के समाज के साथ जीने की आदत होती है। वे अकेले में जीवनयापन नहीं कर सकते। इसी कारणवश उन्हें बीहड़ों में जाने की अनुमति नहीं दी जाती है। वे वहाँ के प्रतिकूल वातावरण के शिकार पल भर में ही बन सकते हैं। यदि किसी तरह वातावरण से बच भी जाएं, तो शीघ्र ही उग्रपंथियों का ग्रास बन सकते हैं। उन वृक्षों के कटने से , बाहर की तेज व ठंडी हवाएँ, धूल-मिट्टी तथा स्वचालित ड्रोन आदि आकाशीय वस्तुओं के साथ, सीमाभित्ति से टकरा कर, सीमा-संवेदकों को उत्तेजित करती रहती हैं। उनके सिग्नलों से बजने वाले अलार्मों को सुन-२ कर, राजा बहुत चिड़चिड़ा व परेशान रहने लगता है, तथा अपने दैनिक कार्यों पर सही ढंग से ध्यान नहीं दे पाता। वैसे भी, सीमा के बाहर से सम्बंधित सारे कार्यों को करने की जिम्मेदारी, राजा ने ही अपने ऊपर ली हुई होती है। राजा को जब कुछ नहीं सूझा, तब उसने नागरिक उड्डयन विभाग को शत्रुओं के ऊपर ड्रोन-हमला (drone attack) करने के लिए निर्देशित किया। राजा के मार्गदर्शन में ही विदेशों से विस्फोटक मंगवाए गए। फिर राजा के मार्गदर्शन में ही, ड्रोनों के ऊपर विस्फोटक लादे गए और उन्हें रिमोट कंट्रोल (remote control) की सहायता से, देहदेश की सीमा के ऊपर उड़ाया गया। रिमोट कंट्रोल से ही विस्फोटक कक्ष (explosive chamber) के द्वार खोले जाते रहे, और यथाभीष्टित मात्रा में, उन शत्रुओं के ऊपर विस्फोटक गिराए जाते रहे। बहुत से शत्रु मारे गए। बहुत से शत्रु घने जंगलों के बीच में छिप गए। कई तो छोटी-२ सुरंगों में, चट्टानों के नीचे की खाली जगह में व गड्ढों में छिप गए। बहुत से शत्रु, उनके स्वयं के द्वारा सीमा पर आपातकाल के लिए, पहले से बनाई गई भूमिगत सुरंगों में छिप गए। कुछ शत्रु अनजाने में ही सीमा के दूसरी ओर निकल गए, जिन्हें सुरक्षाबलों ने तुरंत मार गिरा दिया। जब सभी शत्रु मृत समझे गए, तब ड्रोन हमला बंद करवा दिया गया। परन्तु कुछ ही समय के बाद, वे छिपे हुए शत्रु फिर से सामने आकर, सीमाक्षेत्र पर पूर्ववत उत्पात मचाने लगे। फिर से उन पर उसी तरह का हवाई हमला किया गया। पहले की तरह ही, उनमें से कुछ, फिर से छिप गए। फिर हमला किया गया। इस तरह, बार-२ के आक्रमणों से क्षीण होते हुए, अंततः

वे नष्ट ही हो गए। कई बार, विशेषतः यदि राजा के द्वारा उनके विरुद्ध समुचित व नीतिबद्ध ढंग से कार्यवाही न की जाए, तो वे शत्रु सदैव वहाँ पर बने रहते हैं।

कई लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि कुण्डलिनीयोग को आँखें खुली रख कर या बंद करके करना चाहिए। वास्तव में योग का मुख्य व एकमात्र ध्येय तो कुण्डलिनी को विकसित करना ही होना चाहिए, इसके लिए चाहे जिस किसी भी मानवीय विधि का आश्रय क्यों न लेना पड़े। कुण्डलिनी तो एक मानसिक चित्र होता है, जिसे देखने के लिए आँखों की आवश्यकता नहीं होती। आँखों से तो बाहरी चित्र ही दिखाई देते हैं। बाहरी चित्र भीतरी चित्र के चिंतन में व्यवधान उत्पन्न कर सकते हैं। वैसे जब कुण्डलिनी जागरण हो रहा होता है, उस समय खुली आँखें मानसिक चित्र में व्यवधान उत्पन्न नहीं कर सकतीं, क्योंकि उस समय मस्तिष्क की अधिकाँश ऊर्जा कुण्डलिनी को जगाने में लग रही होती है, जिससे कुण्डलिनी अधिकतम अभिव्यक्ति के स्तर पर होती है। आँखें भी कैमरे की तरह ही काम करती हैं। बाहर का चित्र ग्रहण करने के लिए, कैमरे (camera) का शटर (shutter) खुल जाता है, और फिर बंद हो जाता है, ताकि वह चित्र कैमरे के अंदरूनी भाग में विकसित हो सके। इसी तरह से , अपने सर्वप्रिय भौतिक चित्र को सही ढंग से व विस्तार से ग्रहण करने के लिए हम अपनी आँखें खोलते रहते हैं, और उसे मन में पक्का बैठाने के लिए, योग के समय अपनी आँखें बंद करते रहते हैं।

एक बार लेखक ने देखा कि कुछ भिखारियों की एक टोली भी, विदेश से आयात किए जा रहे माल के साथ होते हुए, देहदेश के अन्दर घुस आई थी। वास्तव में वह माल भिखारियों की गन्दी बस्तियों के निकटवर्ती क्षेत्र से आ रहा था। संभवतः मालगाड़ियों के मार्ग में भी गन्दी बस्तियां मौजूद थीं। वह टोली छोटी भी थी, और मालवाहकों/व्यापारियों के बीच में घुली-मिली हुई भी थी, इसीलिए राजा उसे देख नहीं पाया, अन्यथा, वह उस टोली को विदेश-व्यापार के मुख्य राजद्वार के बाहर ही रुकवा देता। सुरक्षाबल भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके, क्योंकि वह टोली भारी-भरकम माल के बीच में छिपी हुई थी, साथ चल रही व्यापार-मंडली के जैसी वेशभूषा धारण किए हुए थी, और गाड़ियों की आवाजाही से व्यस्त राजमार्ग को छोड़कर कहीं भी नहीं जा रही थी, यहाँ तक कि सड़क के किनारों पर भी नहीं रुक रही थी। यदि कभी-कभार पकड़ी-पहचानी भी जाती थी, तो भी सुरक्षाबल उसे दीन-भिखारियों का झुण्ड जानकर दयावश छोड़ देते थे। वैसे भी सुरक्षाबल सड़क के बीच में आते ही नहीं , ताकि यातायात में व्यवधान न उत्पन्न हो। वे भिखारी टोली के रूप में ही सदैव बने रहते थे, जिससे इक्के-दुक्के सुरक्षा-जवान तो उनसे पंगा लेने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहे थे। यदि कुछ अत्यंत बहादुर जवान उन्हें निशाना बनाने की कोशिश करते भी थे, तो भी वे बच जाते थे, क्योंकि वे कबाड़ियों से सस्ते में खरीदी हुई द्वितीयहस्त (second hand) बारूदरोधी (bullet proof) गाड़ियों में बैठे होते थे। सबसे पहले वे उस विशाल देश के एक विस्तृत मैदानी क्षेत्र से होकर गुजरे। वहाँ पर उन्होंने अपने जैसे भिखारियों की कुछ टोलियों को , किसानों के बीच में भीख माँगते हुए देखा। उन्हें वह स्थान कुछ पसंद नहीं आया , क्योंकि वह राजद्वार के निकट था, इसलिए वहाँ पर अनेक प्रकार का माल ढोती हुई, बहुत सारी बड़ी-२ गाड़ियों का कनफोड़ू शोर निरंतर हो रहा था, जो उन्हें बेचैन कर रहा था। इसलिए वे शाँतियुक्त स्थान की खोज में आगे ही आगे चलते रहे। देहदेश के सुदूर क्षेत्र में , उन्हें एक पर्वतीय, उथली-गहरी घाटियों वाला, ऊबड़-खाबड़ व शाँतियुक्त स्थान दिखाई दिया। वहाँ पर बहुत से सीढ़ीदार खेत बने हुए थे, जिनमें बहुत से किसान काम कर रहे थे। कहीं-२ पर उन जैसे भिखारियों की टोलियाँ भी दृष्टिगत हो जाती थीं। वहाँ पर स्थान -२ पर निर्मल जल के झरने भी दिखाई दे रहे थे , जिनसे निकलता हुआ, देहदेश के मनोरम पहाड़ों की जड़ी-बूटियों के रस वाला व उन्हीं पहाड़ों के पसीने के साथ बह रहे खनिज तत्त्वों की शक्ति वाला वह निर्मल जल , बहुत भला प्रतीत हो रहा था। देहदेश के किसानों के लिए तो वे झरने किसी वरदान से कम नहीं थे। वे उनके मीठे जल का भरपूर उपयोग करते हुए , उससे भरपूर फसलें भी पैदा कर रहे थे। उस स्थान को अपने निवास के लिए सर्वोपयुक्त जानकर, वहाँ पर उस टोली के भिखारी अपनी गाड़ियों से नीचे उतर गए। वहाँ पर उन्होंने झरने का मीठा जल पीकर अपनी थकान मिटाई , और फिर वे खेतों में पड़ा हुआ, किसानों से छूटा हुआ थोड़ा-बहुत अनाज खाने लग गए। कहीं सुरक्षाबलों की नजर न पड़ जाती, उसके लिए वे खेतों से अनाज इकट्ठा करके, एकदम से राजमार्ग को लौट जाते थे, और उसके किनारे पर बने अपने अस्थायी शिविर के अन्दर छिप जाते थे। कई बार तो कुछ अनगढ़ भिखारी, उतावलेपन में या डर के मारे भागते हुए, डंगे से पत्थरों को गिराकर, उसे हानि पहुंचा देते थे। वह पत्थरों का पक्का डंगा, राजमार्ग के दोनों किनारों पर बना होता है, ताकि राजमार्ग पर चलने वाले शरारती तत्त्व देहदेश के अन्दर न घुस सके। उन डंगों के ऊपर, थोड़ी-२ दूरी पर, सुरक्षाबलों की चौकियां बनी होती हैं, जहाँ से वे घुसपैठियों पर नजर बनाए रखते हैं, और किसी कारणवश टूटे हुए डंगे से प्रविष्ट हो रहे शत्रुओं को चेतावनी देते रहते हैं। यदि वे चेतावनी को अनसुना करते हैं , तो उन्हें मार गिरा देते हैं। डंगे के क्षतिग्रस्त होने की सूचना पाकर , देहदेश के मिस्त्री तुरंत वहाँ पहुँच कर , उस डंगे को क्षतिमुक्त कर देते थे। वे भिखारी गंदे रहते थे , अतः अधिकाँशतः रोगाणुओं से संक्रमित रहते थे। कई बार तो उनका संक्रमण किसानों में भी फैल जाता था, जिससे बहुत से किसान बीमार हो जाते थे। वैसे में, खेतों की पैदावार बहुत अधिक घट जाती थी। उससे कई बार तो पूरे देहदेश में गंभीर अकाल भी पड़ जाता था। वे भिखारी अनपढ़ थे , जिससे वे

बहुत सी संतानों को पैदा कर रहे थे। कई नए-नवेले भिखारी तो कुछ बड़े होने पर, उस राजमार्ग के सीमित क्षेत्र में ऊबने लग जाते थे। वहाँ पर न तो खेलने-कूदने के लिए लम्बे-चौड़े मैदान थे, और न ही घूमने के लिए विस्तृत व मनमोहक भूभाग ही थे। वहाँ पर तो इज्जत के साथ जीने के मौके भी नहीं थे। ऐसी आर्थिक व अन्य लघुक्षेत्रीय समस्याओं के कारण, वे अपने पूर्वजों व अन्य साथियों को बड़े दुःख के साथ, दिल पर पत्थर रख कर छोड़ रहे थे, ताकि आगे की, विशाल देश की यात्रा पर निकल सकते। फिर उन्होंने सुरक्षा के लिहाज से अपने बड़े -२ झुण्ड बनाए, और प्रत्येक झुण्ड के लिए एक अलग से गाड़ी मुहैया करवाई। फिर उन्होंने अपनी-२ गाड़ियां राजमार्ग से बाहर, देश के खुले व विस्तृत क्षेत्र में निकाल दीं। बड़ी-२ गाड़ियों में बैठे हुए, वे किशोर असामाजिक लग रहे थे। उन्हें जटिल देहदेशसमाज में सहयोगात्मक रूप से जीने का अनुभव नहीं था। छोटे-२ गली-रास्तों में भी वे अपनी गाड़ियों को बलपूर्वक घुसाते हुए; उन मार्गों, साथ लगते भवनों व अन्य संरचनाओं को भारी नुकसान पहुंचा रहे थे। उनका लक्ष्य तो केवल देहदेश के सर्वश्रेष्ठ व चहल-पहल वाले क्षेत्रों में आनंदपूर्वक विचरण करना था। शीघ्र ही वे देश के विशाल परिष्करण यंत्र के परिसर के अन्दर घुस गए। वहाँ के सुरक्षाबल घृणा, दया, भय व भ्रम के कारण उन पर सटीक कार्यवाही नहीं कर पा रहे थे। उन्हें पता ही नहीं चल रहा था कि वास्तव में वे घुसपैठिए शत्रुतापूर्ण ढंग से व्यवहार कर रहे थे। वे उन्हें गंदे व मूर्ख भिखारी मात्र ही समझ रहे थे। वास्तव में भी , वे लोग देहदेश के ऊपर जानबूझ कर, सीधा आक्रमण भी नहीं कर रहे थे। गलत काम तो उनकी मूर्खता के कारण , उनसे अनजाने में ही हो रहे थे। संभवतः उसका कारण , उनके अन्दर विद्यमान साम्प्रदायिक कट्टरपंथ भी था, जिससे भी सुरक्षाबलों को उनके ऊपर कार्यवाही करने में संकोच हो रहा था। वे तो केवल अपना पेट मात्र भर रहे थे , और कम से कम संसाधनों से अपना गुजारा चला रहे थे। परन्तु उनका गुजारा चलाने का ढंग भी विचित्र व मूर्खतापूर्ण था। वे हर कहीं से , यहाँ तक कि उद्योगों के कलपुर्जों के बीच में से भी खाद्य सामग्रियों व अन्य दैनिकोपयोगी वस्तुओं को बलपूर्वक बाहर खींच लेते थे , जिससे उद्योगों को भारी क्षति पहुंचती थी। उस कबीले का मुखिया तो बहुत ही मूर्ख व जड़बुद्धि लग रहा था। उसको तो केवल कबीले का पेट भरने का ही ज्ञान था , चाहे वह किसी भी विधि से क्यों न भरना पड़ता, क्योंकि उसे अच्छे-बुरे का तनिक भी ज्ञान नहीं था। वे प्रेतों की तरह भटकते हुए , वहीँ पर प्रसन्नतापूर्वक रहने लग गए, और वापिस अपने मूलस्थान को लौटना ही भूल गए। भूलते भी क्यों न , नए स्थान पर उनको बिना कुछ काम किए व बिना मूल्य चुकाए ही , मनमाने ढंग से सभी सुख-सुविधाएँ जो मिल रही थीं। जैसे-तैसे करके देहदेश ने उनके उत्पात को सहा, और समय के साथ उनकी मृत्यु होने पर ही चैन की साँस ली। परन्तु उनके मृत शरीर भी गंदे व संक्रमित थे। इसलिए उन्हें किसी ने हाथ नहीं लगाया, जिससे वे वहीं पर धीरे-२ सड़ते हुए नष्ट हो गए। बहुत से शत्रु उनकी कब्रगाहों के पास इकट्ठे होकर, उनसे उत्पात मचाने की प्रेरणा ले रहे थे। उनसे दुर्गन्ध व संक्रमण न फैलता, उसके लिए देहपुरुषों ने उनको प्लास्टिक के तरपाल से ढक दिया था। उससे देहदेश में महामारी का खतरा भी टल गया था। संभवतः देहपुरुषों ने बिमारियों के खिलाफ टीकाकरण भी करवाया हुआ हो। कई बार जब महामारी फैलती है, तो वह पूरे औद्योगिक क्षेत्र को भारी क्षति पहुंचती है, और कई बार तो उसे ठप ही करवा देती है। सभी कर्मचारी मारे जाते हैं। वहाँ से फैलती हुई , कई बार वह पूरे देश में फैल जाती है, जिससे संपूर्ण देहदेश को भारी कीमत चुकानी पड़ती है। कई बार तो संपूर्ण देश का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है। इसी तरह से , एक बार उन मूर्खों के गिरोह ने जलविभाग के उस पूर्वोक्त व महत्त्वपूर्ण जलाशय के आसपास अपना डेरा जमा लिया था। वहाँ पर उन्होंने तंग मार्गों , गुफाओं व घाटियों को भारी क्षति पहुंचाई थी। उनकी मूर्खतापूर्ण गतिविधियों से प्रोत्साहित होकर, देहदेश के कट्टर शत्रु भी अवसर का लाभ उठाने के लिए, अन्दर घुस आए थे। सुरक्षाबलों को उन धार्मिक उन्मादियों से उलझते हुए देखकर, देश के अन्दर पहले से बसे हुए सुप्त शत्रु भी जागने लग गए थे। उन भिखारियों द्वारा खोदे गए पत्थरों , मलबे व गिराए गए पेड़ों से, उन्हें छिपने के लिए बहुत से सुरक्षित स्थान प्राप्त हो रहे थे। देहदेश के संसाधन दुष्प्रभावित संरचनाओं की क्षतिपूर्ति में व्यय हो रहे थे, अतः शत्रुओं से लड़ने के लिए कम ही संसाधन उपलब्ध थे। दयावश देहदेश के सुरक्षाबल उन याचकपंथियों को मार नहीं रहे थे , अपितु उन्हें ज़िंदा पकड़-२ कर और गाड़ियों में लाद-लाद कर, नजदीक में स्थित देहदेश की सीमा से बाहर छोड़े जा रहे थे। इस तरह से, सब ठीक-ठाक हो गया था। इसी तरह से, कई बार भिखारियों की वे टोलियाँ देहदेश के मुख्य जलशोधकयंत्र तक पहुँच जाती हैं, और वहाँ पर इसी प्रकार से भारी उठापटक मचाती हैं। एक बार वे देहदेश के केन्द्रीय मुख्यालय में भी पहुँच गए थे। उनको देख कर , क्रोध व भय के कारण वहाँ के मंत्री व अधिकारी लोग पगला गए थे। राजा, जो पूरी तरह से अपने कर्मकारों के प्रति आसक्ति व मोहमाया में डूबा रहता है, अतः उन्हीं की तरह व्यवहार करता रहता है, वह भी पागल जैसा हो गया था। देहदेश का केन्द्रीय मुख्यालय एक सर्वाधिक नाजुक स्थान होता है। वहाँ पर किसी भी समस्या के उत्पन्न होने का अर्थ है , पूरे देहदेश की सत्ता पर गंभीर संकट उपस्थित होना। वहाँ पर मुरम्मत के लिए ठोक-पिटाई भी नहीं की जा सकती , क्योंकि वहाँ पर अत्यधिक नाजुक मशीनें व कलपुर्जे होते हैं, जो पूरी तरह से अतिसूक्ष्म विद्युतचुम्बकीय तरंगों से; चित्र-विचित्र व अनजाने सिद्धांतों के अनुसार काम करते रहते हैं। कई बार वे

अशिक्षित जनजाति के लोग देहदेश के यातायात विभाग के मुख्यालय में पहुँच जाते हैं, जहाँ पर वे नाजुक मशीनों के क्रियाकलापों में विघ्न उत्पन्न करते हैं। इससे भी देहदेशनिवासियों को विभिन्न प्रकार के माल की आपूर्ति बाधित हो जाती है। यह स्थिति भी देहदेश के लिए चिंताजनक होती है।

वास्तव में, मन्त्र तो कुण्डलिनी को प्राण प्रदान करने का एक बहाना मात्र ही होता है। मंत्र बोलते समय, मुख से जो प्राण उत्सर्जित होता रहता है, वह मूर्ति, सूर्य, अन्य किसी स्थान या अज्ञात स्थान आदि पर स्थित की गई/कल्पित कुण्डलिनी को पुष्ट करता रहता है। इसीलिए इष्टमंत्र एक ही होना चाहिए, क्योंकि बारंबार के रटने से वह कंठस्थ हो जाता है, जिससे उसको बोलने के लिए मस्तिष्क को बल लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। उससे मस्तिष्क की शक्ति कुण्डलिनी को पुष्ट करने के लिए बच जाती है। मंत्रजाप के प्रारम्भ में यदि कुण्डलिनी का ध्यान किया जाए , तो पूरे जप के दौरान स्वतः ही कुण्डलिनी को उसकी शक्ति मिलती रहती है। एक प्रकार से, उस मंत्र के साथ कुण्डलिनी जुड़ जाती है। यही मंत्र-सिद्धि है, और यही जप का रहस्य भी है। इसी तरह, यदि संगीत सुनने के प्रारम्भ में कुण्डलिनी का ध्यान किया जाए, तो पूरा संगीत कुण्डलिनी को पुष्ट करता रहता है। संभवतः यही तो सभी कार्यों को प्रारम्भ करने के साथ इष्टदेवता (कुण्डलिनी) के स्मरण के पीछे छिपा हुआ रहस्य है। ऐसे ही, साँस से भी प्राण बाहर निकलकर कुण्डलिनी को पुष्ट करते रहते हैं। विशुद्धिचक्र पर, उस स्थान पर कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए, जहाँ पर आवाज उत्पन्न होती है। वहाँ पर ओम आदि की आवाज का ध्यान भी किया जा सकता है। इससे वाणी में भी शक्ति आ जाती है। प्राण कुण्डलिनी को प्रज्वलित करता रहता है, और कुण्डलिनी प्राण (प्राणवायु) को खींचती रहती है। इस तरह से, प्राण व कुण्डलिनी, एक स्थान पर (कुण्डलिनी के स्थान पर), एक-दूसरे को निरंतर बढ़ाते रहते हैं। जैसे किसी अंगारे में ध्यान व हवा का प्रयोग करते हुए , पहले उसमें अग्नि की चिंगारी को उत्पन्न किया जाता है , फिर हवा देना जारी रखा जाता है, जिससे वह चिंगारी अग्नि-ज्वाला के रूप में परिवर्तित हो जाती है, बेशक उसकी ओर निरंतर ध्यान भी न दिया जाता रहे; उसी तरह से कुण्डलिनी की चिंगारी को उत्पन्न करके, यदि उस पर प्राणवायु के गिरते रहने का निरंतर ध्यान किया जाता है, तो वह स्वयं ही अग्नि-ज्वाला की तरह स्पष्ट व प्रचंड होती रहती है, बेशक उस पर प्रत्यक्ष रूप से निरंतर ध्यान न भी दिया जाए (या यूं कहो कि निरंतर न भी देखा जाए, परन्तु यह ध्यान में रखा जाए कि उस विशेष चक्र/स्थान पर कुण्डलिनी-ज्वाला प्राणवायु से भड़क रही है)। इसे कुछ यूं भी समझ सकते हैं कि यदि किसी चक्र पर कुण्डलिनी का ध्यान करने में कठिनाई आ रही हो, तो चक्र पर गिरती हुई साँस का ध्यान करना चाहिए। इससे प्राण की शक्ति से , वहाँ पर कुण्डलिनीचित्र अनायास ही उभरने लग जाता है। साँस को चक्र पर स्थित कुण्डलिनी के ऊपर डालते हुए, यदि कुछ देर बाद कुण्डलिनी दूसरी जगह दिखने लगे, तो उसे कुण्डलिनी-अग्नि की भड़की हुई व दूर भागी हुई ज्वाला-शिखा समझकर, यथास्थान पर ही भड़कने देना चाहिए। कुछ देर के बाद, वह सिमट कर स्वयं ही उस चक्र पर पहुँच जाती है, या किसी दूसरे चक्र पर चली जाती है। इसी तरह , कुण्डलिनी की चित्र-विचित्र मुखाकृतियों, उसकी चित्र-विचित्र शारीरिक स्थितियों व उसके चित्र-विचित्र कर्मों को अग्नि की चित्र-विचित्र ज्वालाओं (लपटों) का रूप समझना चाहिए। जिस चक्र पर भी कुण्डलिनी हो, वहाँ पर ऐसा समझना चाहिए कि बंधों के खिंचाव व दबाव से, वहाँ पर पूरे शरीर की शक्ति इकट्ठी हो रही है। उससे कुण्डलिनी स्वयं ही भड़क जाती है। वास्तव में, शरीर, मन व अन्य भी सभी कुछ प्राणरूप ही तो है, अन्य कुछ नहीं। योग में सब कुछ प्राण (सूक्ष्म व ध्यानमयी प्राणवायु) से ही उपलब्ध होता है। कुण्डलिनी प्राणबल से ही मूलाधार से ऊपर उठती है। जब कुण्डलिनी एक चक्र से दूसरे चक्र को जाती है, तो प्राण के रूप में ही जाती है। प्राण में महान शक्ति है। जब साँस छोड़कर व उसे वहीँ रोकते हुए, मूलबंध का दबाव छोड़ा जाता है, तब कुण्डलिनी प्राणवायु के साथ निचले चक्र के ऊपर स्वयं ही गिर जाती है। सबसे पहले साँस को अन्दर खींच कर, उसे चक्र के ऊपर स्थित कुण्डलिनी के ऊपर डाला जाता है, और उस सांस को जालंधर बंध लगा कर वहां पर कैद कर लिया जाता है। जब कुण्डलिनी वहाँ पर स्पष्ट हो जाती है, और प्राण वहाँ से नीचे उतरने का प्रयत्न करने लगता है, तब उसे मूलबंध से ऊपर उठा कर कुण्डलिनी के ऊपर चढ़ाया जाता है। इससे, ऊपर व नीचे, दोनों ओर से कुण्डलिनी पर प्राणों का दबाव बनता है, और वह उस चक्र पर स्पष्ट रूप से क्रियाशील हो जाती है। योग करते हुए, विशेषतः आसन व प्राणायाम करते हुए, मूलाधार पर कुण्डलिनी को प्रज्वलित करना अधिक सरल होता है। कई बार, विशेषतः जब मन अधिक उचाट हो, तब प्रारम्भ में कुण्डलिनी को तनिक बलपूर्वक, मन से मूलाधार चक्र पर स्थिर करना पड़ता है। फिर तो वह प्राणों से स्वयं ही पुष्ट होने लगती है। इसके लिए, साँस (प्राण) के अन्दर जाते ही, मूलाधार क्षेत्र व कभी-२ स्वाधिष्ठान क्षेत्र में भी, एक सरसराहट का या गति का या झटके का या खाली ध्यान का अनुभव करना पड़ता है। हल्की सी सरसराहट या हल्के से झटके का अर्थ है कि प्राणों ने कुण्डलिनी के ऊपर चोट की है। इससे कुण्डलिनी विशेष रूप से चमक जाती है। इसी सिद्धांत के अनुसार , कुण्डलिनीयोग के मुख्य भाग, कुण्डलिनीभ्रमण (kundalini rotation) में एक चक्र पर साँस को रोक कर, वहाँ पर कुण्डलिनी का ध्यान कर लेने के बाद , यथावश्यकतानुसार साधारण/नॉर्मल (normal) साँस लेते हुए, साँस को उस चक्र पर गिरते हुए व उससे कुण्डलिनी को प्रज्वलित होते हुए अनुभव करें। जब साँस काफी क्षीण हो जाए, और ऐसा लगे कि साँस से पेट भर गया है, अर्थात तृप्ति हो गई है, तब निचले चक्र पर यही प्रक्रिया दोहराएँ। स्वाधिष्ठान व मूलाधार

चक्रों पर, जब कुण्डलिनी का ध्यान किया जाए; तब साँस छोड़ते समय, मूलाधारचक्रबिंदु पर माँसपेशी की, ऊपर की ओर को हल्की सी सिकुड़न बनाई जाए, और स्वाधिष्ठानचक्रबिंदु के लिए, मूलाधार-माँसपेशी से मूलाधारचक्र को, ऊपर की ओर हल्का सा धक्का दिया जाए, ताकि नीचे का प्राण (अपान) भी स्वाधिष्ठानचक्र के ऊपर गिरता रहे। ऐसा दबाव निरंतर बना कर भी रखा जा सकता है , तब भी, जब साँस उन पर गिर भी रही हो। उपरोक्त प्रयासों से मूलाधार-कुण्डलिनी के ऊपर साँस/प्राण का सटीक निशाना लगता है, और स्वाधिष्ठान-कुण्डलिनी पर प्राण व अपान इकट्ठे होकर मिल जाते हैं, जिससे कुण्डलिनी सम्बंधित चक्रों पर प्रज्वलित होकर चमकने लग जाती है। कपालभाति प्राणायाम के बाद , सभी बंध लगाकर, जब कुण्डलिनी को मूलाधार से ऊपर उठाने का प्रयत्न किया जाता है , तब मूलाधार चक्र पर ध्यान लगाते हुए, उसे तनिक संकुचित सा किया जाता है। उससे कुण्डलिनी आसपास के क्षेत्र से इकट्ठी होकर, उस सूक्ष्म चक्रबिंदु पर जमा हो जाती है। वह फिर उड्डीयान बंध से ऊपर चढ़ जाती है। उस समय जालंधर बंध लगाने से, विशेषतः नए योगी के अभ्यास काल में, कुण्डलिनी को मस्तिष्क तक पहुँचाने में कुछ कठिनाई हो सकती है, क्योंकि उसमें गर्दन मुड़ी हुई रहती है। अतः जालंधर बंध को नहीं भी लगा सकते हैं। मूलाधार चक्र पर , उसकी हल्की सी सिकुड़न से कुण्डलिनी चमकती रहती है , और उड्डीयान बंध से उस पर ऊपर की ओर को एक खिंचाव लगता है। जैसे ही वह मस्तिष्क की ओर जाती है , वैसे ही मूलाधार (मूलबंध) को ढीला छोड़ देना चाहिए, ताकि कुण्डलिनी पर नीचे की ओर को खिंचाव न लगे, और वह कमान से छूटे हुए तीर की तरह, आसानी से ऊपर जा सके। मूलाधार चक्र अग्निकुंड की तरह ही होता है, जिसमें प्राणवायु से कुण्डलिनी धधक जाती है। संभवतः इसीलिए उसे कुण्डलिनी (कुंड+लिनी, कुंड में शयन करने वाली चेतना) कहते हैं। मूलाधार चक्र शरीर में सबसे नीचे, जननांग को मलद्वार से जोड़ने वाली रेखा के केंद्र में भी होता है , और शरीर के पिछले भाग में, रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले स्थान पर भी। आवश्यकतानुसार कुण्डलिनी का ध्यान, दोनों में से किसी भी स्थान पर किया जा सकता है। योगासन आदि करते समय व व्यावहारिक गतिविधियों के समय, पिछले भाग में ध्यान करना अधिक आसान प्रतीत होता है, विशेषतः जिनसे कमर में मोड़ (bend) पड़ता हो, और सिद्धासन में प्राणायाम आदि के समय , अग्रभाग में। वैसे, अभ्यास हो जाने पर, मेरुदंड वाला मूलाधार ही श्रेष्ठ लगने लगता है। वैसे , पृष्ठभाग का मूलाधार बहुत शक्तिशाली प्रतीत होता है। वहाँ पर कुण्डलिनी -अग्नि सर्वाधिक स्पष्टता के साथ भड़कती हुई प्रतीत होती है , और वहाँ से उसका ऊर्ध्वगमन भी सर्वाधिक स्पष्ट प्रतीत होता है। यह जो फीते से नापकर, चक्रों की स्थिति बताई जाती है, उसकी आवश्यकता प्रेमयोगी वज्र को तो पड़ी नहीं। उसने तो अनुमानित निर्धारण ही किया। हो सकता है कि योग की उच्चावस्था में ही चक्रों के सटीक निर्धारण की आवश्यकता पड़ती हो।

देहदेश के मुख्य आयातद्वार पर एक निरीक्षण-चौकी (inspection post) बनी होती है, जिसमें बहुत से निरीक्षकों (inspectors) व कर्मचारियों को तैनात किया गया होता है। वे प्रत्येक माल की गुणवत्ता की बड़ी बारीकी से, गहन छानबीन करते हैं, और उसमें पाए गए अवांछित पदार्थों, जैसे कि हथियारों, गोला-बारूदों, मिट्टी-पत्थरों आदि को प्रवेशद्वार के बाहर ही रोक देते हैं। उनके पास जैविक परीक्षणों के लिए जटिल यंत्र व चलित - प्रयोगशालाएँ (movable labs) भी होती हैं, जिनसे वे यह पता लगाते रहते हैं कि क्या आयातित खाद्यान्न खाने योग्य हैं, या नहीं। सड़े हुए खाद्यान्नों को तो वे बाहर ही रुकवा देते हैं। फिर माल को सही तरतीब से गाड़ियों में भरवाने के लिए, वे उसे यथासंभव छोटा व पैक (pack) कर देते हैं। इन सब उठापटक वाले क्रियाकलापों से, उस मुख्य अंतर्राष्ट्रीय राजद्वार व साथ लगते राजमार्ग को गंभीर क्षति पहुँचने का भय सदैव बना रहता है। वैसे भी कई बार, बाहर से प्रवेश करने वाले अधिकाँश माल के किनारे बहुत तीखे व ऊबड़खाबड़ होते हैं , या उनमें आधी-अधूरी गढ़ी हुई बड़ी-२ कीलें या बाहर निकले हुए बड़े-२ सरिये आदि होते हैं। निरीक्षकों की असावधानी से , कई बार वे तीखी वस्तुएँ उन्हें दृष्टिगत नहीं होतीं। उन वस्तुओं की खरोचों से , राजद्वार के आसपास के राजमार्ग के दोनों ओर के डंगों के बहुत से पत्थर निकले होते हैं , जिससे डंगे के वे स्थान नाजुक बन जाते हैं। लेखक ने देखा कि एक बड़ी मालगाड़ी ने पीछे (back) होते हुए, एक वैसे ही नाजुक हिस्से को टक्कर मार दी थी, जिससे डंगे का वह भाग, उसकी पूरी ऊंचाई तक व ३-४ फुट की लम्बाई तक टूट गया था। देहरक्षक उस समय उस आपाधापी में व्यस्त थे , और उधर विशेष जनजाति के शत्रु अच्छा अवसर जानकर, वहाँ से देहदेश के अन्दर प्रविष्ट हो गए। यद्यपि बाद में तो डंगे की मुरम्मत कर दी गई थी। वे शत्रु भी बहुत चालाक किस्म के थे। उन्हें पता था कि उस अति विशाल व भयानक पत्थर के डंगे के बीच में सुरक्षाबल नहीं आ सकते थे। अतः वे रस्सियों से लटक-२ कर, उस डंगे के बीच में पहुँच कर, अपनी पीठ पर लादी गई स्वचालित मशीनों से सुरंग (drilling) बनाने लगे। उन्होंने उन बड़े-२ पत्थरों के बीच में सुरंगों के जाल बिछा दिए थे। उससे वह डंगा अस्थिर हो गया था, और उसके सहारे से बने राजमार्ग के ऊपर वाहनों की आवाजाही दुर्घटना को न्यौता दे सकती थी। राजा ने भी खतरे को भांपते हुए, भय के कारण राजमार्ग को बंद करवा दिया। देहदेश की अर्थव्यवस्था क्षीण हो रही थी , और उसकी हालत दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही थी। सैनिकों की पहुँच उन शत्रुओं तक नहीं हो पा रही थी, क्योंकि शत्रुओं ने अपनी सुरंगों तक पहुँचने के छोटे-मोटे तंग रास्तों को तबाह कर दिया था। किसी तरह, रस्सियों से लटक-२ कर, थोड़े से सैनिक वहाँ पहुँच गए। उन्हें पता था कि वे रस्सियों से घटनास्थल तक नीचे तो उतर सकते थे, परन्तु

ऊपर नहीं चढ़ सकते थे। अतः विशेष जांबाज कमांडों (commandos) को उस अभियान (mission) के लिए चयनित किया गया था। फिर भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ। क्योंकि शत्रु वहाँ पर पहले से ही मोर्चा संभाले हुए थे , अतः उन्होंने शीघ्र ही सैनिकों को मारकर, उनकी लाशों के ढेर बिछा दिए। उससे वहाँ की अधिकाँश भूमि लाल रंग से रंगी हुई प्रतीत हो रही थी। उससे उन सुरंगों में , कई स्थानों पर तो ऐसा लग रहा था कि जमीनी लोहे की अत्यधिक मात्रा वाला लाल पानी, चश्मे के रूप में फूट पड़ा था। देहदेश से सैनिकों की आपूर्ति अत्यधिक रूप से बढ़ गई थी। परन्तु वे संघर्ष क्षेत्र की विकट व प्रतिकूल परिस्थितियों को अधिक देर तक सहन नहीं कर पा रहे थे , जबकि बीहड़ों के अभ्यस्त शत्रु उन्हें लगातार धूल चटाते ही जा रहे थे। सैनिक वहाँ पर इसलिए भी खुलकर नहीं लड़ पा रहे थे, क्योंकि चारों ओर अपने साथियों की लाशें देखकर वे भयभीत व हतोत्साहित जैसे हो गए थे। साथ में, खुलकर गोलियां (bullets) चलाने से, ज़िंदा बचे हुए सैनिकों के आहत होने का डर भी उनको सता रहा था। वे उनमें से बचे हुए सैनिकों को , चिकित्सा के लिए ले जाने का भी प्रयास कर रहे थे , परन्तु सफल नहीं हो पा रहे थे , और उनको बचाने के चक्कर में खुद ही मारे जा रहे थे। जब राजा को लगा कि युद्ध के कारण देहदेश के संसाधन बहुत तेजी से क्षीण हो रहे थे, और वे शत्रु, राजमार्ग के उस अतिमहत्त्वपूर्ण भाग को पूर्णतया तबाह करने पर ही तुले हुए थे, तब राजा को अपने मंत्रियों की आपातकालीन बैठक बुलानी पड़ी। निर्णय लिया गया कि शत्रुओं पर हवाई हमला किया जाए। फिर वायुसेना को उस मिशन/अभियान की कमान सौंपी गई। देखते ही देखते बड़े-२ लड़ाकू विमानों ने वहाँ पर बम बरसाने शुरु कर दिए। परन्तु वे बम शत्रुओं तक पहुँच ही नहीं पा रहे थे, क्योंकि वे लम्बी सुरंगों की गहराइयों में छिपे हुए थे। वे आसपास के क्षेत्रों को तीव्रता से लूट कर , अपनी सुरंगों के अन्दर सुरक्षित होकर छिप जाते थे। अंत में, चट्टानचूरक (daisycutter bom) बमों के प्रयोग पर राजसभा में आम सहमति बनती है। फिर बम गिरा कर चट्टानों को तोड़ा जाता है, जिससे सुरंगें खुल जाती हैं। उससे उन शत्रुओं तक अस्त्र-शस्त्रों की मार भी पहुँच जाती है। उससे असंख्य शत्रु मारे जाते हैं, और असंख्य शत्रु मिट्टी-मलबे के बीच में छिप कर भाग जाते हैं। फिर उन टूटी -फूटी सुरंगों से उन शत्रुओं की लाशों को और उनकी गंदगियों को बाहर निकालकर, बड़े-२ ट्रकों में भर दिया जाता है, और देहदेश के बाहर के बीहड़ों में उड़ेल दिया जाता है, क्योंकि देहदेश में रहकर वे गंदगियाँ आम लोगों को व्यथित व उद्वेलित कर सकती हैं। फिर मुरम्मत करके, डंगे को पूर्ववत ही तैयार कर लिया जाता है, ताकि उसके ऊपर बने हुए मुख्य राजद्वार के साथ, प्रारम्भिक राजमार्ग भी स्थिर व जोखिम से रहित हो जाए। फिर राजा भी उससे सम्बंधित भय व चिंता को छोड़कर , मालगाड़ियों की आवाजाही पुनः चालू करवा देता है। धीरे-२ देहदेश की अर्थव्यवस्था सुधरती हुई, पुनः पटरी पर लौट आती है।

वेद-पुराण, ईश्वर का भजन-कीर्तन आदि इसलिए बने हैं, ताकि इनके आचरण के समय द्वैताद्वैत, और अधिक प्रतिष्ठित व सुदृढ़ हो सके, क्योंकि कई बार व्यवहारकाल में अत्यधिक व्यस्तता के कारण, द्वैताद्वैत की समुचित प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। इसी तरह से, व्यस्तता के बाद के शाँतिपूर्ण काल में यदि शविद से द्वैताद्वैत को प्रतिष्ठित किया जाए, तो तन-मन की सारी पुरानी थकान मिट जाती है, और व्यक्ति दोगुने उत्साह से नया कर्म करने के लिए उठ खड़ा होता है। कर्म करने से उत्पन्न हुआ कर्मबंधन भी इससे क्षीण हो जाता है। आधुनिक विज्ञानी भी यही कहते हैं कि कर्म करने से ही कर्म व संकल्प आदि संपूर्ण नहीं हो जाते , क्योंकि वे बीज-रूप में मन में विद्यमान रहते हैं। कर्म के बाद किए गए योग /तद्कर्मसम्बंधित चिंतन आदि से ही वह कर्म पूर्णतः किया हुआ बन पाता है। वास्तव में , योग/शांतिपूर्ण चिंतन से वे कर्म /संकल्प मन में पुनः प्रकट हो जाते हैं , जिनके प्रति अनासक्ति स्वयं ही विद्यमान रहती है, यद्यपि योग की शक्ति के अंतर्गत पाले जा रहे साक्षीकरण के अभ्यास से अनासक्ति अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है। इससे वे शाँत हो जाते हैं।

विकसित देहदेश बहुत चतुर होते हैं। वे अपने द्वारा बनवाए गए नए देश पर भी विश्वास नहीं करते। उन्हें यह डर होता है कि नया देहदेश तरक्की करके उनका अनुसरण नहीं करेगा, और न ही उनके मार्गदर्शन के अंतर्गत रहना चाहेगा। इसलिए वे भविष्य की ऐसी संभावना को ही मिटा देना चाहते हैं। वास्तव में जब तक देहदेश नया-२ व संसाधन-विहीन होता है, तभी तक वह विकसित देशों के आश्रित होकर रहता है। इसलिए उसे उनकी सभी शर्तें माननी पड़ती हैं। यदि वह शर्तें नहीं मानता है , तो वे उससे बलपूर्वक मनवाते हैं, जिसका वह प्रतिकार करने की सामर्थ्य नहीं रखता है। ऐसी ही एक घटना लेखक ने भी देखी थी। बहुत सारे विकसित देशों के राष्ट्राध्यक्ष अपने गगनगामी व सर्वसुविधासंपन्न यानों में सवार होकर , एक नए देश के राजा से मिलने के लिए, उस नए देश में इकट्ठे हुए थे। नए राजा ने भी उनका भरपूर स्वागत किया , जिससे सभी राजा अत्यंत प्रफुल्लित हो गए। फिर गोलमेज (round table) बैठक हुई। वे बड़े प्यार व सम्मान के साथ नए राजा के सामने अपनी कूटनीतिक चिंता प्रकट कर रहे थे। नया राजा उनको बार-२ आश्वासन दे रहा था, और अपने विदेशमंत्री के साथ-२ विदेश-सचिवों के माध्यम से भी आश्वासन दिला रहा था कि उनका राष्ट्र कभी भी कोई ऐसा-वैसा कदम नहीं उठाएगा, जिससे अन्य राष्ट्रों को, विशेषकर उन विकसित राष्ट्रों को परेशानी हो। मित्रराष्ट्र उसकी उन बातों पर विश्वास ही नहीं कर रहे थे, क्योंकि वे पहले भी कई बार झूठे वादों के झांसों में आ चुके थे। जब किसी तरह से बात नहीं बनी , तो उन्होंने नए राजा को बलपूर्वक बंदी

बना लिया, और उसके पूरे देश को अपने कब्जे में ले लिया। फिर उन्होंने उसके परमाणु -संयंत्रों के बारे में खोजबीन करवाई और उनकी वास्तविक स्थिति का पता लगवाया। फिर उन्होंने अपने देशों से उनके ऊपर मिसाईल -हमले (missile attacks) करवाए। उससे उन परमाणु-प्रतिष्ठानों की आधारशिलाएं भी पूरी तरह से ध्वस्त हो गईं। वहाँ पर काम कर रहे बहुत से परमाणु वैज्ञानिक, परमाणु विशेषज्ञ व अनेक कर्मचारी भी उस हमले में मारे गए। जब विकसित देशों को पूरा विश्वास हो गया कि वहाँ पर कोई भी ऐसी -वैसी वस्तुएँ व ऐसे-वैसे व्यक्ति शेष नहीं बचे थे, जिनसे भविष्य में परमाणु-अस्त्र विकसित किए जाकर, उनसे उन पर हमला किया जाता, तब उन्होंने अपने वहां से हमले बंद करवा दिए। उन्होंने बंदी राजा को भी आजाद कर दिया, और फिर वे उसके देहदेश के निर्माण में उसकी भरपूर सहायता करने लगे। वे प्रभावित क्षेत्र में राहत व पुनर्वास के कार्यों में लग गए, और वहाँ पर ऊंचे-२ भवन, खेल के मैदान, पाठशालाएं व अन्य प्रतिष्ठान पूर्ववत ही पुनर्स्थापित कर दिए गए। सड़कें उन्होंने पहले की तरह ही बिछा दीं। जल-आपूर्ति व जल-निकासी से सम्बंधित प्रणालियों की भी उन्होंने पूर्ववत पुनर्स्थापना कर दी। वे उस क्षेत्र को निरंतर सुरक्षा भी प्रदान करते रहे, ताकि अस्थायी अस्थिरता का लाभ उठा कर वहाँ पर उग्रवादी न पनप पाते, जो नए देहदेश के लिए खतरा पैदा कर सकते थे। जब उस देश की हालत स्थिर हो गई, और कहीं पर भी कोई संदेह नहीं रहा, तब सभी राष्ट्राध्यक्ष अपने-२ देशों को वापिस लौट गए। लेखक ने देखा कि भविष्य में नया राष्ट्र कभी भी परमाणु-क्षमता को प्राप्त नहीं कर सका, और सदैव उन विकसित राष्ट्रों का हितैषी बन कर ही रहा।

अद्यतने जनसंख्यासघनकाले तान्त्रिकयौनसंबन्धः जनसंख्यानियन्त्रणस्य उत्तमोपायः। अनेन विवाहसुखः, आध्यात्मिकविकासः अवांछितगर्भात् च निर्भयं त्रीणि एकसार्धं प्राप्तानि।

कई बार बड़ा देश छोटे देश की अत्यधिक सहायता करता है। वह उसे विकसित करने की हरसंभव कोशिश करता है। एक बार लेखक ने देखा कि एक बड़े राष्ट्राध्यक्ष ने किसी एक गरीबदेश के राजा को अपना अन्तरंग मित्र बना लिया। उससे वह छोटा राष्ट्राध्यक्ष अत्यंत प्रफुल्लित रहने लगा। उसको प्रफुल्लित देखकर, उसके देश के सभी लोग भी अत्यंत प्रफुल्लित हो गए, और पहले से भी दोगुने उत्साह से काम करने लग गए। उससे वह गरीब देहदेश बहुत प्रगति करने लगा। बड़ा राजा छोटे देहदेश की अनेक प्रकार से सहायता भी करने लगा। उससे गरीब देहदेश में उतनी अधिक सामर्थ्य व शक्ति आ गई थी कि वह एक नए देश का निर्माण व विकास करने में भी सक्षम हो गया था। यद्यपि बड़ा राष्ट्राध्यक्ष बुद्धिमान था, और उसे पता था कि वैसा होने से गरीब देश को हानि होने की संभावना थी। उसका विकास रुक सकता था, और यहाँ तक कि उसका पतन भी हो सकता था। उसके देश के संसाधन, बीहड़ क्षेत्रों में नए देश के निर्माण व विकास के लिए खर्च हो जाते, जिससे उसके अपने देश के लोग विद्रोह कर देते। मौक़ा देखकर, बाहरी शत्रु भी हमला कर सकते थे। पूरे देश में अशिक्षा , बेरोजगारी, गरीबी व बीमारियाँ फैल सकती थीं। अतः बड़े राष्ट्राध्यक्ष ने छोटे राष्ट्राध्यक्ष को इस प्रकार का दुस्साहसिक कदम उठाने से रोक लिया। इस प्रकार से वे दोनों राष्ट्राध्यक्ष लम्बे समय तक एक -दूसरे के लिए जीते रहे, और साथ मिलकर, अपने दोनों देहदेशों को भी विकास की पटरियों पर आगे दौड़ाते रहे। एक बार किन्हीं दो राष्ट्राध्यक्षों की आपसी मित्रता के बीच में , उनके अपने-२ निजी स्वार्थों के कारण खलल पड़ गया था। बड़े राजा ने षड्यंत्रपूर्वक या मूढ़तावश , नए निर्माण को हरी झंडी दे दी थी , और छोटे राजा ने भी मूढ़तावश उसकी योजना को अंगीकार कर लिया था। बीहड़ क्षेत्रों में विस्तारित करने के लिए, नए देश का विकास प्रारंभ कर दिया गया था। उसके लिए, मूलदेश के संसाधनों का भरपूर दोहन किया जा रहा था। कुछ समय बाद, उससे निकट भविष्य में आने वाली समस्याओं का पूर्वाभास बड़े राजा को हो गया। उसने वह बात छोटे राजा को समझाई, और वह उसकी बात को समझ कर, उसकी बनाई हुई योजना पर अमल करने के लिए तैयार भी हो गया, यद्यपि कई बार छोटा राजा तैयार नहीं भी होता। योजना के अनुसार, छोटे राजा ने विकसित हो रहे नए देश की मुट्ठी भर जनता को बहुत समझाया कि वे अपने मूलदेश में वापिस लौट आएं, परन्तु वे अपने लिए नए देश के निर्माण की जिद पर अड़े रहे, और राजा की बात को उन्होंने सिरे से खारिज कर दिया। अलगाववादी-नेताओं के साथ बैठकों के कई दौर चले, परन्तु फिर भी वे नहीं माने। यहाँ तक कि उस राजा के अपने देश के मंत्री व अधिकारी भी कटौती (comission) व रिश्वत आदि खाकर देशद्रोही बन गए थे, और नए देश के पक्ष में हो गए थे। राजा ने फिर अपने मुख्यमंत्री को अपने पक्ष में लिया, और विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिए, दोनों ही विदेश-दौरे पर चल दिए। उनके पास विद्रोहियों को कुचलने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं रह गया था। उन्होंने विदेशों के साथ बहुत से व्यापारिक समझौते किए, जिसके तहत उन्हें उनसे भारी मात्रा में विदेशी हथियार भी खरीदने थे। फिर मुद्राभण्डार (treasury) से धन निकलवा कर, उन्होंने वह धन अपने विदेशव्यापारविभाग को सौंप दिया, और कार्य को अंजाम तक पहुंचाने की सारी जिम्मेदारी भी उसे ही दे दी। वे दोनों तो केवल मार्गदर्शन व निरीक्षण करने वाले ही बने। शीघ्र ही हथियारों का एक बड़ा जखीरा हासिल हो गया। उन हथियारों से डरकर, देहदेश के बड़े-२ अधिकारी भी विद्रोह को छोड़ कर, राजा के समक्ष झुक गए। उससे संसाधन उपलब्ध न होने

से, विद्रोही लोग स्वयं ही क्षीण हो गए। राजा मोहवश व दयावश उनको मरवाना नहीं चाहता था , इसलिए उसने उन्हें, उनके मुखिया के साथ ज़िंदा पकड़वा कर, देहदेश के बाहर के बीहड़ों में छुड़वा दिया। यद्यपि वे वहाँ पर प्रतिकूल वातावरण के कारण स्वयं ही नष्ट हो गए थे।

शविद व कुण्डलिनीयोग, दोनों साथ-२ काम करते हैं। जब कुण्डलिनी पर ध्यान केन्द्रित होता है, तब कुण्डलिनीयोग से गुजारा चलाया जाता है। जब मानसिक दोलन की स्थिति होती है, तब शविद के अद्वैत की सहायता ली जाती है। शविद के अद्वैत से व्यर्थ /हानिकारक प्रकार की भावनाओं व संवेदनाओं पर रोक लगती है, और मस्तिष्क में एक सकारात्मक माहौल बनता है। इससे मानसिक ऊर्जा संरक्षित हो जाती है , जो कुण्डलिनी को स्वयमेव पुष्ट करती है। वैसे, अंततः दोनों विधियों से कुण्डलिनी ही पुष्ट होती है। यौनयोग में प्रेमिका (consort) का पृथक व्यक्तित्व नहीं देखा जाता। इसमें तो सम्बन्ध बनाते हुए दो देहदेश देखे जाते हैं, उनके देहपुरुष देखे जाते हैं, और उनके दो राजा देखे जाते हैं, या एक राजा और एक रानी देखी जाती है। शविद की धारणा निरंतर मन में बसा कर रखी जाती है। शविद के अनुसार ही देहदेशों के प्रत्येक भागों को अनुभव किया जाता है। इससे स्वयं ही शुद्ध मानसिक कुण्डलिनी पुष्ट होती रहती है, क्योंकि कुण्डलिनी वास्तव में देहपुरुष को प्रदान किया गया एक रूपाकार ही तो है। वास्तव में जिस कुण्डलिनी का ध्यान किया जाता है; वह अधिकाँशतः अद्वैतशील गुरु, देवता या किसी अन्य प्रेमी व्यक्ति के रूप की ही बनी होती है। देवता या दिवंगत पुरुष के रूप की कुण्डलिनी तो और भी अधिक अद्वैतशील होती है, क्योंकि उसमें जीवन व मृत्यु, दोनों के भाव भी साथ-२ विद्यमान होते हैं।

एक रहस्यमयी बात और है। जिस तरह से साधनामय, अद्वैतमय, अनासक्तिमय, शान्तियुक्त, मानसिक विकारों से रहित व आनंदमयी जीवन जीते हुए व्यक्ति खुद ही तांत्रिक यौनयोग में प्रवीण हो जाता है ; उसी तरह से किसी के रूप की , विशेषतः देवीरानी के रूप की मानसिक नित्यसमाधि (तांत्रिक यौनयोग) से उपरोक्त गुण स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। यही तो कुण्डलिनीयोग /तांत्रिक यौनयोग का रहस्य भी है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी ऐसा ही हुआ था। क्योंकि उसके मन में प्रथम देवीरानी के रूप की नित्यसमाधि, यौनाकर्षण से स्वयं ही लग गई थी, अतः उपरोक्त सभी गुण उसमें स्वयं ही उत्पन्न हो गए, जो उसे पूर्वोक्त क्षणिकात्मज्ञान तक ले गए।

वैसे कई बार उस विकासशील देश के मंत्री व अधिकारी डरते भी नहीं , और नए देश के निर्माण में डटे रहते हैं, विशेषतः नए देश के विकास के प्रारम्भ में, जब उनमें कुछ नया करने-गुजरने का जुनूनी शौक विद्यमान होता है। ऐसे में राजा को थक -हार कर उनसे समझौता करना पड़ता है, या उनके हठ के आगे झुकना पड़ता है, या देहदेश को जोखिम में डालकर, प्रभावितक्षेत्र में सीधे ही सेना भिजवा कर, विद्रोहियों से सीधा व आमने सामने का युद्ध करना पड़ता है। इससे कई बार सफलता भी मिल जाती है, और कई बार देहदेश की स्वयं की सत्ता भी डावांडोल हो जाती है। अंतिम विकल्प को आजमाए जाने पर, मुखिया सहित सारे विद्रोही मारे जाते हैं। उस हमले में , नए देश के विकसित हो रहे संसाधन भी हवाई हमलों से नकारा हो जाते हैं। यदि शीघ्रता से नए देश के उन निष्प्राण संसाधनों को मूलदेश से दूर न फेंका जाए , तो उन विद्रोहियों के द्वारा इकट्ठे किए गए संसाधनों को लूटने के लिए, अनेक प्रकार के उग्रपंथी वहाँ पर धावा बोल देते हैं। वे उग्रपंथी उसको अपना देश घोषित कर देते हैं। उनसे निपटना मूलदेश के लिए बहुत कठिन हो जाता है। यदि वे धार्मिक कट्टरपंथी अधिक समय तक अन्दर रहें, तो पूरे देश में युद्ध व विद्रोह फैल सकता है। अतः प्रयास किया जाता है कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र मारा जाए, या देश से बाहर किया जाए। वे शत्रु नए देश के संसाधनों व विविध संरचनाओं में इस तरह से छिप जाते हैं कि मूलदेश को नजर ही नहीं आते। वह बचे-खुचे नए देश को बमबारी करके ध्वस्त भी नहीं कर सकता, क्योंकि उससे आसपास के क्षेत्रों के मूलदेशनिवासी हताहत हो सकते हैं, जिससे मूलदेश में विद्रोह की आग फैल सकती है। अतः उसे नए देश के जीर्ण -शीर्ण संसाधनों को अपने देश से दूर ले जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं सूझता। वैसे भी उग्रपंथियों के उत्पात से , आसपास के लोग बहुत दुखी व परेशान हुए होते हैं। मुख्य समस्या तब आती है , जब उस बीहड़ से बाहर जाने वाला एकमात्र चट्टानी रास्ता तंग या बंद होता है। हो सकता है कि वह उग्रपंथियों की शरारत हो , ताकि उनके द्वारा कब्जाए गए विभिन्न संसाधन, बाहर न निकाले जा सकें। बड़े-२ यान्त्रिकहस्त-यंत्र (jcb machines) विदेशों से मंगवाए जाते हैं। कुछ सुरक्षित व हल्के प्रकार की बारूदी सुरंगें भी मंगवाई जाती हैं। उन मार्ग-स्थित चट्टानों को तोड़ने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। कई बार तो मार्ग के बीच में बहुत ही सख्त, हीरे या मूंगे की चट्टानें आ जाती हैं, जिन्हें तोड़ना लगभग असंभव सा ही होता है। कई बार पर्यावरणप्रेमी-मूलदेशनिवासी उन मशीनों व बारूदी सुरंगों का विरोध करने के लिए वहाँ पर इकट्ठे होकर, विरोध प्रदर्शन करने लग जाते हैं, और काम नहीं करने देते। यह देख कर राजा दुखी हो जाता है, और कई बार काम को रुकवा भी देता है। विद्रोहियों के शाँत होने पर , वह काम को फिर से चालु करवा देता है। ऐसी विपरीत अवस्थाओं में, नए देश के साजो-सामान को तंग रास्ते से ही, यांत्रिक बल लगा कर अन्दर से बाहर को धकेलना पड़ता है, या बाहर से खींचना पड़ता है, या दोनों ओर से बल का प्रयोग किया जाता है। इसके असफल होने पर , पूर्वोक्तानुसार नया निकासी-द्वार भी बनाना पड़ जाता है। ऐसी परिस्थितियों में, कई बार बहुत समय भी लग जाता है, जिससे देशप्रेमियों के अन्दर बढ़ते असंतोष के कारण, राजा भी तीव्र वेदना का अनुभव करने लगता है। बहुत

से शत्रु, जो साजो-सामान में छिपे होते हैं, वे भी सामान के साथ ही बाहर हो जाते हैं। जो कुछ अन्दर बच जाते हैं, उन्हें समाप्त करने के लिए एक विशेष सफाई-अभियान (cleaning operation) चलाया जाता है। उन शत्रुओं को विविध अस्त्रों व शस्त्रों से, ढूंढ-२ कर मारा जाता है। इस तरह से, कई बार वह देहदेश पुनः पटरी पर लौट भी जाता है।

प्रेमयोगी वज्र के मन में गुरु तब से लेकर मजबूती से जुड़ गए थे, जब से प्रथम देवीरानी उसके मन के साथ जुड़ गई थीं। उन दोनों के चित्र उसके मन में साथ-२ रहते थे। वे दोनों चित्र एक-दूसरे को बढ़ाते रहते थे। उसके विवाह के पूर्व भी, प्रस्तुत पुस्तक के पूर्वोक्त, उसके द्वारा लिखित एकश्लोकी तंत्रशास्त्र के बल से, उसके मन में गुरु का चित्र वैवाहिक संबंधों के साथ, विवाहपूर्व ही समारोपित हो गया था। उसी चित्र ने उसे शीघ्रातिशीघ्र विवाह के लिए प्रोत्साहित किया, क्योंकि वह कुण्डलिनीचित्र जागृत होना चाहता था। मन की उसी निष्ठासंपन्न धारणा के कारण , उसका वैवाहिक जीवन स्वतः ही, उसके अनजाने में ही तंत्र में परिवर्तित हो गया , और वह कुण्डलिनी को क्रियाशील करता रहा। यद्यपि उसका प्रारंभिक वैवाहिक जीवन अपेक्षा के विपरीत, उतना मधुर नहीं था। यहाँ तक कि वह कई बार, व्यस्त व स्पर्धापूर्ण साँसारिकता से उत्पन्न तनाव के कारण, अपनी धर्मपत्नी के साथ हल्की हाथापाई भी कर देता था। फिर अचानक से उसमें इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आ गया कि वह यौनयोग वाला सौहार्द उत्पन्न कर पाया। वास्तव में, वह उसके अद्वैतभाव, विशेषतः शविद के कारण प्रज्वलित होती हुई कुण्डलिनी की शक्ति से ही संभव हुआ। उसके निकट के लोग व अन्य परिचित लोग; विशेषतः जो अपने आप को आसक्ति व अहंकार के साथ शुद्ध, आध्यात्मिक, धार्मिक, आदर्शवादी व लोकशिक्षक आदि समझते थे; वे उससे अप्रत्यक्ष रूप से या कहो कि मन से कुछ बुझे-२ रूप से व्यवहार करते रहते थे, संभवतः उसके तांत्रिक दृष्टिकोण के कारण। लेखक ने एक स्थान पर देखा कि विवाह के समय, वधु को ब्राम्हण पुरोहित (गुरु) के आँचल में प्रत्यक्षरूप से बैठा कर, उन गुरु के द्वारा आशीर्वाद देने की प्रथा थी। वास्तव में इससे गुरु का चित्र वधु के चित्र के साथ जुड़ जाता है , जिससे वर को अप्रत्यक्षतंत्र का लाभ मिलने की संभावना बढ़ जाती है। इसका अर्थ है कि वह प्रथा तंत्रसम्मत ही थी। इससे यह सिद्ध होता है कि हिंदु पद्धति की अधिकाँश मान्यताएं व प्रथाएं मनोविज्ञानसम्मत या तंत्रसम्मत ही हैं।

एक विशेष जनजाति के आक्रमणकारी तो चालाकी की हद ही तोड़ देते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि बड़े ही सुनियोजित ढंग के साथ उन चालाक शत्रुओं ने देहदेश के विदेशविभाग व मुख्यायातद्वार, दोनों के ऊपर एकसाथ आक्रमण कर दिया था। उन्हें पता था कि यदि उन्होंने देहदेश के केवल विदेशविभाग को ही पंगु किया, तो उसके मित्रदेश उसे मानवता के आधार पर सहायता पहुंचाएंगे, जिससे वे उसको शीघ्रता से लूट कर बर्बाद नहीं कर पाएंगे। अतः उन शत्रुओं की दूसरी पलटन ने देश के मुख्यायातद्वार व उससे जुड़े हुए मुख्य राष्ट्रीय राजमार्ग के ऊपर भी उसी समय हमला बोल दिया , जिस समय उनकी पहली व मुख्य पलटन ने विदेशविभाग के ऊपर आक्रमण किया था। वास्तव में, वे शत्रु अधिक शक्तिशाली नहीं थे, और अधिक समय तक देहसैनिकों के सामने, युद्ध में टिके रहने की क्षमता नहीं रखते थे। इसीलिए उन्होंने छद्मयुद्ध का सहारा लेते हुए, उन दो नाजुक स्थानों पर एकसाथ आक्रमण करके, देहदेश को चकमा देने की पूरी कोशिश की, ताकि जल्दी से जल्दी युद्ध को अपने पक्ष में करते हुए, उसे अंजाम तक पहुंचा सकते। जो देश बहुत ही कमजोर होते हैं, वे तो कई बार उनके आगे घुटने भी टेक देते हैं। फिर लेखक ने देखा कि देहदेश का विदेशविभाग ठप हो गया था। वह विदेशों के साथ कोई भी व्यापारिक समझौता नहीं कर पा रहा था। वह न तो वस्तु -सेवाओं का निर्यात कर पा रहा था , और न ही उनके आयात के लिए आवश्यक विदेशीमुद्रा को विदेशों के प्रति प्रेषित कर पा रहा था। ऐसे में स्वाभाविक ही था कि उसे कुछ भी विदेशी सहायता प्राप्त नहीं हो सकती थी। परन्तु कुछ उदारहृदय व दयावान विदेशी राजाओं से उसकी दयनीय हालत देखी नहीं गई। उन्होंने इकट्ठे होकर राशि (fund) एकत्रित की, व उससे बहुत सा साजो-सामान खरीदवा कर, उसे प्रभावित देश के मुख्य राजद्वार के निकट रखवा दिया। परन्तु उस राजद्वार के व साथ लगते राजमार्ग के गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त होने के कारण, वहाँ पर तैनात देहपुरुष उस सामान को अपने देश के अन्दर नहीं ले जा सके। उस समय देहदेश की सारी व्यवस्था भंडारित करके रखी गई वस्तुओं से चल रही थी। उससे भंडारघर तेजी से क्षीण होते जा रहे थे। फिर लेखक क्या देखता है कि देहदेश के धैर्य के आगे शत्रु हार रहे थे। उनमें से बहुत से तो भाग गए, व बहुत से, सैनिकों के द्वारा मार दिए गए। फिर अभियंता व मिस्त्री लोग वहाँ पहुँच गए, तथा उन्होंने राजद्वार व राजमार्ग को शीघ्र ही दुरस्त कर दिया। विदेशविभाग की हवाईपट्टियों (air strips) पर जहाँ-२ भी बमबारी (bombardment) हुई थी, वहाँ-२ पर ही नए जोड़/पैच (patch) लगा दिए गए, जिससे हवाई सेवा पुनः बहाल हो गई। विदेशी समझौतों का दौर फिर से प्रारम्भ हो गया, जिनसे विदेशों के साथ वस्तु -सेवाओं (commodity and service) व मुद्रा (currency) का आदान-प्रदान/विनिमय (exchange) फिर से प्रारंभ हो गया। लेखक ने यह भी देखा कि अविकसित व नए -२ देशों के अन्दर, वे शत्रु अत्यंत ही उग्र व प्रभावशाली हो जाते थे। उनमें तो वे उनके यातायात-मुख्यालय तक पहुँच जाते थे, और वहाँ पर जम कर तोड़-फोड़ मचाते थे। अधिकाँश देश तो वैसे हमलों से निपट ही नहीं पाते थे।

जिसकी कुण्डलिनी क्रियाशील होती है , उससे सभी जीव एक विशेष लगाव महसूस करते हैं। उसके आसपास प्रसन्नता व तनावहीनता का वातावरण छाया रहता है। आसपास के लोग उसे प्यार व सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। वे उसी की तरह मस्त , अद्वैतशाली व प्रेमपूर्ण बन जाते हैं। ये सभी अनुभव प्रेमयोगी वज्र को हुए थे, और यहाँ तक कि जागरण वाले दिन तो उसे अपने प्रति भक्ति (devotion) का एक अत्यल्प सा भाव भी दिखा था। कुण्डलिनीजागरण के निकट तो व्यक्ति को चारों ओर ही अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। लाख चाहने पर भी कोई उसका बुरा नहीं कर सकता। इसके विपरीत, उसकी ओर फेंकी गई बुराई, उसकी भलाई के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उसकी दबी हुई शुभेच्छाएं भी पूरी होने लगती हैं, अशुभ नहीं, क्योंकि कुण्डलिनी सब कुछ समझती है । वास्तव में कुण्डलिनी ही व्यक्ति को एक व्यक्तित्व प्रदान करती है। अधिकाँश लोग तो बिना व्यक्तित्व के ही जीवन जी रहे होते हैं।

एक अन्य शत्रुजाति तो उपरोक्त शत्रुओं से भी बढ़ कर होती है। लेखक ने देखा कि उन शत्रुओं ने देहदेश के मुख्य राजद्वार के साथ -२, प्रारम्भिक राजमार्ग; देश की हवा- वितरण प्रणाली (gas distribution system) व कृषिविभाग, इन तीनों के ऊपर एकसाथ आक्रमण कर दिया था। उन्होंने विदेशविभाग को छोड़ दिया था, क्योंकि उन अति चतुर शत्रुओं को पता था कि फिर अंतर्राष्ट्रीय समझौतों व क्रियाकलापों से, आक्रमित देहदेश को कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता था, यदि वे उसके लिए विदेशों से की जा रही आपूर्ति को ही बंद करवा देते। उन्हें यह भी पता था कि बिना आयात के भी , देहदेश में भंडारित किए गए विविध पदार्थों से, देहपुरुष कुछ समय तक जीवित रह सकते थे, परन्तु हवा (oxygen) के बिना तो वे शीघ्र ही मर जाते, क्योंकि उस देश में हवा को भंडारित करके रखने की कोई भी उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी। उन शत्रुओं ने हवा से भरे हुए सिलिंडरों (gas-cylinders) को ढोने वाली गाड़ियों के चालकों को मारकर, उनकी गाड़ियों को नष्ट कर दिया। वे अनेक प्रकार के अत्याधुनिक अस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने हवाई-बमबारी करके, हवा-वितरण प्रणाली के मुख्यालय को अत्यधिक रूप से क्षतिग्रस्त कर दिया, तथा आसपास की सड़कों को भी उड़ा दिया। हवा वितरण करने वाले पाईपों (gas distribution pipes) को भी जगह-२ पर तोड़-मरोड़ दिया, और उनके अन्दर मिट्टी-पत्थर व कूड़ा-कचरा आदि भरकर, उनको स्थान-२ पर, पूर्णरूप से या आँशिक रूप से अवरुद्ध कर दिया। उससे समस्त देहपुरुषों का दम घुटा जा रहा था। इसी तरह से , उनकी तीसरी पलटन (unit) ने किसानों को निशाना बनाना शुरु कर दिया। वे किसानों की पैदावार को बड़े पैमाने पर नष्ट करते जा रहे थे। उन्होंने फसलों से लहलहाते हुए अनगिनत खेतों को आग के हवाले कर दिया। जो भी किसान उन्हें नजर आ रहे थे, वे उन्हें अपना निशाना बनाते जा रहे थे। वास्तव में वे किसानों के ऊपर बहुत क्रोधित होकर आगबबुला हो रहे थे, क्योंकि वे किसान अधिक से अधिक अन्न उगा कर, उसे कृषिविभाग के माध्यम से, हवा-आपूर्ति करने वाले विभाग को उपलब्ध करवा रहे थे, जिससे उन्होंने अधिक तेजी से काम करते हुए, पूरे देश में हवा की निर्बाध आपूर्ति बना कर रखी हुई थी। उन्होंने जल को भंडारित करके रखने वाले बड़े-२ बांधों को विस्फोटों से उड़ा दिया था, ताकि किसान लोग खेती न कर सकते। उससे पेयजल की समस्या भी उत्पन्न हो गई थी। प्रत्येक प्रभावित स्थान पर मजदूरों, मिस्त्रियों व अभियंताओं का जमावड़ा लगा हुआ था, परन्तु वे भी भोजन-पानी व हवा की कमी से जूझते हुए, कुछ अधिक नहीं कर पा रहे थे। थोड़ा-बहुत जो कुछ भी वे मुरम्मत (repair) कर रहे थे, उन्हें उग्रपंथी तुरंत तोड़ रहे थे। सैनिक लोग भी इन्हीं समस्याओं से ग्रस्त होने के कारण, उन शत्रुओं का मुकाबला खुल कर नहीं कर पा रहे थे। वे शत्रु तो बीहड़ों में रहने के अभ्यस्त थे, और कम हवा में भी गुजारा चला लेने में पूर्णतः सक्षम थे। उनमें से बहुत से शत्रु तो रहस्यमयी निर्वात -विद्या (एक विशेष प्रकार का योग) में भी दक्ष थे, जिससे वे बिना हवा के भी जिन्दा रह सकते थे। वे तो उन सभी चीजों को खा लेते थे, जो कुछ उन्हें मिल जाता था, यहाँ तक कि देहपुरुषों के मरे हुए शरीरों को भी कच्चा या पका कर खा जाते थे। परन्तु सभी देहसैनिकों का अधिकाँश भोजन शाकाहार -श्रेणी का होता था, जो उस समय कम ही उपलब्ध हो रहा था। बड़ी समस्या तो तब आती है, जब उन अजनबी शत्रुओं के पीछे-२, देश के स्थानीय व जाने-पहचाने शत्रु भी लूट में हिस्सेदारी प्राप्त करने के लिए वहाँ पहुँच जाते हैं। ऐसा ही कुछ वहाँ पर, लेखक को भी दिखाई दिया था। पहले तो वे स्थानीय शत्रु शाँत रहते थे, और देहदेश में, बिना नुकसान पहुंचाए अक्सर आते-जाते रहते थे। इसीलिए देहदेश को कभी भी उनके ऊपर संदेह नहीं हुआ था , परन्तु अब वे अपना असली रंग दिखाने लग गए थे। वैसे यह बात भी सत्य है कि मित्र व शत्रु की पहचान विपत्ति में ही होती है। उन स्थानीय मौकापरस्तों पर विश्वास करने के कारण, देहदेश ने कभी भी उनके द्वारा हमला किए जाने के बारे में नहीं सोचा था। इस वजह से , देहदेश ने उनके द्वारा संभावित हमले से निपटने के लिए, कोई भी ठोस कार्ययोजना नहीं बना रखी थी, जिससे उन स्थानीय शत्रुओं से निपटना, मूलशत्रुओं से भी कठिन हो रहा था। मूलशत्रु अपरिचित थे, व दूरदराज के क्षेत्रों से सम्बंधित थे। उनकी संस्कृति, उनकी भाषा, उनका रहन-सहन आदि सभी कुछ देहपुरुषों से पूर्णतया भिन्न था। इसीलिए देहदेश ने कभी भी उन पर विश्वास नहीं किया था, जिससे उसने उनके द्वारा संभावित घुसपैठ के विरुद्ध विशेष कार्ययोजना, पहले से ही बना कर रखी हुई थी। साथ में, कभी-कभार देहदेश में घुसने वाले उन विदेशी शत्रुओं को देहसैनिक गिरफ़्तार भी कर लेते थे , और उनका सख्त परिचय/ रिमांड (remand)

लेते हुए, उनसे उनकी युद्धनीतियों व अन्य गुप्त सूचनाओं को उगलवा लेते थे। इन्हीं पूर्व की तैयारियों की सहायता से , देहदेश ने शीघ्र ही मूलशत्रुओं से घुटने टिकवा दिए। इसके विपरीत, स्थानीय शत्रु; जो अपनी भाषा, संस्कृति व रहन-सहन के मामले में, देहपुरुषों से बहुत मेल खाते थे, वे बड़ी सिरदर्दी पैदा कर रहे थे। देहदेश ने उन्हें अपना समझ कर, उनके ऊपर विश्वास करते हुए, जैसे साँप को ही दूध पिला दिया था। फिर लेखक ने देखा कि जब पूरा देश उनके आगे जवाब देने लगा; तब राजा अपने देश से सारी आशाओं को छोड़कर, अपने मित्र राजा से सहायता प्राप्त करने के लिए चल पड़ा। उससे उसका देश तो जैसे-तैसे करके पराजित होने से बच गया, परन्तु कई बार वैसे विपत्तिग्रस्त देश को देखकर, उसके मित्र भी उससे मुंह मोड़ लेते हैं, और कई बार तो दोनों या बहुत सारे मित्र राजा, आपस में मिल कर भी उनका मुकाबला नहीं कर पाते। इससे पूरा देश पराजित होकर उन स्थानीय शत्रुओं के कब्जे में चला जाता है, जो विश्वास का गला घोंटने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ते।

शविद के जैसे क्रियापूर्ण अद्वैत का आचरण करते -२, एक समय ऐसा आता है, जब व्यक्ति रूपांतरित (transformed) सा हो जाता है। उसका दिमाग खाली-२ सा रहने लगता है, उसकी स्मरणशक्ति घट सी जाती है, व वह सभी से अलग-थलग सा रहने लगता है। उसकी सोचने व निर्णय लेने की क्षमता भी घट जाती है। वह अवस्था उसके कुण्डलिनीजागरण वाले स्तर की प्रारम्भावस्था ही होती है। इससे कुछ परेशान व सशंकित सा होकर , वह कुण्डलिनीयोग की ओर स्वयं ही मुड़ जाता है। इस रूपांतरण का यह अर्थ नहीं है कि उसके मस्तिष्क की किसी भौतिक संरचना में परिवर्तन होता है, अपितु यह है कि उसका स्वभाव व दृष्टिकोण रूपांतरित हो जाता है। वह अद्वैतमयी , अनासक्त, सत्त्वगुणसंपन्न, आनंदमयी व सर्वजीवप्रेमी बन जाता है। संभव है कि उसके मस्तिष्क के सूक्ष्म नाड़ी-परिपथ (neuronal circuits) स्तरोन्नत हो जाते हों, क्योंकि वे नाड़ी-परिपथ ही तो व्यक्ति के व्यवहार व दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं। इसके लिए शाँत, आरामदायक, प्रेमपूर्ण, सत्संगमयी व सहयोगात्मक परिवेश के साथ, अन्य अनुकूल परिस्थितियाँ भी उपलब्ध होनी चाहिए; ठीक वैसी ही, जैसी किसी बच्चे के विकास के लिए चाहिए होती हैं। यदि अनुकूल परिवेश न मिले, तो रूपांतरण बहुत धीमा हो जाता है, और यहाँ तक कि तब तक के लिए रुक भी सकता है, जब तक कि उपरोक्त सौहार्दपूर्ण व आध्यात्मिक परिवेश उपलब्ध नहीं हो जाता। क्योंकि प्रेमयोगी वज्र को उपरोक्त सभी उपयुक्त परिस्थितियाँ लगभग समयानुसार मिल गई थीं , अतः उसके रूपांतरण को उससे तीव्र बल मिला , जिससे उसकी कुण्डलिनी जागृत हो गई। ऐसा रूपांतरण कुण्डलिनीजागरण के बाद भी चलता रहना चाहिए , आत्मज्ञान होने तक। यद्यपि तब पहले की अपेक्षा कुछ कम अनुकूलताओं से भी काम चल सकता है। आत्मज्ञान के बाद भी हल्की-फुल्की अनुकूलताएँ मिलती रहनी चाहिए, व साधना निरंतर जारी रहनी चाहिए, अन्यथा उसका रूपांतरण विपरीतगामी (reverse) भी हो सकता है, जिससे योगी पुनः पूर्ववत आम स्थिति में भी पहुँच सकता है, क्योंकि सभी कुछ सापेक्ष ही तो है। कुण्डलिनीजागरण के बाद , क्योंकि रूपांतरण तीव्र गति से हो रहा होता है , जिसके लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, इसलिए साँसों की गति भी बढ़ जाती है। मानसिक रूपांतरण से शारीरिक रूपांतरण भी हो जाता है , जैसे कि मस्तिष्क के लिए रक्तप्रवाह का बढ़ना और मस्तिष्क के कार्य में सुधार आदि-२, ताकि समाधि-चित्र निरंतर बना रह सके। जब कुण्डलिनीजागरण के बाद प्रेमयोगी वज्र का रूपांतरण होने लगा, तब उसमें वही लक्षण पुनरावृत (repeat) होने लगे, जो उसके क्षणिकात्मज्ञान से पहले की तांत्रिक समाधि के समय उत्पन्न हुए थे। उसके मस्तिष्क में प्रथम देवीरानी के रूप की कुण्डलिनी को पछाड़ कर , उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष के रूप की कुण्डलिनी पुष्ट हो रही थी , जो शरीर की ऊर्जा के बड़े भाग का भक्षण कर रही थी। वह थका-२ सा रहने लगा था। उसका मन महान आनंद से पूर्ण व शाँत रहने लग गया था। पुरानी/दूसरी कुण्डलिनी व उससे सम्बंधित मामलों के मस्तिष्कीय -परिपथ (brain circuits) क्षीण हो रहे थे, और नई कुण्डलिनी से सम्बंधित नए नाड़ी-परिपथों का निर्माण हो रहा था। उसमें बच्चों की तरह का विकास जारी था, और उसे नींद भी खूब आ रही थी। उसके दिमाग की धारणा-शक्ति बढ़ रही थी आदि-२। क्योंकि उसने अपनी कुण्डलिनी (मानसिक वृद्धाध्यात्मिकपुरुष) को अपनी आत्मा के रूप में अनुभव कर लिया था, अतः उसके मस्तिष्क में ऐसे नए नाड़ी-परिपथों का निर्माण हो रहा था , जो उसके गुरु के चित्र को उसके मस्तिष्क में सदैव बना कर रख पाते। आम आदमी में वैसे विशेष परिपथ नहीं होते, जिससे उन्हें अपनी आत्मा के रूप में अँधेरा ही अनुभव होता है। इसका कारण यह होता है कि उनकी वह समाधि (कुण्डलिनीजागरण) ही नहीं लगी होती है , जो अनादिकाल से भटकती हुई अन्धकारमयी आत्मा के साथ , गुरु/कुण्डलिनी के प्रकाशमयी चित्र को जोड़ती है। वही समाधि मस्तिष्क को स्तरोन्नत (upgrade/update) करवाती है। साथ में, इस समाधि/कुण्डलिनीजागरण में, अन्धकारयुक्त आत्मा चमकती कुण्डलिनी के साथ एकाकार हो जाता है, अर्थात आत्मा प्रकाशपूर्ण हो जाता है। इससे साधक अनजाने में ही, स्वयं ही अपनी आत्मा को स्वच्छ करने के अभियान में लग जाता है। क्योंकि अद्वैतभाव से ही आत्मा स्वच्छ हो सकती है , अतः उसमें अद्वैतभाव स्वयं ही विकसित होने लगता है , जो उसकी जीवनशैली को भी सकारात्मक रूप से रूपांतरित कर देता है।

देहदेश में पार्थमन की तरह ही, थारमन नाम का अधिकारी होता है, जो अत्यंत प्रभावशाली होता है। वास्तव में वह पार्थमन का ही एक नजदीकी रिश्तेदार होता है। उसका स्थायी निवासस्थान केंद्रीय मुख्यालय के थोड़ा सा नीचे होता है, जहाँ पर तंग क्षेत्र की एक उथली सी घाटी होती है। वह दो तरफ से खुली हुई होती है; जिससे वहाँ पर निरंतर ही तेज, शुद्ध, ठंडी व प्राण से भरपूर हवाएँ चलती रहती हैं। वहाँ पर एक शिव-मंदिर भी होता है, जिसमें मधुर स्वरों में वाद्य-कीर्तन निरंतर चलता रहता है। थारमन एक प्रकार से देहदेश की समानांतर सरकार (parallal government) ही होती है। उसका प्रभाव प्रत्येक देहपुरुष पर होता है, और सभी देहपुरुष उसकी बात मानते हैं। वास्तव में, वह देहदेश का आदरणीय धार्मिक गुरु ही होता है, जिसके ज्ञानोपदेशों को सभी लोग निरंतर सुनते रहते हैं। जो लोग उसकी प्रत्यक्ष सभाओं में नहीं जा पाते ; वे टीवी, रेडियो, इंटरनेट आदि के माध्यम से उन्हें सुनते रहते हैं। यदि वे गुरुदेव यह कहें कि कर्मयोग ज्ञानयोग से श्रेष्ठ है , तो सभी लोग पूरे जोर-शोर से कर्मयोग का ही आचरण करने लगते हैं। वे अपने गुरु के वचनों के ऊपर इतनी अधिक निष्ठा रखते हैं कि उन्हें फिर कर्मयोग के अतिरिक्त सभी कुछ व्यर्थ लगने लगता है। यद्यपि वैसा आत्यंतिक कर्मयोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए तो लाभकारी होता है, परन्तु भौतिक रूप से वह असंतुलन उत्पन्न कर देता है। इससे लोग कर्मोन्मादी बन जाते हैं, और एक पल के लिए भी आराम से नहीं बैठते। इससे कई बार तो वे अनजाने में ही , मानवता का भी उल्लंघन कर बैठते हैं। वे हर समय बेचैन रहते हैं, और निरंतर ही खाते, पीते व काम करते रहते हैं। प्रेम, शान्ति, चैन व सुख आदि गुण तो केवल उनके मन में ही विद्यमान रहते हैं , बाहर तो कम ही नजर आते हैं, क्योंकि किसी के पास किसी से भी, बिना काम के बात करने का न तो समय होता है, और न ही इच्छाबल। यह स्थिति असंतुलित होती है, क्योंकि इससे देहदेश के अन्दर दुर्घटनाओं, बिमारियों, व विभिन्न विशिष्टतासंपन्न कार्यों में गुणवत्ताहीनता की संभावना बहुत बढ़ जाती है। इससे लोगों में तनावजनित रोग, जैसे कि हृदयाघात व उच्च रक्तचाप आदि भी बढ़ जाते हैं। रजोगुण के बढ़ने से देहपुरुषों में क्रोध, चिड़चिड़ापन, पागलपन व मानसिक भ्रम आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि वे गुरुदेव देहदेश में हर स्थान पर ज्ञानयोग का ही प्रचार -प्रसार कर रहे थे। उससे वहाँ के सभी लोगों ने अपना काम करना लगभग छोड़ ही दिया था, और वे निरंतर योगसाधना में ही लगे रहते थे। अपने शरीर को कायम रखने के लिए वे कुछ आसन भी कर लेते थे। उससे उस देश की अर्थव्यवस्था बहुत सुस्त हो गई थी। देश के बाहरी शत्रु व अंदरूनी विद्रोही भी सिर पर चढ़े जा रहे थे। खेतों की पैदावार बहुत घट गई थी। औद्योगिक उत्पादों का निर्माण भी अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच गया था। सभी देहपुरुष साधु - संन्यासियों की तरह वैरागी जैसे बन गए थे , और कम से कम संसाधनों से ही अपना गुजारा चला रहे थे। उस असंतुलित देश के मित्रदेश उसे मदद पहुँचाना चाह रहे थे, परन्तु वह देश उस मदद को भी ठुकरा रहा था, क्योंकि अपने देशवासियों की ओर से मांग न होने के कारण, उसे किसी चीज की आवश्यकता ही महसूस नहीं हो रही थी। वह स्थिति भी असंतुलित ही थी। वास्तव में ऐसे असंतुलित उपदेशों वाले प्रवचन थारमन तब करता है , जब राजा उसका विशेष ध्यान नहीं रख पाता, जिससे वह अपने आप को अपमानित महसूस करता है। साथ में, उसे अपने पास उपलब्ध संसाधनों की भी कमी महसूस होती है। उसे उचित पोषण, उचित आवास व अन्य छोटी-मोटी सुविधाओं में छोटी-मोटी त्रुटियाँ भी बहुत अखरती हैं, क्योंकि वास्तव में वे एक प्रकार से सर्वसम्मानित राष्ट्रपुरोहित ही होते हैं, और अपना तनिक सा अपमान भी सहन नहीं कर सकते। एक बार जब वह बिगड़ जाता है, तो उसे मनाना बहुत कठिन या यूं कहो कि असंभव-सदृश ही हो जाता है, क्योंकि उसमें गुरु दुर्वासा जैसा हठ व क्रोध विद्यमान होता है। अतः उसके कोप से तभी बचा जा सकता है, यदि सदैव उसका संपूर्ण ध्यान रखते हुए, उसके अपमान की संभावना ही उत्पन्न न होने दी जाए। उसे दूध -चावल से बनी हुई खीर बहुत पसंद होती है, जिसकी कमी तो उसे कभी भी महसूस नहीं होनी चाहिए। यद्यपि असंतुलित उपदेशों को थारमन दे रहा था , परन्तु वह भी तो अपने उन गुरु के उपदेश के अनुसार ही चल रहा था , जो मुख्यालय में विराजमान थे। इससे तो राष्ट्रगुरु वे ही सिद्ध हुए , परन्तु आम जनता तो थारमन को ही राष्ट्रगुरु मानती थी, क्योंकि उसी का जनता से सीधा संपर्क होता था। वास्तव में सभी आदेश, निर्देश व उपदेश मुख्यालय से ही शुरु होते हैं। इसका अर्थ है कि परमादेशक , परमनिर्देशक व परमगुरु लोग मुख्यालय में ही निवास करते हैं। कई मामलों के लिए तो , मुख्यालय-स्थित उन परमपुरुषों की भी, वरिष्ठता के अनुसार एक से अधिक स्तर व श्रेणियां होती हैं। फिर लेखक ने देखा कि स्थिति को संतुलित करने के लिए , उस देहदेश ने विदेशों से थारमन गुरुओं को अपने देश में आने का ससम्मान न्यौता भेजा। उनके आगमन पर राजा ने उनका बहुत स्वागत -सत्कार किया। सेवा से प्रसन्न होकर, उन थारमन गुरुओं ने कर्मयोग का उपदेश देना प्रारंभ कर दिया। उससे स्थिति संतुलित हो गई। फिर कर्मयोग व ज्ञानयोग पुनः एक-दूसरे को पुष्ट व पूरित कर रहे थे। उससे सभी देहपुरुष लौकिक सुख के साथ -२, आध्यात्मिक सुख का भी उपभोग करने लगे , जिससे उनके इहलोक व परलोक, दोनों एकसाथ सुधर गए, और वे पूर्ण संतुष्ट हो गए। देहदेश फिर से दिन दोगुनी और रात चौगुनी तरक्की करने लगा।

छोटे-मोटे मुख्यालय तो देहदेश में स्थान-२ पर बने होते हैं, परन्तु सभी विभागों के सबसे बड़े या केन्द्रीय मुख्यालय तो राजधानी में ही होते हैं। वह राजधानी उस पवित्र, दिव्य, शान्तिप्रद व आनंदमयी स्थान पर बनी होती है, जिसे सुमेरु पर्वत भी कहते हैं।

थारमन के पड़ौस में, कालीकट नाम का एक ईर्ष्यालु व्यक्ति भी रहता है, जो पूर्वोक्त पार्थमन के रुतबे से हमेशा जलता-भुनता रहता है। पार्थमन का गाँव उसके गाँव के निकट ही होता है, और दोनों आपस में दूर-पार की रिश्तेदारी का सम्बन्ध भी रखते हैं। इसलिए दोनों का कभी -कभार, समारोहों आदि में मिलना -जुलना होता रहता है। यह सत्य ही है कि ईर्ष्या भी मध्यम स्तर की जान -पहचान वालों से ही होती है , न तो अति निकट के परिवारजनों के साथ, और न ही अनजानों के साथ। कालीकट भी पार्थमन की तरह ही लोकश्रेष्ठ बनना चाहता है , परन्तु अधिकाँश लोग उसको पहचानते ही नहीं, क्योंकि उसमें प्रशंसा व चर्चा के योग्य कोई विशेष गुण, उन्हें दृष्टिगोचर नहीं होते। वह गुणवान बनने का बहुत प्रयत्न करता है, परन्तु हर बार असफल हो जाता है। लोकप्रियता के प्रति उसकी महान आसक्ति ही उसको सस्ती लोकप्रियता को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। उसके लिए वह ऐसे हथकंडे अपनाने लग जाता है, जो पार्थमन के सद्कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने लग जाते हैं। उससे उसे अनायास ही पार्थमन की लोकप्रियता का लाभ मिल जाता है, यद्यपि उसकी वह लोकप्रियता उसके नायक के रूप में नहीं, अपितु एक खलनायक के रूप में मिलती है। इसी तरह से, देहदेश के प्रशासकों के हाथ भी पार्थमन को नियंत्रित करने वाला , एक अचूक व अहिंसक हथियार अनायास ही लग जाता है। इससे पार्थमन निरंकुश व अतिवादी नहीं बन पाता। परन्तु पार्थमन की कमी से जूझते हुए देश में, कालीकट अत्यंत शक्तिशाली बन जाता है, और देश के लिए एक खतरा बन कर उभर आता है। इसलिए प्रशासकों को कालीकट के ऊपर, कुछ समय के लिए तब तक अस्थायी रूप से लगाम लगानी पड़ती है, जब तक कि पार्थमन का प्रभाव पूर्ववत नहीं हो जाता।

अत्यधिक व्यस्त जीवन में अद्वैतनिष्ठा को निरंतर बनाए रखने के लिए , भारी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में , इस ऊर्जा की वांछित मात्रा भी व्यस्तता की मात्रा के अनुसार ही न्यूनाधिक होती रहती है। अधिक ऊर्जा की मांग को पूरा करने के लिए , संतुलित जीवन व संतुलित आहार की आवश्यकता होती है। कई बार तो वैदिक-माँसाहार की भी आवश्यकता पड़ जाती है।

एक बार लेखक ने देखा कि कुछ सनकी किस्म के शत्रु , उस समय मुख्य राजद्वार से अन्दर घुस गए थे, जिस समय वहाँ के कुछ पहरेदार, कोई चोट आदि के लगने से घायल हो गए थे, और आसपास के लोग, सिपाही आदि उनकी देखभाल में व्यस्त थे। वे वहीँ पर झाड़ियों में छिप गए , और वहाँ के सारे तामझाम व वहाँ की सभी कार्यप्रणालियों का बारीकी से निरीक्षण करने लगे। जैसे ही शाम हुई, वैसे ही सभी कर्मचारी अपने-२ कार्यालय बंद कर के, अपने-२ घरों को चले गए। वहाँ पर थोड़े से ही रात्रि -चौकीदार (night watchman) रुके रहे, जो थोड़ी देर में ही आधी नींद में चले गए , और झपकियाँ लेने लगे। उससे शत्रुओं ने उन्हें आसानी से बंधक बना लिया। फिर उन कमजोर व बुद्धिहीन शत्रुओं ने देहदेश का व्यापार बाधित करने के लिए; एक बड़ी ही मूर्खतापूर्ण, हास्यपूर्ण व विचित्र योजना की रूपरेखा बनाई। उन्होंने प्रवेशद्वार के समीप बने हुए गति-अवरोधक (speed breaker) में तोड़-फोड़ शुरु कर दी। उन्होंने एक विशेष, मजबूत व चिपचिपे पदार्थ का प्रयोग करके, उस गति-अवरोधक को बहुत ऊंचा उठा दिया। जो चौकीदार उनके काम करने का वह तरीका देख रहे थे , उनके पेट हँस-२ कर फूल गए थे। कुछ तो इतने ज्यादा हँसे कि वे बेहोश ही हो गए। गति -अवरोधक के बहुत ऊंचा उठने से, उसके ऊपर माल से भरी हुई गाड़ियों का चढ़ना अत्यंत कठिन हो गया , और जो गाड़ियाँ चढ़ रही थीं, वे उससे चिपकती जा रही थीं। उस गति-अवरोधक से जुड़े हुए राजकक्ष के ध्वनिसूचक (alarms) भी निरंतर बजने लगे, जिससे राजा बड़ा परेशान रहने लगा। उन सभी कारणों से, यातायात बंद करवा दिया गया। वास्तव में उन शत्रुओं की मंशा थी कि बाहर से आपूर्ति बंद करवा के , देश के सभी भंडारघर खाली होने दिए जाते, जिससे पूरा देश क्षीण होकर उनके समक्ष घुटने टेक देता। वैसे भी वे शत्रु अधिक शक्तिशाली नहीं थे , तभी तो उन्होंने आक्रमण करने का वह विचित्र व छद्मयुक्त तरीका खोजा था। दिन के समय, मजदूर व अभियंता लोग कार्यालयों में हाजिर होने के बाद , क्षेत्रीय-दौरे (field-tour) पर निकल जाते थे, और उपरोक्त प्रभावित क्षेत्र में भी पहुँच जाते थे। वे दिन भर कड़ी मेहनत करके , उस गति-अवरोधक को ठीक कर जाते, परन्तु रात को वे कपटी शत्रु फिर से वहाँ पहुँच जाते, और चौकीदारों को भांग सुंघा कर अपना काम कर जाते। कई दिनों तक वैसा ही चलता रहा। अभियंताओं को समझ में नहीं आ रहा था कि वैसा चमत्कार कैसे हो रहा था, क्योंकि चौकीदार लोग डर के मारे सच्चाई को छिपा रहे थे। तब तक वे शत्रु भी देहदेश की युद्धनीति को समझ कर आत्मविश्वास से भर गए थे। वैसे भी वे देहदेश के सभ्य व मानवतापूर्ण लोगों की दुर्दशा व क्षीणता को देख कर , उत्साह व जोश से भर गए थे, क्योंकि सच्चे लोगों का दुःख ही कपटी लोगों की खुराक होती है। एक दिन अभियंताओं ने कुछ सैनिकों को साथ लेकर व उस प्रभावित क्षेत्र में ही ठहर कर, रात भर उसका चोरी-छिपे निरीक्षण करने की योजना बनाई। उन सभी ने विद्युत -दीपक लगी हुई टोपियाँ (battery run torchlight helmets) पहन रखी थीं, ताकि अँधेरे के कारण, देखने में व निशाना लगाने में कठिनाई न होती। आधी रात होने के बाद , जैसे ही शत्रु साथ लगते जंगल की झाड़ियों व चट्टानों के बीच में से निकल कर आगे आए , वैसे ही सैनिकों ने उन्हें ललकारा। जब वे भागने लगे , तब सनिकों ने उनके ऊपर गोलीबारी (firing) शुरु कर दी। शत्रु कमजोर थे, व उनके पास निम्न स्तर के अस्त्र-शस्त्र थे, इसलिए बचने के लिए वापिस मुड़कर, वे फिर से झाड़ियों

व चट्टानों के बीच में खो गए। कुछ शत्रु मारे भी गए। सैनिक पूरी रात भर उस विकट वन की तलाशी लेते रहे , परन्तु उन्हें वे शत्रु कहीं पर भी दिखाई नहीं दिए। छिपने में तो उन्हें जैसे विशेषज्ञता ही हासिल थी। छापामारी युद्ध में भी वे निपुण थे। सैनिकों को भी इस बात की आशंका पहले से ही थी , इसीलिए वे पूरी रात भर जागते हुए, सतर्क रहे। कई दिन उसी लुकाछुप्पी में बीत गए। देश बहुत क्षीण हो गया था। देश के लिए केवल जल व हवा (gas) का ही निर्यात हो पा रहा था। जल ढोने वाली गाड़ियों को छुट्टी दे दी गई थी , और उन्हें मुरम्मतशाला (workshop) भेज दिया गया था। जल के परिवहन के लिए ताम्बे की बड़ी-२ नालियों (copper-pipes) को बिछा दिया गया था। जब देहदेश की आतंरिक क्रियाप्रणाली उन शत्रुओं से नहीं निपट सकी, तब अंततः राजा से ही सहायता माँगी गई , क्योंकि वही तो देश का सर्वोच्च महामहिम होता है। वैसे , राजा तो केवल देश की विदेशसम्बंधित कार्यप्रणालियों को ही संभालता है, इसलिए वह समझ गया था कि मामला अवश्य ही गंभीर हो गया था। फिर त्वरित कार्यवाही करते हुए, राजा ने चट्टानचूरक विस्फोटकों व आग्नेयास्त्रों को मंगवाया। उससे सेना की शक्ति बहुत बढ़ गई। सैनिकों ने उन अस्त्रों के प्रयोग से प्रभावित क्षेत्र की चट्टानों व झाड़ियों को ख़ाक बना दिया। इस तरह से, छिपने के लिए कोई जगह न बचने के कारण, सारे शत्रु शीघ्र ही मारे गए। फिर अभियंताओं के प्रयास से, धीरे-२ वह गति-अवरोधक भी पूर्ववत दुरस्त हो गया, और उस पर गाड़ियों की आवाजाही पुनः शुरु हो गई। उससे देहदेश के भण्डारघर पुनः भर गए, और उसकी अर्थव्यवस्था पुनः संतुलित हो गई।

धर्मयुद्ध का रहस्य भी शविद में ही छिपा हुआ है। वास्तव में , समस्याग्रस्त स्थिति में अद्वैत का आचरण महान फलदायक होता है। मृत्यु से बड़ी समस्या भला क्या हो सकती है? परन्तु वास्तव में मृत्यु का केवल भय ही होना चाहिए, वास्तविक मृत्यु नहीं। मृत्यु के बाद किसी को कैसा ज्ञान, कैसा कुण्डलिनीजागरण व कैसी मुक्ति? इसीलिए धार्मिकशास्त्रों में स्थान-२ पर युद्धादि का वर्णन है, व मृत्यु आदि का वर्णन है, ताकि मृत्यु का भय बना रहे। संभवतः कुछ चरमपंथी धर्मों के मूलरूप में, ऐसे साँकेतिक धर्मयुद्ध की ओर ही इशारा किया गया था , परन्तु बाद के अनुभवहीन विद्वानों ने उसे गलत ढंग से समझा या गलत ढंग से वर्णित किया। इसी तरह , यदि अद्वैत को सुखी/भावपूर्ण क्षणों में भी धारण किया जाए , तो उससे पुष्ट हुई कुण्डलिनी दुःख/अभाव में भी सहारा देती है। कहा भी है कि सुख में सुमिरन सब करे, दुःख में करे न कोए; जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होए।

योगासन व प्राणायाम करते समय, अन्दर जाती हुई प्रत्येक साँस (प्राण) की, कुण्डलिनीचित्र के ऊपर पड़ते रहने की भावना करनी चाहिए। इससे कुण्डलिनीचित्र निरंतर बना रहता है, और उसकी स्पष्टता भी बढ़ती जाती है; चाहे वह किसी भी चक्र पर रखा गया हो, यहाँ तक कि यदि किसी भी चक्र पर न होते हुए कहीं पर भी हो, जैसे कि शरीर के किसी भी भाग, आकाश, अनजाने स्थान आदि में। साँस की दोनों ओर की गति से भी कुण्डलिनी को प्राणबल प्रदान किया जा सकता है। उदाहरण के लिए , यदि कुण्डलिनी नाभिचक्र पर हो , तो उसे ऊपर की ओर से , अन्दर जाने वाली साँस से प्राणबल दिया जाता है, और नीचे की ओर से, बाहर जाने वाली साँस से। इस तरह से, कुण्डलिनी चाहे जहाँ कहीं पर भी हो, उसे उच्छ्वास व निःश्वास, दोनों से पुष्ट किया जा सकता है। अन्दर-बाहर जाती हुई दोनों साँसों से एकसाथ, कुण्डलिनी-अग्नि को, विशेषतः कपालभाति के समय प्रज्वलित किया जा सकता है; जैसे कि हाथ से झलने वाले पंखे से, दोनों दिशाओं की हवाओं से अग्नि पुष्ट होती रहती है। कपालभाति के समय , मूलाधार पर कुण्डलिनी को शक्ति देती हुई साँसों का ध्यान इस प्रकार से भी कर सकते हैं , जैसे वायु इंजन को शक्ति देती है। जैसे इंजन का धुंआ बाहर निकलता है , वैसे ही कुण्डलिनी की अपशिष्ट वायु अर्थात उसका धुंआ बाहर निकलते हुए अनुभव किया जा सकता है। अन्दर जाती हुई साँस की कल्पना , कुण्डलिनी पर गिरते हुए एक बार कर लो, व उस धारणा को मन में बना कर रखो, फिर मन को ढीला छोड़ दो, ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर सके। इससे जो कुछ भी वह सोचता है, उससे व उपरोक्त धारणा के मेल की शक्ति से कुण्डलिनी ही पुष्ट होती रहती है। मन के साथ जबरदस्ती कम ही करनी चाहिए। उसे प्यार से, युक्ति से व उसकी स्वतंत्रता को हानि पहुंचाए बिना ही वश में करना चाहिए। इन्हीं तथ्यों को दर्शाते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि प्राणों को वश में करने से मन वश में हो जाता है, अर्थात प्राणों के माध्यम से ही मन वश में आता है, अन्यथा नहीं। संगीत की आवाज से जो प्राण निकलता है, उसकी भावना भी कुण्डलिनी के ऊपर गिरते हुए रूप में करनी चाहिए , चाहे कुण्डलिनी कहीं पर भी अनुभव हो रही हो। यह भी एक प्रकार का संगीतयोग है, जो बहुत प्रभावशाली होता है। अप्रत्यक्ष रूप से भी संगीत से कुण्डलिनी को बल प्राप्त होता है। वास्तव में गीतों से अद्वैत पुष्ट होता है। नए-पुराने गीतों से नए-पुराने समय का अनुभूत जनजीवन पुनः स्मरण हो आता है। उससे उत्पन्न भावों पर अद्वैतभाव का आरोपण करने से अद्वैत को अत्यधिक पुष्टि प्राप्त होती है, जिससे कुण्डलिनी भी पुष्ट हो जाती है। चक्रसाधना (kundalini rotation) में, यौगिक बन्ध लगा कर साँस रोकते समय, पूर्वोक्तानुसार बारी-२ से प्रत्येक चक्र पर पूरे शरीर की वायु (प्राण) के इकट्ठे होने की व उससे कुण्डलिनी चित्र की अग्नि के प्रज्वलित होने की भावना करनी चाहिए। जिस तरह धरती की शक्ति के, नीचे से ऊपर की ओर के दबाव से व सूर्य की शक्ति के ऊपर से नीचे की ओर के दबाव से , भौतिकपुष्प खिल जाता है; उसी प्रकार ऊपर से नीचे की ओर भरी जाने वाली साँस (प्राण) के साथ आवश्यकतानुसार लगाए जाने वाले जालंधरबंध से नीचे जाता

हुआ प्राण तथा मूलबंध व उड्डीयानबंध से ऊपर उठ रहा प्राण, जिस स्थान पर या विशेषतया जिस कुण्डलिनीचक्र पर, दोनों इकट्ठे होकर मिश्रित हो जाते हैं; वहाँ पर मानसिकपुष्प (कुण्डलिनी) खिल जाता है।

देहदेश के बाहर के जंगलों में व ऊंचे-२ पर्वतों पर, कई बार वैसी भयानक वर्षा हो जाती है, जो रुकने का नाम ही नहीं लेती। उससे देहदेश में भी बाढ़ की संभावना बढ़ जाती है। इसीलिए अपनी सुरक्षा के लिए, देहदेश के द्वारा अपनी सीमा पर, चारों ओर बहुत ऊंची व पक्की दीवार बनवाई गई होती है। परन्तु जिस स्थान से स्वच्छ व ताज़ी हवा देश के अन्दर प्रविष्ट होती है, वहाँ पर ऊंची दीवार नहीं बनाई जा सकती, क्योंकि वहाँ पर शुद्ध वायु का अधिकतम प्रवाह धरातल के निकट ही होता है, और ऊंचाई बढ़ने के साथ वायु का प्रवाह भी कम होता जाता है। इसलिए बाहरी बाढ़ से वह दीवार-रहित स्थान विशेषतया प्रभावित होता रहता है। बाहरी बीहड़ों में निरंतर वर्षा रहने से, वहाँ के नदी-नालों का जलस्तर अत्यधिक रूप से बढ़ जाता है। ऐसे में वह पानी बड़ी-२ लहरों के रूप में उछाल खाता हुआ, बार-२ दीवार से टकराता रहता है, और उपरोक्त कमजोर स्थान पर, थोड़ी-बहुत मात्रा में, अन्दर की संकरी घाटियों में भी प्रविष्ट होता रहता है। वहाँ से नीचे -२ जाता हुआ, वह जल जलवातविभाग के पूर्वोक्त विशाल व केन्द्रीय जलाशय में पहुँच जाता है, और वहाँ पहुँच कर कर्मठ देहपुरुषों के रोजाना के काम -काज में विघ्न उत्पन्न करता है। वह जल बहुत दूषित होता है, इसलिए उसे बड़े-२ मोटर-पम्पों की सहायता से बाहर निकालना ही पड़ता है। बाढ़ के बढ़ने से या दीवार के उस पूर्वखंडित भाग के टूटने से , परिणामतः अन्दर घुसते हुए बाढ़ के अशुद्ध पानी की भारी मात्रा से घाटियों की पतली सुरंगें आँशिक रूप से अवरुद्ध भी हो जाती हैं, जिससे वायु का प्रवाह भी बाधित हो जाता है। जब बाहर की बाढ़ सारी सीमाएं तोड़ देती है, तब तो उसके पानी से वात-सुरंगें पूर्णतया अवरुद्ध हो जाती हैं। वैसी अवस्था तो पूरे देश के अस्तित्व को ही हिला कर रख देती है।

वैसे, प्रेमयोगी वज्र, शविद के २० वर्षों के आचरण के दौरान, सनातन धर्म व संस्कृति के या उनका आचरण करने वाले लोगों की संगति में भी निरंतर बना हुआ था। इसका तात्पर्य यह है कि यदि शविद के प्रभाव के साथ, सनातन धर्म-संस्कृति का प्रभाव भी मानस-पटल पर पड़ता रहे, तो आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति अति शीघ्रतापूर्वक हो जाती है।

कई बार तो बीहड़ों के दावानल देश के सीमाक्षेत्र तक फैल जाते हैं, और सीमा को भारी क्षति पहुंचा देते हैं। आग की गर्मी से, सीमा की दीवार कमजोर पड़ जाती है, और कई बार तो जल कर नष्ट भी हो जाती है। जिस स्थान पर वह नष्ट हो जाती है, वहाँ से शत्रुओं की घुसपैठ की आशंका अचानक से बढ़ जाती है। उस आग की गर्मी से सीमा-क्षेत्रों का जल सूखता रहता है, जिससे वहाँ के निवासी त्राहि-२ करने लग जाते हैं। कई बार तो बाहरी जंगल की आग से सूखे हुए बाहरी प्राणी, चिल्लाते-तड़पते हुए, जली-टूटी हुई सीमा-भित्ति से अन्दर घुस जाते हैं। वे सीमाक्षेत्रों का सारा पानी पीते रहते हैं, व उसको बर्बाद भी करते रहते हैं; साथ में वापिस जाते हुए, अपनी आवश्यकतानुसार जल को चुराकर, अपने साथ भी ले जाते रहते हैं। कई उग्रपंथी तो बड़े-२ पाईपों (pipes) से, जल को देश के अन्दर से अपनी बस्तियों में पहुंचाते रहते हैं। फिर उन स्थानीय लोगों की पुकार सुन कर, केन्द्रीय सरकार देश के अंदरूनी भागों से, उस प्रभावित क्षेत्र के लिए जल की आपूर्ति करवाती है। परन्तु वह पानी भी सीमाक्षेत्रों में शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। फिर से पानी की आपूर्ति की जाती है, और वह पानी भी जल्दी ही सूख जाता है। इस तरह की बारम्बार की जलापूर्ति से, देश के अंदरूनी भागों में भी पानी का संकट गहरा जाता है। ऐसे में राजा को बीहड़ों की आग बुझाने के लिए, वायुसेना के विमानों के माध्यम से, पानी का छिड़काव करवाना पड़ता है, तथा अपने देश की टूटी हुई सीमाभित्ति की मुरम्मत भी करवानी पड़ती है।

कुण्डलिनी जब मूलाधार चक्र पर होती है, उस समय साँस रोकते हुए, जब स्वयं ही उड्डीयान बंध व मूल बंध लग जाते हैं, तो स्वयं ही उनसे मस्तिष्क तक एक काल्पनिक खिंचाव स्तम्भ (virtual sucking column) सा बन जाता है। वह स्तम्भ कुण्डलिनी को ऊपर की ओर खींचता रहता है। साथ में, मूलबंध से भी कुण्डलिनी को ऊपर की ओर धक्का लगता है। इससे कुण्डलिनी धीरे-२ ऊपर की ओर उठते हुए, मस्तिष्क तक पहुँच जाती है। इस प्रकार से, वहाँ पर दो बल एकसाथ कार्य कर रहे होते हैं, उड्डीयानबंध का खिंचाव-बल (pull-force) व मूलबंध का धक्का-बल (push-force)।

एक बार लेखक क्या देखता है कि एक नए देश के घिसे-पिटे हुए व टूटे हुए मुख्य राजमार्ग के ऊपर, बाहरी लुटेरों का बड़ा भारी जमावड़ा पैदा हो गया था। उस सड़क पर गिरी हुईं, अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ भी उन्हें अपनी ओर निरंतर आकर्षित कर रही थीं। वास्तव में, पूर्व में उस राजमार्ग से होकर ही उसे मूलदेश से भावनात्मक व वित्तीय सहायता प्राप्त होती थी। परन्तु जब वह नया देश स्वावलंबी बन जाता है , तो मूलराजा उस राजमार्ग को बंद करवा देता है, और उसकी सीमा पर स्थित द्वार के स्थान पर सीमा-भित्ति भी लगवा देता है, ताकि वहाँ से, बीहड़ों के उत्पाती लोग उस नए व अपरिपक्व देश के अन्दर प्रवेश न कर सकें। वास्तव में वह द्वार कोई समर्पित या स्थायी द्वार नहीं होता, अपितु कामचलाऊ व अस्थायी ही होता है। इसीलिए वहाँ पर सुरक्षा व्यवस्था का भी कोई विशेष व समर्पित इंतजाम नहीं होता। उसकी सुरक्षा वास्तव में तब तक मूलदेश ही करता है,

जब तक वह नया देश किंचित स्वावलंबी बनकर, मूलदेश से पृथक नहीं हो जाता। क्योंकि वह देश नया व अनुभवहीन था, अतः उसके नए-२ बने राजा ने उस राजमार्ग को बंद करवाने में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। वास्तव में मूलदेश व उसके मित्रदेश ही इस काम में नए देश की सहायता करते हैं। परन्तु उस बार मूलदेश का राजा व उसके मित्र भी, अनगिनत संभावित कारणों में से किसी कारणवश प्रमाद कर बैठे थे, और उस राजमार्ग को टूटी-फूटी हालत में, खुला ही छोड़ दिया था। हो सकता है कि राजा को नशे की लत पड़ गई हो, या वह बीमार हो, या उसके मित्र अवसरवादी हों। संभवतः वह नए देश के निर्माण व उसकी सहायता के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं ले रहा था। यह भी संभव है कि उसको संभालते हुए , उसके अपने देश की अर्थव्यवस्था नीचे गिर रही हो, या शत्रु, विद्रोही आदि प्रकार के लोग उसके अपने देश में उत्पात मचा रहे हों। कुछ भी कारण रहा हो , अवसरवादी शत्रुओं को नए देश में प्रविष्ट होने का एक स्वर्णिम अवसर तो मिल ही गया था। कई बार तो शत्रुओं की दृष्टि उस खुले पड़े राजद्वार पर बहुत समय तक पड़ती भी नहीं, जिससे वहाँ के स्थानीय लोगों व कर्मचारियों को उसे बंद करने का पर्याप्त समय मिल भी जाता है , और वे खतरे को भांपते हुए, बिना राजाज्ञा के ही उसे बंद करने लग जाते हैं। उसके कुछ समय बाद तो वे राजमार्ग को बंद करने का कार्य भी पूर्ण कर देते हैं। परन्तु उस वर्ष तो बीहड़ों के अच्छे व अनुकूल मौसमों के कारण, देश के चारों ओर शत्रुओं की भरमार हो गई थी। उनकी जनसँख्या बढ़ने से , उनकी उपभोज्य वस्तुओं की मांग भी अत्यधिक रूप से बढ़ गई थी, जिसको पूरा करने के लिए उनके पास कमजोर देश में घुसपैठ करने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं था। फिर जैसा हाल पूर्ववर्णित युद्धों में होता आया है, वैसा ही हाल वहाँ पर भी हुआ। उद्दंड शत्रुओं के ऊपर नियंत्रण कर पाना कठिन हो रहा था, और वे देश के अन्दर की ओर तेजी से बढ़े जा रहे थे। सबसे अधिक खतरा तो जलपरिशोधकयंत्र को था , जो उस राजद्वार के निकट ही, कुछ दूरी पर बना हुआ था। फिर लेखक ने देखा कि अचानक ही केंद्र के द्वारा भेजा गया अतिरिक्त सुरक्षाबल भी वहाँ पहुँच गया, और देखते ही देखते वहाँ पर घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। वह युद्ध कई महीनों तक चला। उसमें अत्याधुनिक अस्त्रों व विस्फोटकों का भी भरपूर प्रयोग किया गया। उससे आसपास के पहाड़ों की चट्टानें टूट-२ कर, मिट्टी-मलबे आदि के साथ फिसल कर राजमार्ग पर गिरती रहीं। उसके परिणामस्वरूप वह राजमार्ग पूर्णतः अवरुद्ध हो गया , जो फिर दुधिया रंग की सफेद चट्टानों के कारण बड़ी दूर से ही दिखाई दे रहा था। राजद्वार भी चट्टानों से स्वतः ही बंद हो गया था। उससे बाहर से शत्रुओं का प्रवेश रुक गया, जिससे सैनिकों ने थोड़ी राहत की साँस ली। इस तरह से धीरे-२ करके, सैनिकों ने सभी शत्रुओं का समूल सफाया कर दिया। गुस्से से बौखलाए मूलराजा ने नए देश को घेरने वाले उन बीहड़ों की व जंगलों की भी सफाई करवा दी , जहाँ पर वे शत्रु छिपे हुए थे। शत्रुओं को देख कर ही गोली मारने के आदेश, सैनिकों को पहले से ही दे दिए गए थे। परन्तु कई बार क्या होता है कि देश की सुरक्षाप्रणालियाँ शिथिल होती हैं , या सैनिकों की संख्या सीमित होती है, या वे किसी कारणवश अक्षम होते हैं, जिससे प्रचंडयुद्ध नहीं हो पाता। इससे राजद्वार व राजमार्ग भी खुले ही पड़े रहते हैं। इससे शत्रु अन्दर घुसते रहते हैं, जो मरने वाले शत्रुओं का स्थान लेते रहते हैं। फिर वे उग्र होकर जलपरिशोधकयंत्र के अन्दर घुस जाते हैं , क्योंकि वे चतुर होते हैं, और उन्हें पता होता है कि देश को ध्वस्त करने के लिए उस यंत्र को ध्वस्त करना ही काफी होता है। वे उसकी छनन -जालियों (filteration-screens) को ख़राब कर देते हैं। आम हालत में, औद्योगिक नगरों से विषयुक्त जल, देश की नदियों में छोड़ा जाता रहता है। उस जल को कभी भी देहदेश में वितरित नहीं किया जाता। पहले उस जल को उस विशाल जलपरिशोधकयंत्र में स्वच्छ किया जाता है। वहाँ से वह बड़े -२ जलभंडारों (water-tanks) में पहुंचता है, और वहां पर कुछ समय के लिए भंडारित किया जाता है। वहाँ से वह जल विशाल पम्पहाऊस (pump house) को भेजा जाता है , जहाँ से उसे नालिका -जालों (pipelines) के माध्यम से पूरे देश में वितरित किया जाता है। जब शत्रु उस विशाल जलपरिशोधक यंत्र की छनन-जालियों को खराब कर देते हैं, तब स्वाभाविक ही है कि वह जल, बिना शुद्धीकरण के ही जल-भंडारों में पहुंचता है। वही दूषितजल फिर पंपहाऊस को भेजा जाता है, जहाँ से वही दूषित जल पूरे देश में वितरित हो जाता है। उस दूषित जल के भौतिक व रासायनिक विषों से देहपुरुष अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। कोई विष उनके पेट को खराब करता है , कोई विष उनके मस्तिष्क को, तो कोई विष यकृत को। इस तरह से वे बहुत क्षीण हो जाते हैं, जिससे देश की अर्थव्यवस्था डूबने लग जाती है। यहाँ तक कि उस जल से सींचे गए पेड़-पौधे भी विषाक्त हो जाते हैं। खेतों की पैदावार भी बहुत घट जाती है, जिससे पूरे देश में खाद्य संकट गहरा जाता है। उस स्थिति में पूरे देश का ताना-बाना ही हार जाता है, और राजा को ही कुछ प्रयास करना पड़ता है। कई बार पूर्वोक्तानुसार , विदेशी अस्त्र-शस्त्रों का आयात करवाया जाता है। कई बार विदेशी अभियंताओं , मेकेनिकों (mechanics) व कलपुर्जों (spare parts) का भी साथ में आयात करवाया जाता है। कई बार तो पूर्वोक्तानुसार ही , पूरा ही संयंत्र भी मंगवाया जाता है। इस तरह से, भिन्न-२ परिस्थितियों के अनुसार, उस परम अद्वैतशाली देश को भिन्न-२ परिणामों से गुजरना पड़ता है।

शास्त्रों में तितिक्षा के ऊपर बहुत बल दिया गया है। इसका अर्थ है कि अनासक्त व अद्वैतयुक्त रहते हुए , सभी भावनाओं को सहते रहना चाहिए। परन्तु इनको सहने के तरीकों का वर्णन कम ही आता है। शविद भी इनको सहने का एक प्रमुख व अत्यंत प्रभावशाली तरीका है। वास्तव में भावनाएं

बुरी नहीं होती, क्योंकि वे तो मुक्त देहपुरुष में भी ज्यों की त्यों विद्यमान रहती हैं। बुराई तो उनसे प्रभावित होने की उस अनुभूति में होती है , जो देहपुरुष में नहीं होती। उदाहरण के लिए, हर्ष व विषाद की अनुभूति होने में कोई बुराई नहीं है, क्योंकि ये तो चेतना के स्वाभाविक व मानवीय गुण हैं। बुराई तो उनसे प्रभावित होने में है , जिससे साँस उखड़ सी जाती है, और आदमी का मन चीखने-कराहने का करता है। वास्तव में यह उनके प्रति सत्यत्व बुद्धि से होता है। देहपुरुष का ध्यान करने से यह सत्यत्व बुद्धि उसी क्षण नष्ट हो जाती है, और आदमी उनके प्रभाव से मुक्त हो जाता है। थोड़ा-बहुत प्रभावित होने में भी कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु चिंताजनक स्थिति तब होती है, जब उनके प्रभाव के कारण व्यक्ति अपने नियंत्रण से बाहर हो जाता है, उसके अन्दर एक टीस जैसी हावी हो जाती है, और उसकी मानसिक शाँति के साथ-२ उसका मानसिक आनंद भी भंग हो जाता है। देहपुरुष की तरह, तन-मन से प्रभावित होने का नाटक भी किया जा सकता है , परन्तु उसे सत्य समझने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। इसी तरह से , मानसिक दोषों के अनुभव होने में भी कोई बुराई प्रतीत नहीं होती, यदि उनसे प्रभावित हुए बिना रहा जाए।

अनेक देहदेशों के बाहर, बीहड़ों व जंगलों के पीछे एक बहुत बड़ा पर्वत होता है, जो सदैव बर्फ की सफेद चादर से ढका रहता है। राजाओं ने वहाँ से अपने-२ देश के लिए शुद्ध जल की आपूर्ति के लिए , जंगरहित धातु की मोटी नाली (pipe) बिछाई होती है। सभी राजाओं ने मिलकर , जलवेग व जलमात्रा को नियंत्रित करवाने के लिए, वहाँ पर कुछ कर्मचारियों को तैनात किया होता है। उसी तरह, अपने देश को आने वाली पाईप के जलप्रवाह को नियंत्रित करने के लिए भी, सम्बंधित राजा ने अपने देश के कुछ कर्मचारी नियुक्त किए होते हैं। उस विशाल पर्वत से आ रहा आवश्यकाताधिक जल, सम्बंधित देश की सीमा पर तैनात कर्मचारियों के द्वारा कम कर दिया जाता है। यदि पर्वत से कम जल आ रहा हो , तो वे कर्मचारी अपने देश की पाईपलाईन (pipeline) के प्रवाह-नियंत्रक (flow regulator) को पूरा खोल देते हैं, और उसे चौबीसों घंटे खुला रखते हैं। कई बार कर्मचारियों के प्रमाद से, पीछे से भी अधिक जल आता है, और सीमा पर भी उसको नियंत्रित नहीं किया जाता। इससे देहदेश में आवश्यकता से अधिक जल उपलब्ध हो जाता है। ऐसे में, लालच के कारण किसान अपने खेतों को पानी से लबालब भर देते हैं। इससे कई बार पौधों की जड़ों को भी हानि पहुँच जाती है। साथ में, इससे उनके खेतों की उपजाऊ शक्ति भी फसलों की जड़ों से दूर, भूमि की असीमित गहराई की ओर रिस जाती है। इससे एक ओर जहाँ पानी की बर्बादी होती है, वहीँ दूसरी ओर पैदावार में भी भारी कमी आ जाती है। इससे आम आदमी को भी पर्याप्त जल नहीं मिल पाता, क्योंकि उनके हिस्से का जल वे किसान बर्बाद कर देते हैं। कई बार तो कुछ प्रभावशाली व रसूखदार किसान ही सारा जल हड़प लेते हैं, जिससे दूसरे छोटे-मोटे किसान मुंह देखते ही रह जाते हैं। कई बार तो किसान, बाहर से घुसकर आए हुए उन शत्रुओं के बहकावे में आ जाते हैं, जो देश में पानी की कमी को अपना प्रमुख हथियार समझते हैं। वैसे अधिकाँशतः, सुदूर क्षेत्र से आने वाले पानी पर राजा का नियंत्रण होता है। इसलिए वह समय के अनुसार , उपयुक्त मात्रा में पानी को मंगवा कर व उपयुक्त विधि के अनुसार किसानों के बीच में, उपयुक्त मात्रा में बंटवा कर, उस समस्या का समाधान कर सकता है।

शविद के आचरण का प्रभाव कई बार तो दिखता भी नहीं, परन्तु प्रभाव पड़ता अवश्य है, जो धीरे-२ इकट्ठा होता हुआ, कालान्तर में आध्यात्मिक रूपांतरण कर देता है। शविद का प्रभाव आसपास की संगति पर भी निर्भर करता है , जीविका व कर्मों के प्रकार पर भी निर्भर करता है , कर्मों व भावनाओं की गति पर भी निर्भर करता है, स्वास्थ्य व आयु पर भी निर्भर करता है, तथा शविद के प्रति निष्ठा/समर्पण की मात्रा पर भी निर्भर करता है।

प्रेमयोगी वज्र को लगा था कि समवाही तंत्र की अपेक्षा विषमवाही तंत्र पर लोगों को अधिक विश्वास था। समवाहीतंत्र को वे हीनता से देखते थे। उन्हें लगता था कि किसी स्त्री को मन में बसा कर रखना , पौरुषत्व के विरुद्ध था। इसी हीनता के भय से ही तो प्रेमयोगी वज्र ने प्रथम देवीरानी की कुण्डलिनी को जागृत करने का कभी भी प्रयास नहीं किया , यद्यपि कुण्डलिनीजागरण का फल कहा जाने वाला क्षणिकात्मज्ञान तो उसे बिना कुण्डलिनीजागरण के, देवीरानी के रूप की नित्य मानसिक समाधि से ही प्राप्त हो गया था। वास्तव में कुण्डलिनीजागरण भी नित्यसमाधि को ही उत्पन्न करता है। लोगों की उस सोच का एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि संभवतः अधिकाँश लोगों को मनोवांछितत्व , आकर्षकत्व व दृढ़संयमशक्ति, एकसाथ इन तीनों गुणों वाली वैसी प्रेमिकाएं या धर्मपत्नियां उपलब्ध नहीं थी, जिनके प्रति मन में असीमित आकर्षण उत्पन्न हो जाता। वैसे भी, धर्मपत्नी के साथ समवाही तंत्र तो कठिन ही होता है, क्योंकि प्रतिदिन उसके साथ रहने से व उसके सदैव साथ में बने रहने के दृढ़ विश्वास से , उसके प्रति आकर्षण , बढ़ने की अपेक्षा घटता जाता है। संभवतः उन्हें यह भी लगता था कि प्रत्यक्ष समाधि -सम्बन्ध केवल प्रत्यक्षतंत्र के प्रत्यक्षयौनसम्बन्ध (समवाही) से बनाया जा सकता था , जिसे वे असामाजिक मानते थे , विशेषतः उद्वाहपूर्व; प्रत्यक्षतंत्र के विषमवाही या साँकेतिक प्रकार/अप्रत्यक्षतंत्र के यौनसंबंध से नहीं। यद्यपि पूर्वोक्तानुसार , प्रेमयोगी वज्र ने सिद्ध कर दिया कि अप्रत्यक्षतंत्र के साँकेतिकयौनसंबंध से सर्वाधिक आकर्षण उत्पन्न किया जा सकता है , जो समाधिरूप ही होता है , साथ में उसमें असामाजिकता भी नहीं होती। संभवतः उन लोगों के मन ने

स्वगृहस्थसम्बंधित हीनता/अपमान से बचने के लिए, अनजाने में ही, प्रत्यक्षतंत्र के अस्तित्व को ही सिरे से नकार दिया था। क्योंकि उन्हें प्रत्यक्षतंत्र श्रेणी के विषमवाही तंत्र का ज्ञान नहीं था , इसीलिए वे गृहस्थसम्बंधित हीनता का अनुभव करते हुए प्रतीत होते थे। इसी तरह , अनोद्वाहित/अविवाहित लोगों को अप्रत्यक्षतंत्र श्रेणी के साँकेतिक तंत्र (समवाही या विषमवाही या इन दोनों का मिश्रण) का ज्ञान नहीं था, इसीलिए वे उससे दूर रहते थे। प्रेमयोगी वज्र को प्रथम देवीरानी के साथ अप्रत्यक्षतंत्र के समवाही व विषमवाही , दोनों तंत्र पद्धतियों के मिश्रण से त्वरित व शक्तिशाली कुण्डलिनी-लाभ प्राप्त हुआ था।

कुछ लोग कहते हैं कि अद्वैतसाधना (non-dualism) या साक्षीकरण (witnessing) श्रेष्ठतर साधना होती है, तो कुछ कहते हैं कि एकाग्रता (concentration) या ध्यान-समाधि (contemplation) श्रेष्ठतर होती है। वास्तव में, दोनों का मिला-जुला रूप ही सर्वश्रेष्ठ होता है। यदि दोनों को इकट्ठा न कर सको, तो प्रातः-साँय के समय न्यूनतम १-१ घंटे के लिए, कुण्डलिनीयोग के रूप में एकाग्रसाधना को करना चाहिए, और पूरे दिनभर, देहपुरुष की तरह ही अद्वैतसाधना या साक्षीकरण साधना करनी चाहिए, जिसे कर्मयोग भी कहते हैं। प्रातः-साँय ज्ञानयोग व दिनभर कर्मयोग। वास्तव में, दोनों विधियों से ही कुण्डलिनी पुष्ट होती है, और दोनों से ही अद्वैत/साक्षीभाव भी पुष्ट होता है। यदि अद्वैतभाव कुण्डलिनी को पुष्ट कर सकता है, तब कुण्डलिनी अद्वैत को क्यों पुष्ट नहीं कर सकती? अद्वैत की महिमा महान है। अद्वैत से आध्यात्मिक विकास स्वयं ही होता है, कुछ विशेष करने की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं ही आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रहती है। यदि अद्वैत को निरंतर धारण करके रखा जाए , तो आत्मज्ञान को कोई नहीं रोक सकता। साक्षीपन (witnessing) व अद्वैत एक ही वस्तु-भाव है। साक्षीपन से भी अद्वैत की तरह यही सिद्ध होता है कि सभी कुछ एकसमान है, क्योंकि इसमें कुछ भी तोला (JUDGE) व परखा नहीं जाता, अपितु सबके प्रति एकसमान निर्लिप्त भाव बना कर रखा जाता है, जिससे अद्वैत स्वयं ही सिद्ध हो जाता है। अतः साक्षीपन भी कुण्डलिनी को पुष्ट करता है।

प्रेमयोगी वज्र अपनी कक्षा में भी सबके साथ समान दृष्टि से व्यवहार करता था। उसकी कक्षा में भिन्न -२ प्रकार के विद्यार्थी अध्ययन करते थे। कुछ श्वेतवर्ण के थे, तो कुछ श्याम वर्ण के और कुछ सुनहरे; कुछ आकर्षक थे, तो कुछ साधारण प्रकार के थे; कुछ लम्बे थे, तो कुछ छोटी कद-काठी के। यद्यपि सभी का व्यवहार देहसमाज की तरह द्वैताद्वैतयुक्त, शालीन, मेल-जोल वाला, व्यावहारिक, प्रगतिशील, मानवतावादी, हँसमुख व कर्मठता से पूर्ण था। एक अतिगुणवती अध्यापिका ने तो प्यार के साथ उसका नाम गिरगिटदेवता रख दिया था, क्योंकि वह अद्वैत को छोड़े बिना ही, हर किसी के साथ पूरी तरह से घुल-मिल कर, उसके रंग में ही रंग जाया करता था। ऐसा उन वृद्धाध्यात्मिक पुरुष की संगति से ही संभव हुआ था। अद्वैत का उससे अच्छा उदाहरण भला क्या हो सकता था। उसी तरह से, उसके घर में व आसपास के समाज में भी भिन्न-२ प्रकार के लोग रहते थे, जो भी उसी तरह घुल-मिल कर रहते थे। संभवतः उस समय वह अद्वैत, पुराणों के ऊपर लोगों की श्रद्धा के परिणामस्वरूप ही दृढ़ता से प्रतिष्ठित था। उसे मद्यप व आमिषाहारी लोग अच्छे नहीं लगते थे, यद्यपि अद्वैतशाली व प्रेमी प्रकार के आँशिक मांसाहारियों व मद्यपों के प्रति उसे घृणा नहीं , अपितु प्रेम व लगाव महसूस होता था, और उन्हें भी प्रेमयोगी वज्र के प्रति, विशेषकर आत्मज्ञान के बाद। इससे सिद्ध होता है कि अद्वैत व माँस-मद्य एक दूसरे को पुष्ट करते रहते हैं, यदि तांत्रिक धारणा हो। कर्म-फल का सत्य-सनातन सिद्धांत तो वही रहता है, केवलमात्र दृष्टिकोण में ही सुधार होता है। यह सिद्धांत तो तंत्रमान्य ही है। यद्यपि इसमें सद्गुरु का मार्गदर्शन अत्यावश्यक है, अन्यथा तंत्रसाधक का स्वभाव विकृत हो सकता है। वास्तव में, विभिन्नताओं का अच्छी तरह से ज्ञान रखने में कोई बुराई नहीं है, परन्तु द्वैतपूर्ण दृष्टि के माध्यम से किसी में हीनता की भावना उत्पन्न करने में ही बुराई है। एक स्वस्थ समाज के लिए सभी का योगदान समान रूप से अपेक्षित है। मानवतावादी व आदर्शवादी स्वर्णसमाज को कुण्डलिनीजागरण अधिक सुलभ होता है, क्योंकि भासमान व साधनारत व्यक्ति या गुरु में ध्यान लगाना अधिक सरल है। तभी तो उच्चवर्ण के विशेष व्यक्ति को ही गुरु बनाया होता था। परन्तु आत्मज्ञान के लिए, उसे भी अन्य वर्ण-समाजों के आश्रित रहना पड़ता है, क्योंकि मिश्रित वर्णों व गुणों के समाज के बिना अद्वैत की पूर्णता सिद्ध ही नहीं हो सकती। उस अद्वैत से, चमचमाती कुण्डलिनी के भौतिक रूप के प्रति आसक्ति से पीछा छूटता है , जैसा होना आत्मज्ञान के लिए अत्यावश्यक है, क्योंकि उससे मानसिक कुण्डलिनी शीघ्रता से पुष्ट-परिपक्व होकर, और फिर पके हुए फल की तरह गिरकर, आत्मज्ञान के अनंत सागर में समा जाती है। क्योंकि अद्वैत से भी कुण्डलिनी पुष्ट होती है, और भिन्न-२ वर्णों-गुणों के लोगों के समुदाय के अन्दर धारण किया गया अद्वैतभाव बहुत बलवान होता है, इसलिए यह भी सिद्ध होता है कि कुण्डलिनीजागरण में भी श्यामवर्ण के लोगों का अहम योगदान होता है। इसी तरह से , अधिकाँशतः निम्नवर्ण के लोगों को कुण्डलिनीजागरण के लिए स्वर्णों (गुरु/पुरोहित/देवता आदि) के आश्रित होना पड़ता है। यद्यपि गुरु बनने के लिए, स्वर्ण वर्ग का व्यक्ति उच्च कोटि के आचारों-विचारों वाला, आध्यात्मिक/अद्वैतशील, स्वाध्यायी, सदाचारी, अनुशासित, योगी, व्यावहारिक व वैदिक-पौराणिक होना चाहिए; जैसे कि प्रेमयोगी वज्र के पूज्य पितामह थे। केवल स्वर्ण वर्ग की पहचान मात्र से कोई विशेष व त्वरित लाभ प्रतीत नहीं होता। अतः हम देख सकते हैं कि

विभिन्न समुदायों के बीच में परस्पर सहयोग से ही एक स्वस्थ समाज बनता है, और विकासोन्मुख रहता है। इसलिए विभिन्नताओं को सहेज कर रखना चाहिए। यदि अंतर्सामुदायिक-अतिनिकटता के सम्बन्ध से विभिन्नताओं को नष्ट करने का प्रयास किया जाता है , तब उन विभिन्नताओं से प्राप्त होने वाला अद्वैतलाभ भी नष्ट होने लगता है। पुराणों में वर्णित समुद्रमंथन के द्वारा भी इसी सिद्धांत को समझाने का प्रयत्न किया गया है। समुद्र वहाँ पर संसार का प्रतीक है। विभिन्न संसाधन, जो समुद्र से निकले, वे भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रतीक हैं। साथ में निकलने वाला अमृत, मोक्ष का प्रतीक है। देवता वहाँ पर भासमान, कर्मशिथिल, चतुर, बलहीन व आध्यात्मिकसाधनारत लोगों के प्रतीक हैं; और असुर श्यामवर्ण, बलवान, सीधे-साधे व कर्मठ लोगों के। जब देवता समुद्रमंथन में बारम्बार प्रयास करके भी असफल होते रहे, तब उन्हें असुरों का सहयोग लेना पड़ा। दोनों जातियों के सम्मिलित प्रयास से ही भौतिक सुख-सुविधाएँ व मोक्ष, दोनों प्रकार के लक्ष्य एकसाथ सिद्ध हो गए।

जीवन में मूल्य चुकाए बिना कुछ भी नहीं मिलता ; यहाँ तक कि कुण्डलिनीजागरण, आत्मज्ञान व मुक्ति आदि आध्यात्मिक समझी जाने वाली उपलब्धियाँ भी। प्रेमयोगी वज्र ने २० वर्षों तक निरंतर शविद का आचरण किया, व उससे उत्पन्न द्वैताद्वैत या अद्वैत को धारण करके रखा, तभी तो उसे क्षणिक कुण्डलिनीजागरण का अनुभव हुआ। कुण्डलिनीयोग व यौनयोग ने तो जागरण के लिए, कुण्डलिनी को थोड़ा सा ही यथावश्यक अतिरिक्त बल प्रदान किया, क्रियाशील तो वह क्रियात्मक अद्वैत के प्रभाव से, २० वर्षों से लेकर निरंतर ही थी।

प्रेमयोगी वज्र को तो पूर्णता मिल ही गई थी। फिर भी, पता नहीं वह प्रथम देवीरानी की परीक्षा क्यों ले रहा था ? वह चाहता था कि देवीरानी अन्य सभी की परवाह छोड़कर, उसके प्रति पूर्णतया समर्पित हो जाती, और अपनी इच्छा से ही उसके साथ जीवन बिताने के लिए पहल करती। संभवतः उसे अधूरे आत्मज्ञान का तनिक अहंकार भी हो गया था, क्योंकि “अधजल गगरी छलकत जाए”। उसे देवी के तांत्रिक दृष्टिकोण के ऊपर भी संदेह होता था। वह उसे पूर्णदेवी की तरह पूर्णतः निष्ठापूर्ण, प्रेमपूर्ण व अनासक्त देखना चाहता था। वह उससे अपने गुरु को प्रसन्न रखते हुए ; उससे उनकी सच्ची सेवा व उनकी सदाज्ञा का पालन भी करवाना चाहता था। वह उसे अपने प्रेम में उतना अधिक दीवाना देखना चाहता था, जितनी अधिक दीवानी कृष्णप्रेम में मीरा या राधा थी। संभवतः वह मन से उतनी दीवानी हुई भी हो, परन्तु लोकलाज के भय से अपने दीवानेपन को प्रदर्शित न कर पाई हो। वह उसे तांत्रिक-प्रेम में पागल व लोकलाज के भय से भी रहित देखना चाहता था। हो सकता है कि देवीरानी भी प्रेमयोगी वज्र से ये सभी अपेक्षाएँ रख रही हो। प्रेमयोगी वज्र के मन में तो उसके रूप की नित्यानंदमयी समाधि लगी हुई ही थी, अतः वह भौतिक पहल करके अपनी समाधि की बलि क्यों चढ़ाता। विपरीततः, उसे तो यह आशा थी कि उस समाधि से उसे आत्मज्ञान की एक और झलक मिल जाती। यह भी हो सकता है कि देवीरानी के साथ भी वैसा ही हुआ हो, तभी तो वह भी पहल न कर पाई हो। इससे ओशो जी की यह बात एक बार पुनः अक्षरशः सत्य सिद्ध हो जाती है कि वास्तव में यौनसम्बन्ध समाधि-अवस्था की प्राप्ति के लिए ही बनाया जाता है।

दिवसकाल में, बीच-२ में नींद की झपकियाँ लेना भी एक आध्यात्मिक लक्षण है। ऐसा, अद्वैतयुक्त व कुण्डलिनीयुक्त मस्तिष्क की थकान के कारण होता है।भावनाओं व संवेदनाओं में बहना बुरी बात नहीं है, परन्तु शीघ्र ही उन्हें अपने शरीर में स्थित शविद के अद्वैतमयी ध्यान से नियंत्रित कर लेना चाहिए, अन्यथा वे शरीर व मन को लाभ की अपेक्षा हानि ही पहुंचाती हैं।

संभवतः कुण्डलिनीजागरण का भी वही प्रभाव होता है, जो प्रतिदिन के कुण्डलिनीयोगाभ्यास का होता है। दोनों से ही कुण्डलिनी नित-निरंतर मन में बस जाती है। संभवतः जागरण के बाद भी कुण्डलिनीयोगाभ्यास तो करना ही पड़ता है, ताकि कुण्डलिनी, समाधि के रूप में मस्तिष्क में स्थिर रह सके, और नीचे न गिरे। इसका तो यह अर्थ हुआ कि कुण्डलिनीजागरण के बिना ही, नियमित रूप से कुण्डलिनीयोगाभ्यास से भी आत्मज्ञान या मुक्ति संभव है। कुण्डलिनीजागरण तो कुण्डलिनी को एक अतिरिक्त स्थिरता ही प्रदान करता है , अन्य विशेष या योगाभ्यास के अतिरिक्त कुछ नहीं। कुण्डलिनी-समाधि तो नियमित व निरंतर योगाभ्यास से ही परिपक्व होती है। कुण्डलिनीजागरण से तो केवल उसको एक अतिरिक्त बल ही प्राप्त होता है। यद्यपि यौनाकर्षण से उत्पन्न समाधि के लिए योगाभ्यास व कुण्डलिनीजागरण की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह प्राकृतिक रूप से ही प्रचंड होती है। इसी तरह पूर्वोक्तानुसार, जब यौनयोग की कुण्डलिनी से, शक्तिशाली माने जाने वाले , यौनसम्बन्ध के समय उत्पन्न होने वाले अनर्गल/उत्तेजनापूर्ण विचार भी बदली (replace) हो जाते हैं, तब प्रातः-साँय के कुण्डलिनीयोगाभ्यास से, दिन भर के, अपेक्षाकृत कम शक्ति के व्यर्थ विचार क्योंकर बदली (replace) नहीं होंगे। वास्तव में, कुण्डलिनीयोग से मन की अतिरिक्त शक्ति कुण्डलिनी के ध्यान में व्यय हो जाती है, जिससे व्यर्थ के विचारों को मानसिक शक्ति नहीं मिल पाती, और अंततः वे क्षीण हो जाते हैं।

चित्तवृत्तियों के शाँत होते ही, आत्मज्ञानी के मस्तिष्क में भी अँधेरा ही छा जाता है, दूसरे सामान्य लोगों की तरह। प्रेमयोगी वज्र ऐसा अनुभव करके आश्चर्यचकित हो जाता था, और सोचता था कि फिर आत्मज्ञान से क्या लाभ ? उसे यह भी प्रतीत नहीं होता था कि देहावसान के बाद वह

चमचमाने लग जाएगा। यदि उस समय कोई, उससे सम्बंधित कुछ भी रहस्यमयी प्रश्न पूछता, तो वह यही कहता कि उसे पता नहीं। वह अद्वैतावस्था में ही स्वाभाविक रूप से रहता था। इसका अर्थ है कि वह प्रकाश-अन्धकार को एकसमान रूप से अहमियत देता था। इससे पुनः सिद्ध होता है कि अद्वैत में ही स्थित रहना चाहिए, अन्य कुछ विशेष नहीं। पर यह अवश्य था कि उसमें मृत्यु का भय बहुत कम हो गया था, जैसा कि एक अखंड नशेड़ी में होता है।

बकासुर जाति के मायावी राक्षस वायु के बिना ही साँस लेने की विद्या जानते हैं। वे बहुत भयानक होते हैं। बड़ी -२ लाल आँखों व लम्बे-२ नुकीले दांतों के साथ, ताड़ वृक्ष से भी ऊंचे काले शरीर वाले वे राक्षस जब देहदेश के ऊपर आक्रमण करते हैं ; तब मात्र उनके भय से ही पूरे देश की मशीनरी ठप होने लगती है। देहदेश के पश्चिमी भाग में, कुछ दूरी के अंतर पर दो अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे बने होते हैं, जहाँ से पूरे विश्व के साथ उसका व्यापारिक सम्बन्ध बना रहता है। दो मुख्य हवाई अड्डे तो उसके पूर्वी छोर के निकट भी बने होते हैं, यद्यपि वे मुख्यतया देश के अन्दर की ही हवाई सेवाएं प्रदान करते हैं, तथा उपरोक्त अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों तक सामान की आवाजाही को भी सुनिश्चित करते हैं। उन राक्षसों को हवाई अड्डे , विशेषतः पश्चिमी/अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे अतिप्रिय होते हैं, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि उत्पथगामियों को ऊँचाई व आकाश से सम्बंधित वस्तुओं से विशेष लगाव होता है। यह उनका एक मनोवैज्ञानिक तथ्य होता है। वहाँ पर भी वे उसी सीमित स्थान पर आक्रमण करते हैं, जहाँ पर किसी कारणवश सड़कों व मार्गों के टूटने से, वस्तुओं के साथ-२ गैस की आपूर्ति भी ठप हो जाती है। बीच -२ में, वे ऐसे स्थानों की खोज के लिए , अपने गुप्तचरों से रेकी (छानबीन) करवाते रहते हैं। ऐसे स्थान की सूचना प्राप्त होने पर, वे अपनी पहचान को छिपाते हुए, वहाँ पहुँच जाते हैं। ऑक्सीजन गैस (प्राणवायु) की कमी से, वहाँ पर पहले से ही कोई भी जीवित नहीं बचा होता है, यहाँ तक कि स्थानीय सुरक्षाबल भी। बहुत से सैनिक वहाँ से भाग गए होते हैं, और नए सैनिक भी वहाँ आकर अपनी जान को जोखिम में नहीं डालना चाहते। ऐसे में , वे राक्षस अच्छा अवसर जानकर, वहाँ पर अपनी प्राणविद्या का प्रयोग प्रारम्भ कर देते हैं। वे वहाँ पर इच्छानुसार तोड़-फोड़ करते हैं, वहाँ के संचित अन्नों व वस्तुओं के भंडारों को खाली कर देते हैं , और अपनी-२ कामिनियों के साथ खूब रंगरलियाँ मनाते हैं। इससे वे बहुत हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं, और उनकी जनसंख्या भी बहुत बढ़ जाती है। फिर वे आगे बढ़ने लगते हैं। पहले वे सड़कों व अन्य छोटे-बड़े मार्गों को बमबारी करके नष्ट कर देते हैं, ताकि बड़े औद्योगिक शहरों से आने वाली वस्तु-सेवा की आपूर्ति पूर्णतया ठप हो जाए, जिससे प्रभावित क्षेत्र के लोग क्षीण हो जाए। ऐसा करके क्षेत्र को जीतना उनके लिए आसान हो जाता है। उनकी भारी संख्या हवाई अड्डे पर वैसी प्रतीत होती है, जैसे कि काले-२ बादलों के अनगिनत टुकड़ों से नीला आसमान भर गया हो। कई लोगों को लगता है कि काले बादल जमीन पर उतर आए हैं, अतः वे डर के मारे, आने वाली संभावित बाढ़ से बचने की तैयारियों में जुट जाते हैं। उन राक्षसों ने अपने हाथों में काले झंडे भी उठाए होते हैं, और वे काले कौवे की काली आवाज से भी अधिक कर्कश व भयानक स्वरों में कोलाहल करते हुए , किल्विष के पक्ष में नारे लगाते रहते हैं। वे अपने मुख से आग व जहरीली गैसें भी छोड़ते रहते हैं। परिणामतः हवाई सेवा एकदम से ठप हो जाती है, यहाँ तक कि देश की अंदरूनी उड़ानें भी नहीं हो पातीं। वे राक्षस हवाई अड्डे के रनवे (runway) को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। उस पर वे गड्ढे ही गड्ढे कर देते हैं , और साथ में उसकी विभिन्न संरचनाओं को तोड़-मरोड़ देते हैं। उनसे सुरक्षा-हेतु पूरे देश में आपातकाल घोषित कर दिया जाता है। प्रभावित क्षेत्रों तक पहुँचने वाले मार्गों के अतिरिक्त प्रकोष्ठ/आपातकालीन उपमार्ग खोल दिए जाते हैं, और उन्हें आवश्यकतानुसार साफ व चौड़ा भी कर दिया जाता है। पूरे देश के संसाधन व सुरक्षाबल उन प्रभावित क्षेत्रों के लिए भेज दिए जाते हैं, जिससे पूरे देश में उनकी कमी पड़ जाती है, और अन्य सारी कार्यप्रणालियाँ ठप पड़ने लगती हैं। इससे, प्रभावित क्षेत्र को छोड़कर, पूरे देश का जीवनरथ जैसे अचानक से रुकने सा लगता है। देश के अधिकाँश लोगों को काम करने के लिए उचित अवसरों के अभाव का सामना करना पड़ता है। संसाधनों का अकाल पड़ जाता है। यहाँ तक कि भोजन -पानी की भी समस्या आने लगती है। आम नागरिकों के तो जैसे हाथ ही बंध जाते हैं। चारों ओर, हवाई अड्डे पर चल रहे युद्ध की चर्चाएँ आम हो जाती हैं, और सभी ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि किसी तरह से उस मुसीबत से छुटकारा मिल जाए। तभी लेखक ने देखा कि राजा ने राक्षसों को परास्त करने के लिए , बीहड़ों में जी रहे, उन्हीं के जैसे परन्तु मित्र राक्षसों की सहायता ली। मित्र -राक्षसों व शत्रु-राक्षसों के बीच में चल रहा वह भयानक युद्ध, देवासुर संग्राम की तरह लग रहा था; जिसे देखने के लिए देवताओं, अप्सराओं, गन्धर्वों व किन्नरों के यानों से सम्पूर्ण आकाश भर गया था। उस युद्ध में जान -माल की बहुत हानि हुई। घातक अस्त्रों का भरपूर प्रयोग किया गया, और छल-कपट का भी बहुत सहयोग लिया गया। अंत में शत्रु -राक्षसों ने घुटने टेक दिए। परन्तु तब तक देहदेश बहुत अधिक टूट चुका था। उसके सारे देहपुरुष भूख-प्यास व भय के मारे, बार-२ मूर्छित हो रहे थे। उनके मन और शरीर में उतने अधिक व गंभीर दोष उत्पन्न हो गए थे, जिनकी चिकित्सा कर पाना संभव नहीं था। थोड़े से देहपुरुष तो पुनः स्वस्थ भी हो गए, परन्तु वे विशाल देहदेश को चलाने में अस्मर्थ थे। इस तरह से, पूरे देश का अस्तित्व ही मिट गया, और वहाँ के बचे-खुचे युद्धशेष संसाधनों से, नई जीवनशैली व नए नियम-कानूनों/संविधान के साथ,

एक नए देश के निर्माण की सुगबुगाहट शुरु होने लग गई। फिर डर के मारे उपरोक्त घातक परिणाम से शिक्षा लेते हुए, अन्य देशों ने अपने-२ बचाव के लिए, पहले से ही, बीहड़ों से उपरोक्त मित्र-राक्षसों को बुलाकर रखना शुरु कर दिया, जिनके साथ मिलकर सैनिकों ने सम्पूर्ण युद्धयोजना पहले से ही बिछा कर तैयार रखी होती थी। वैसे, कई बार भाग्यशाली देहदेश उपरोक्त संग्राम में बच भी जाते हैं, विशेषतः यदि पूरे देश की कार्यप्रणालियाँ पूरी तरह से निष्क्रिय न हो गई हों, तो। ऐसे में, धीरे-२ देहपुरुष पुराने सदमे से उबर जाते हैं, और अपने-२ कार्यों को भली भांति से करने लगते हैं। खराब पड़ी हुई व्यवस्थाएं पुनः दुरस्त कर दी जाती हैं, व क्षतिग्रस्त यंत्र-उद्योग आदि भी ठीक कर दिए जाते हैं। सड़कों व मार्गों की मुरम्मत कर दी जाती है। प्रभावित क्षेत्रों को विशेष निगरानी में रखा जाता है, और वहाँ के लिए संसाधनों-सेवाओं की अतिरिक्त आपूर्ति भी की जाती है। सब कुछ पुनः ठीकठाक हो जाने से, राजा भी चैन की साँस लेते हुए पुनः निश्चिन्त हो जाता है।

कई लोग सोचते हैं कि योगसाधना से शक्ति का व्यय नहीं होता। परन्तु वास्तव में , उससे भी शक्ति का व्यय होता है , यद्यपि दैनिक जीवन के शारीरिक व मानसिक श्रम की अपेक्षा बहुत कम। कोई भी कार्य बिना शक्ति के , मात्र पतली हवा से संपन्न नहीं होता। यद्यपि यह अलग बात है कि योगसाधना से व्यक्ति, कार्य करने की व व्यवहार करने की उचित विधि सीख जाता है ; जिससे काम, क्रोध आदि मानसिक दोषों व आसक्ति आदि अनुचित दृष्टिकोण से होने वाले, शक्ति के अनावश्यक व्यय पर रोक लगती है। इस तरह से, कुल मिलाकर योगसाधना से शक्ति की बचत ही होती है। यदि कुण्डलिनीचिंतन से दैनिक क्रियाकलापों में समस्या/शक्तिहीनता अनुभव हो रही हो, तो दिन के समय उसका चिंतन छोड़ दिया जा सकता है, और योगाभ्यास के समय को व ध्यान की गहराई को भी घटा दिया जा सकता है।

विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों व उनसे जुड़ी परम्पराओं में जो चित्र -विचित्र प्रकार का सामूहिक गाना-बजाना, नाचना व शोर-शराबा किया जाता है; वह सब कुण्डलिनीजागरण के लिए ही किया जाता है। इससे ध्वनि की प्राण -ऊर्जा कुण्डलिनी को उपलब्ध होती रहती है , जिससे उसके अचानक से जागृत होने की संभावना अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है, नहीं तो वह पुष्ट तो हो ही जाती है। प्रेमयोगी वज्र को भी ऐसे समारोहों से , अपनी कुण्डलिनी की पुष्टता व स्थिरता में वृद्धि महसूस होती थी। संभवतः कुण्डलिनीजागरण को प्रत्येक धर्म में , भिन्न-२ नामों व विधियों के साथ स्वीकार किया गया है।

देहदेश में अलग से, एक नवदेशनिर्माणविभाग भी विद्यमान होता है। उसे हम विस्तारवादी विभाग भी कह सकते हैं ; क्योंकि वह नए देश के निर्माण के समय, अपने देश की एक इंच भूमि को भी गंवाने नहीं देता व अपने देश के ऊपर कोई भी आंच नहीं आने देता। साथ में, वह अपने अनुकूल व अधीन रहने वाले, एक नए देश का निर्माण भी कर लेता है। वह बाहर के खुले बीहड़ों में एक नए ; अपने से भी सुन्दर व विकसित देश का निर्माण करवाता है। यद्यपि कई बार, बहुत बिरले मामलों में, दुर्घटनावश या राजा की लापरवाही के कारण या देश के व्यवस्थागत दोष के कारण, मूलदेश की हानि भी हो जाती है। वैसे, उसमें अधिकाँशतः राजा का ही दोष होता है। उस विभाग के अधिकारियों की नियमित व निर्धारित अंतराल के बाद , सामूहिक बैठकें भी होती रहती हैं। परन्तु कई बार, यदि देश की अस्थायी कुव्यवस्था के कारण, किसी बैठक का प्रबंध न हो पाए, तो उस बैठक को मात्र औपचारिकता के रूप में ही, बिना किसी विशेष साज-सज्जा व काम-काज के भी निपटा दिया जाता है, या कई बार बैठक को रद्द भी कर दिया जाता है। यदि निकट भविष्य में देश की व्यवस्था में सुधार की उम्मीद न हो, तो बैठक को बहुत लम्बे समय तक एक औपचारिकता के रूप में भी निभाया जा सकता है, या स्थिति की गंभीरता के अनुसार, बैठक को लम्बे काल के लिए, पूर्णतया स्थगित भी कर दिया जाता है। यदि देहदेश सुव्यवस्थित हो, तो वह बैठक सदैव सुचारु रूप से होती रहती है; फिर चाहे बाहर के बीहड़ों में नए देश के निर्माण के लिए भूमि उपलब्ध हो या न हो। यदि नए देशों की संख्या बढ़ जाने के कारण, बाहर के बीहड़ों में भूमि उपलब्ध न हो, तो उन बैठकों का मुख्य उद्देश्य यही होता है कि पूरा देश उन बैठकों को, विकास को अनवरत जारी रखने के सकारात्मक सन्देश के रूप में समझे, और प्रगतिशील कार्यों में कोई भी कोताही न बरते। कई बार राजा अपने देश के सुचारु प्रबंधन के बोझ से बचने के लिए व नए देश के लालच में, सम्बंधित अधिकारियों की इच्छा के विरुद्ध जाते हुए, विदेशी सहायता से, बलपूर्वक भी बैठकों को बुलवा लेता है। यद्यपि वैसी बैठकों के दुष्परिणाम भी कई बार देखने को मिल जाते हैं, विशेषतः यदि शीघ्र ही देश की व्यवस्था को पटरी पर नहीं लाया जाता है। वैसी स्थिति में, राजा अपनी कमजोरी के कारण, नए देश का सही ढंग से विकास नहीं करवा पाता, और नए देश के चक्कर में, अपने स्वयं के देश की क्षीणता को भी बढ़वा देता है। कोई बिरला ही मूर्ख राजा ऐसा भी होता है, जो बाहर के बीहड़ों में भूमि उपलब्ध न होने पर भी, अपने देश की भूमि पर ही नए देश का पूर्ण निर्माण होने देता है। उससे मूलदेश छोटा व क्षीण हो जाता है। यद्यपि कई बार वह अपनी खोई हुई सत्ता को वापिस हासिल कर लेता है, परन्तु कई बार तो उसकी सत्ता पर ही संकट के बादल मंडराने लगते हैं। एक बार लेखक को स्वयं भी उस बैठक को व उसके परिणाम को प्रत्यक्ष रूप से देखने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ था। लेखक ने देखा कि वह बैठक देश के बीचोंबीच बने , एक अत्याधुनिक

सभागार में आयोजित की गई थी। नवदेशनिर्माण-विभाग का मनस नामक मंत्री तथा ज्ञानराज नामक सर्वोच्चाधिकारी, दोनों ही सुमेरु पर्वत के हिममंडित केन्द्रीय शिखर से, एक द्रुतगामी वायुयान के माध्यम से, पिछली शाम को ही वहाँ पहुँच गए थे, और केन्द्रीय सभागार के विश्रामगृह में ही रात को ठहरे हुए थे। उसी तरह से, सुमेरु पर्वत के केन्द्रीय शिखर से कुछ नीचे बने, नवदेशनिर्माण-विभाग के केन्द्रीय कार्यालय से भी फलदेव व लंबहस्त नामक दो अन्य मुख्य अधिकारी भी एक अति प्रातःकालीन उड़ान से, रात के अँधेरे में ही चल पड़े थे, और उजाला छाने तक, बैठक वाले केन्द्रीय सभागार में पहुँच चुके थे। यद्यपि लंबहस्त को अनुशासनहीनता व उसके असहयोगात्मक रवैये के कारण उस बैठक के प्रारम्भ में ही अस्थायी रूप से निलंबित कर दिया गया था, अतः वह बैठक के अंतिम भाग में ही उसमें भाग ले सका। इसी के दंडस्वरूप ही उसे इस अभियान के अंतिम भाग में ही कार्य करने का अवसर प्रदान किया गया। सीमा के निकट बने हुए नवदेशनिर्माण -विभाग के क्षेत्रीय कार्यालय से भी, अस्त्रज्ञानी व प्रस्तरज्ञानी नामक दो क्षेत्रीय अधिकारी वहाँ पहुंचे हुए थे। यद्यपि लंबहस्त का भक्त होने के कारण, प्रस्तरज्ञानी भी उस बैठक को छोड़कर उसके साथ चला गया था, और उसी के साथ शाम को बैठक में पुनः प्रविष्ट भी हो गया था। अतः वह भी उसी के समान दंड का भागीदार बना। बैठक भगवान श्री देहनारायण के ध्यान के साथ आरम्भ हुई। सबसे पहले, पिछली बैठक में संपन्न हुई कार्यवाही पर चर्चा की गई। उसके व्यावहारिक प्रभाव पर व उसके फैंसलों को आमलीजामा पहुंचाने में आ रही दिक्कतों पर भी चर्चा हुई। तदोपरांत मंत्री महोदय ने कार्यवाही को आगे बढ़ाते हुए, सर्वोच्च अधिकारी को अपने राजा की सर्वविदित इच्छा के बारे में याद दिलाया। ज्ञानराज ने भी अपने प्रति मंत्री जी के इशारे का अनुमोदन किया, यद्यपि उसके अनुमोदन में वह स्फूर्ति नहीं थी, जिससे मंत्री भी देश की अव्यवस्थित अवस्था के बारे में, उसके संकेत को समझ गया था। इसलिए उसका आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए, मंत्री ने भी देश की व्यवस्था को सुधारने के लिए किए जा रहे प्रयासों का ब्यौरा प्रस्तुत किया। उससे ज्ञानराज आश्वस्त हो गया, और पूरे जोश के साथ मंत्री जी के आदेश का समर्थन करने लगा। फिर ज्ञानराज ने अपने दोनों अधीनस्थ अधिकारियों, फलदेव व लंबहस्त को पूरी कार्ययोजना का स्मरण कराया। वे संसाधनों की कमी से कुछ उद्विग्न जैसे लग रहे थे, फिर भी उन्होंने ले-देकर कार्य का उत्तरदायित्व स्वीकार कर ही लिया। वहाँ पर बैठा हुआ, अस्त्रज्ञानी नामक स्थानीय अधिकारी, फलदेव का एक प्रिय अधीनस्थ अधिकारी था, जबकि प्रस्तरज्ञानी लंबहस्त का प्रिय अधिकारी था। दोनों ही बहुत नैष्ठिक व समर्पित अधिकारी थे। उन्होंने आज्ञा के अनुरूप ही, अपने कष्टों की परवाह किए बिना, अपने उच्चाधिकारियों के आज्ञापालन में जी-जान लगा दी। बैठक संपन्न हो चुकी थी, और सभी अधिकारी भी अपने-२ निर्दिष्ट कार्यों में व्यस्त हो गए थे। सबसे पहले ज्ञानराज के आदेशानुसार, फलदेव ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। वह लगातार अपने चहेते अस्त्रज्ञानी के संपर्क में रहते हुए, उससे उसका यथानिर्दिष्ट कर्म करवाने लगा। अस्त्रज्ञानी ने देश की मुख्य राजकुमारियों का समुचित लालन-पालन करवाया। फिर उनकी चयन परीक्षा करवाई, और सर्वश्रेष्ठ राजकुमारी को स्वयंवर के लिए चयनित करवाया। हारी हुई राजकुमारियां, उसकी सखी-सहेलियाँ बन गईं। उस चयनित राजकुमारी को सर्वश्रेष्ठ राजकीय सुविधाएँ उपलब्ध करवाईं, जिनसे वह अपनी उन सखी-सहेलियों के बीच में उस तरह से सुशोभित होने लगी, जिस तरह से तारों के बीच में चन्द्रमा सुशोभित होता है। कालान्तर में, फलदेव ने उस घृतंभरा नामक चयनित राजकुमारी के स्वयंवर के लिए, बहुत सारे आवश्यक प्रबंध भी करवाए। स्वयंवर के सभा-स्थल की मुरम्मत व झाड़-बुहार करवा के; उसे विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से; चित्र-विचित्र व कलापूर्ण वस्तुओं से; विविध रंगों व वास्तुशास्त्रीय नक्काशियों से, तथा मनमोहक चित्रकारियों से, अमरावती की तरह सजा दिया। वहाँ के आने-जाने वाले रास्तों की भी अच्छी तरह से सफाई व मुरम्मत की गई, ताकि पूरे देश से आने वाले जिज्ञासु लोगों के साथ-२, उनके खाने-पीने व रखरखाव के लिए साजोसामान भी, देश के केन्द्रीय भागों से वहाँ तक आसानी से पहुँच सकता। विश्रामगृहों को अतिथिगणों के स्वागत-सत्कार के लिए सज्ज कर दिया गया। दूसरे देश से आने वाले विवाहार्थी राजकुमारों की निर्विघ्न यात्रा हेतु, आधे अंदरूनी राजमार्ग को यथावश्यक रूप से चौड़ा कर दिया गया। पूरे राजमार्ग पर यातायात की सुविधा भी बढ़ा दी गई, ताकि अतिथियों व राजकुमारों की सुविधा को ध्यान में रख कर भेजे जाने वाले साजो-सामान की आपूर्ति में बाधा न पड़ती, और सुरक्षाबल भी निरंतर रूप से उपलब्ध रहते। पूर्वोक्त दोनों सीमान्त राजद्वार खोल दिए गए, तथा वहाँ पर सुरक्षा प्रबंध भी सुदृढ़ कर दिए गए, ताकि राजकुमारों के वेष में, शरारती तत्त्व देश के अन्दर न घुस पाते। राजमार्ग पर, स्थान-२ पर प्याऊ व लंगर लगवा दिए गए थे; जो कठिन परीक्षा से हताश होकर, परीक्षा छोड़ने वाले कुमारों का आश्रय भी बनते। स्थान-२ पर, उच्च-ध्वनिक (loudspeakers) भी लगे हुए थे, जो कुमारों को सही मार्ग की ओर निर्देशित कर रहे थे। स्वयंवरकक्ष के निकट ही, एक स्थान पर कुमारों को शक्तिवर्धक पेय उपलब्ध करवाने की व्यवस्था भी करवाई गई, ताकि कठिन बाधाओं को पार करके, वहाँ तक पहुंचे हुए अनेकगुणसंपन्न कुमार, अपार थकान के कारण कहीं परलोकगामी न बन जाते। इस तरह से, बहुत से कुमार स्वयंवरकक्ष तक पहुँच गए। कक्ष में बहुत से सभासदों, तथा सभी सखी-सहेलियों व ज्ञातिजनों के साथ, घृतम्भरा पहले से ही उपस्थित थी। वास्तव में फलदेव के सहयोगी अधिकारी लंबहस्त ने उन सभी को, समुचित रीति से व यथोपयुक्त निर्धारित समय पर, विभिन्न गाजों-बाजों व लास-विलासों के साथ, वहाँ पर पहले ही पहुंचवा दिया था।

फिर लंबहस्त के प्रिय अधिकारी प्रस्तरज्ञानी के नेतृत्व में वह स्वयंवर सभा संपन्न हुई। लंबहस्त लगातार प्रस्तरज्ञानी के संपर्क में बना रहा। प्रस्तरज्ञानी ने भी अपने उस प्रिय वरिष्ठाधिकारी के निर्देशानुसार, विवाह-समारोह के सारे प्रबंध करवाए। प्रस्थित बारात के उचित दिशा-निर्देशन के लिए, उसने स्थान-२ पर उच्चध्वनिक लगवाए, और बारातियों के खाने-पीने का भी स्थान-२ पर प्रबंध करवाया। बारात के विश्राम के लिए, उसने निर्जन बीहड़ क्षेत्र के निकट स्थित पूर्वोक्त विश्रामगृह को सज्ज करवाया। उसने नए देश के विकास के लिए , यथानिर्दिष्ट सुनसान बीहड़ क्षेत्र में, सामाजिक हलचल को बढ़वा दिया। वहाँ तक सड़कों के जाल बिछवा दिए। अनेक प्रकार की यात्रीवाहक , मालवाहक व सेनावाहक गाड़ियों की आवाजाही बढ़वा दी, ताकि युवराजपरिवार को नवदेशविकास करते हुए, किसी भी कठिनाई का सामना न करना पड़ता। नवदेश के पूर्णविकासपर्यंत , प्रस्तरज्ञानी ने वहाँ पर अनुकूल परिस्थितियाँ बना कर रखीं। उसने मूलदेश के राजद्वारों को प्रारम्भ में ही बंद करवा दिया था , ताकि कोई चोर-उचक्के या उग्रवादी प्रकार के लोग, देश के उस अंदरूनी बीहड़ में प्रविष्ट होकर, संवेदनशील व विकासाभिमुख नवदेश को कोई हानि न पहुंचा पाते। वह अधिकारी इतना अधिक निपुण था कि उसने वहाँ पर भूकंपरोधी यन्त्र भी लगवा दिए थे , जो भूकंप की अवस्था में, वहाँ पर भूमिकम्पन नहीं होने देते थे, और नवदेश की निर्माणाधीन व संवेदनशील संरचनाओं को कोई हानि नहीं पहुँचने देते थे, क्योंकि वह क्षेत्र अत्युच्च स्तर का भूकंप-संवेदनशील क्षेत्र था, जिससे वहाँ पर भूकंप आते ही रहते थे। इस प्रकार से, उसने नवदेशनागरिकों को कोई ऐसी परेशानी नहीं होने दी , जिससे वे उद्वेलित होकर बागी बन जाते, और नवदेश के पूर्णविकास के पूर्व ही, मूलदेश को छोड़कर चले जाते। फिर नवदेश का विकास पूर्ण हो जाने पर, प्रस्तरज्ञानी को छुट्टी पर भेज दिया गया। फिर एक सुनियोजित व नवदेशहितकर नीति के तहत, उसका कट्टर विरोधी व प्रतिद्वंद्वी माना जाने वाला, अस्त्रज्ञानी नामक अधिकारी, फलदेव के मार्गदर्शन में, उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया गया। वह प्रस्तरज्ञानी से पुरानी शत्रुता का प्रतिकार लेने के लिए, उसको नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हुए, सभी काम उसके विरुद्ध करने लगा। उसने प्रस्तरज्ञानी की प्रसिद्धि व उसके विकासात्मक कार्यों से ईर्ष्या करते हुए, उसके कार्यों में रोड़ा अटकाना प्रारम्भ कर दिया। वह उसे बदनाम करवाने के लिए, उसके कार्यों पर पानी फेरने लगा। परन्तु उससे हानि की अपेक्षा लाभ ही हुआ, क्योंकि प्रस्तरज्ञानी तो अपना काम पहले ही पूर्ण कर चुका था। नवदेशनिर्माण के प्रारम्भिक काल में, वे दोनों ही अधिकारी सहयोगात्मक रवैये से काम कर रहे थे, क्योंकि उच्चाधिकारियों ने उनके बीच में समझौता करवा दिया था। संभवतः , बाद में किसी बात पर, फिर से उनके बीच में तनातनी उत्पन्न हो गई थी। पूर्वाग्रही अस्त्रज्ञानी के कुकृत्यों के फलस्वरूप, भूकम्पों से नवदेश के लोग परेशान होने लगे, वहां पर भोजन-पानी व स्थान की कमी होने लगी, वहां की जनसंख्या तेजी से बढ़ गई, और मूलदेश के दोनों राजद्वार भी बारी-२ से खोल दिए गए। उन सभी विकट परिस्थितियों में, अच्छा अवसर जानकर, वे नवदेशनागरिक भी अपने साजो-सामान के साथ, एक नई मंजिल तलाशते हुए, समस्याग्रस्त मूलदेश से बाहर की ओर कूच करने लगे।

अन्य अनुभवों की तरह ही, आध्यात्मिक अनुभव भी बाँटने से बढ़ते ही हैं। प्रेमयोगी वज्र ने जब आनलाईन सामाजिक साईटों (online social sites), विशेषकर अध्यात्म-सम्बंधित साईटों पर अपने क्षणिकात्मज्ञान के अनुभव को सभी के साथ साझा किया था, तो उसे उससे कुण्डलिनीजागरण का बल मिला था। समाज को आध्यात्मिक अनुभवों को छिपाने की बुरी आदत संभवतः मध्ययुग में पड़ी, जब विधर्मी व असहनशील लोग वास्तविक धर्म के ऊपर हावी हो गए थे। परन्तु आज अधिकाँश स्थानों पर ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता , और संचार के द्रुतगामी साधन भी सर्वसुलभ व सर्वत्रसुलभ हैं। अनुभव को बाँटने से जहाँ ग्रहण करने वाले को एक नया अनुभव प्राप्त होता है, वहीं बाँटने वाले को भी बदले में किसी दूसरे से एक नया अनुभव प्राप्त हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुण्डलिनीजागरण/आत्मजागरण का सद्प्रभाव आगे आने वाले जन्मों में भी जारी रहता है, जैसा कि ऋषि पतंजलि ने उसके/समाधि के बारे में लिखा है। इसी तरह से, यह भी प्रतीत होता है कि इसका विकासात्मक प्रभाव जीन/डीएनए (gene/DNA) के ऊपर भी दर्ज हो जाता है, जो फिर आगे की पीढ़ी में भी स्थानांतरित हो जाता है। इसी वजह से , प्रेमयोगी वज्र के बच्चों में भी जन्म से ही कुछ विलक्षण प्रभाव प्रतीत होने लग गए थे। इन सभी बातों का सीधा सा अर्थ है कि मुक्ति की ओर मनुष्य जाति का विकास जारी है, और आने वाले समय में सभी का मस्तिष्क कुण्डलिनी-जागरण वाले मस्तिष्क के स्तर जितना उन्नत हो जाएगा।

उपरोक्त कथानक के अनुसार ही, कई बार नवदेशविरोधी लोगों के आगे झुकते हुए, राजा तनिक विदेशी सहायता से, प्रस्तरज्ञानी को, नवदेश का विकास पूर्ण हो, उससे पहले ही छुट्टी पर भिजवा देता है। वास्तव में वह बहुत निष्ठावान व लोकप्रिय अधिकारी होता है , जिसे हटाना आसान नहीं होता। इसीलिए राजा को मित्रदेशों से सहायता मांगनी पड़ती है। उससे दुराग्रही अस्त्रज्ञानी को , उसके द्वारा खाली किए गए, उस महत्त्वपूर्ण पद पर काबिज होने का एक अच्छा अवसर मिल जाता है, जिसके लिए आपसी रस्साकशी चलती ही रहती है। वह राजनीतिक जुगत भिड़ाने लग जाता है। अनेक प्रकार की सिफारिशों व दबावों के आगे झुकते हुए , न चाहते हुए भी, नवदेशमंत्री को, अस्त्रज्ञानी को उस खाली पड़े पद पर नियुक्त करना ही पड़ता है। वैसी हालत में, प्रस्तरज्ञानी के प्रति उसका विरोध रंग लाने लगता है। अस्त्रज्ञानी अपने देश के प्रति आसक्ति के कारण अँधा बन चुका होता है।

साथ में वह एक आँख से काना भी होता है। वह अपने देश व उससे जुड़े मुद्दों को खुली आँख से देखता है , परन्तु जो मुद्दे उसे अपने देश के ज़रा भी विरुद्ध लगे, उसे वह अपनी फटी हुई आँख से देखता है, बेशक वे युक्तियुक्त ही क्यों न हों। उसके वैसे पक्षपात व द्वैतयुक्त रवैये से डरा हुआ नवदेश, उसके पदभार संभालते ही कांपने लग जाता है। अस्त्रज्ञानी नहीं चाहता कि कोई उभरता हुआ नया देश , उसके देश के संसाधनों के ऊपर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न करे। अतः वह नवदेश के विरुद्ध हरसंभव प्रयास करने लगता है। वैसे भी, आसक्त व द्वैतपूर्ण लोगों से किस बुराई की उम्मीद नहीं की जा सकती। आसक्तिभाव को अनासक्तिभाव के साथ और द्वैतभाव को अद्वैतभाव के साथ प्रदर्शित करने की, देहपुरुषों की यह कलाकारी भी गजब की होती है। जो लोग अस्त्रज्ञानी के कार्यों से नाराज भी होते हैं , वे भी उसके विरुद्ध आन्दोलन नहीं कर सकते , क्योंकि वह भी एक बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है, जो देहदेश को क्रियाशील व सुव्यवस्थित बनाए रखने में बहुत सहायता करता है। अस्त्रज्ञानी की नाजायज दखलंदाजी से परेशान नवदेश को, समय से पूर्व ही मूलदेश को छोड़कर, बाहर के बीहड़ों में विस्थापित होना पड़ता है। क्योंकि नवदेश का पूर्ण विकास ही नहीं हुआ होता है, अतः वह अपने पृथक अस्तित्व को बना कर नहीं रख पाता, और शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अपना उद्देश्य पूरा होता देखकर, ईर्ष्या से कुटिल बन चुका अस्त्रज्ञानी ख़ुशी से झूम उठता है। स्वार्थ में अंधा व निर्दयी बन चुका वह , सुकोमल नवदेश के ऊपर तनिक भी दया नहीं दिखाता। वहीँ दूसरी ओर देशभक्त, मानवता से पूर्ण, समर्पित व कर्मठ प्रस्तरज्ञानी, बेचारा उस क्षण को कोसता रह जाता है, जिस क्षण उसको बाहर का रास्ता दिखाया गया था। वैसे यदि नवदेश का अधिकाँश विकास पूरा हो गया हो, और मूलदेश का राजा उसके ऊपर विशेष ध्यान दे, तो कई बार वह अपनी बिखरती हुई पृथक सत्ता को वापिस समेट भी लेता है।

अद्वैत भी दो प्रकार का होता है। पहला, जिसमें अभाव व दुःख को अस्वीकार किया जाता है। इसमें व्यावहारिकता व साँसारिकता की अपेक्षाकृत रूप से कमी होती है, क्योंकि इन दोनों के लिए अभाव का होना आवश्यक है। दूसरा, जिसमें अभाव व दुःख को भी परिस्थिति के अनुसार उत्पन्न होने दिया जाता है; उनका न तो स्वागत किया जाता है , और न ही बहिष्कार/अस्वीकरण, परन्तु उनके प्रति साक्षीभाव से स्थित रहा जाता है। यह अपेक्षतया अधिक व्यावहारिक व साँसारिक होता है। इसलिए साँसारिक लोग व प्रकृति भी इसके सद्व्यवहार व साँसारिकता के बदले में, अप्रत्यक्ष रूप से इस द्वितीय भाव वाले साधक की, कुण्डलिनीजागरण में सहायता करते हैं। शविद से मुख्यतः यह द्वितीय प्रकार का अद्वैत उत्पन्न होता है।

कई देहदेशों के कुछ जनसमाज अपने राजा को निरंतर उद्विग्न व दुखी करते रहते हैं। राजा अपने देश के पतन के भय से , उनके ऊपर कठोर कार्यवाही भी नहीं कर पाता, क्योंकि वे समाज देश के बहुत महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। इसलिए राजा सदैव उनको शाँत करवाने के प्रयास में लगा रहता है। वैसे, वे समाज एक प्रकार से राजा की भलाई ही कर रहे होते हैं, क्योंकि दुःख व पीड़ा के कारण राजा को जीवन के सत्य को अनुभव करने की शक्ति प्राप्त होती है। उस संचित मानसिक शक्ति से, वह आसक्ति को त्याग कर अद्वैतयुक्त भी बन जाता है, जिससे उसकी कुण्डलिनी भी पुष्ट होती रहती है। इस तरह से, लम्बे समय तक अद्वैत के अभ्यास से, वह अनायास ही योगसाधना में संलग्न हो जाता है। उससे उसकी कुण्डलिनी को अतिरिक्त तीव्र बल मिलता है। यौनयोग के और अधिक अतिरिक्त बल से, वह जाग जाती है। राजा की इस प्रकार की निष्ठा व उसके दिव्य व्यक्तित्व को देखते हुए , उसके बागी देशवासी भी काफी हद तक सुधर भी जाते हैं।

वास्तव में, नासिका-छिद्र बारी-२ से खुलते व बंद होते रहते हैं। केवल थोड़े से ही समय के लिए , दोनों छिद्र एकसमान रूप से खुले रहते हैं। वह समय योगाभ्यास के लिए सर्वोत्तम होता है, क्योंकि उस समय ध्यान अच्छा लगता है। कहते हैं कि दोनों संध्याकालों के विशेष समय में, दोनों नासिका-छिद्र समान रूप से खुले होते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही, अनुलोम-विलोम प्राणायाम व नेति आदि हठयौगिक क्रियाएं भी की जाती हैं। जिस तरफ का नासिका-छिद्र बंद हो, यदि सिद्धासन के अंतर्गत, उस तरफ की टांग को नीचे रखा जाए, तो संभवतः कुण्डलिनीध्यान में कुछ सरलता प्रतीत होती है। एक बात और है। जिस विशेष समय पर दोनों नासिका-छिद्र खुले होते हैं, उस समय मन शान्तावस्था व ध्यानावस्था में स्वयं ही स्थित होता है, और उस समय योगसाधना करने का मन स्वयं ही कर जाता है। नासिका -छिद्र बराबर न चल रहे हों, तो जो नासिका-छिद्र अधिक खुला हो, उससे साँस भरने से, मूलाधार पर कुण्डलिनी अधिक अच्छी तरह से पुष्ट हो जाती है। यद्यपि प्रेमयोगी वज्र ने इन सब बातों की परवाह नहीं की , और साधारण अनुलोम-विलोम प्राणायाम के अतिरिक्त, कोई विशेष क्रिया नहीं की। इसके बावजूद भी उसका अकस्मात कुण्डलिनीजागरण, यौनयोग की शक्ति से ही संभव होया हुआ प्रतीत होता है।

पूर्वोक्त स्वयंवर में, अधिकाँश बार तो राजकुमार आते ही नहीं। निमंत्रितदेश उन्हें भेजता ही नहीं, क्योंकि संभवतः उसे निमंत्रकदेश पसंद ही नहीं आया होता है। परन्तु इससे निमंत्रकदेश को कोई अंतर नहीं पड़ता। उसके वहाँ तो बैठकों का दौर यथावत चलता रहता है। यदि राजकुमार नहीं आते हैं, तो राजकुमारी और उसकी सखियाँ विश्रामगृह में कुछ समय के लिए रुकती हैं, और फिर साध्वियां बन कर, एकांत में योगयुक्त जीवन बिताते हुए,

अखंडसमाधि में स्थित होकर, ब्रम्हलीन हो जाती हैं। फिर प्रशासन का ध्यान उस नवदेशगर्भक बीहड़क्षेत्र से हट जाता है , और वह अन्य आवश्यक विषयों पर ध्यान देने लगता है। इससे संभावित नवदेश के विकास के लिए बनाई गई आधारभूत संरचनाएँ, बिना रखरखाव के नष्ट-भ्रष्ट होने लगती हैं। सड़कें भी खस्ताहालत हो जाती हैं। इस तरह से, देहदेश के संसाधनों की व उसकी शक्ति की बहुत बर्बादी हो जाती है। परन्तु विशालदेश को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, अपितु कुल मिलाकर लाभ ही होता है; क्योंकि उन नियमित बैठकों व तैयारियों से, वह देश निरंतर रूप से सजग, विकासोन्मुख व चलायमान अर्थव्यवस्था से युक्त रहता है। उसके समस्त देशवासी भी अद्वैतमयी कर्मयोग में स्थित रहते हैं, और आत्मानंद प्राप्त करते हैं। उन्हें देख कर, राजा भी प्रसन्न व आत्मविभोर हो जाता है। कई बार राजकुमार स्वयंवरकक्ष तक पहुँचने में बहुत देर कर देते हैं। ऐसा संभवतः निमंत्रित राजा को ठीक से सूचना न मिलने के कारण होता है , या राजा का उद्देश्य , नए देश का निर्माण नहीं, अपितु अपने देशवासियों को प्रसन्नता व अद्वैतयुक्त कर्मशीलता की खुराक (tonic) देना होता है। वैसी स्थिति में, जब कुमार स्वयंवरस्थल पर पहुंचते हैं, तो स्वयंवरसभा, बिना विवाह के ही संपन्न हो चुकी होती है। ऐसा ही एक नजारा लेखक को भी देखने को मिला था। लेखक ने देखा कि एक बार वे राजकुमार , राजकुमारी की बेवफाई से नाराज होकर, पागल जैसे हो गए थे। वे उस बात को सहन नहीं कर सके कि राजकुमारी उनकी प्रतीक्षा किए बिना ही , अपने परिवारजनों के साथ कैसे चली गई। वे उसे राजकुमारी की बेवफाई व उसका अहंकार समझने लगे। उन्हें प्यार में बहुत बड़ा धोखा हाथ लगा था , और उनके आत्मसम्मान को गहरी ठेस पहुँची थी। वे क्रोध से भर गए। मानसिक अवसाद ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। यद्यपि उतने बड़े मानसिक आघात को भी उन्होंने अपने अद्वैतभाव से संभाल लिया था। फिर उस महान अद्वैत के फलस्वरूप, उनको एकदम से पूर्ण आत्मज्ञान (full enlightenment) हो गया, जिससे वे साधु-फकीर की तरह भटकने लगे, और किसी भी समाज में मिश्रित नहीं हो सके। इधर -उधर भटकते हुए ही, उनके शरीर योगाग्नि से भस्म हो गए, जिससे वे ब्रम्ह में विलीन हो गए। इसी तरह, कई बार राजकुमार समयपूर्व ही वहाँ पहुँच जाते हैं। जब तक घृतंभरा वहाँ पहुंचती है , तब तक वे उस भोगविलाससंपन्न देश में खो जाते हैं, और स्वयंवरसभा को पूर्ण रूप से संपन्न करवाने का मूल उद्देश्य ही भूल जाते हैं। कई कुमार , सागर की उछलती हुई लहरों पर नाचते-कूदते प्रतीत होते, सुन्दर व सजे-धजे हुए यांत्रिक-वाहनों को देखकर, उनकी सवारी करने दौड़ पड़ते हैं, और असफल होने पर, स्नानोपरांत, रेतीले तटों पर धूप सेंकते हुए सुस्ताने लगते हैं। कई कुमार, नारियल की स्थानीय मदिरा को पीकर, अपनी सुध-बुध ही खो बैठते हैं। कई तो दुकानों में खरीददारी करने लगते हैं , और मोह-माया में फंसकर, अपना अभियान ही भूल जाते हैं। कुमारीदेश की तरह ही , कुमारदेश भी उस आयोजन के लिए, अपनी अत्यधिक शक्ति व असीमित संसाधनों का उपयोग करता है। स्वयंवर की कठिन परीक्षा के कारण, बहुत से कुमारों का जीवन दांव पर लगा होता है। उनके वस्त्र, जूते आदि घातकपर्यावरणरक्षक वस्तुएँ व सुरक्षा के अन्य उपकरण भी अतिविशिष्ट श्रेणी के होते हैं। वे राजकुमार स्वयं भी आम लोगों से अलग, अतिविशिष्ट होते हैं। अतः उन्हें विशेष व सर्वगुणसम्पन्न बनाने के लिए, देहदेश को अपनी बहुमूल्य वस्तुओं व सेवाओं को खर्च करना पड़ता है, स्वर्णजटित मुकुट भी जिनमें से एक है। उन खर्च की गई, देश की बहुमूल्य वस्तुओं व सेवाओं को अपने पूर्व के मूलस्तर तक पहुंचाने के लिए, पूरे देश को कड़ा संघर्ष करना पड़ता है, और उसमें समय भी काफी लग जाता है। कई बार राजा सभी देशवासियों को उत्तम श्रेणी का वैदिक/ तांत्रिक आमिषाहार करवाता है, जिससे उनकी कार्यक्षमता एकदम से व काफी अधिक बढ़ जाती है। उससे शीघ्र ही देश के भुक्त /लुप्त संसाधनों की भरपाई हो जाती है, यद्यपि वह कई बार अधिक खर्चीला पड़ता है, और उसमें हिंसा-दोष भी होता है। उसे दोष-निवारण के लिए देश में शान्तियज्ञ भी करवाने पड़ते हैं, जिसमें भी कुछ संसाधन खर्च हो जाते हैं। इतने खर्चों के बावजूद भी राजा उनकी परवाह नहीं करता , क्योंकि अपने देशवासियों की अद्वैतपूर्ण क्रियाओं को देखकर, वह भी अद्वैत के आनंदसागर में निमग्न हो जाता है। कई बार कोई बुद्धिमान राजा, तांत्रिकविधि को अपनाते हुए, बहुत थोड़े से कुमारों को ही स्वयंवर के लिए, अपने देश से बाहर भेजता है। यद्यपि वह पूरे देश से उनकी वास्तविक संख्या को छिपा कर रखता है , जिससे देश को पूर्ववत/पूर्वोक्तानुसार ही अद्वैतमयी तांत्रिक लाभ भी मिल जाता है , और वस्तु-सेवाओं की अधिक बर्बादी भी नहीं होती। उससे समस्त देशवासियों का यौनयोग हो जाता है। यौनयोग केवलमात्र कुण्डलिनीजागरण के लिए ही नहीं , अपितु लौकिक सफलता के लिए भी समान रूप से आवश्यक होता है। इससे अवसाद, चिंता आदि मानसिक दोष नष्ट हो जाते हैं, और मानसिक गुणों का विकास भी होता है। परन्तु कई बार, पूरे देश से स्वयंवर-यात्रा के लिए आए हुए, और सीमा के निकट बने हुए सम्बंधित क्षेत्रीय कार्यालय में इकट्ठे होए हुए राजकुमार , उस धोखे से नाराज होकर हंगामा भी खड़ा कर देते हैं, और कई बार तो तोड़-फोड़ पर भी उतारू हो जाते हैं। उन्हें समझाने के लिए राजा को बहुत से , प्यार-भरे व शाँतिपूर्ण प्रयास करने पड़ते हैं। साथ में, उन्हें वहाँ पर अच्छा भोजन-पानी व अन्य सभी सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाती हैं, जिनसे प्रसन्न होकर वे शीघ्र ही अपने-२ मूलनिवासस्थानों को वापिस लौट जाते हैं। पूरे देश में बदनामी से बचने के लिए और नवकुमारों को शाँत रखने के लिए , बीच-२ में निमंत्रित राजा को उस प्रथा का पूर्ण आयोजन भी करवाते रहना पड़ता है। फिर भी , यदि राजा को नया देश बनवाने की इच्छा न हो , तो वह बड़ी चतुराई से,

राजकुमारों को उस समय स्वयंवरकक्ष में पहुंचवाता है, जिस समय घृतंभरा स्वयंवरकक्ष में उपलब्ध ही नहीं होती है। सर्वाधिक परेशानी तो तब होती है, जब वरदेश व वधुदेश के बीच में बने हुए मधुर संबंधों की आड़ में, उत्पथगामी व तथाकथित बुरे लोग भी एक-दूसरे के क्षेत्रों में प्रविष्ट होते रहते हैं। उनसे संभावित हानि से बचने के लिए, सम्बंधित क्षेत्रों में सुरक्षा प्रबंध पुख्ता रखने पड़ते हैं। कई बार, उन दुष्टों का आतंक इतना अधिक बढ़ जाता है कि देश की सुरक्षा व्यवस्था उनसे निपट ही नहीं पाती। वैसी अवस्था में, मित्रदेशों से सुरक्षा के लिए अपील की जाती है। इस तरह से, तनाव बढ़ने के साथ, कई बार युद्ध के जैसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।

परन्तु कई बार निमंत्रकराजा, निमंत्रित राजा की, उपरोक्त तांत्रिक चतुराई से भरी हुई योजना के ऊपर पानी फेर देता है। वह निमंत्रित राजा को उसके मुख्यतममंत्री से अलग-थलग करवा देता है। कुंडलदेव नाम का, राजा का मुख्यतममंत्री बहुत ही योग्य, श्रेष्ठ, दिग्दर्शक, विश्वासपात्र व सदैव राजा का साथ निभाने वाला मंत्री होता है। वह राजा के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है , जितनी महत्त्वपूर्ण एक कुण्डलिनीसाधक के लिए उसकी कुण्डलिनी होती है। वह हर प्रकार से राजा का हित साधता है, तथा उसे लौकिक-पारलौकिक, भौतिक-आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के सुखों को उपलब्ध करवाता है। वह राजा को शक्ति का दुरुपयोग करने से भी रुकवाता रहता है, और हरसंभव विधि से उसका संरक्षण करवाता रहता है। लेखक ने देखा कि इसी तरह एक बार, तंत्रहा नाम के एक पड़ौसी/निमंत्रक राजा के प्रलोभन-जाल में फंसा हुआ, तंत्रपत नामक निमंत्रित राजा, अपने उस योग्यतम मंत्री को भूल गया। कुंडलदेव की संगति के बिना, तंत्रपत नवदेशनिर्माण-विभाग पर समुचित नियंत्रण नहीं रख सका। तंत्रहा उसके उस विभाग के क्षेत्रीय कार्यालय के संपर्क में निरंतर बना रहा, और वहाँ के अधिकारियों को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देता रहा। उस कपटी राजा ने तो उसके पूरे देश के बहुत से अधिकारियों व मंत्रियों को भी अपने वश में कर लिया था। फिर वे सभी प्रबुद्ध देशनिवासी आपस में मिलकर , सम्बंधित क्षेत्रीय कार्यालय के, परतंत्र नाम के मुख्याधिकारी को बहुत उकसाने लगे। उसने भी उकसावे में आकर, सभी इच्छुक राजकुमारों को विदेश यात्रा की अनुमति दे दी। उसे देखकर तंत्रपत बहुत प्रसन्न हो गया, क्योंकि उसे प्रतीत हुआ कि उसने अपने पड़ौसी राजा से मधुर सम्बन्ध बना लिए थे, इसलिए वह उससे अप्रत्याशित सहायता की अपेक्षा करने लगा। यद्यपि वह झूठी अपेक्षा होती है, तथा निमंत्रकदेश द्वारा उससे सम्बंधित दिया गया आश्वासन/दिलासा भी झूठा ही होता है, क्योंकि उस क्षतिपूर्ति की भरपाई पूर्णरूप से कभी नहीं हो सकती। असंख्य राजकुमारों के विदेशगमन को निमंत्रित देश सहन ही नहीं कर पाता, स्थूलरूप से भी व भावनात्मक रूप से भी। वे राजकुमार अत्यंत शिक्षित, प्रशिक्षित व गुणवान होते हैं। देश ने उनके ऊपर बहुत से साधन व संसाधन व्यय किए हुए होते हैं। पूर्वोक्तानुसार, उनके वस्त्रों व उद्घाटित अंगों को बहुमूल्य रत्नों व मणियों से सजाया गया होता है। फिर लेखक ने देखा कि तंत्रहा राजा ने तंत्रपत राजा को अपने विश्वास में बनाए रखने के लिए, उसे बहुत सी सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं। यद्यपि वह एक ढोंग ही था, क्योंकि कोई व्यक्ति किसी का खजाना लूटने के बाद, उसे क्योंकर भरेगा। यदि कोई विरला आदमी उसे भर भी दे, तो भी उसमें बहुत सा समय लग जाता है, और साथ में, चारों ओर अस्त-व्यस्तता व तनाव का माहौल भी फैल जाता है। देशवासी उस शक्तिह्रास व काम के बोझ के कारण पागल जैसे हो जाते हैं, और उनमें सोचने-समझने की शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है। इसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव राष्ट्रीय राजधानी में स्थित मंत्रियों व अधिकारियों पर पड़ता है, क्योंकि उनका स्वाभाविक कर्म ही चिंतनप्रधान होता है। कुंडलदेव तो लगभग विलुप्त ही हो जाता है। फिर भी , यदि उस अभियान के समय कुंडलदेव का ध्यान किया जाता रहे, तो वह बुरे समय में राजा का साथ निभाने आ भी जाता है, परन्तु शक्ति में क्षीणता तो आ ही जाती है, यद्यपि अपेक्षाकृत कुछ कम मात्रा में। ऐसा प्रतीत होता है कि तंत्रहा राजा ने अपना बड़प्पन दिखाने के लिए व तंत्रपत राजा को घुटनों के बल लाने के लिए ही वह कुटिल योजना बनाई थी। तंत्रहा को भी उससे कोई विशेष भौतिक उपलब्धि प्राप्त नहीं हुई थी, अपितु उसका अहंकार व बड़प्पन ही पुष्ट हुआ था। वह एक प्रकार का अप्रत्यक्ष व छद्मपूर्ण युद्ध ही तो था। वह एक कायराना युद्ध भी था, क्योंकि उसमें प्रभावित राजा के द्वारा पलटवार की संभावना लगभग न के बराबर ही थी। ऐसा इसलिए था, क्योंकि तंत्रहा ने सीधा आक्रमण नहीं किया था, अपितु उसने तंत्रपत को बड़े ही प्रेम व बड़ी ही चतुराई से अपने कुचक्र में फंसाया था। यदि कभी कोई विरला राजा विरोधी अभिक्रिया को थोड़ा सा भी प्रदर्शित करता है , तब तो वह पूरे विश्व में ही अपमानित हो जाता है, और सभी राजा उसकी एकस्वर में कड़ी भर्त्सना करते हैं। पड़ौसी देशों से मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए भारी -भरकम खर्च में कोई बुराई नहीं है, परन्तु वह खर्च राजकुमार-प्रेषक निमंत्रितराजा की पूर्णसहमति से ही होना चाहिए, किसी दूसरे/निमंत्रक देश की कुटिल योजना के अनुसार नहीं। वास्तव में, इस सम्बन्ध में निर्णय लेने का सम्पूर्ण अधिकार निमंत्रित राजा को ही होना चाहिए , क्योंकि वही उस अभियान से सर्वाधिक प्रभावित होता है। परन्तु कई राजा बहुत मूर्ख होते हैं। वे दूसरे देश में अपने देश का डंका बजाने के लिए आत्मघाती कदम भी उठा लेते हैं, और असंख्य राजकुमारों को निरंतर ही भेजते रहते हैं, अपने देश की क्षति को अनदेखा करते हुए। अतः निमंत्रकदेश को चाहिए कि वह वैसे निमंत्रितदेश को प्यार से समझाते हुए, उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान कराए। साथ में, उसे पूर्वोक्त तंत्रसदृश-मध्यमार्ग को अपनाने के लिए कहे, जिससे

साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। वह ऐसे अभियान के समय, सदैव कुंडलदेव की संगति में बना रहे। जब इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभियान में कुंडलदेव को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है, तब वह गौरवान्वित व प्रसन्न हो जाता है, तथा अपने प्रेमी राजा का साथ एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ता। यदि च्युतिवश या निर्धारित योजना के अनुसार, कभी यह अभियान पूर्णरूप से भी निष्पादित करवाना पड़े, तब भी विश्वास व संगति में बना कर रखा गया कुंडलदेव, उसको भौतिक पतन से काफी हद तक बचा भी लेता है , और साथ में, उसे आध्यात्मिक उन्नति भी प्रदान करता है। वैसे , निमंत्रित राजा को भी चाहिए कि बीच-२ में, निर्बल निमंत्रक राजा का सम्मान रखने के लिए, कुंडलदेव की संगति से युक्त स्वयंवर-अभियान को पूर्णता से भी निष्पादित करवाता रहे। यद्यपि नए देश के निर्माण के लिए , दोनों राष्ट्राध्यक्षों का सहमत होना आवश्यक है, क्योंकि नए राष्ट्र ने उन दोनों के संसाधनों से ही तो विकसित होना होता है। यदि वे दोनों , नए राष्ट्र का निर्माण न चाहें, तो दोनों मिलकर पूर्वोक्त स्वयंवरोद्वाहावरोधक कूटनीतिक चालों को भी चल सकते हैं, जिससे दोनों के राष्ट्रवासी भी अद्वैत से प्रसन्न व आत्मविभोर हो जाएं, तथा नए देश के निर्माण की चुनौती का सामना भी न करना पड़े।

पुराणों में जो कुछ भी लिखा है, वह सभी कुछ सत्य है। उदाहरणतः यदि सौ गज लम्बे राजा या उड़ने वाले घोड़े का भी वर्णन आता है , तो भी वह सत्य है। वास्तव में, आत्मा के अन्दर सभी कुछ संभव है। क्योंकि पुराणों में आत्मा का वर्णन ही मुख्य केंद्रबिंदु है , अतः पुराणों में वर्णित कोई भी बात झूठी नहीं है। शविद में कल्पनाओं की उतनी अधिक उड़ान तो नहीं है, यद्यपि वास्तविकता को वास्तविक व अद्वैतमयी रंग के साथ अवश्य रंगा गया है।

कई बार, कोई निमंत्रकराजा छल-बलपूर्वक या मूर्खतावश अपनी घृतंभरा का स्वयंवरोद्वाह करवाना चाहता है , नए देश के निर्माण से सम्बंधित उत्तरदायित्वों को समझे बिना ही। ऐसा ही एक घटनाक्रम एकबार लेखक ने भी देखा था। उसने देखा कि उडायनराज नामक एक निमंत्रकराजा ने , विकुंडलराज नामक अपने मित्रराजा के देश से, राजकुमारों की भीड़ को अपने देश में छलपूर्वक, उस समय बुलवा लिया, जब उसके अपने अधिकारी घृतंभरा के स्वयंवर की साज-सज्जा में जुटे हुए थे। बाद में उसे अपनी भूल का अहसास हो गया , और विकुंडलराज भी उसकी कुटिलता को शीघ्र ही समझ गया। अतः विकुंडलराज नाराज होकर, नए देश के विकास में सहयोग देने से मना करने लगा। ऐसे में , उडायनराज के पास भी बीहड़ों में पाए जाने वाले प्रस्तरज्ञानी-वंश के तद्वंशसमाज-बहिष्कृत/अमानवीय लोगों से सहायता लेने के अतिरिक्त, कोई भी विकल्प शेष नहीं था। वास्तव में, उस समय उसके देश में वास्तविक/मानवीय/सामाजिक प्रस्तरज्ञानी की नियुक्ति नहीं हुई थी, या वह लम्बे अवकाश पर था। उसके स्थान पर, अस्त्रज्ञानी अपनी सेवाएं दे रहा था। परिणामतः उस देश के नवदेशनिर्माणविभाग के क्षेत्रीय कार्यालय में , अस्त्रज्ञानी फलदेव के साथ मिलकर, पूर्वोक्त महान स्वयंवर व विवाहोत्सव को अच्छी तरह से निपटाने के लिए जी-जान से जुटा हुआ था। वैसी आपातकालीन अवस्था में, बीहड़ों से, बहिष्कृत प्रस्तरज्ञानी को बुलवाना पड़ा। वह पूरी तरह से तद्देशीय प्रस्तरज्ञानी की तरह नहीं होता, यद्यपि उससे बहुत मिलता-जुलता है, और उसके बहुत से काम बखूबी कर लेता है। वास्तव में, वे दोनों एक ही वंश-परंपरा से सम्बंधित होते हैं, यद्यपि बीहड़ों में रहने वाले प्रस्तरज्ञानी-समुदाय के लोगों को कुछ प्रशिक्षण भी देना पड़ता है। प्रशिक्षण देने के झमेलों से बचने के लिए, कई बार राजा के द्वारा दूसरे देशों से भी प्रस्तरज्ञानी बुलवा लिए जाते हैं। लेखक ने फिर देखा कि निमंत्रकदेश के भीतर प्रविष्ट होने के बाद , वे राजकुमारी के निवासस्थान के आसपास इकट्ठे हो गए। वहाँ पर घृतंभरा एक अतिसुन्दर महल में निवास करती है। वह महल तीनों लोकों में अतुलनीय होता है। वह त्रिलोक की सभी सुख-सुविधाओं से पूर्ण होता है। पूर्णतः स्वर्णनिर्मित उस महल में, भोजन-पानी के अतिरिक्त सभी कुछ स्वर्ण से बना होता है। यहाँ तक कि वस्त्र व जूते भी कोमल व महीन स्वर्ण -तंतुओं से बने होते हैं। वहाँ पर राजकुमारी की सखी-सहेलियाँ व उसके ज्ञातिजन, उसे स्वयंवर के लिए तैयार करने में जोर-शोर से लगे हुए थे। उस तैयारी में बहुत अधिक वित्तीय खर्च हुआ, और समय भी बहुत लगा, क्योंकि प्रस्तरज्ञानी-समुदाय के लोग महल के चारों ओर हो-हल्ला व नारेबाजी कर रहे थे। वे आसपास के लोगों को भी अपने विश्वास में लेने लगे , जिससे वे भी उनके साथ जुड़ने लगे। अस्त्रज्ञानी ने उनको समझाने का बहुत प्रयत्न किया , परन्तु वे अपने कर्तव्यनिर्वहन के साथ जरा भी समझौता नहीं कर रहे थे। प्रस्तरज्ञानी-समुदाय राजकुमारी को रोकने का हरसंभव प्रयास कर रहा था। पूर्वोक्तानुसार, अस्त्रज्ञानी-समुदाय व प्रस्तरज्ञानी-समुदाय के बीच का वैर-विरोध तो जगजाहिर है ही। भय एवं अविश्वास के माहौल के कारण , राजकुमारी की परिचारिकाएँ हतोत्साहित सी होकर, राजकुमारी की सेवा-शुश्रुषा से किनारा करने लगीं। यद्यपि अस्त्रज्ञानी ने कुमारी के सुखद भविष्य के सम्बन्ध में , उन्हें विश्वास दिलाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। अंत में राजकुमारी का सजना-संवरना रुक गया। धीरे-२ करके उसका सारा श्रृंगार फीका पड़ने लगा, और वह पुनः एक साधारण स्त्री की तरह लगने लगी। स्वयंवर रद्द कर दिया गया , क्योंकि राजकुमारी लज्जा, हीनता की भावना व भय के कारण; राजमहल से बाहर निकलने को राजी ही नहीं हुई। उच्चाधिकारी/ लंबहस्त भी वहाँ पहुंचकर, राजकुमारी को समझाने-बुझाने व उसे ढाढस बंधाने लगा, परन्तु वह भी क्षेत्रीयाधिकारी/अस्त्रज्ञानी की सकारात्मक रिपोर्ट (report) के बिना कुछ नहीं कर सका। लंबहस्त को राष्ट्रीय

मुख्यालय में कार्यरत अपने उच्चाधिकारी, ज्ञानराज से निरंतर डांट पड़ रही थी, इसलिए वह भी अपनी भड़ास निकालने के लिए अस्त्रज्ञानी को डांटे जा रहा था। अस्त्रज्ञानी अपना गुस्सा छोटे-२ अधीनस्थ कर्मचारियों के ऊपर निकाल रहा था। सबसे छोटे कर्मचारियों को विवश होकर, अधिकारियों का सारा गुस्सा स्वयं ही झेलना पड़ा, क्योंकि उनसे छोटे कोई कर्मचारी थे ही नहीं, जिन पर वे अपना गुस्सा निकाल पाते, यद्यपि कुछ कुटिल कर्मचारी आम जनता से घृणापूर्वक बर्ताव करके, अपने गुस्से को जरूर कुछ हल्का कर रहे थे। उन्हें दोहरी मार पड़ रही थी, क्योंकि एक ओर जहाँ उन्हें अधिकारियों के क्रोध का शिकार बनना पड़ रहा था, वहीँ दूसरी ओर प्रस्तरज्ञानी-लोग उन्हें अपना काम नहीं करने दे रहे थे। यदि बहिष्कृत प्रस्तरज्ञानी-समुदाय के पहुँचने से पहले ही, सजी-धजी हुई घृतंभरा राजमहल से बाहर निकलकर, स्वयंवर-स्थल की ओर प्रस्थान कर दे, तब तो प्रस्तरज्ञानी भी उसे रोक नहीं पाता। फिर वह नई चाल चलता है। वह घृतंभरा के यात्रामार्ग में बहुत सी विघ्न-बाधाएँ खड़ी कर देता है, ताकि उससे परेशान होकर, घृतंभरा की पालकी को उठाने वाले कहार धीरे-२ चल पाएं, जिससे उसके देरी से पहुँचने के कारण, स्वयंवर को ही रद्द कर दिया जाए। इसी तरह, वे विदेश से आ रहे कुमारों के मार्ग में भी बहुत सी बाधाएँ उत्पन्न कर देते हैं, ताकि वे भी समयानुसार स्वयंवर-स्थल तक न पहुँच सकें। यद्यपि प्रस्तरज्ञानी की ये चालें अधिकाँशतः सफल नहीं हो पातीं। विरले मामलों में तो उसकी प्रथम चाल भी सफल नहीं हो पाती, विशेषतः यदि नवदेशनिर्माणविभाग के अधिकारियों व कर्मचारियों के इरादे बहुत मजबूत हों। कई बार, स्वयंवर-रोको अभियान से नाराज नागरिक, देश के विभिन्न कोनों में हल्की-फुल्की तोड़-फोड़ भी कर देते हैं, यद्यपि वे देश को गंभीर क्षति पहुंचाए बिना, शीघ्र ही शाँत भी हो जाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुण्डलिनीयोगसाधना विशेषतः उन लोगों के लिए बनाई गई है, जिनको निरंतर व अथक रूप से शारीरिक कार्य करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। अथक शारीरिक व मानसिक श्रम करने वालों की कुण्डलिनी तो स्वयं ही पुष्ट होती रहती है, विशेषतः यदि वे शविद आदि के कर्मयोग की सहायता भी लेते रहें। ऐसा ही तो प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ था। शारीरिक व मानसिक श्रम एक-दूसरे को पुष्ट करते रहते हैं। कुण्डलिनीयोग का रहस्य भी यही है, क्योंकि उसमें दोनों प्रकार के श्रम हो जाते हैं, जो एक-दूसरे को बढ़ाते भी हैं।

संभवतः उन दोनों राजाओं के बीच में आपसी मनमुटाव के कारण या उनकी क्लेशपूर्ण अवस्था के कारण ही उपरोक्त घटनाक्रम घटित होता है। कई बार निमंत्रितराजा बिना प्रेमभाव के, यांत्रिककार्य की तरह ही उस प्रथा को निभाना चाहता है। प्रेमभाव तो दूर की बात रही, वह निमंत्रकराजा के मान-सम्मान का भी ध्यान नहीं रखता। बदले में, निमंत्रकराजा भी उससे वैसा ही व्यवहार करता है। यह सर्वविदित ही है कि व्यर्थ के आपसी मनमुटाव से लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। फिर तो उनके बीच में छल-बल व छीना-झपटी का सिलसिला शुरु हो जाता है। दोनों के बीच में, अपने आप को अधिक बड़ा व बलशाली दिखाने की, एक कूटनीतिक होड़ सी लग जाती है। पहले तो निमंत्रितराजा विजयी जैसा प्रतीत होता है, परन्तु अपने उत्तेजित व्यवहार के कारण वह शीघ्र ही थक जाता है, और शाँत होकर बैठ जाता है। उस समय निमंत्रकराजा को बदला लेने का एक अच्छा मौक़ा मिल जाता है। अतः वह छल-बलपूर्वक, पूर्वोक्त प्रकार से निमंत्रितदेश की शक्ति का हरण कर लेता है। फिर तो निमंत्रितराजा मृतप्राय जैसा ही हो जाता है। उसके सोचने-विचारने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है, क्योंकि वे बहुमुखी कुमार ही अपनी चित्र-विचित्र व मनोरंजक लीलाओं से, उसके मनमंदिर में जान फूंकते रहते थे। बहुत समय के बाद ही नए कुमारों का संगठन फिर से क्रियाशील हो पाता है, जिससे राजा पुनः राहत का अनुभव करने लगता है। बुद्धिमान राजा तो संभल जाते हैं, और अपना आचरण सुधार लेते हैं, परन्तु बहुत से मूर्ख राजा तो निरंतर रूप से उनको खोते रहते हैं, और सदैव बेतालों की तरह इधर-उधर भटकते रहते हैं। कई निमंत्रकराजा तो बहुत ही भले व देवतुल्य होते हैं। वे कभी भी निमंत्रितदेश के अन्दर धोखे से सेंध नहीं लगाते, बेशक निमंत्रितराजा कितना ही दुराचारी क्यों न हो।

योगसाधना करते समय, पेट से ही श्वास-प्रश्वास लेना चाहिए, छाती (chest) से नहीं, क्योंकि पेट से साँस लेने पर ही निचले चक्रों पर प्राणवायु का उपयुक्त दबाव बन पाता है, और उनके ऊपर हलचल हो पाती है। पेट से साँस लेने पर, ध्यान अच्छा लगता है, मन शाँत हो जाता है, तनाव व अवसाद दूर होता है, और बहुत से दिव्य व आध्यात्मिक गुण विकसित होते हैं। साथ में, पेट से साँस लेने पर, रक्तसंचार के द्वारा प्राणवायु का अवशोषण भी अच्छी तरह से होता है, जिससे तन-मन स्वस्थ रहता है। इससे, थोड़ी संख्या के श्वास-प्रश्वासों से ही प्राणवायु (oxygen) की कमी पूरी हो जाती है। इससे साँस खुद ही यौगिक बन जाती है, अर्थात साँसें लम्बी व गहरी बन जाती हैं। प्रारम्भ में, अभ्यास न होने से कुछ कठिनाई आ सकती है, परन्तु बाद में उदर-श्वास (abdominal respiration) ही अच्छा लगने लगता है, और साधक अधिकाँश समय, साधनारहित समय में भी इसी श्वास को लेने लगता है। इससे उदर कुछ बढ़ा हुआ व फूला हुआ सा लग सकता है, यद्यपि वह एक सामान्य लक्षण होता है।

कई चतुर राजा तो चालाकी की सारी हदें ही तोड़ देते हैं। एक बार लेखक क्या घटनाक्रम देखता है कि विचित्रानंदपुर नामक एक देश के राजा ने अंतरदेशीय/अंतरराष्ट्रीय (international) बीहड़ों से कबाड़ का भारी-भरकम सामान मंगवाया, और उसे अपने देश की सीमा के निकट स्थित

नवदेशनिर्माणस्थल पर गिरवा दिया। उस सारी अंतर्देशीय/अंतर्राष्ट्रीय (intranational) बीहड़ भूमि को उसने उस आयातित रद्दी माल से पटवा दिया था। उस माल में टूटे-फूटे हुए लोहे के बड़े-२ व भारी यंत्र (machines) भी थे, रद्दी की विषाक्त वस्तुएँ व धातुएँ भी थीं, और यहाँ तक कि बड़ी-२ चट्टानें भी थीं। इसलिए लोग उनसे दूर-२ ही रह रहे थे। यदि वे वस्तुएँ उनके काम की होतीं भी , तो भी वे गाँव के साधारण लोग, आधुनिक यंत्र उपलब्ध न होने के कारण उन्हें उठा नहीं पाते। फिर लेखक क्या देखता है कि विचित्रानंदराज ने उन कुमारों के मार्ग में कोई भी घातक विघ्न -बाधा उपस्थित नहीं होने दी, और उन्हें समुचित संख्या में सकुशल स्वयंवरस्थल तक पहुँचने दिया , क्योंकि उसे पता था कि उस कबाड़ के कारण नवदेशनिर्माण तो हो ही नहीं सकता था। बहुत से कुमार , मार्ग में लगने वाले उस नवदेशजनक बीहड़स्थल में रखे गए विशालकाय कबाड़ के अन्दर भटकते अवश्य रह गए थे, यद्यपि उससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा। शाहीविवाह के बाद शाहीजोड़ा, शाहीबारात के साथ, उस बीहड़स्थान में बने महल की ओर निकल पड़ा था। उस बीहड़स्थल पर सपरिवार पहुंचा वह शाहीजोड़ा, कबाड़ से भरी हुई अपनी कर्मभूमि को देखकर बहुत व्यथित हुआ। उससे उसे राजमहल में बिताए गए सुखभरे पुराने दिन याद आने लगे। उसे वहाँ पर अपना महल भी कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। बहुत खोजबीन के बाद, उस शाही परिवार को वह महल बड़ी-२ चट्टानों से दबा हुआ दिखाई दिया। वह महल बहुत क्षत-विक्षत हो चुका था, और रहने के लायक तो कतई भी नहीं था। उस भारी कबाड़ को उठाना उनके लिए असंभव था, इसलिए उन्होंने आसपास के लोगों को सहायता के लिए बुलाया, परन्तु डर के मारे कोई भी नहीं आया। अंत में थक-हार कर, उन्हें अद्वैतयुक्त गृहस्थधर्म से भरे हुए नवदेशनिर्माण के अभियान को बंद ही करना पड़ा। उनकी सारी आशाएँ व अभिलाषाएँ टूट चुकी थीं। वे हतोत्साहित हो गए थे। अद्वैत के प्रभाव से , कुण्डलिनी तो उनके अन्दर पहले से ही क्रियाशील थी। नवदेशनिर्माण अभियान के, बीच में ही असफल होने से, उसके लिए प्रचंड बनी हुई उनकी मानसिक ऊर्जा अनायास ही उनकी कुण्डलिनी को लग गई। उससे उनकी कुण्डलिनी जागृत हो गई। वे बहुत समय तक, आसपास के बीहड़ क्षेत्रों में एकान्तपूर्ण व साधनामय (यौनयोगमिश्रित कुण्डलिनीयोग) जीवन जीते रहे। फिर धीरे-२ करके उनकी सम्प्रज्ञात समाधि असम्प्रज्ञात समाधि में परिवर्तित हो गई, और वह युगलकिशोर सपरिवार ही मुक्त हो गया।

थकान के बाद यदि कुण्डलिनी को तनिक श्वास रोकते हुए, मूलबंध व उड्डीयान बंध से थोड़ा सा भी मस्तिष्क के अन्दर पुष्ट किया जाए, तो एकदम से आनंद के साथ राहत मिलती है। साथ में, साँसें भी जल्दी-२, नियमित व गहरी हो जाती हैं। यह चिंतन करना चाहिए कि बंधों से पूरे शरीर की प्राणशक्ति कुण्डलिनी के ऊपर आरोपित हो गई है, अर्थात एक प्रकार से पूरा तन-मन ही कुण्डलिनी के ऊपर आरोपित हो गया है, क्योंकि वास्तव में सम्पूर्ण तन-मन प्राणशक्ति का अभिव्यक्त रूप ही तो है। एक विधि यह भी है कि अपनी किसी भी अवस्था में अपने शरीर के अन्दर, मन से झांका जाए, और अपनी उस वर्तमान अवस्था को अद्वैतमयी देहपुरुष की उसी अवस्था के समान समझा जाए। उससे अचानक ही मन /मस्तिष्क में कुण्डलिनी प्रकट हो जाती है। फिर श्वास-प्रश्वासों से उस कुण्डलिनी अग्नि को भड़का दिया जाए।

राजकुमारों को निमंत्रकदेश की ओर भेजकर तांत्रिक लाभ लेने के लिए, और साथ में; उनके प्रति अपनी मोह-ममता के कारण उन्हें स्वयंवर-समारोह में भाग लेने, तथा चयनित कुमार को विवाह के व तदोपरांत नवदेशनिर्माण के महान उत्तरदायित्वों से बचाने के लिए, देहदेश चित्र-विचित्र प्रकार के उपायों का आश्रय भी लेते हैं। एक बार लेखक ने देखा कि असंयमपुर नामक एक देश के राजा ने प्रियदर्शनपुर नामक अपने मित्रदेश के साथ जोड़ने वाले, अपने सीमान्त-पुल (boundary-bridge) के अंतिम छोर पर एक बहुत ऊंची व मजबूत दीवार बना ली थी। वास्तव में देश के सदाकान्क्षीचयनित/वैकल्पिक व सर्वमाननीय महामंत्री, कुंडलदेव का वैसे पुल के ऊपर सर्वश्रेष्ठ नियंत्रण कायम होता है। वह अपने राजा की अनुमति से ग्रहण की गई, नवदेशनिर्माणविभाग व केंद्रीय मुख्यालय के बीच में अपनी गतिशीलता से, जब चाहे उस सारे पुल को अस्थायी तौर पर पूर्णतः बंद भी करवा सकता है। उपरोक्तानुसार, राजकुमारों के बहुत प्रयत्न करने पर भी, वे उस पुल को लांघ नहीं पाए। नीचे गहरी नदी थी, जिसको वे तैरकर भी पार नहीं कर सकते थे। इस वजह से सारे राजकुमार लम्बे समय तक पुल पर ही कैद होकर रह गए थे। फिर राजा ने उन्हें वापिस अपने देश के अन्दर लौटने को कहा, परन्तु वे नहीं माने। वे अपने को अपमानित महसूस कर रहे थे, और वापिस लौटने को अपनी शान के विरुद्ध समझ रहे थे। वे अपने मान-सम्मान की रक्षा-हेतु, राज-अवज्ञा के दण्ड को झेलने के लिए भी तैयार थे। चित्र-विचित्र विचारों के बीच में डूबते -इतराते हुए, वे प्रियदर्शनपुर के अन्दर आयोजित किए जा रहे स्वयंवर-समारोह में भाग लेने के लिए ललायित हो रहे थे। घृतंभरा का लुभावना व त्रिलोकसुन्दर चेहरा उनके मन में निरंतर घूमता जा रहा था, और उससे जुड़ी हुई यादें उनका पीछा ही नहीं छोड़ रही थीं। निरंतर रूप से किए गए उस प्रगाढ़ व प्रेमपूर्ण स्मरण से, उनके मन में घृतंभरा की कुण्डलिनी जागृत हो गई, और वे आत्मानंद में निमग्न हो गए। उनका सारा जीवन, उस जीवन की सारी यादें व उनका सारा अहंकार अनायास ही उस जागृत कुण्डलिनी के सामने फीका पड़ गया। इस तरह से, उनका सभी कुछ क्षीण हो गया, केवलमात्र कुण्डलिनी

ही विद्यमान रही। उन्हें आसपास के पहाड़ों में , कंदराओं में, पुल में व नदी में, हर स्थान पर कुण्डलिनी ही नजर आ रही थी। गजब की सम्प्रज्ञात समाधि में स्थित हो गए थे वे सारे के सारे कुमार। उन्होंने असंयमराज से बहुत अनुनय-विनय किया कि वे राजकुमारी के दर्शन के बिना मर जाएंगे , इसलिए उन्हें प्रियदर्शनपुर के अन्दर प्रविष्ट होने दिया जाए। परन्तु राजा अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ बना हुआ था , और उनके आगे कतई भी नहीं झुका। उससे कुमारों की रही-सही सभी आशाओं के ऊपर भी पानी फिर गया। फिर उन्होंने घृतंभरा को भूल जाना ही बेहतर समझा। जैसे ही वे घृतंभरा को पूरी तरह से भूल जाने में सफल हुए, वैसे ही वे असम्प्रज्ञात समाधि में प्रविष्ट हो गए। उनका सभी कुछ शून्य सा हो गया। उनका सभी कुछ (मानसिक जगत) तो चमचमाती मानसिक घृतंभरा के सामने पहले ही नष्ट हो चुका था, अब घृतंभरा भी मन से ओझल हो गई थी। केवल असम्प्रज्ञात समाधि का आनंदमयी शून्य ही बचा था। वास्तव में, मन में सभी कुछ था, यद्यपि पूर्ण अद्वैत व पूर्ण अनासक्ति के साथ। उन्हें अपने मन का सारा प्रपंच इतना अधिक धीमा व हल्का लग रहा था, जैसे कि वे कोटिजन्म पूर्व की कोई मधुर व शान्त स्मृतियाँ हों। उसी शून्य के बीच में उन्हें अचानक व अनायास ही आत्मज्ञान (Enlightenment) हो गया। अब वे पूर्णमुक्त व पूर्णज्ञानी बन चुके थे। जीवन के प्रति उनका मोह पूर्णतः भंग हो चुका था। उन्होंने अपनी लम्बी जीवनयात्रा पूरी कर ली थी। उन्होंने जानने योग्य सभी कुछ जान लिया था , और करने योग्य भी सभी कुछ कर लिया था। वे अपने वास्तविक घर को वापिस लौट आए थे, इसलिए वे अपने पुराने देश व पुराने घर को मानो कि जैसे भूल ही गए। इस तरह से, जब वे अपने देश के अन्दर वापिस लौटने को राजी नहीं हुए, तब राजा ने भी उन आत्मज्ञानियों के प्रति दया व सम्मान दिखाते हुए, उनको जंगलों में एकाकी जीवन बिताने के लिए, उस पुल के ऊपर से एक रास्ता निकलवा दिया। कुछ कुमार तो कहीं भी जाने की आवश्यकता ही महसूस नहीं कर रहे थे , क्योंकि उन्हें अपना आध्यात्मिक/ वास्तविक निवासस्थान जो मिल गया था। परन्तु राजा ने उन्हें बलपूर्वक वहाँ से हटवा दिया , ताकि वे शत्रुओं व हिंसक जीवों को, उसके अपने देश के ऊपर आक्रमण करने के लिए आकर्षित न करते। असंयमराज उनकी हानि से थोड़ा दुखी अवश्य हुआ , यद्यपि उन आत्मज्ञानी कुमारों की दिव्य व आत्मानंदमयी सुगंध पूरे असंयमपुर में फैल चुकी थी , जिससे कुछ दिनों के लिए पूरा देश हर्षित , तनावरहित, थकानरहित, ज्ञानयुक्त, व आत्मानंदित जैसा हो गया था। यह उपाय तो नवदेश के उत्तरदायित्व से बचाने वाले नरम उपायों में से एक था , परन्तु कई देश तो सख्त कदम भी उठा लेते हैं। एक बार लेखक क्या देखता है कि अलसपुर नामक एक देश के राजा ने अपने देश के कुमारों को उपरोक्त व अतिप्राचीन स्वयंवर प्रथा को निभाने के लिए , अरायपुर नामक अपने एक मित्रदेश के अन्दर प्रविष्ट करवाने का पूरा मन ही बना लिया था। यद्यपि उसे अपनी भूल का अहसास बहुत देर बाद हुआ , जब दोनों ही मित्रदेश संसाधनों के अभावकाल से गुजरने लगे थे। अलसराज ने पुल के ऊपर , निष्कासन द्वार के निकट, पूर्वोक्त अवरोधक-भित्ति को बनाने का प्रयत्न भी नहीं किया था। संभवतः या तो वह थका हुआ था , या फिर वह लापरवाही बरत रहा था। अरायराज ने भी उसे सही सलाह नहीं दी। हो सकता है कि यदि उसने सलाह दी भी हो, तो भी अलसराज ने वह न मानी हो। अब उस प्रथा में विघ्न डालने का सारा उत्तरदायित्व अरायराज पर ही आ गया था, क्योंकि वे राजकुमार उसके देश में प्रविष्ट हो चुके थे। उसके देश में जिस स्थान पर वह पुल जुड़ा हुआ था , वह स्थान एक विस्तृत भूभाग का हिस्सा था। उस भूभाग में चित्र-विचित्र प्रकार की बहुत सी घाटियाँ, कन्दराएँ, घने जंगल, पत्थर-चट्टानें व पर्वत आदि प्राकृतिक संरचनाएँ विद्यमान थीं। अतः वहाँ पर उन कुमारों को भित्ति से रोकना संभव नहीं था। परिणामतः राजा को मजबूरी के कारण कठोर कदम उठाना पड़ा , क्योंकि वे कुमार किसी की भी बात सुनने के लिए ज़रा भी तैयार नहीं थे। उसने उस क्षेत्र में गुप्त रीति से विष का छिड़काव करवा दिया। उसके अतिरिक्त और कोई भी मर्यादित विकल्प उसके पास नहीं था। देखते ही देखते वे कुमार बड़ी चुस्ती -स्फूर्ति व नए जोशो-उमंग के साथ, उस नए व मनोरम देश में प्रविष्ट हुए। चारों ओर की विविध संरचनाओं व प्रकृति के नजारों को निहारते हुए , मानो कि जैसे उनके नेत्र तृप्त ही नहीं हो रहे थे। हरे -भरे वृक्षों से आते हुए सुमधुर व ठंडी हवा के झोंकों ने उनकी सारी थकान को दूर कर दिया था। विविध पक्षियों के सामूहिक संगीत -गान के साथ कोयलों की सुमधुर जुगलबंदी को सुनते हुए, उन्हें आकाशवाणी-यंत्र (radio) को अपने घर में ही छोड़ आने का पश्चाताप नहीं हो रहा था। हिरन , खरगोश आदि भीरु जंतु भी इधर-उधर कूदते-फुदकते हुए दिख जाते थे। कभी-२ शेर, हाथी आदि हिंसक व मतवाले जानवरों से भी उनका आमना-सामना हो जाता था, परन्तु कुमारों के भारी संख्या में होने के कारण, वे जानवर उनका कुछ नहीं बिगाड़ पा रहे थे। संभवतः यदि हिंसक जीव अधिक संख्या में होते , तो कुछ बिगाड़ भी देते। तभी वे कुछ सुस्ताने लगे। उन्हें लगा कि लम्बी यात्रा की थकान के कारण वैसा हो रहा था। फिर सभी कुमार पेड़ों की छाँव -तले सो गए, परन्तु उनमें से आधे ही वापिस जाग पाए, बाकी के आधे तो यमपुरी की, और अधिक लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थान कर चुके थे। काल के मुख से बचे हुए कुमार आश्चर्य व भय के मिश्रित भाव से भर गए। उन्हें मृत्यु का भय सताने लगा। चित्र-विचित्र व डरावनी यादें उनके मन-मस्तिष्क में उभरने लगीं। अपने गतजीवन के, शास्त्रों-पुराणों के पढ़े-सुने व अनजाने प्रकार के डरावने मानसिकदृष्य भी उन्हें प्रताड़ित करने लगे। उनके बीच में अटकलों का बाजार भी गर्म हो गया था। कोई बोल रहा था कि वहाँ पर भूतों का वास था। कोई बोल रहा था कि वहाँ पर किसी दूसरे ग्रह के प्राणियों का अड्डा

था। यद्यपि उनके वे सभी विचार/भाव व क्रियाकलाप, उनके स्वाभाविक अद्वैतभाव से संपन्न थे, इसलिए वे बंधनकारी नहीं, अपितु मुक्तिकारी ही थे। भूख-प्यास से सताए हुए जिन कुमारों ने वहाँ के फल-फूल, कंद-मूल व जल का प्रयोग किया था, वे तो सबसे पहले टपक गए थे, क्योंकि उनके भक्षण-पान से उन कुमारों के अन्दर विष का दुष्प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। फिर धीरे-२ करके सभी कुमार इतने अधिक विषाक्त हो गए थे कि उनके अन्दर सोचने-विचारने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। अद्वैत के प्रभाव से, वे सभी बारी-२ से आनंदमयी-निद्रा में समाते रहे, और ब्रम्ह में विलीन होते रहे। उनके ब्रम्हतेज की दिव्य सुगंध, दोनों पड़ौसी देशों में प्रसारित हो गई थी, जिससे वहाँ पर कई दिनों तक तांत्रिक-तेज की चकाचौंध का ही बोलबाला रहा। दोनों देशों का, विशेषकर अरायपुर का हितैषी वह निम्नकोटि के तांत्रिक-प्रकार का अभियान सफल हो गया था, यद्यपि कई बार ऐसा अभियान असफल भी हो जाता है, क्योंकि कई बार कुछ कुमार विष के दुष्प्रभाव से बचकर, अपने लक्ष्यस्थान तक पहुँच भी जाते हैं। उससे अधिक प्रभावशाली अभियान तो पूर्वोक्त भित्तिनिर्माण का अभियान ही है, क्योंकि वह बहुत विरले मामले में ही असफल होता है, विशेषतः तभी यदि भूस्खलन, आंधी, अतिवृष्टि, भूकंप आदि प्राकृतिक आपदाओं के कारण वह दृढ़भित्ति क्षत-विक्षत हो जाए।

यह पूर्णतः सत्य है कि कुण्डलिनी के क्रियाशील होने पर, मन में एक अपार शक्ति का संचार होने लगता है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी वैसा ही हुआ था। उसका मन तो आसमान से तारे तोड़कर लाने का भी करता था। वह उस समय किशोरावस्था में था, जिससे भी, उससे अपनी शक्ति संभाले नहीं संभल रही थी। वह पूरी दुनिया पर राज करने की योग्यता रखते हुए, सभी को सीधे रास्ते पर लाना चाहता था। उस शक्ति के झटकों से अपने शरीर को बचाने के लिए, वह सदैव कुछ न कुछ अद्वैतमयी काम करता रहता था, ताकि बेकाबू शक्ति का सकारात्मक निस्सरण होता रहता। उससे कुछ क्षणों के लिए भी खाली नहीं बैठा जाता था। जब थक जाता था, तब व्यर्थ की बातों से अच्छा, वह एकांत में विश्राम करने को समझता था। इस वजह से उसे बहुत सी तरक्कियाँ व उपलब्धियाँ भी प्राप्त हुईं। उसी शक्ति के कारण ही तो वह शविद को भी अपने व्यक्तिगत जीवन में उतार सका। इसका यह अर्थ है कि शक्ति के बिना तो अद्वैतभाव को भी विकसित नहीं किया जा सकता। शक्ति ही सब कुछ है, इसीलिए तो सभी धर्मों, विशेषकर हिन्दू संस्कृति में शक्ति को माता का रूप दिया गया है, क्योंकि माता ही सब कुछ देती है। धीरे-२, आयु बढ़ने के साथ, वह शिथिल होता गया, और उसकी शक्ति/ऊर्जा स्वतः ही उसके नियंत्रण में आने लगी। दूसरी बार, जब फिर उसकी कुण्डलिनी जागृत होकर क्रियाशील हुई, तब तक वह आयु के बहुत से पड़ाव लांघ चुका था। उसकी शक्ति ने तब भी बहुत हिलौरे मारे, जिससे उसने बहुत सारे आश्चर्यजनक काम भी किए, परन्तु तब पहले के जैसी बात नहीं थी। उस कुण्डलिनी शक्ति को धारण करने वाला, उसका तन-मनरूपी यंत्र बहुत पुराना हो चुका था। फिर भी उसे बहुत शक्ति मिली। उसने अपने कुण्डलिनीजागरण के एकदम बाद ही, उससे उपलब्ध शक्ति से इस विशाल, भावपूर्ण, भाषाव्याकरणानुसार, मस्तिष्कपूर्ण व सारगर्भित लिखित/अनुभूत शब्द-सामग्री को संकलित व पुस्तकीकृत किया। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कुण्डलिनीजागरण के एकदम बाद ही ऋषि-मुनियों ने इसी शविद-पुस्तक के जैसे वेद-पुराण लिखे हैं। कुण्डलिनीजागरण से उत्पन्न महान मस्तिष्कीय/मानसिक शक्ति ही ऐसे महान व आध्यात्मिक कार्य करवाती है।

कई बार, अस्त्रज्ञानी बहुत धीरे-२ काम करते हुए, घृतंभरा को स्वयंवर के लिए रवाना करने में बहुत अधिक समय लगा देता है। उतने लम्बे समय तक तो राजकुमार स्वयंवरकक्ष में रुकते ही नहीं। उस कारण से, घृतंभरा का विवाह नहीं हो पाता। वैसे अस्त्रज्ञानी को लेटलतीफी की आदत सी पड़ी होती है। वह हर बार वैसा ही करता है। उस लापरवाही में, उसके वरिष्ठ अधिकारी फलदेव का भी हाथ होता है। परन्तु वह भी सारा दोष अपने वरिष्ठ अधिकारी ज्ञानराज के ऊपर ही मढ़ देता है। वैसी परिस्थिति में राजा उस स्थिति के ऊपर विचार करता है, और बाहर के बीहड़-स्थलों से ज्ञानराज के समकक्ष, किसी अधिकारी को आमंत्रित करता है। उसे वह सौदा अपने देश की जटिल कार्यप्रणाली को सुधारने की अपेक्षा अधिक सस्ता व आसान प्रतीत होता है। बाद में धीरे-२, कई बार उसके अपने अधिकारी भी लापरवाही छोड़कर सुधर जाते हैं, विशेषतः जब उनको दुष्प्रभावित करने वाली विभिन्न कार्यप्रणालियों में अपेक्षित सुधार हो जाता है। कई देशों में, उपरोक्त अधिकारी बहुत फुर्तीले होते हैं, और बड़ी तीव्रता से कार्य संपन्न करवाकर, घृतंभरा को स्वयंवरकक्ष में समयपूर्व ही पहुंचवा देते हैं। वैसी हालत में, निमंत्रक राजा को निमंत्रित राजा से, अपने राजकुमारों को अतिशीघ्रता से पहुंचाने के लिए, विशेष प्रार्थना करनी पड़ती है, ताकि घृतंभरा को अधिक समय तक स्वयंवरकक्ष में प्रतीक्षा न करनी पड़े, और वह कहीं ऊब कर, चली न जाए। कई बार प्रस्तरज्ञानी अपना पद ही नहीं छोड़ता, जिससे अस्त्रज्ञानी को स्वयंवर को आयोजित करने का अवसर ही उपलब्ध नहीं हो पाता। वास्तव में, उसके पद छोड़ने में, प्रगल्भज्ञानी नामक अधिकारी का विशेष हाथ होता है, जो आमतौर पर उसके कार्यभार को अस्थायी रूप से ग्रहण करके, उसे कार्यमुक्त करता है। बाद में वह, अस्त्रज्ञानी के पहुँचने पर, उसको कार्यभार सौंप देता है। ऐसा विशेषतः तब होता है, जब नवदेशगर्भक बीहड़ में घुसे हुए शत्रुओं के साथ युद्ध चल रहा होता है। उन शत्रुओं ने या तो प्रगल्भज्ञानी को डराया-धमकाया होता है, या वह उनसे रिश्वत आदि लेकर,

उनके साथ मिला हुआ होता है। वैसा करना शत्रुओं के जीवनयापन के लिए जरूरी भी होता है , क्योंकि प्रस्तरज्ञानी ने जो सुविधाएँ नवदेश के लिए उपलब्ध करवानी होती हैं, उन सुविधाओं को वे शत्रु, बलपूर्वक अपने लाभ के लिए प्रयोग में लाते रहते हैं। वैसी हालत में भी, राजा बीहड़-देशों से ही, प्रगल्भज्ञानी के समकक्ष अधिकारी को आमंत्रित करवाता है, जो सारी प्रक्रिया को शीघ्र ही सुधार देता है, क्योंकि वह उन तुच्छ शत्रुओं के आगे कतई नहीं झुकता, और प्रस्तरज्ञानी को हटाकर ही दम लेता है। इस तरह से, प्रस्तरज्ञानी-प्रदत्त सुविधाओं के क्षीण होने से, वे चतुर शत्रु भी बहुत क्षीण हो जाते हैं, और कई बार देहदेश के द्वारा शीघ्र ही मिटा भी दिए जाते हैं।

आत्मज्ञान या कुण्डलिनीजागरण के बाद भी, यदि उनसे उत्पन्न अद्वैतभाव को बलपूर्वक दबा दिया जाए, तो वे पारलौकिक आध्यात्मिक अनुभव तीव्रता से विस्मृत होने लगते हैं, और उनसे संभव मानी जाने वाली मुक्ति के सम्बन्ध में भी शंका उत्पन्न होने लगती है। आग उसे भी जलाती है , जिसे आग के बारे में पूरा ज्ञान होता है, और उसे भी, जिसे ज्ञान नहीं होता। इसी तरह, मोहमाया अज्ञानी व आत्मज्ञानी, दोनों को ही अपना निशाना बना लेती है। जैसे आग के बारे में जानने वाला, उससे सावधान रहता है, और उसके शिकंजे में नहीं फंसना चाहता; उसी तरह, मोहमाया को अच्छी तरह से समझने वाला आत्मज्ञानी, उससे सावधान रहता है, और सदैव उससे बचाव के लिए प्रयासरत रहता है। यदि आत्मज्ञानी पूर्णतः माया से अछूते होते; तो भगवान कृष्ण, राम, बुद्ध आदि लोग पूरे जीवनभर अद्वैतमयी योगसाधना में न लगे रहते। इस तरह से, जब आत्मज्ञान या कुण्डलिनीजागरण के बाद भी अद्वैतभाव को धारण करना ही पड़ता है , तब सीधे ही उस अद्वैतभाव को क्यों न धारण किया जाए , जो कभी धोखा नहीं देता ; आत्मज्ञान या कुण्डलिनीजागरण के पीछे क्यों भागा जाए, जिनका प्रभाव अद्वैतभाव को निरंतर जारी रखे बिना, नष्ट भी हो सकता है? मुक्ति के लिए आत्मज्ञान को आवश्यक समझा जाता है, परन्तु उसका दीर्घकालिक प्रभाव भी अद्वैतभाव के ही आश्रित है; क्योंकि कुछ समय के बाद आत्मज्ञान तो विस्मृत हो जाता है, केवल अद्वैतभाव ही शेष बचा रहता है। फिर क्यों न अद्वैतभाव को ही मुक्ति के लिए प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक समझा जाए ? प्रेमयोगी वज्र ने २० वर्षों तक शविद-अद्वैत का आचरण किया था , तभी उसे कुण्डलिनीजागरण के लिए यौगिक प्रयास करने की आत्मप्रेरणा मिली। यदि उसे कुण्डलिनीजागरण न भी हुआ होता, तो भी उसे कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि केवलमात्र अद्वैत से ही उसे मुक्ति व तृप्ति का आभास होने लग गया था। इस तरह से, अद्वैतधारणा से लाभ ही लाभ है। परन्तु यदि वह अद्वैत को ठुकरा कर , केवल कुण्डलिनीजागरण या आत्मज्ञान के लिए ही अंधी दौड़ लगाता, तो हो सकता था कि उसे कुछ भी नहीं मिलता। वास्तव में , अधिकाँश लोगों को, अद्वैत को ठुकरा कर सीधी सफलता मिलती ही नहीं है। अद्वैतधारणा से दोनों ही अवस्थाओं में मुक्ति सुलभ प्रतीत होती है , चाहे कुण्डलिनीजागरण/आत्मज्ञान हुआ हो या न हुआ हो। सीधा सा अर्थ है कि साधक का प्राथमिक उद्देश्य तो अद्वैतभाव/कर्मयोग ही होना चाहिए। कुण्डलिनीजागरण या आत्मज्ञान तो द्वितीय/गौण उद्देश्य ही होना चाहिए।

देहदेश के राजदरबार में अनेक प्रकार की संगीत -मंडलियाँ, नृत्य-मंडलियाँ, स्तुतिगान-मंडलियाँ, हास्यविनोद-मंडलियाँ व साहित्य-मंडलियाँ विद्यमान होती हैं। वे सभी मंडलियाँ राजा की सेवा में सदैव उपस्थित रहती हैं। उन मंडलियों के चित्र -विचित्र कलाकार, राजा को प्रसन्न रखने का हरसंभव प्रयास करते रहते हैं। विभिन्न कारणों से, जब राजा को अवसाद होने लगता है, तब वे मंडलियाँ उसकी सेवा में उपस्थित हो जाती हैं, और उसे प्रसन्न कर देती हैं। राजा जी के अत्यधिक काम के बोझ के समय भी वे उन राजा का मनोरंजन करती हैं। वे मंडलियाँ राजा के आदेश पर , एकदम से अपने साजो-सामान के साथ उपस्थित हो जाती हैं। महामारी या युद्धादि के समय भी , तद्संबंधित नाटक-मंडली अपनी कला के प्रदर्शन से राजा की पीड़ा को हर लेती है। जब राजा प्रेमरस में निमग्न होना चाहता है, तब भी वे विशिष्ट मंडलियाँ अपने हृदयस्पर्शी नृत्य-गीतों से राजा के मन को प्रेम से भर देती हैं। जब सुबह के समय राजा सोकर उठता है, तब स्तुतिगान-मंडली उसकी स्तुति करने, गाजे-बाजे के साथ उसके शयनकक्ष में उपस्थित हो जाती है। इसी तरह, राजा के सोते समय भी राग-मंडली वहाँ पहुंच कर, सुन्दर राग सुना कर, उसको मीठी नींद सुला देती है। जब राजा युद्ध जीत कर आता है, तब गुणगान-मंडली उसे आह्लादित करने, उसके दरबार में पहुँच जाती है। उसी तरह, जब राजा किसी विशेष विकासात्मक अभियान को सफलतापूर्वक पूर्ण करता है, तब भी वह मंडली राजा की सेवा में उपस्थित हो जाती है। जब राजा काम के व अन्य विभिन्न उत्तरदायित्वों के बोझ से बेचैन हो जाता है, तब शान्तिरागों को गाने वाली मंडली राजा को शान्ति से सरोबार कर देती है। यदि उस मंडली से भी राजा को पूर्ण शान्ति न मिले, तब योग-मंडली राजा की सेवा में उपस्थित हो जाती है। वह राजा से शान्तिदायक योगाभ्यास करवा कर , उसे शाँतिलोक में पहुंचा देती है। किसी विकासात्मक या सुरक्षात्मक अभियान को सफल बनवाने के लिए, एक विशेष प्रोत्साहक-मंडली को बुलवाया जाता है, जो राजा को सकारात्मक बनाते हुए, उसके तनाव व उसकी उदासी को दूर भगा देती है। रोग , युद्ध आदि, तथा अन्य संकटपूर्ण व भयपूर्ण परिस्थितियों में; राजा के सामने युद्धघोष-मंडली उपस्थित रहती है। वह शंखनाद आदि विभिन्न युद्धघोष-वाद्यधुनों से राजा की ऊर्जा, शक्ति, स्फूर्ति व उसके उत्साह को कई गुना बढ़ा देती है। उनसे राजा अद्वैतपूर्ण बन जाता है, जिससे उसका भय भी छूमंतर हो जाता है। इस तरह से, वह मंडली राजा को शत्रुओं का चक्रव्यूह आदि भेदने में और

यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर, वहाँ से निकल भागने में भी सहायता करती है। राजा को शक्तिदायक खुराक व औषधि पिलाने वाले लोग भी उस दल में शामिल होते हैं। वह मंडली विभिन्न प्रकार के संबंधित रागों, वाद्य-धुनों व स्तुतिगानों से राजा को असीम शक्ति प्रदान करते हुए, उसे सान्त्वित करती रहती है। ऐसी ही विकट परिस्थितियों में, उस मंडली के सान्निध्य से, राजदरबार में स्थित मंत्रीगण भी असीम शक्ति प्राप्त करते हैं, और पूरे देश को सतर्क व क्रियाशील करवा देते हैं। उससे सुरक्षाव्यवस्था का प्रबंधन यकायक बढ़ जाता है। साथ में, अस्त्र-शस्त्र भी सज्ज हो जाते हैं। सुरक्षा से जुड़ी व्यवस्थाओं की ओर खाद्य-पानी व अन्यावश्यक विभिन्न साजो-सामान की आपूर्ति भी अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। खाद्यपदार्थों व अन्य सभी वस्तुओं के भंडारगृहों के दरवाजों पर, वर्षों से लटके हुए ताले भी खुलवा दिए जाते हैं, और वहाँ से पूरे देश के लिए, उनका व्यवधानरहित व यथावश्यक आबंटन प्रारम्भ कर दिया जाता है। उस मंडली के कलाकलापों से राजा एक प्रकार का सात्विक/सुखप्रद नशा जैसा भी अनुभव करता है, जिसके प्रभाव से दुःख-दर्द अनुभव करने की उसकी शक्ति भी बहुत घट जाती है।

प्रेमयोगी वज्र को आत्मज्ञान की पूर्वोक्त झलक के अनुभव के बाद, सारा संसार विक्षिप्त सा लगता था। अधिकाँश लोग संसार के प्रति अंधे प्रेम व आसक्ति में डूबे हुए, उसकी नक़ल करके जैसे स्वयं भी विक्षिप्त हो गए थे। अतः वह शाँत, सबसे अलग व संसार से कटा-२ सा रहता था। अतः स्वाभाविक था कि वह चित्तवृत्तियों की चकाचौंध के लिए, संसार का आश्रय कम से कम ही लेता था, संसार से धोखे के डर से। यदि कभी संसार का आश्रय लेता भी था, तो अद्वैतमयी आत्मज्ञान के स्वाभाविक प्रभाव के साथ, परन्तु उसमें साधारण लोग-बाग़ को अँधेरा ही प्रतीत होता था। वास्तव में, जो/आत्मा आत्मज्ञानियों के लिए सर्वाधिक प्रकाश होता है, वह/आत्मा अज्ञानियों के लिए सर्वाधिक अन्धकार होता है। अतः उस भय के कारण, उसने संसार का आनंद लेना लगभग छोड़ ही दिया था, विशेषतः अज्ञानी लोगों की संगति के बीच में। वैसी हालत में, कुण्डलिनी ने ही उसके मन में चेतनामयी चकाचौंध को बना कर रखा, और उसे जीवन से हतोत्साहित नहीं होने दिया। वह उसका समुचित मार्गदर्शन व उसकी समुचित सुरक्षा करती रही।

अद्वैतभाव से स्वयं ही अनासक्ति उत्पन्न हो जाती है। जब हम किसी भी कर्म-संकल्प को शविद के ध्यान की सहायता से, अद्वैतभाव के साथ धारण करते हैं, उसी समय वह कर्म-संकल्प, खरगोश के सींग की तरह, स्वयं ही मन से गायब हो जाता है, अर्थात उससे चिपकाहट (attachment) समाप्त हो जाती है, या यूं कहो कि मन के साथ उस कर्म-संकल्प को जोड़ने वाला गोंद पल भर में ही सूख जाता है।

समय-२ पर, देहदेश में सफाई अभियान भी चलाया जाता रहता है। उस अभियान में, सीमाभित्ति पर उगी हुई घनी व कंटीली झाड़ियों को काटा जाता है। वे लम्बी झाड़ियाँ विशेषतः देश की उत्तरी सीमा पर बहुतायत से पनप जाती हैं, क्योंकि वहाँ पर उन्हें अपनी बढ़ोत्तरी के लिए अनुकूल पर्यावरण मिल जाता है। वहाँ पर नमी भी अधिक होती है, और भूमि में पोषक तत्त्वों की भी भरमार होती है। उन झाड़ियों में घुसपैठिए छिपे होते हैं, जिनके बीच में कई बार उग्रपंथी तत्त्व भी मौजूद होते हैं। झाड़ियों का कटान शुरु होते ही, वे इधर-उधर भाग जाते हैं। सीमाभित्ति के आसपास के गड्ढों में, कंदराओं में व चट्टानों के बीच में भी बहुत से घुसपैठिए छिपे रहते हैं। वे सीमा के अन्दर से छोटा-मोटा सामान चुराकर, अपनी आजीविका चलाते रहते हैं। सामान के खाली लिफाफों (polybags) व पैकेटों (packets) को, वे वहीँ इधर-उधर फ़ेंक देते हैं, जो अन्य संभावित घुसपैठियों को भी आकर्षित करते रहते हैं, और छिपने में भी उनकी सहायता करते हैं। राजा उन गंदगियों को हटवा कर, सीमाक्षेत्र को बराबर साफ-सुथरा करवाता रहता है। उससे उन घुसपैठियों का प्रकोप काफी कम हो जाता है। वैसे तो उनमें कुछ मित्र-घुसपैठिए भी होते हैं, फिर भी उनके ऊपर विश्वास करना कठिन होता है। उनके ऊपर किया गया विश्वास, कई बार नुकसानदायक भी सिद्ध हो जाता है। हवाई अड्डों पर उगी हुई घास को भी काट दिया जाता है। उस घास से, वायुयानों को उड़ान भरने (take off) व उतरने में, कई कठिनाइयां सामने आती रहती हैं, जिससे देश के व्यापार व अर्थव्यवस्था के ऊपर दुष्प्रभाव पड़ता है। इसी तरह से, खेती के विभिन्न उपकरणों, उद्योगों के विभिन्न यंत्रों व अन्य चित्र-विचित्र प्रकार के लघु यंत्रों की भी समय-२ पर साफ-सफाई व सर्विसिंग (servicing) की जाती रहती है। वास्तव में, समय के साथ-२, विभिन्न उपकरणों व यंत्रों के ऊपर जंग आदि भी लगता रहता है, जिससे उनकी कार्यक्षमता घटती रहती है। वैसे भी वे काम करते हुए, घिसते-पिटते रहते हैं, विशेषतः जब उनका स्नेहक-तेल (lubricating oil) सूख जाता है। यदि वे साफ-सफाई से भी पूरी तरह से ठीक न हो पाए, तो उन्हें बदलते भी रहना पड़ता है। पूरे देश के सभी यंत्रों व उपकरणों की एक निश्चित आयुसीमा (lifetime) व मृत्युतिथि (expiry date) होती है। आयुसीमा पूरी होते ही, पुराने उपकरणों के स्थान पर नए उपकरण लगा दिए जाते हैं, यहाँ तक कि सीमाभित्ति को भी निश्चित अंतराल पर बदल दिया जाता है। उससे पूरे देश की कार्यक्षमता सर्वोत्तम बनी रहती है, और साथ में, किसी दुर्घटना आदि की आशंका भी नहीं रहती। बदले गए पुराने उपकरणों को कबाड़ी लोग इकट्ठा कर लेते हैं, और उन्हें परिष्करण-उद्योगों को भेज देते हैं। वहाँ पर उन टूटे-फूटे उपकरणों व यंत्रों को, उनके विभिन्न हिस्सों में अलग-थलग करके, उनसे पुनः बहुमूल्य उपकरण व यंत्र बना लिए

जाते हैं। उस अद्वैतपूर्ण देश में अधिकाँश पुराना सामान, परिष्करण के बाद दुबारा से प्रयोग में (recycling) लाया जाता है। इस तरह से हम देख सकते हैं कि देहदेश में संसाधनों की बर्बादी कम से कम की जाती है।

निरंतर के यौनयोग के प्रभाव से; एक यौनयोगी बच्चे की तरह शाँत, निर्मल, हक्का-बक्का सा, थका-२ सा, अद्वैतशील, अनासक्त, मानसिक कुण्डलिनी से परिपूर्ण, निश्चिन्त व आनंदमयी बन जाता है। उसे अपना सिर खाली-२ सा, विचारशून्य सा व हल्का सा प्रतीत होता है। उस विचारशून्यता के बीच में, चमकती हुई कुण्डलिनी उसके मन में स्वयं ही बीच -२ में उभरती रहती है, जो संभवतः उसके दिव्यानंद का कारण होती है। वैसी अवस्था में , उसकी कुण्डलिनी अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर कभी भी जागृत हो सकती है।

पूर्वोक्तानुसार; राजा देहदेश में युद्धाभ्यास , व्यायामाभ्यास, क्रीड़ाभ्यास आदि भी करवाता रहता है। यदि वैसे अभ्यास न करवाए जाएं , तो वास्तविक युद्ध, विद्रोह आदि के समय, व दुर्भिक्ष, महामारी, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओं के समय भारी कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। उस अभ्यास के बहाने से, सड़कें व अन्य आधारभूत संरचनाएँ भी दुरस्त करवा दी जाती हैं। उससे सैनिकदेहपुरुषों में चुस्ती छा जाती है , और उनके शरीर फुर्तीले बन जाते हैं। उनके शरीर में रक्तसंचार बढ़ जाता है, जिससे उनके तन-मन को समुचित पोषण प्राप्त होता है। मस्तिष्क को समुचित पोषण मिलने से, उनका मन सकारात्मकता, ताजगी व उमंग से भर जाता है। उससे उनके शरीर को उचित मात्रा में प्राणवायु भी उपलब्ध हो जाती है , और शरीर के विजातीय पदार्थ आसानी से बाहर निकल जाते हैं। उन अभ्यासरत देहपुरुषों की देखा -देखी में, देश के अन्य पुरुष भी जी-जान से अपने-२ कामों में जुट जाते हैं। यदि काम न हो, तो वे भी उन्हीं की तरह, अपने तन-मन को फुर्तीला रखने के लिए खेलों, व्यायाम व योग आदि के ऊपर समुचित ध्यान देने लग जाते हैं। योग के तो वे बहुत शौक़ीन होते हैं, क्योंकि स्वभाव से भी वे अद्वैतशील योगी की तरह ही तो होते हैं।

कुछ अभ्यास हो जाने पर, कुण्डलिनी-घुमाव के समय, बंधों की सहायता से, चक्र पर स्थित कुण्डलिनी के ऊपर जब पूरे शरीर के प्राण इकट्ठे हो रहे हों, उस समय भावना करनी चाहिए कि प्राणों के साथ पूरा तन -मन ही वहाँ पहुँच गया है, और कुण्डलिनी के साथ जुड़कर एकाकार हो गया है। फिर साधारण साँस लेते हुए, यह ध्यान करना चाहिए कि वह कुण्डलिनी -ज्वालापुंज प्राणवायु को खींच कर भड़क रहा है। वास्तव में , सभी कुछ प्राण/प्राणवायु की ही अभिव्यक्ति तो है। वास्तव में, वैदिक हवन भी कुण्डलिनी को भड़काने के लिए ही किया जाता था। उसमें अग्नि -ज्वाला के रूप में कुण्डलिनी का, आहुतियों (अन्न/प्राण-शक्ति) व वायु (प्राणवायु) से भड़कते हुए रूप में ध्यान किया जाता था। साथ में, उसे विभिन्न शब्दों, सुगंधियों व संगीत-धुनों आदि से भी चहुँमुखी बल प्राप्त होता था। इसी तरह , जैसे ही शविद के अद्वैत से कुण्डलिनी प्रकट होने लगे , उसे साँसों से भड़का देना चाहिए। जैसे मोटर-इंजिन के भड़कने से या उसमें अग्नि के विस्फोट से हवा तेजी से व भारी आवाज के साथ उसके अन्दर प्रविष्ट होती है , उसी तरह कुण्डलिनी का ध्यान करने से, उसका पीछा करती हुई साँसें भड़क जाती हैं। कहीं पर भी ध्यान देते हुए, चक्रों पर स्थित कुण्डलिनी के ऊपर साँसों को उड़ेलते रहने से, वह कुण्डलिनी ध्यान के स्तर तक स्वयं ही चढ़ जाती है, और कोई भी ध्यान कुण्डलिनीमय बन जाता है। इसी तरह, ऐसा नहीं समझना है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, अपितु पेट से लिए जाते हुए लम्बे व गहरे साँसों पर ध्यान देते हुए, यह धारणा बना कर रखनी है कि साँसें ही कुण्डलिनी के ऊपर गिर कर, उसका ध्यान कर रही हैं। इससे दिमाग पर पड़ने वाला बोझ भी कम हो जाता है, और अधिक मुश्किल भी नहीं आती।

कई घुसपैठिए नौटंकीबाज भी होते हैं, जो वेष बदलने में माहिर होते हैं। जैसे ही गुप्तचर लोग उनको देश के अन्दर देखते हैं, वैसे ही वे उनकी शक्लों के व उनके हुलियों के चित्र (photographs) खींच लेते हैं। फिर वे उन चित्रों को लेकर , रक्षा-विभाग के कार्यालय में पहुंचते हैं , और उसे पूरी वस्तुस्थिति से अवगत करवाते हैं। रक्षाविभाग भी उन चित्रों की बहुत सी प्रतियां निकलवा कर , उन्हें अपने सभी सैनिकों को उपलब्ध करवा देता है , और उनको युद्ध के लिए कूच करने का आदेश भी दिलवा देता है। परन्तु जब सैनिक , गुप्तचरों द्वारा सूचित किए गए ठिकानों पर पहुंचते हैं, तब उनके द्वारा उपलब्ध कराए गए चित्रों से मिलते-जुलते, कोई भी लोग उन्हें वहाँ पर दिखाई नहीं देते हैं। वास्तव में, तब तक वे घुसपैठिए अपना हुलिया पूरी तरह से बदल चुके होते हैं। इस तरह से, सुरक्षाबल बार-२ उनसे गच्चा खाते रहते हैं। वे चतुर घुसपैठिए, बार-२ गुप्तचरों व सुरक्षाबलों को, इसी तरह से धोखा देते रहते हैं, और धीरे-२ करके, पूरे देश में छा जाते हैं।

कुण्डलिनी एक मनुष्याकृत देहपुरुष ही है। वह भी हमारी तरह ही साँस लेती है। इसलिए हम चक्र पर , अपनी साँस के रूप में कुण्डलिनी को साँस लेते हुए व पुष्ट होते हुए देख सकते हैं।

आजकल अधिकाँशतः जहाँ कर्मठता है, वहाँ पर अद्वैत नहीं है, और जहाँ पर अद्वैत है, वहाँ पर कर्मठता नहीं है। इस तरह से , एक अंधे और एक लंगड़े की मित्रता की कथा के अनुसार, कुछ समाज अंधे हैं, तो कुछ लंगड़े। वास्तव में कर्मठता व अद्वैत एक-दूसरे की खुराकें भी हैं, जो एक दूसरे को पुष्ट करती रहती हैं। एक गुण के बिना, दूसरा गुण नष्ट होने लगता है। यदि दोनों इकट्ठे हो जाएं, तो जीवन्मुक्ति को कोई नहीं रोक सकता।

देहदेश में बहुत से गुणवान अधिकारियों की कमी होती है। वह देश सुख-सुविधाओं से संपन्न होता है, इसलिए वहाँ के मानव-संसाधन, भोग-विलास की चपेट में आ जाते हैं, और अपनी गुणवत्ता खोने लगते हैं। अतः देश का कामकाज सुचारू रूप से चलने के लिए कुछ गुणवान लोगों को , बाहर के बीहड़ों से आप्रवासित (immigration) किया जाता रहता है। वास्तव में, बाहर बीहड़ों में बहुत से छोटे-२ व मूर्ख जैसे देश विद्यमान होते हैं। उन देशों में भूमि की, संसाधनों की व लोगों की कमी होती है। यदि किन्हीं देशों में ये प्रचुर मात्रा में उपलब्ध भी होते हैं , तो भी वहां के लोगों में, विशेषतया प्रशासक लोगों में दिमाग की व सूझ-बूझ की कमी होती है। इसलिए वे देश पिछड़े हुए होते हैं। परिणामतः उन देशों के लोगों को निरंतर ही बहुत सी समस्याओं का सामना करते रहना पड़ता है। वहाँ की जलवायु व वहाँ के मौसम भी प्रतिकूल होते हैं। वे लोग अन्य भी बहुत सी विकट परिस्थितियों में रहते हैं। उन्हें पूरी तरह से स्वावलंबी बन कर रहना पड़ता है; क्योंकि उनके अन्दर आवश्यकताधिक आत्मसम्मान की भावना व स्वाभाविक मूर्खता के कारण, उनके बीच में एक-दूसरे के प्रति सहयोग की भावना भी बहुत कम होती है। उनकी अर्थव्यवस्था बहुत छोटी और साधारण होती है। उन देशों में बड़े व विकसित देशों के जैसी सुख-सुविधाएँ नहीं होतीं। ऐसे ही विभिन्न कारणों से, वहाँ पर रहने वाले बहुत से लोगों में, अनेक प्रकार के दिव्य गुण विकसित हो चुके होते हैं। यद्यपि प्रोत्साहन व योजनाबद्धता की कमी से , वे लोग, विशेषतः अधिकारी लोग अपने देश में कुछ विशेष काम नहीं कर पाते, परन्तु विशाल देहदेश में बस जाने के बाद, वे वहाँ पर बहुत परिश्रम करते हैं, और उसकी प्रगति में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। उनमें से कई अधिकारी तो इतने आवश्यक होते हैं कि उनके बिना देहदेश अपने को सुव्यवस्थित व सुचारू रूप में बना कर रख ही नहीं सकता। कुछ अतिमहत्त्वपूर्ण अधिकारियों के बिना तो देश विघटित ही हो जाए। वे अधिकारी लम्बे समय तक अपनी सेवाएं देकर , सेवानिवृत्त हो जाते हैं, और अपने मूलदेश को वापिस चले जाते हैं। उनके द्वारा सेवित देहदेश उनको बहुत सारे अनुवृत्ति-धन (pension sum) के साथ ससम्मान विदा करता है। कई बार गुणवान विदेशी नागरिक आवश्यकता से अधिक संख्या में भी देहदेश में पहुँच जाते हैं , जिन्हें भी ससम्मान अपने देश को वापिस भेजा जाता रहता है। फिर सेवानिवृत्त अधिकारियों के रिक्त पड़े पदभारों को सँभालने के लिए , पुनः नए अधिकारियों को आमंत्रित किया जाता है। बदले में , देहदेश भी उन आमंत्रित अधिकारियों के मूलदेशों की बहुत सहायता करता है, और उन्हें सुरक्षासहित बहुत सी सुविधाएँ उपलब्ध करवाता है। लेखक ने एक बार देखा कि देहदेश में वामना उपनाम के सभी अधिकारी सेवानिवृत्त हो गए थे, परन्तु नए अधिकारी मिल नहीं रहे थे। उससे उसके अधिकारक्षेत्र के अधिकाँश कार्य दुष्प्रभावित होने लग गए। कैमरामैनों (cameramen) के कैमरे रिपेयर (repair) नहीं किए जा रहे थे, जिससे उनके द्वारा खींचे गए विभिन्न चित्रों की गुणवत्ता (quality) बहुत घट गई थी। वे चित्र राजा को पसंद नहीं आ रहे थे। रक्षाविभाग भी सुस्ताने लग गया था। विभिन्न सीमा-भित्तियों का ठीक ढंग से रखरखाव नहीं किया जा रहा था। संविधान का पालन भी ठीक ढंग से नहीं किया जा रहा था। उपरोक्त सभी दुष्प्रभावों से गंभीर स्थिति उत्पन्न होने पर, राजा को वस्तुस्थिति से अवगत करवाया गया। उसने मूलसमस्या का पता लगाने के लिए , विभिन्न उपायों का आश्रय लिया। पता लगने पर, उसने अपने राजदूत को उन छोटे देशों की यात्रा पर , विशेषतः रक्तपुर नामक देश की यात्रा पर भेजा, जिन्होंने अपने नागरिकों के, विशेषतः गुणवान व शिक्षित नागरिकों के उत्प्रवास (emigration) के ऊपर पाबंदी (ban) लगाई हुई थी। अतः उन देशों के साथ बहुत सी संधियों पर हस्ताक्षर किए गए। वास्तव में, वह बड़ा देश उन छोटे देशों को उचित सुरक्षा व संसाधन उपलब्ध नहीं करवा रहा था, और कई बार तो वह उनके ऊपर अतिक्रमण (encroachment) करने का प्रयत्न भी कर रहा था। बड़े देश का छोटे देशों के साथ सफल समझौता हो गया था, जिसके अनुसार बड़े राजा ने छोटे राजाओं की भरपूर सहायता करना प्रारम्भ कर दिया। बदले में, छोटे राजाओं ने भी उत्प्रवास पर लगाई गई पाबंदी को हटवा दिया, जिससे बड़े देश को भी कुशल अधिकारी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होने लग गए। रक्तपुर नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि उस देश के लोगों को लाल रंग बहुत पसंद है, और उनका राष्ट्रीय ध्वज भी लाल रंग का ही है।

मूलबंध तो कुण्डलिनी की ऊंचाई के स्तर-नियंत्रक (level-regulator) की तरह ही होता है। इसे थोड़ा अधिक दबाने से , कुण्डलिनी थोड़ा ऊपर उठती है, और थोड़ा ढीला छोड़ने से, कुण्डलिनी थोड़ा नीचे उतरती है। इसका दबाव उस स्तर का रखा जाता है , जिससे कुण्डलिनी विशेष रूप से निर्दिष्ट चक्र पर बनी रहे।

प्रत्येक दर्शन/धर्म में कहा गया है कि आत्मज्ञान के बाद भी अद्वैतशील जीवन जीते रहना चाहिए , तभी आत्मज्ञान जीवन में दृढ़ हो पाता है , अन्यथा, वह अधूरा रह जाता है। प्रेमयोगी वज्र ने तो यह भी देखा कि अद्वैत के निरंतर पालन के बिना, आत्मज्ञान क्षीण भी हो जाता है। आत्मज्ञान या कुण्डलिनीजागरण की वृत्तियाँ भी अन्य चित्तवृत्तियों की तरह ही होती हैं, यद्यपि वे अपेक्षाकृत रूप से बहुत अधिक बलवान होती हैं, इसीलिए लम्बे समय तक याद रहती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे वृत्तियाँ कभी विस्मृत ही नहीं होतीं। नियम तो सभी समान वस्तुओं के ऊपर एक जैसा ही चलता है। वास्तव में वे भी विस्मृत हो जाती हैं, यद्यपि अन्य साधारण चित्तवृत्तियों की अपेक्षा बहुत लम्बे समय के बाद। इसका अर्थ है कि सदैव अद्वैत

का परिपालन करना चाहिए। वास्तव में, अद्वैत ही सब कुछ है। वही भगवान है। वही मुक्ति है। वही आत्मज्ञान है। वही कुण्डलिनीजागरण है। वही प्रेम है। वही स्वर्ग है। वही मानवता है। अद्वैत वेदान्त भी तो यही कहता है। यह दर्शन अद्वैत को ही सब कुछ मानता है। यह दर्शन अद्वैत को ही वेद का अंत , अर्थात वेद का सार बताता है। यदि मन में अद्वैतभाव विद्यमान हो; तब संकल्प-विकल्प बड़ी शान्ति से, आराम से, प्रेम से व आनंद के साथ उभरते हैं। कई लोग सोच सकते हैं कि अद्वैतभाव को बनाने के लिए कोई शक्ति नहीं लगानी पड़ती , या कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वास्तव में, प्रयत्न के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अद्वैतभाव को निरंतर बनाए रखने के लिए भी निरंतर प्रयत्न करते रहना पड़ता है। जैसे ही वर्तमान स्थिति को अद्वैतयुक्त बनाने के लिए, शविद पर क्षणिक दृष्टि डाली जाती है{जैसी दृष्टि वाहनचालक (driver) किनारे के दर्पण (side mirror) पर डालता है। वह आगे की, सड़क की दृष्टि को हटाए बिना ही व सिर को मोड़े बिना ही , दर्पण पर क्षणिक व तिरछी दृष्टि डालता है}, वैसे ही वह वर्तमान की मानसिक स्थिति, आनंद के साथ हल्की होती हुई ओझल होने लगती है, और शविद-साधक चैन (relief) की एक लम्बी साँस (full breath) लेकर, अद्वैत में स्थित हो जाता है, जिससे उसकी कुण्डलिनी भी उजागर हो जाती है। शरीर के अतिरिक्त बाहर की प्रकृति या स्थूल जगत की ओर भी तिर्यक मानसिक दृष्टि डाली जा सकती है, क्योंकि शविद में हमने सिद्ध कर ही दिया है कि “यत्पिंडे तत्ब्रम्हांडे”, अर्थात हर स्थान पर अद्वैतमयी देहदेश व उनमें निवास करने वाले अद्वैतमयी देहपुरुष विद्यमान हैं। जितनी अधिक बार, जितनी अधिक कर्मठता के साथ व जितनी अधिक निपुणता से कोई ऐसा करता है , उतना ही अधिक लाभ उसे होता है। ऐसा बार-२ करते रहना पड़ता है। इस विधि से, उसकी वर्तमान की यथोचित अवस्था भी दुष्प्रभावित नहीं होती, जैसे कि उक्त वाहनचालक की चालकता (driving) दुष्प्रभावित नहीं होती। वास्तव में, अद्वैत को बना कर रखना भी वाहन -चालन के जैसी ही एक कलाकारी है। अधिकाँश भौतिक काम तो शरीर से व स्वभाववश (आदतन) होते रहते हैं, जिनके लिए भटकते हुए मन की कोई आवश्यकता ही नहीं होती। यदि अध्ययन या प्रबंधन आदि के मन के काम हों , तो वे काम, उनके अद्वैतसंपन्न होते ही; मन के बंधनकारिता, आसक्ति आदि स्वाभाविक दुष्प्रभावों से मुक्त हो जाते हैं। इसी तरह, कुण्डलिनी के प्रति क्षणिक तिरछी नजर से भी अद्वैत छा जाता है, और कुण्डलिनी उजागर हो जाती है। फिर वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए साँस को बढ़ा देती है , व उसे नियमित कर देती है। अन्दर जाती हुई साँस से कुण्डलिनी -अग्नि अधिकाधिक भड़कती जाती है, और बाहर निकलती हुई साँस से, उसका धुंआ बाहर निकलता जाता है। उस तिरछी नजर के बाद कुछ समय तक घबराने की जरूरत नहीं ; क्योंकि फिर तो सभी कुछ, यहाँ तक कि अहंकार, बेचैनी, लोभ, मोह, आसक्ति आदि तथाकथित उत्पथगामी भाव भी रूपांतरित होकर, सत्पथगामी व लाभकारी बन जाते हैं।

एक बार लेखक ने देखा कि शाकालीन नामक एक देहदेश में थाबरमण उपनाम के अधिकारियों की कमी चल रही थी। पूरे देश में , उनका पदभार संभालने के लिए आवश्यक योग्यता, किसी भी नागरिक में नहीं थी। उससे उन अधिकारियों के कार्यक्षेत्र दुष्प्रभावित हो रहे थे। उन कार्यक्षेत्रों में मुख्य थे; यातायात-विभाग, ऊर्जा-विभाग, सूचना एवं प्रसारण विभाग, संचार-विभाग, केन्द्रशासित राष्ट्रीय-राजधानी का रखरखाव, रक्षा-विभाग, जलशोधन विभाग आदि। वास्तव में, एक ही विभाग में भी कई-२ अधिकारियों का नियंत्रण होता है, यद्यपि उनके कार्यों में कुछ न कुछ अंतर तो होता ही है। परन्तु कई बार, एक ही कार्य को भी कई अधिकारी, उत्कृष्ट सहयोगात्मक ढंग से कर रहे होते हैं। वैसी सहयोगात्मकता तो अद्वैत से ही संभव हो सकती है, क्योंकि द्वैत से कुछ न कुछ मनमुटाव तो रहता ही है, जो कार्य को व कार्यकर्ताओं के बीच के आपसी सम्बन्ध को दुष्प्रभावित करता है। इस तरह से , क्योंकि सूचना एवं प्रसारण विभाग दुष्प्रभावित हो रहा था ; अतः यह स्वाभाविक ही था कि वह विभाग , वैसे चित्र-विचित्र प्रकार के कार्यक्रमों को प्रसारित कर रहा था, जिनमें न तो लयबद्धता थी , न शालीनताथी, व न ही अद्वैत की धारणा विद्यमान थी। उन कार्यक्रमों को देख -सुन कर, सभी देशवासी भी अवसादग्रस्त हो गए थे, और उनका मन भी दोलायमान व उचाट (swinging mind) जैसा रहने लग गया था। वैसे फिर भी वहाँ के लोग अद्वैत को नहीं छोड़ते हैं। उनकी अद्वैतनिष्ठा भी गजब की होती है। मनोदोलन भी अद्वैत के साथ व अवसाद भी अद्वैत के साथ। आश्चर्यमयी व्यक्तित्व होता है उनका। अद्वैत के कारण वे सभी दुष्प्रभावों से अछूते रहते हैं। हमारे जैसे अपेक्षाकृत द्वैतशील पुरुष भी अभ्यास से , उनके जैसे बन सकते हैं। खैर, देश के अन्य अधिकारियों व मंत्रियों ने स्थिति को संभालने के लिए , अपनी जी-जान लगा दी। परन्तु जब अति हो गई, तब राजा को भी सूचित किया गया। राजा ने जब छानबीन करवाई, तो पता चला कि वह मामला, विदेशनीति की किसी विशेष चूक से नहीं, अपितु विदेशविभाग की एक छोटी सी लापरवाही से ही हुआ था। क्योंकि विदेशविभाग का पूरा उत्तरदायित्व राजा के पास ही होता है , अतः उसमें राजा ही दोषी था। विदेशों में , विशेषतः चक्रपुर व मसनपुर नामक देशों में, पर्याप्त संख्या में योग्य उम्मीदवारों के विद्यमान होने पर भी, राजा ने उन्हें अपने देश में काम करने के लिए, निमंत्रण नहीं दिलवाया था। राजा ने तुरंत अपनी भूल को सुधारते हुए , अपने दिव्य विमानों को उन तथाकथित गुणवान लोगों को ससम्मान लाने के लिए

रवाना कर दिया। वापिस शाकालीन में पहुंचते ही, उन गुणवानों को उनके दायित्व समझा दिए गए, और वे अपने-२ कामों में उसी दिन से जुट गए। धीरे-२ उन्होंने देश की बिगड़ती हालत को सुधार दिया।

कुण्डलिनीजागरण के निकट, प्रेमयोगी वज्र को विभिन्न आभासिक समस्याओं का सामना भी करना पड़ रहा था। आभासिक शब्द इसलिए, क्योंकि वे समस्याएँ यद्यपि उसे कभी-२ वास्तविक लगती थीं, परन्तु गहराई से विचारने पर वे, समस्याएँ नहीं अपितु सुविधाएँ ही थीं। उसे आभासिक, आर्थिक समस्याओं का भान भी हुआ। उसे आभासिक शत्रुओं का भान भी हुआ। उसे आभासिक , सामाजिक समस्याओं का भान भी हुआ। उसे आभासिक , पारिवारिक समस्याओं का भान भी हुआ। उसे आभासिक , व्यावसायिक समस्याओं का भान भी हुआ। उसे देश -काल से सम्बंधित अन्य आभासिक समस्याओं का भान भी हुआ। उसे आभासिक, भावनात्मक समस्याओं का भान भी हुआ। इससे जाहिर होता है कि समस्याओं से कुण्डलिनी को खुराक मिलती है, क्योंकि समस्याओं से डरकर आदमी, कुण्डलिनी की शरण में चला जाता है। यदि किसी के जीवन में समस्याएँ न लिखी हों , तो कुण्डलिनी अपने जागरण के लिए, आभासिक (unreal) समस्याओं को उत्पन्न करती है। क्योंकि समस्याओं से घबराया हुआ व्यक्ति ही संसार को छोड़कर , एक कुण्डलिनी के आश्रित होता है; इसीलिए जब कोई व्यक्ति एकमात्र कुण्डलिनी के पोषण में व्यस्त हो जाता है, तब उसके जीवन में आभासिक समस्याएँ स्वयं ही उत्पन्न हो जाती हैं। वे समस्याएँ उसे प्रतीत नहीं होतीं या कभी -२ हल्के रूप में प्रतीत होती हैं, परन्तु अन्य लोगों को, उसका अकेलापन देखकर, उसके जीवन में वे सत्यतः प्रतीत होती हैं। यह ऐसे ही होता है, जैसे कि दर्पण में वृक्ष नहीं होता, परन्तु प्रतीत होता है।

नरमदल के अधिकाँश अधिकारी, परन्तु चिपकू उपदल को छोड़कर, देश के ऊर्जाविभाग में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रबलुद्दीन उपनाम के नरमदल-अधिकारी देश की विभिन्न अंतर्देशीय (intranational) व अंतरादेशीय (international) सीमाभित्तियों, वाहन उद्योगों (vehicle factories) व अन्य विभिन्न उद्योगों में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये अधिकारी देश के सूचना उद्योग में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये उस विभाग के कैमरों के लेंसों (camera-lenses) की निर्माणशालाओं (factories) का उत्तरदायित्व भी संभालते हैं। ये विदेशी-परिचायक का काम भी करवाते हैं। ये छोटे देशों के महत्त्वपूर्ण लोगों का परिचय विदेशमंत्रालय से करवाते हैं , और उनकी महत्ता बताते हुए, उन्हें अपने देश में आने की अनुमति देने के लिए राजी करवाते हैं, ताकि उस मंत्रालय को उन्हें शरण देने में कोई शंका व हिचकिचाहट न हो। नवदेशनिर्माणविभाग में भी सेवा देते हुए, ये अधिकारी नवदेश को, विकास के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ये अधिकारी राष्ट्रीय राजधानी में नाटक-मंडलियाँ आदि भिजवा कर, वहाँ के मंत्रियों व अधिकारियों के मानसिक तनावों को भी कम करते रहते हैं। ये नरमदल -अधिकारी अन्य कुछ अधिकारियों की तरह अड़ियल नहीं होते। इसलिए यदि ये आवश्यकता से अधिक संख्या में भी देश के अन्दर प्रविष्ट हो जाएं, तो भी समस्या नहीं आती, क्योंकि जब उन्हें वस्तुस्थिति समझाई जाती है, तब वे अपने कुछेक साथियों को वहीँ छोड़कर, अपने घर वापिस लौट जाते हैं। बहुत बिरले मामलों में ही, ये आवश्यकता से बहुत अधिक संख्या में होने पर ही, शरणदाता देश में हल्का-फुल्का बवाल भी मचा देते हैं।

साधना का फल अवश्य मिलता है। यदि फल शीघ्र न मिले, तो देर-सवेर तो अवश्य ही मिलता है। जितनी मात्रा में साधना की जाए, उतनी मात्रा का फल अवश्य मिलता है। वास्तव में साधना का फल इकट्ठा होता रहता है , और कुण्डलिनीजागरण के रूप में, कालांतर में इकट्ठा ही प्रकट होता है। साधना वही है, जिसमें कुण्डलिनी का ध्यान होवे, बेशक वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो। वह संध्यावंदन -योग, कर्मयोग, शविदयोग, अद्वैतयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कुण्डलिनीयोग आदि-२ किसी भी प्रकार की हो सकती है।

नरमदल संगठन के नयपुरी उपनाम के अधिकारी भी अपने संगठन के पूर्वोक्त निर्दिष्ट कामों को भली भांति करते हैं। साथ में , अतिरिक्त रूप से ये देश के विशालतम परिष्करण-संयंत्र व अन्य छोटे-मोटे उद्योगों में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये यातायात की समस्याओं को भी सुधारते हैं। ये देश के विद्रोही लोगों को शाँत करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये अधिकारी निमंत्रितदेश व निमंत्रकदेश के बीच में बने हुए पूर्वोक्त पुल को क्षतिग्रस्त होने से बचाते हैं, और क्षतिग्रस्त पुल को ठीक भी करवाते हैं। उससे स्वयंवर के लिए जा रहे राजकुमारों को समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।

अद्वैत को धारण करने से, आदमी नशेड़ी के जैसा भी लगता है। वह जागते हुए भी, सोया हुआ सा लगता है। वह काम करते हुए भी, निकम्मा जैसा लगता है। वह होश में होते हुए भी, बेहोश जैसा लगता है। वह जीवित होते हुए भी, मृत जैसा लगता है। वह स्वस्थ होते हुए भी, रोगी जैसा लगता है। वह चुस्त व तरोताजा होते हुए भी, सुस्त व थका हुआ सा लगता है। परन्तु वास्तव में वह इन सभी से अलग , एक दिव्यमानव जैसा होता है। वह विचारों के साथ होता है, परन्तु विचारशून्य सा लगता है। यही अद्वैतावस्था या द्वैताद्वैतावस्था होती है, जिसे भावाभाव की अवस्था (trans state) भी कहते हैं। उसमें भाव (presence) भी होता है, और अभाव (absence) भी। दूसरे शब्दों में यदि कहें, तो न तो उसमें भाव होता है, और न ही अभाव।

पंथक उपनाम के नरमदल-अधिकारी भी नरमदल के सभी, समान रूप से निर्दिष्ट (common to all) कार्यों को करते हैं। ये भी अन्य सभी नरमदल के अधिकारियों की तरह ही मसीपुर, अंडमानपुर, मश्कपुर, हरितपुर व लागपुर नामक छोटे-२ देशों के निवासी होते हैं।

सिद्धासन के समय, जब दाएं पाँव को नीचे रखते हैं, तब बायाँ पाँव, दाईं टांग के ऊपर से नीचे की ओर फिसलता रहता है। उस फिसलन से बचने के लिए, बाएँ पाँव को, मोड़ी गई दाईं टांग की दरार में, ठीक ढंग से फिट (fit) करना पड़ता है। इससे दोनों पाँवों की गोलाकार हड्डियां आपस में टकरा सकती हैं, परन्तु धीरे-२ आदत पड़ जाती है। सिद्धासन को बलपूर्वक व हठपूर्वक, बिना अभ्यास के नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि इससे बहुत से योगियों के घुटने खराब हो गए हैं। धीरे-२ आदत डालनी चाहिए। यदि सिद्धासन में असहज लगे, तो अर्धसिद्धासन या साधारण आसन भी लगा सकते हैं। वैसे तो अर्धसिद्धासन में भी घुटनों पर तनाव महसूस होता है। इसलिए नितम्ब (hip) को किसी पतले सिरहाने आदि की सहायता से कुछ ऊंचाई पर रखना चाहिए, जिससे टांगें घुटनों की दिशा में, उतराई में हो। उससे घुटनों में राहत महसूस होती है।

साक्षीकरण-भाव व अद्वैत का भाव, ये दोनों भाव साथ-२ होने चाहिए। यदि अद्वैत का भाव न हो, तो साधक एक ही साक्षीकृत भाव से चिपका रहता है, आसक्ति के कारण। भावों को, अतः कर्मों को, अतः जीवन को गति देने के लिए, अद्वैत का भाव भी साथ में होना चाहिए। अद्वैत के बिना साक्षीकरण-भाव तो किया जा सकता है, परन्तु साक्षीकरण-भाव के बिना अद्वैतभाव को सरलता से धारण नहीं किया जा सकता। वास्तव में गहराई से देखने पर दोनों एक ही चीज है।

नरमदल के प्रज्ञास्तानी उपनाम के अधिकारी भी अपने दल के लिए निर्धारित सभी पूर्वोक्त कामों को करते हैं। यद्यपि इस उपनाम के सदस्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये विभिन्न अधिकारियों को नियंत्रित करते हैं , और ये स्वास्थ्यविभाग से भी जुड़े होते हैं। साथ में , ये निम्नोक्त बाबादास उपनाम के अधिकारियों की नियुक्ति भी करवाते हैं। अपने बहुत से दलमित्रों की तरह , ये भी संचारविभाग को अपनी सेवाएं देते हैं। राष्ट्रीय राजधानी की मनोरंजक टोलियों को भी ये नियंत्रित करते हैं। नवदेश में तो ये विभिन्न संरचनाओं के विकास व उसके सुरक्षाविभाग की देखरेख भी करते हैं। ये लोगों को प्रातः-रोग (morning sickness) नामक बीमारी से भी बचाते हैं, क्योंकि ये उन्हें सुबह-२ जल्दी उठा कर, योग, प्रातःभ्रमण आदि करने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं। नवदेश में तो ये संचार-विभाग को, उस अतिसक्रियता से भी बचाते हैं, जिसमें वहाँ के लोग सूचनाओं के बोझ से पागल जैसे हो जाते हैं। वास्तव में, नवदेश में अराजकता की तरह के वातावरण का लाभ उठाते हुए , बहुत से लोग अपनी-२ गोटियाँ खेलते हुए, पूरे देश पर अधिकार जमाना चाहते हैं। इसलिए वे अफवाहों का बाजार गर्म कर देते हैं , और गलत सूचनाओं की भरमार से लोगों को गुमराह कर देते हैं। ये अधिकारी भी मूलतः पूर्वोक्त छोटे-२ देशों के निवासी ही होते हैं।

शास्त्रों में जो अधिकतर स्थानों पर वर्णन आता है कि यह जीवन असत्य है, इस संसार को सत्य न समझो आदि-२, उसमें भी संभवतः शविद-रहस्य ही छिपा हुआ है। यदि कोई, जीवन को यथोचित जीते हुए भी, उसे असत्य समझेगा, तो स्वाभाविक है कि जीवन के प्रति अनासक्ति ही रखेगा। यदि कोई, जीवन को पूर्णतया असत्य समझकर, नकार ही देगा, तब तो वह जीवन को ही जी नहीं पाएगा। फिर भी, अब तो विज्ञानवादी भी यह मानने लग गए हैं कि यह जगत असत्य/३डी सिमुलेशन/वर्चुअल (3D simulation/virtual) प्रकार का है। वे इसे परग्रहीय प्राणियों द्वारा एक विशालकाय कम्प्यूटर (computer) में खेली जा रही एक त्रिआयामी गेम (3D game) मान रहे हैं। वास्तव में अंतरिक्ष ही तो वह कम्प्यूटर है , तथा ईश्वरप्रेरित देवता ही जगतरूपी गेम खेलने वाले गेमर (gamers) हैं।

शास्त्रों में जो वर्णन आता है कि स्त्रियों की मोहमाया से बचो , तो संभवतः वह वर्णन प्रत्यक्ष दृष्टि से नहीं है , अपितु एक अप्रत्यक्ष सुझाव ही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियों के सुन्दर चेहरे से, उसकी मधुर वाणी से या स्त्रियोचित रसभरे विचार-व्यवहार से दूर रहो। यदि ऐसा किया जाएगा, तो यौन-उत्तेजना कैसे मिलेगी, और यदि उत्तेजना नहीं मिलेगी, तो कुण्डलिनी को जागरणहेतु मुक्तिगामी वेग कैसे मिल पाएगा? इसका वास्तविक अर्थ संभवतः यह है कि उत्तेजना के वश में होकर, स्त्रियों से वैसा नजदीकी संपर्क न बनाओ, जिससे कुण्डलिनी शक्ति बाहर चली जाए, या सामाजिकता को क्षति पहुंचे; अपितु मध्यमार्गी बन कर रहा जाए। साथ में, स्पर्श आदि के अतिनिकटता के सम्बन्ध से, अनेक बिमारियों के फैलने का डर भी बना रहता है। योगशास्त्रों में यह वर्णन भी आता है कि योग के दीर्घकालिक अभ्यास से व्यक्ति आकर्षक हो जाता है, जिससे वह स्त्री की मोहमाया में फँस सकता है। इसका तात्पर्य संभवतः यही है कि पुष्टता को प्राप्त हुई कुण्डलिनी, अपने जागरण के लिए, यौनयोग की ओर स्वतः ही आकर्षित होने लगती है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ हुआ था। परन्तु अधिकाँश योगी इस बात को समझ ही नहीं पाते , और उन्हें योग्य गुरु आदि का भी उचित मार्गदर्शन नहीं मिल पाता, जिससे उनकी योगभ्रष्ट बनने की संभावना बनी रहती है।

बाबादास उपनाम के अन्य नरमदल-अधिकारियों के निम्नलिखित विशिष्ट काम होते हैं ; विशाल छापेखाने (press) में संविधान की बहुत सी प्रतियां छपवा कर तैयार रखना, ताकि वे सभी लोगों को और नवदेशों को भी समयानुसार उपलब्ध करवाई जा सकें ; यातायात-वाहनों का निर्माण, विभिन्न निर्माण-सामग्रियों का उत्पादन, विभिन्न वस्तुओं को भंडारण -योग्य बनाना व सभी लोगों तक उनका समुचित वितरण सुनिश्चित करना , विभिन्न अधिकारियों की सेवाओं का हिसाब -किताब रखना व संचार-विभाग का रख-रखाव करना आदि-२। ऊर्जा के उत्पादन में तो लगभग सभी नरमदल-अधिकारियों का हाथ होता है। ये बाबादास अधिकारी अपने पूर्वोक्त साथियों से इसलिए कुछ भिन्न होते हैं , क्योंकि यदि ये आवश्यकता से अधिक संख्या में भी देश के अन्दर प्रविष्ट हो जाएं , तो भी इनको वापिस बाहर नहीं भेजा जाता , अपितु देश में ही बसा कर रखा जाता है , ताकि आपातकाल में या इनके जैसे /इनके समकक्ष अन्य अधिकारियों के सेवानिवृत्त होने पर , इन्हें नियुक्त किया जा सके , और बाहर से इनको बार-२ न बुलाना पड़े। फिर भी उनके लिए निर्मित की गई रिहायशी /आवासीय बस्तियों (residential colonies) के भर जाने पर तो अतिरिक्त लोगों को वापिस भेजना ही पड़ता है। ये अधिकारी अपने आत्मसम्मान का बहुत ध्यान रखने वाले भी होते हैं। यदि इन्हें सही तरीके से न बुलाया जाए , तो ये आते भी नहीं। वैसे तो सभी विदेशी नागरिक अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते रहते हैं , परन्तु ये तो कुछ ज्यादा ही करते हैं। कई बार पुराने देश तो इनके आप्रवास के पक्ष में कम ही होते हैं, इसलिए उन देशों के ऊपर दबाव बनाने के लिए, इस दल के बहुत से विदेशी अधिकारी इकट्ठे होकर, सम्बंधित दूतावास के बाहर आन्दोलन भी करते हैं। फिर वे देश दबाव में आकर , उनके आप्रवास पर लगी अस्थायी रोक को हटा देते हैं। वैसे , वे ही विदेशी अधिकारी अच्छे होते हैं, जो प्राकृतिक रूप से अपने मूलदेश के रहने वाले होते हैं। उनके मूलदेशों को सदियों से इस बारे में सब कुछ पता होता है कि किस-२ क्षेत्र या व्यवसाय से सम्बंधित, कितने-२ लोग निमंत्रकदेश को भेजे जाने हैं। उससे अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती , और निमंत्रकदेश के लिए भी कोई खतरा पैदा नहीं होता। परन्तु कई बार अपने लाभ के लिए , कोई विकसित देश अंतरदेशीय बीहड़ों में ही उन अधिकारियों के जैसे लोगों को, कृत्रिम प्रशिक्षण आदि दिलवा कर, काम के लिए तैयार करवा लेता है। उससे बड़े देश के, समय, संसाधन व ऊर्जा, तीनों की भारी बचत तो हो जाती है, परन्तु वे अधिकारी कुछ असामाजिक जैसे होते हैं, जिससे उनके कारण कई बार स्थिति नियंत्रण से बाहर भी हो जाती है, और विरले मामलों में तो देश के लिए गंभीर स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। इस उपनाम के अधिकारी विदेशी आयात को भी प्रोत्साहित करते हैं। वे देश के भंडारों को भी भरा हुआ रखवाते हैं, देश के काम-धंधों को चलायमान रखवाते हैं, और सभी नागरिकों तक ऊर्जादायक खाद्य-पेयों की आपूर्ति भी करवाते हैं। ये देश को अपने पैरों पर खड़ा होकर, स्वावलंबी रूप से स्थित रहने में भी सहायता करते हैं , और उसे पराश्रित नहीं होने देते। ये संचारविभाग के उपकरणों , तारों (cables) व अन्य यंत्रों का रख-रखाव करते हैं, और उनकी ठोक-मुरम्मत भी करते रहते हैं। विभिन्न वाहनों के निर्माण में सहायता करके , ये देश के किसी भी भाग में, किसी भी वस्तु की कमी नहीं होने देते।

कुण्डलिनीयोग संभवतः सुनार की ठक-२ की तरह काम करता है। सुनार अपनी छोटी सी हथौड़ी से , धीरे-२ चोट पहुंचाता हुआ, सोने को यथावश्यक आकार दे देता है। बड़ी या लोहार वाली चोट से तो मुलायम सोना टूट भी सकता है। इसी तरह से , कुण्डलिनीयोगी भी प्रतिदिन के थोड़े-२ व नियमित अभ्यास से, अपनी कुण्डलिनी को धीरे-२ पुष्ट करता हुआ, उसे जागरण की ऊंचाई तक ले जाता है। इसी सिद्धांत के अनुसार ही महान योगी श्री लाहिड़ी महाशय जी भी कुण्डलिनीयोग के बारे में कहा करते थे ,"बनत-२ बन जाए"। जिस तरह से पत्थर पर लगातार व हल्की-२ हथौड़ी मारते रहने से, वह धीरे-२ कमजोर होता रहता है, और अंत में टूट ही जाता है; उसी तरह से हल्की-२ साँसों से कुण्डलिनी धीरे-२ पुष्ट होती रहती है, और अंत में प्रचंड हो जाती है। जैसे हवा की शक्ति से चलने वाली , इंजन (engine) की हथौड़ी (piston) का थोड़ा-२ व लगातार लगने वाला प्रहार, बड़े-२ वाहनों के भारी पहियों (tyres) को भी घुमा देता है , उसी तरह से साँसों का हल्का -२ व नियमित रूप से लगातार लगने वाला प्रहार , दबी हुई कुण्डलिनी को धीरे-२ उजागर करके झकझोर देता है, और उसे क्रियाशील कर देता है। जिस तरह से भूमिखोदकयंत्र (buldozer) बार-२, थोड़ा-२ पीछे हटकर मिट्टी को शक्तिशाली धक्का देता रहता है, उसी तरह से मन व प्राण (साँसें) भी कुण्डलिनी को धक्का देते हुए, बार-२ व थोड़ा-२ करके पीछे हटते रहते हैं, ताकि वे शक्ति का पुनः-२ संचय करके, पुनः-२ जोर का धक्का लगा सकें, और कुण्डलिनी को झकझोर सकें। यदि एकसाथ ही बहुत अधिक साधना की जाए, तो योगी के मुलायम मस्तिष्क के ऊपर, और उससे उसके जीवन के ऊपर दुष्प्रभाव भी पड़ सकता है। इसीलिए चक्र पर बहुत अधिक समय तक साँस को नहीं रोकना चाहिए, अन्यथा उससे उस समय ध्यान-शक्ति कुछ कम हो जाती है, नींद सी भी आने लगती है, दम घुटने लगता है, और हो सकता है कि कुछ दीर्घकालिक दुष्प्रभाव भी पड़ता हो।

उसी नरमदल में उपस्कर उपनाम के, अन्य सभी से अलग-थलग जैसे रहने वाले अधिकारी भी शामिल होते हैं। वे बहुत गर्वीले, चटकीले व क्षणभर में ही रूठ कर चले जाने वाले होते हैं। यहाँ तक कि फिर वे अपने मूलदेश को भी छोड़ देते हैं , यदि उनके मान-सम्मान को जरा सी भी ठेस पहुँच जाए,

व उनकी सुविधाओं का उचित ध्यान न रखा जाए। वे बहुत ही संवेदनशील होते हैं। उनके उसी गर्व के कारण, बड़े देश के लिए उनको अपने देश में, कुछ समय के लिए भी ठहरा कर रख पाना बहुत मुश्किल होता है। वे केवल अपने काम से काम रखते हैं। यदि कुछ काम न हो , तो वे तुरंत उस निमंत्रकदेश को अलविदा कह देते हैं। इसलिए बड़े देश को उन्हें बार -२ और अधिक संख्या में बुलाते रहना पड़ता है। उनके काम भी नरमदल के अन्य सदस्यों से काफी अलग होते हैं। वे अधिकारी देश की विभिन्न संरचनाओं के निर्माण , उनके रखरखाव व उनकी ठोक-मुरम्मत में अहम भूमिका निभाते हैं। वे सुरक्षा-प्रणाली में भी सहायता करते हैं। हल्के -फुल्के आक्रमण की स्थिति में तो वे स्वयं ही आगे आकर , आक्रमणकारियों से भी भिड़ जाते हैं। देश के पश्चातोक्त मध्यमार्ग के प्रारम्भ में, मुख्यद्वार के आसपास, वे आयातित वस्तुओं के वर्गीकरण करने वाले, उनको चढ़ाने-उतारने (loading-unloading) वाले व अच्छी तरह से पैक (pack) करने वाले लोगों की सहायता भी करते रहते हैं। वे सड़कों के किनारों पर दुर्घटनावरोधक भित्ति (parafits) लगाने वाले लोगों की भी सहायता करते हैं, ताकि उन पर दौड़ रहे विभिन्न वाहन, सड़क से बाहर गिरकर दुर्घटनाग्रस्त व क्षतिग्रस्त न हो जाएं। यद्यपि बहुत ही अधिक संख्या में होने पर, वे भी अन्य विदेशी अधिकारियों की तरह ही एक-दूसरे से ईर्ष्या व कलह करने लग जाते हैं, जिससे कई बार उनसे गलत काम भी हो जाते हैं। ऐसे में, कई बार वे विशाल जलशोधन संयंत्र के परिसर के अन्दर घुस जाते हैं, और वहाँ के कर्मचारियों से उल्टे-सीधे काम करवा देते हैं। कई बार तो उनके किसी संगठन को भड़का कर , उनसे आन्दोलन व आँशिक चक्काजाम भी करवा देते हैं। इसी तरह , कई बार विशाल जलधक्का यंत्र के काम को भी वे हल्के-फुल्के अंदाज में दुष्प्रभावित कर देते हैं।

कुण्डलिनीयोग से शीघ्रतापूर्वक लाभप्राप्ति हेतु, अनुकूल परिस्थितियों का प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक होता है। अनुकूल परिस्थितियाँ ईश्वरभक्ति से उपलब्ध ईश्वरकृपा के बिना प्राप्त नहीं होतीं। यदि शविद का आश्रय लिया जाए, तो प्रतिक्षण ही ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ भक्ति स्वयं ही होती रहती है, क्योंकि अद्वैत से ही वास्तविक ईश्वरभक्ति हो सकती है। ईश्वर ने अद्वैतशील देहपुरुष, मानवता के विकास के लिए ही बनाए हैं। जब मनुष्य इस बात को ध्यान में रखकर शविद का आचरण करता है, तब सर्वश्रेष्ठ भक्ति स्वयं ही हो जाती है। प्रेमयोगी वज्र को भी कुण्डलिनी -जागरण के समय, संभवतः इसी उपरोक्त कारण से ही अनुकूल परिस्थितियाँ मिली थीं। युक्तियुक्त मानवता व कर्मठता के साथ शविद -पुराणों के २० वर्षों के अभ्यास से , जब उसे अचानक ही गहन एकांतसेवन का स्वयंभूत-अवसर मिला, तब वह स्वयं ही कुण्डलिनी की खोज में प्रवृत्त हो गया। फिर साधारण पुस्तकों व ई-पुस्तकों की सहायता से लगभग १ वर्ष की खोजबीन के बाद, वह कुण्डलिनी के प्रत्यक्ष अनुभव के लिए स्वयं ही कुण्डलिनीयोगसाधना में प्रवृत्त हो गया। यदि वह देर कर देता, तो उसका मन पहले की तरह ही, फिर से साँसारिक जंजालों से भर जाता, जिससे वह योगसिद्धि को उतनी सहजता से न प्राप्त कर पाता। अतः ईश्वरप्रेरणा से ही वह सही समय पर सही निर्णय ले पाया।

देहदेश में नरमदल से अलग होकर, एक उपदल भी निकलता है। उसका नाम चिपकूदल है, क्योंकि उस दल के लोग यदि एक बार किसी विकसित देश के अन्दर घुस जाए, तो बाहर ही नहीं निकलते। यदि वे संख्या में अधिक हों, तो उन्हें देश के उपयुक्त निवास-स्थान पर बसा कर रखना पड़ता है। उससे देश को बहुत सा अनावश्यक खर्च वहन करना पड़ता है। यद्यपि उसका एक लाभ यह होता है कि आपातकाल में वे देश के काम आते रहते हैं। यदि उनकी संख्या सहनसीमा (tolerable limit) से परे चली जाए, तो उन्हें बलपूर्वक व धीरे-२ करके, निकाला भी जाता रहता है। देश उनके संख्या-विस्फोट को नियंत्रित करने के लिए, उनके आप्रवास पर अस्थायी रूप से रोक भी लगवा देता है। पूर्ववर्णित वामना -अधिकारी भी इसी उपदल के सदस्य होते हैं। उनमें से ही एक अधिकारी-वर्ग, वडेलाल उपनाम के नरमदल-अधिकारियों से बना है, जिनका वर्णन पहले भी आया है। ये पार्थमन के सहयोगी होते हैं। इनकी मुख्य विशेषता यह होती है कि ये बहुत ही नैष्ठिक सूर्यभक्त होते हैं। जिस विकसित देश के लोग , सामूहिक रूप से सूर्यदेव के सामने खड़े होकर, न्यूनतम वस्त्रों में, उसकी भक्तिभाव से वन्दना करने लगते हैं; ये अधिकारी उस देश के प्रति आकृष्ट होकर, उसकी सेवा करने के लिए, बिना निमंत्रण के ही रवाना हो जाते हैं।

वास्तव में गुरु आदि, जो भी साधक की कुण्डलिनी के रूप में विद्यमान होता है , उसके बारे में वह किसी को बता ही नहीं पाता , क्योंकि वह कुण्डलिनी उसकी आत्मा के सर्वाधिक निकट होती है, और अपने आप/अपनी आत्मा के लिए कोई यह कैसे बोले कि मैं अपने आप का ध्यान करता हूँ। जिसके मन में द्रष्टा (अपने) व दृष्य (संसार/कुण्डलिनी) के बीच में जितना अधिक भेद /फाँसला हो, वह उसका उतना ही अधिक ढिंढोरा पीटता है। तभी तो कहते हैं कि जिस से वास्तविक प्यार हो जाता है, "उससे मुझे प्यार है", ऐसा उसके लिए कह ही नहीं सकते, क्योंकि उसका चित्र मन में पक्की तरह से बस जाता है, और उस प्रेमी का अपना ही रूप बन जाता है। इसलिए कोई पागल ही कहेगा कि मुझे अपने से प्यार है। जिससे प्यार होने का दावा किया जाता है, वास्तव में उससे प्रेम होता ही नहीं, और यदि प्रेम होता भी है, तो उसकी घोषणा की जाने पर वह नष्ट हो जाता है। किसी वस्तु /

व्यक्ति के बार-२ के ध्यान से, उसके प्रति चैतन्यमयी/आनंदमयी प्रेम बढ़ता है। यही कुण्डलिनीयोग का मूलभूत सिद्धांत है, तभी तो कुण्डलिनी सबसे प्यारी वस्तु (मानसिक) बन जाती है।

टगर उपनाम के चिपकूदल-सदस्य मस्तमौले व मनमौजी स्वभाव के होते हैं। ये हरफनमौला (alrounder) भी होते हैं, और लगभग प्रत्येक स्थान पर आसानी से उपलब्ध भी हो जाते हैं। फिर भी ये बदनामदेश, आर्यख़टदेश व कजारीस्थानदेश में मूलरूप से निवास करते हैं। शंकर की तरह, यदि ये भोले हैं, तो क्रोध भी इनको बहुत शीघ्र आ जाता है। इसलिए इनको सही तरीके से , इनके निवासस्थान/मूल देश से ही निमंत्रण देना ठीक रहता है। फिर ये देश में अधिक संख्या में विद्यमान होने पर भी , असामाजिक भीड़ का हिस्सा नहीं बनते। परन्तु यदि इनको कृत्रिम रूप से बीहड़ों में तैयार करवाया जाए, तो बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है, क्योंकि फिर देश में इनकी संख्या बढ़ने पर , ये असामाजिक बन सकते हैं, और उपद्रव भी मचा सकते हैं। इनके उस असामाजिकता के दौर में यदि साथ में इनको क्रोध भी आ जाए, तब तो स्थिति गंभीर भी हो सकती है। अपने स्वाभाविक क्रोध का सदुपयोग ये फकरदिन उपनाम के उत्पाती लोगों को मार भगाने के लिए करते हैं। फकरदिन लोग विकसितदेशों के देशद्रोही लोग होते हैं। वैसे तो वे चुपचाप रहते हुए, समाज से जुड़े रहते हैं, जिससे उनके मन में पनप रहे देशद्रोह के बीज का किसी को पता ही नहीं चलता। परन्तु जब देश किसी विकट समस्या में होता है, या विकास के पथ पर बढ़ता हुआ, अत्यधिक क्रियाशील होता है, तब वे लोग सही मौक़ा जानकर, अपना असली रंग दिखाना शुरु कर देते हैं। फिर वे तोड़-फोड़ करना शुरु कर देते हैं। वे इतने चालाक होते हैं कि सुरक्षाबलों की पकड़ में भी कम ही आते हैं। परन्तु टगर-अधिकारी तो उनके भी उस्ताद होते हैं। ये शीघ्र ही उन्हें ढूंढकर , उनसे भिड़ जाते हैं, और उनको गलत रास्ते से हटाकर ही दम लेते हैं। इस तरह से , जब इन्हें मुठभेड़ों का अच्छा-ख़ासा तजुर्बा हो जाता है, तब ये रक्षाविभाग के लोगों को भी अपनी सेवाएं मुहैया करवाने लग जाते हैं। सूचना व प्रसारण विभाग की कठिनाइयों को भी ये दूर करने में सहायता करते रहते हैं। ये पूर्वोक्त प्रगल्भज्ञानी नामक अधिकारियों को भी प्रशिक्षण देते हैं , जो बहुत से स्थानों पर निर्णायक भूमिका निभाते हैं, जैसे कि नवदेशनिर्माणविभाग में, देश-विदेश से सम्बंधित व्यवहारों-व्यापारों में, और देश के यातायात विभाग में आदि-२। नवदेशनिर्माणविभाग में सहायक प्रगल्भज्ञानी का वर्णन तो पहले भी आ चुका है। विभिन्न व्यवहारों -व्यापारों में सहायता करने वाले प्रगल्भज्ञानी अधिकारी; विभिन्न श्रमिकों की नियुक्ति करवाते हैं , उनका प्रशिक्षण करवाते हैं, उनसे भिन्न-२ शारीरिक कार्य करवाते हैं, और उनके स्वास्थ्य का भी ध्यान रखते हैं। अंतर्देशीय वस्तुसेवापूर्तिविभाग के सहायक प्रगल्भज्ञानी , देश के विशाल धक्का-यंत्र से बनने वाले दबाव को नियंत्रित करवाते हैं, जिससे पूरे देश में बिछी हुई आपूर्ति-नलिकाओं (supply-pipelines) की, और नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जाती है।

देहदेश में कवकशील उपनाम के विशेष आधिकारियों की आवश्यकता भी पड़ी ही रहती है। वे भी पूर्वोक्त देशों में व दूसरे भी बहुत से छोटे-२ देशों में पाए जाते हैं। वे भी अपने आनुवंशिक काम को पूर्वोक्त अधिकारियों की तरह ही , अपने पूर्वजों की बहुत लम्बी वंश-परम्परा से सीखते आए होते हैं। अतः अपनी पुश्तैनी विद्या में , वे भी माहिर होते हैं। उनका मुख्य काम देश की टूटी हुई सड़कों को जोड़ना /दुरस्त करना होता है, ताकि उनके ऊपर चलने वाले विभिन्न वाहन बाहर गिरकर क्षतिग्रस्त न होते रहें, और देश में वाहनों की कमी न पड़ जाए। वास्तव में उक्त विशाल देश में, अन्य कामों की तरह ही, उच्च तकनीकों से बनी हुई सड़कों को शीघ्रता से दुरस्त करना भी एक टेढ़ी खीर के समान ही है। उस काम के लिए १३ प्रकार की विभिन्न निर्माण-सामग्रियों और उन पर नियंत्रण रखने वाले १३ प्रकार के विभिन्न अधिकारियों की आवश्यकता पड़ती है। उनमें से ४ प्रकार के अधिकारी , वे उपरोक्त कवकशील अधिकारी तो बाहर से आमंत्रित किए गए अधिकारी ही होते हैं। वैसे तो देश के अन्दर भी कुछ होनहार लोगों को , उन आप्रवासित अधिकारियों का स्थान लेने के लिए प्रशिक्षित किया जाता रहता है, परन्तु उनकी संख्या पर्याप्त नहीं होती, यद्यपि फिर भी गुजारा तो चल ही पड़ता है। उन प्रशिक्षण-प्रेमियों को प्रशिक्षण दिलवाने के लिए उन विदेशी प्रशिक्षकों को बुलाया गया होता है , जिन्हें मध्यमार्ग के दक्षिणी भाग के किनारों पर बसाया गया होता है। परन्तु जो देश उन प्रशिक्षकों की या उनके द्वारा प्रशिक्षित किए गए स्वदेशी अधिकारियों की कद्र नहीं करते , उन्हें तो वे अधिकारी बाहर से अवश्य ही बुलाने पड़ते हैं। वे अधिकारी पर्वतश्रृंखलाओं पर वृक्षारोपण करवाकर , उनकी भूमि को भूमिकटाव आदि विघटनकारी परिस्थितियों से भी बचाते रहते हैं। वास्तव में, किन्हीं भी अधिकारियों की विदेशों से आपूर्ति के लिए, बहुत से बिचौलिए व विशेषज्ञ अपनी सेवाएं देते रहते हैं। बहुत से देश तो भविष्य में संभावित कानूनी व अन्य व्यावहारिक अड़चनों से बचने के लिए भी उनकी सेवाएं लेते रहते हैं , परन्तु बहुत से देश तो जल्दबाजी में, उन्हें सीधे ही, ऐसे-वैसे हथकंडे अपना कर भी बुलवा लेते हैं। यद्यपि इस मामले में विधिवत कार्य ही अधिक लाभदायक व सुरक्षित होता है। इसी तरह, और भी बहुत से नरमदल-अधिकारी देहदेश में कार्यरत होते हैं।

कई लोग सोचते हैं कि संयुक्त परिवार अधिक अच्छे होते हैं , और कई सोचते हैं कि विघटित परिवार अधिक अच्छे होते हैं। वास्तव में आवश्यकतानुसार, दोनों ही, अधिक अच्छे होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुण्डलिनी के विकास के समय , अद्वैत के साथ उच्च कर्मठता, उच्च प्रेम व उच्च

व्यावहारिकता की प्राप्ति के लिए , बड़े परिवार लाभदायक होते हैं। परन्तु कुण्डलिनी के अंतिम पोषण व उसके जागरण के लिए , अल्प कर्मठता-व्यावहारिकता के साथ, शाँतियुक्त व एकान्तयुक्त छोटे परिवार अधिक लाभदायक होते हैं। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी ये उपरोक्त परिस्थितियाँ ऐसे ही घटित हुई थीं।

उपरोक्त सभी अधिकारी मृदुल स्वभाव के व नरमदल के सदस्य होते हैं, जो देहदेश की विभिन्न कार्यप्रणालियों में अहम भूमिका निभाते हैं। परन्तु प्रवालमन गोत्र के अधिकारी, जो अधिकांशतः नरमदल-अधिकारियों के गृहदेशों से भी छोटे देशों में विद्यमान होते हैं , और यहाँ तक कि भयानक व पथरीले बीहड़ों में भी एकाकी जीवन बिताते हुए मिल जाते हैं, वे पत्थरों की तरह ही कठोर स्वभाव के होते हैं। उन सभी ने मिलकर, गरमदल नाम का एक कट्टर, यद्यपि मानवतापूर्ण दल बनाया होता है। इसीलिए वे देहदेश के लोगों को , विशेषतः उन गरमदल-सेवार्थियों को चयनित व आप्रवासित करने वाले दल को विशेष प्रिय नहीं होते। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय विमानस्थल पर, उन्हें उनको देश के अन्दर आने की अनुमति (permission) राजनैतिक-बाध्यातावश देनी ही पड़ती है, क्योंकि उनके बिना देश के लगभग सारे ही कार्य दुष्प्रभावित हो सकते हैं। वे कोई विशेष या बड़ा काम भी नहीं करते , अपितु अपनी कठोर, दृढ़ व लक्ष्यांकित (target oriented) विचारधारा से सत्त्वगुणसंपन्न देशवासियों का हौंसला बढ़ाते रहते हैं। वास्तव में , देहदेशनिवासी भी कई बार अपनी सहनसीमा (tolerable limit)/आवश्यकता से अधिक सत्त्वगुण व अद्वैत को धारण करने लग जाते हैं। उससे उनके कार्य दुष्प्रभावित होने लग जाते हैं। क्योंकि दृष्य-संसार त्रिगुणमयी है, अतः उससे सम्बंधित सभी कर्म-भाव भी त्रिगुणमयी ही हैं। इसलिए तीनों गुण संतुलित अवस्था में रहने चाहिए। अत्यधिक सत्त्वगुण के कारण, वे देशवासी ढीले व सुस्त पड़ जाते हैं। उससे उनके कार्य करने की गति भी बहुत धीमी हो जाती है। साथ में वे जोखिम वाले काम नहीं कर पाते। वे अधिकाँश समय मनमोहक व आनंदमयी विचारों में ही खोए रहने लगते हैं। उससे उनके शरीर की अधिकाँश शक्ति उनके विचारों को लगती रहती है, जिससे उनकी कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ कमजोर पड़ जाती हैं। वे विचारों के नशे के आदी जैसे हो जाते हैं, और विचाररिक्तता को ज़रा भी बर्दाश्त नहीं कर पाते। भावशून्य अन्धकार से डरते हुए, वे सदैव उससे दूर रहने का प्रयत्न करते हैं। वे रजोगुण (चुस्ती-फुर्ती व मेहनत वाला गुण) को भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उसके साथ तमोगुण (अन्धकार वाला गुण) भी विद्यमान रहता है। इन्हीं सभी कारणों से, वे जटिल काम भी ठीक ढंग से नहीं कर पाते। वे वैसे काम भी ठीक ढंग से नहीं कर पाते , जिनमें तेज व चुस्त दिमाग की आवश्यकता होती है। उस प्रकार के जटिल कामों में, नवदेशनिर्माण विभाग के काम मुख्य होते हैं। इसलिए उस विभाग में, अनेक प्रकार के प्रवालमन-अधिकारियों की आवश्यकता, बहुतायत में पड़ी ही रहती है। उस विभाग में नियुक्त होते ही , वे अधिकारी पूरे विभाग में एक नई जान फूँक देते हैं। उनके कार्यभार संभालते ही, उस विभाग के लोग आत्मविश्वास से भर जाते हैं। प्रवालमन अधिकारियों के रजोगुण व तद्‌सहचर तमोगुण से शक्ति प्राप्त करके, वे देशवासी अपनी शिथिलता को त्याग देते हैं, और एक नए जोश के साथ अपने-२ कामों में पुनः जुट जाते हैं। वे अधिकारी बीहड़ों में इसलिए बहुतायत से पाए जाते हैं, क्योंकि वे उन त्यागी-फकीरों की तरह होते हैं, जो अपने जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की ही चाह रखते हैं। यद्यपि वे दुर्वासा मुनि की तरह कठोर और विश्वामित्र की तरह काम व लगन के पक्के होते हैं। यद्यपि सुसंगठित छोटे देशों के अधिकारी अधिक उत्तरदायी , सुविधाजनक, मानवतापूर्ण, देव-स्वभाव, पुण्यात्मा व हानिरहित होते हैं। परन्तु बड़े व अधिक सामाजिक देशों में पाए जाने वाले अधिकारी तो सर्वाधिक सामाजिक/कर्मठ होने के कारण सर्वाधिक लाभकारी होते हैं। यद्यपि वे कई बार पापपूर्ण/अमानवतापूर्ण/राक्षस-स्वभाव/हानिकारक भी बन जाते हैं, विशेषतः यदि उनसे सेवा लेने वाले देश का राजा सतर्क , संतुलित, संयमपूर्ण, महामंत्री कुंडलदेव/गुरु से युक्त व तंत्रपूर्ण न रहे। छोटे देशों व बीहड़ों के प्रवालमन-अधिकारी तो आसानी से /न्याययुक्त ढंग से प्राप्त हो जाते हैं , परन्तु उन बड़े-सामाजिक देशों के वे उन्नत अधिकारी उन देशों के विरुद्ध षड्यंत्र करके ही हासिल किए जा सकते हैं , क्योंकि वे देश उन्हें आसानी से नहीं छोड़ते। कई लालची प्रकार के विकसित देश तो आपस में मिलकर, उन विकासशील-बड़े देशों को बंधक जैसा बना लेते हैं , और उन प्रवालमन-अधिकारियों के साथ-२ अन्य अधिकारियों व सुविधाओं को भी उनसे छीनते रहते हैं। यद्यपि वे विकसित देश उन गरीब -विकासशील देशों का समुचित ध्यान भी रखते हैं , ताकि वे लम्बे समय तक उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहें। कई अति लालची प्रकार के विकसित देश उनके ऊपर विशेष ध्यान नहीं देते , जिससे वे विकसित देशों की सेवा करते-२, शीघ्र ही विघटित हो जाते हैं। कई विकसितदेश तो लालच की सारी हदें ही पार कर जाते हैं, जब वे उन तकनीकी रूप से अक्षम बड़े देशों की सभी वस्तु-सेवाओं को एकदम से व एकसाथ ही प्राप्त करने के लिए , उनको जानबूझ कर तबाह कर देते हैं। फिर कुछ समय बाद, जब उन लुटेरे तकनीकसंपन्न-देशों के अपने संसाधन पुनः कम होने लगते हैं, तब वे फिर से कोई नया शिकार ढूँढने लग जाते हैं।

कुण्डलिनीयोग वास्तव में यौनयोग के अंतर्गत प्राप्त यौनशक्ति का नियामक (regulator) व नियंत्रक (controller) भी है। यह यौनशक्ति को बचाते हुए, उसे सही दिशा में, अर्थात कुण्डलिनी के पोषण में लगवाता है। वास्तव में आदमी जब विभिन्न कारणों से तनावग्रस्त व थका हुआ सा हो

जाता है, तभी उसका मन यौनसंबंधों की ओर भागता है, ताकि वह तुरंत ही शक्ति को प्राप्त कर सके। यद्यपि वह उस यौनशक्ति को उत्पन्न तो कर लेता है, परन्तु उसे खपा नहीं पाता, और शीघ्र ही स्राव के रूप में बर्बाद कर देता है। उससे, शक्ति प्राप्त होने की बजाय, उस आदमी को शरीर की कुछ पुरानी व संचित शक्ति से भी हाथ धोना पड़ता है। एक प्रकार से, वह सौ के चक्कर में पड़कर, एक को भी गँवा देता है। वास्तव में कुण्डलिनी ही वह चैतन्यमयी बैटरी (conscious battery) है, जो यौनशक्ति को अपने अन्दर भंडारित करके रख पाती है, और फिर धीरे-२ करके छोड़ती रहती है, जिससे आदमी कई प्रकार के उत्तम कर्मों को, यहाँ तक कि कुण्डलिनी-जागरण व आत्मज्ञान को भी सिद्ध कर लेता है। अपनी इसी शक्ति से तो कुण्डलिनी , साधक के आत्मसंयम को बढ़ाती है, जिससे यौनापराध से भी सुरक्षा हो जाती है। यौनयोग के समय, सर्वप्रथम यदि लगभग १ घंटे तक कुण्डलिनीयोग का किसी भी रूप में अभ्यास किया जाए, तभी कुण्डलिनी-समाधि में दृढ़ता उत्पन्न हो पाती है, जिससे वह दृढ़ संयमशक्ति प्राप्त होती है, जो यौनयोग को सफल बनाती है। इसका अर्थ यह है कि एक बैठक (single sitting) का साधारण कुण्डलिनी-योगाभ्यास न्यूनतम एक घंटे का तो होना ही चाहिए, तभी वह लाभकारी प्रभाव उत्पन्न कर पाता है। सुबह-शाम के नियमित कुण्डलिनीयोगाभ्यास से, दिवस-रात्रि (स्वप्न) में किए हुए सारे क्रियाकलाप व सोच-विचार स्वतः ही अद्वैतमयी बन जाते हैं। चेत् प्रारम्भे पूर्वोक्तं यबयुमासनबद्धकुण्डलिनीपरिभ्रमणं दीर्घकालपर्यन्तं कृतं तर्हि एव यौनयोगः संयमपूर्णः , शक्तिप्रदः, कुण्डलिनीपोषकः मानवतापूर्णः च। कुण्डलिनी यौनलोलुपतां अपि निवारयति। चेत् व्यवहारकालेषु यौनयोगसहचरेण सहचर्या वा उत्तमव्यवहारः, तदैव सः सा वा यौनयोगे सहायते। साधारणजीवनकाले अपि, चेत् कश्चिदपि उत्तेजनया लिङ्गं प्रसरितं भवति , तर्हि अपि व्यावहारिकोड्डीयानबंधः स्थापितव्यः (शरीरं/प्राणं ऊर्ध्वं प्रति आकृष्य), येन् लिङ्गिस्थता कुण्डलिनी मस्तिष्के विकसती भावितव्या। अनेन लिङ्गं पूर्वावस्थायाः स्वलघ्वाकारे सहसा पुनः निवर्तते। एतद् पुनः-२ कृत्वा, कुण्डलिनी मस्तिष्के अतीव पुष्टा जायते। एतदेव तन्त्ररहस्यं, एतदेव तन्त्ररहस्यं। अनेन एव प्रेमयोगी वज्रेण प्रथमदेवीरानीसंगकाले तद्भौतिकस्पर्शबिना एव केवलं यौनोत्तेजनया तद्रूपस्य समाधिस्थितिः लब्धा यथा पूर्वोक्तमपि।

एक बार लेखक ने देखा कि व्ययपुर नामक एक देहदेश में, किसान लोगों ने हड़ताल की हुई थी। वे अपना काम-धाम छोड़कर, शाँतिपूर्वक प्रदर्शन कर रहे थे। वे किसी को भी हानि नहीं पहुंचा रहे थे। वास्तव में उनके कुछ साथियों को , घुसपैठ करके आए हुए उग्रपंथियों ने बंधक बना लिया था। अतः वे देश की लाचार सुरक्षा व्यवस्था व राजा की लापरवाही के विरोध में , सड़क पर उतर आए थे। इस तरह से, विभिन्न फसलों का उत्पादन पूर्णतया ठप हो गया था। परिणामस्वरूप अन्नाभाव व संसाधनों के अभाव के कारण, देश के सभी नागरिक कमजोरी महसूस कर रहे थे। कुछ दिनों तक तो खाद्य एवं आपूर्ति मंत्रालय के निर्देश पर, भण्डारण-विभाग ने खाद्य-आपूर्ति को बना कर रखा, परन्तु फिर भण्डारगृह भी खाली होने की कगार पर पहुँच गए थे। देश की अर्थव्यवस्था को रखरखाव-दौर (maintenance mode) पर स्थापित कर दिया गया था, अर्थात देश के अत्यावश्यक व देश को विघटन से बचाने वाले कामों को ही अंजाम दिया जा रहा था। अन्य सभी उत्कृष्ट व विकासात्मक क्रियाकलापों को राजा ने बंद करवा दिया था, जिसमें उसके मंत्री भी उसको भरपूर सहयोग दे रहे थे। फिर राजा ने गंभीर स्थिति को भांपते हुए, अपनी मंत्री-परिषद् की आपातकालीन बैठक बुलवाई, और दैनिकोपयोग के लिए आवश्यक विभिन्न वस्तुओं, विशेषकर खाद्य पदार्थों को आयात करने का सर्वसम्मति से निर्णय लिया। परन्तु उसमें एक समस्या आड़े आ रही थी। वास्तव में किसानों ने अपनी-२ जमीनों से गुजरने वाले मुख्यतम राष्ट्रीय राजमार्ग को, स्थान-२ पर बंद करवा दिया था। कई स्थानों पर तो उग्रपंथियों ने राजमार्ग को नष्ट-भ्रष्ट भी कर दिया था। साथ में, कोई भी आपूर्तिकर्ता (transporter/supplier) अपनी गाड़ियों को, यहाँ तक कि पानी के टैंकरों को भी माल ढोने के लिए उपलब्ध नहीं करवा रहा था। उन्होंने पहले भी वैसी हालात में अपनी गाड़ियों को उपलब्ध करवाया था। परिणाम स्पष्ट था। राजमार्ग पर छिपे हुए उग्रपंथियों ने सारा सामान लूटकर, उनको ढोने वाली गाड़ियों को भी तहस-नहस कर दिया था। कई गाड़ियां तो वापिस भाग कर और कुछ अन्य गाड़ियां आगे की ओर भाग कर, बाहर निकलने में सफल हो गई थीं, परन्तु वे भी इतनी अधिक क्षतिग्रस्त हो गई थीं कि किसी भी काम के योग्य नहीं बची थीं। राजा को भी उस घटना को देखकर बहुत ठेस पहुंची थी , इसीलिए वह भी उन आपूर्तिकर्ताओं को बाध्य नहीं कर पा रहा था। फिर वैकल्पिक मार्ग बनाने का निर्णय लिया गया। परन्तु इतनी शीघ्रता से , वैकल्पिक मार्गों पर सुरक्षा के पुख्ता बंदोबस्त नहीं किए जा सकते थे। इसलिए उन मार्गों को यथासंभव छोटा बनाने का निर्णय लिया गया, ताकि बाहर के बीहड़ों में घूम रहे असामाजिक उग्रपंथियों की दृष्टि उन पर न पड़ती। सामान को भी अच्छी तरह से दबा-२ कर पैक (pack) कर दिया गया, और उसे छोटी-२ गाड़ियों में, ठूंस-२ कर भर दिया गया। वे गाड़ियां अत्याधुनिक प्रकार के, मिट्टी-पत्थर को काटने वाले यंत्रों (cutting machines) से सुसज्जित थीं, और बड़ी तेजी से सीमाभित्ति को काटकर अन्दर घुस जाती थीं। फिर वे वहाँ पर अपने सामान को जैक-प्रणाली (jack-system) से, बड़ी फुर्ती के साथ उड़ेल देती थीं। फिर वे देर किए बिना व मुड़े बिना ही, विपरीतक्रम यांत्रिक उपकरण (reverse gear) को चालू करके, सीधी पीछे हट जाती थीं। बाहर निकलते समय, वे उस मार्ग को बंद कर देती थीं। उसके लिए उनमें एक अत्याधुनिक प्रकार का, स्वचालित मुरम्मतकर्ता-यंत्र लगा होता था, जो स्वयं ही उस मार्ग को मिट्टी -पत्थर डालकर,

पूर्ववत बना देता था। उनमें एक कैमरा (camera) भी लगा होता था, जो उन गाड़ियों के अन्दर जाते समय, मार्ग बनाने से पूर्व का, उस क्षेत्र का चित्र खींच लेता था, और उसे उपरोक्त स्वचालित मुरम्मतकर्ता-यंत्र को प्रेषित कर देता था। वह यंत्र उस चित्र के अनुसार ही, उस मार्ग-क्षेत्र की जमीन को, हूबहू पहले की तरह ही भर देता था, यहाँ तक कि पेड़-पौधे व घास-फूस भी पहले की तरह ही लगा देता था। वह यंत्र उसके लिए एक एक छोटे से समय-यंत्र (time machine kit) की सहायता लेता था, जो उसके एक कोने में ही लगा (fit) होता था। वास्तव में समय-यंत्र का उपयोग व्ययपुर देश में होता ही रहता है। उसी यंत्र के कारण ही तो वहाँ के निवासी सदैव नौजवान बने रहते हैं, और कभी मरते ही नहीं। मरने से पहले ही, समय-यंत्र की सहायता से वे अपना एक दूसरा, नवयुवक के शरीर वाला असली रूप बना लेते हैं। जो उनका बूढ़ा, बिमारियों से घिरा हुआ या युद्धादि के बीच में मृत्यु से जूझ रहा शरीर होता है, वह नकली होता है, और एक यंत्रमानव (robot) से अधिक कुछ नहीं होता। उस समय-यंत्र से ही वे प्रत्येक समय में व प्रत्येक स्थान पर एकसाथ विद्यमान रह सकते हैं। कुछ समय के बाद, उस बार-२ खुल रहे व बंद हो रहे मार्ग से, वस्तु-सेवा की आपूर्ति को कुछ समय के लिए बंद करवा दिया जाता है। क्योंकि पूरा देश उस समय न्यूनतम अर्थव्यवस्था /आवश्यकता पर चल रहा होता है, इसलिए वह माल कुछ समय के लिए पर्याप्त हो जाता है। फिर माल के ख़त्म होने पर या अगली वैसी मुसीबत के समय , किसी दूसरे स्थान को मार्ग-निर्माण के लिए चुना जाता है; क्योंकि एक ही मार्ग-स्थान निस्संदेह बारम्बार की खुदाई के बाद भी पूर्ववत बन जाता हो, फिर भी उससे, उस मार्ग-स्थान की कुछ न कुछ घिसाई-पिटाई तो होती ही रहती है। यद्यपि कुछ समय के बाद , कई बार फिर से उसी मार्ग-स्थान को चुन लिया जाता है, क्योंकि तब तक वह स्थान वातावरणीय आघातों से सुदृढ़ हो चुका होता है। यंत्रोपकरणसज्जित वे यांत्रिक गाड़ियां, सामान को सीमाभित्ति से कुछ दूरी पर स्थित एक संग्रहण-स्थान (collection center) तक, अन्दर ले जाती रहती हैं; जिससे वहाँ पर परिष्कृत, डिब्बाबंद व अत्युन्नत वस्तुओं का ढेर सा लग जाता है। वहाँ से, छोटी-२ गाड़ियां उन वस्तुओं को पूरे देशभर में, आवश्यकतानुसार पहुंचाती रहती हैं, जिससे शीघ्र ही सारा ढेर वहाँ से गायब हो जाता है। परन्तु कई देशों के सीमान्त क्षेत्र बहुत ही कच्चे व कमजोर होते हैं। वहाँ के मिट्टी-पत्थर, वहाँ की ऋतुएँ आदि भौगोलिक व जलवायुगत कारक ही कुछ वैसी प्रकृति के होते हैं, जिनसे वहाँ की भूमि में कोई विशेष मजबूती नहीं होती। इसलिए वहाँ पर उपरोक्त प्रकार से , अस्थायी मार्गों को बारम्बार बनाया व मिटाया नहीं जा सकता, क्योंकि वैसा करने से वहाँ पर भूस्खलन का खतरा बढ़ जाता है , जिससे जन-धन की हानि होने की संभावना बराबर बनी रहती है। अतः वहाँ पर, आपूर्तिकर्ता पड़ौसी देश से लेकर प्रभावित देश तक कठोर धातु से बनी हुई एक मजबूत सुरंग बनानी पड़ती है, जिसमें कोई अन्य छिद्र, दरार आदि न हों। उससे उग्रपंथियों के व उनके द्वारा भेजे गए सूक्ष्म लड़ाका -यंत्रों (fighter robots, ied) के, अन्दर प्रवेश करने का भय नहीं रहता। वह सुरंग लम्बे समय तक, तब तक बना कर रखी जाती है, जब तक कि प्रभावित देश की स्थिति सामान्य नहीं हो जाती। फिर उस सुरंग को तोड़ दिया जाता है, और सीमाभित्ति के प्रवेशद्वार को पूर्ववत बंद कर दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर, पुनः किसी आसपास के वैसे स्थान पर वैसी ही सुरंग बना दी जाती है, जहाँ से होकर वस्तुओं से भरी हुई गाड़ियों की आवाजाही सुगम हो। उस सुरंग में गाड़ियां निरंतर दौड़ती रहती हैं। प्रभावित देश, वस्तुओं के साथ उन गाड़ियों को भी खरीद लेता है, क्योंकि उससे समय की भी बचत होती है, और सुरंग का तंग मार्ग भी, वापिस आती हुई खाली गाड़ियों से बाधित नहीं होता। उससे गाड़ियों के सामान को सीमा पर बारम्बार उतारने-चढ़ाने में बर्बाद होने वाली ऊर्जा की भी बचत हो जाती है। वह सुरंग सीधी ही, प्रभावित देश के किसी एक, भीतरी, यथोपयुक्त व सुरक्षित राजमार्ग के साथ जुड़ी होती है। अन्दर प्रविष्ट होने वाली गाड़ियां, बिना रुके ही, पूरे देश में सामान को आवश्यकतानुसार गिराती रहती हैं, क्योंकि उस देश के सभी राजमार्ग आपस में जुड़ कर, एक जाल जैसा बुनते हैं। उस सड़क-जाल में, किसी भी एक स्थान पर प्रविष्ट होकर, कोई भी, पूरे देश की सैर, बिना रुके व बिना किसी रुकावट के कर सकता है। वह सुरंग तब भी बनाई जाती है, जब देश के लिए किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु की आवश्यकता, अत्यंत त्वरित रूप से व बिना किसी व्यवधान के पूरी की जानी हो; क्योंकि उपरोक्त संग्रहण-स्थान के माध्यम से की जाने वाली आपूर्ति में, सामान को स्थान-२ पर चढ़ाने-उतारने से, बहुत सा बहुमूल्य समय नष्ट हो जाता है। वह सुरंग अंदरूनी राजमार्ग से इसलिए भी सीधी जुड़ी होती है , क्योंकि उस पर ढोए जाने वाले मालों , जैसे कि विभिन्न वस्तुओं/सेवाओं/व्यक्तियों की गहन व बारीकी से जांच की जाती है, और क्लीन चिट (clean chit) मिलने पर ही उन्हें अन्दर भेजा जाता है। साथ में, उस सुरंग के अन्दर कोई भी, घुसपैठ नहीं कर सकता, जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा को कोई खतरा पैदा नहीं होता। परन्तु जहाँ पर उपरोक्त गहन जांच को सम्पूर्णता से कर पाना संभव नहीं हो पाता, जिससे घुसपैठियों/घातक पदार्थों का अधिक खतरा हो, वहाँ पर तो पूर्वोक्तानुसार ही, वस्तुओं को अंदरूनी राजमार्ग से दूर, सीमाक्षेत्र के भण्डारण-स्थान पर ही गिरा दिया जाता है। उससे, विभिन्न वस्तु-सेवाओं के साथ अन्दर घुसे हुए घुसपैठिए, सीधे ही राजमार्ग के अन्दर प्रविष्ट नहीं हो पाते, अपितु इधर-उधर भटकते हुए, लालचवश पुनः उन वस्तुओं के ढेरों तक पहुँच जाते हैं, जहाँ पर वे सुरक्षाबलों के द्वारा मार गिरा दिए जाते हैं। फिर सामान की, सूक्ष्म यांत्रिक लड़ाकों व आई.ई.डी. को ढूँढने के लिए, गहन यांत्रिक जांच की जाती है, यहाँ तक कि

सूंघने वाले श्वानों की भी सहायता ली जाती है। जब सामान पूर्णतः सुरक्षित घोषित कर दिया जाता है , तब उसे छोटी-२ गाड़ियां, छोटे-२ मार्गों से होते हुए, राजमार्ग तक ले जाती हैं, जहाँ से उसे बड़ी गाड़ियां आगे ले जाती हैं। यदि शत्रु संख्या में अधिक हों, तो कई बार वे भारी भी पड़ जाते हैं, और क्षेत्रीय मुठभेड़ों को न्यौता दे देते हैं। कई बहुत विरले मामलों में तो पूरे देश में ही उच्च सतर्कता की स्थिति घोषित कर दी जाती है। क्षेत्रीय आपूर्ति का दूसरा नुकसान यह होता है कि यदि वस्तुओं की मात्रा बहुत अधिक हो, तो छोटी गाड़ियों से वे शीघ्रता से ढोई नहीं जा पातीं, जिससे वे लम्बे समय तक वहीँ पर, ढेरों के रूप में सड़ती-गलती रहती हैं। परन्तु कई बार वैसी वस्तुएँ भी भेजनी पड़ती हैं, जिनके लिए देश कुछ लम्बे समय तक भी प्रतीक्षा कर सकता है। वे वस्तुएँ लम्बे समय तक, थोड़ा-२ करके चाहिए होती हैं। उन वस्तुओं के लिए देश में कोई उपयुक्त भंडारण व्यवस्था भी नहीं होती। उससे, यदि आवश्यकता से अधिक मात्रा में वे वस्तुएँ देश में पहुंचती हैं , तो उन्हें नष्ट करना पड़ता है, और नदी में बहाना पड़ता है, जिससे बहुमूल्य ऊर्जा का दुरुपयोग होता है। उससे बचने के लिए, उन वस्तुओं को देहदेश के अन्दर, सीमा से अधिक दूर तक नहीं ले जाया जाता , अपितु उन्हें सीमाभित्ति की अंदरूनी सतह के साथ टिका कर, छोटे-२ ढेरों के रूप में रखा जाता है। उनके ऊपर अस्थायी तरपाल (terpaline) आदि डालकर, उनको वर्षा, धूप आदि रूपों के पर्यावरणीय विघ्नों से सुरक्षित रखा जाता है। वैसे तो वे वस्तुएँ शीघ्रता से व आसानी से ख़राब भी नहीं होतीं। उस सीमाभित्ति तक देश के आतंरिक भागों से गाड़ियां पहुँचने में बहुत अधिक समय लग जाता है। फिर उनको वहाँ से आवश्यकतानुसार , धीरे-२ ढोया जाता रहता है। इस तरह से, लम्बे समय तक उन वस्तुओं से सम्बंधित देश का गुजारा, एक ही बार की विदेशी आपूर्ति से चल पड़ता है।

ज्योतिष-शास्त्र, वास्तु-शास्त्र आदि-२, जो विभिन्न आध्यात्मिक आचार-विचारों से सम्बंधित शास्त्र व श्लोकादि बने हैं, वे सभी मुख्यतः आसक्ति का नाश करने के लिए ही तो बने हैं, इसलिए शविद के अनुरूप ही हैं। उनकी सहायता से, कोई भी मनमर्जी नहीं चला पाता, जिससे आसक्ति से बचाव स्वतः ही होता रहता है। वास्तव में आसक्ति अधिकाँशतः मनमर्जी के कामों में ही होती है। परन्तु उपरोक्त शास्त्रों से एकमात्र हानि होने की संभावना यही होती है कि ठीक ढंग से समझे बिना ही उनको अपनाने से , कार्य करने की गति बहुत धीमी भी हो सकती है , जिससे त्वरित व सम्पूर्ण विकास बाधित भी हो सकता है। शविद से ऐसा नहीं होता, क्योंकि इसमें समस्यानुसार व आवश्यकतानुसार, मानवता के साथ व मानवता के हित में, कोई भी आचरण, किसी भी प्रकार से किया जा सकता है। शविद सहित उपरोक्त शास्त्रों की सहायता से उत्पन्न अनासक्ति से अद्वैत स्वयं ही उत्पन्न हो जाता है , क्योंकि प्रकाशमान संसार के प्रति किसी की अनासक्ति का सीधा सा अर्थ यही है कि वह अपनी विचारशून्य व स्वाभाविक आत्मा को भी किसी से कम नहीं समझता, अर्थात उसके लिए भाव-अभाव, सभी कुछ बराबर है।

उपरोक्त राजमार्गों से सम्बंधित प्रकरण में , कई लोगों को यह शंका हो सकती है कि जिस सबसे मुख्य /मुख्यतम राजमार्ग को उग्रपंथियों व प्रदर्शनकारी किसानों ने बाधित कर दिया था, वह कौन सा मार्ग था। वास्तव में वही, मुख्यतम, विशालतम व एकमात्र राजमार्ग होता है, जो देश को बाहरी दुनिया से, प्रत्यक्ष तौर पर जोड़ कर रखता है। वह पूरे देश के बीचोंबीच, उत्तर से दक्षिण की ओर गुजरता है। यद्यपि उत्तर के पहाड़ी क्षेत्र, जिनमें सुमेरु पर्वत भी एक होता है, उस राजमार्ग से अछूते रह जाते हैं। यद्यपि उन क्षेत्रों के लिए , विशेषकर सुमेरूपर्वत के लिए, विशेष प्रकार के स्वर्णिम, सर्वसुविधासंपन्न, सुरक्षित व व्यवधानरहित अंदरूनी राजमार्ग बनाए गए होते हैं, जो देश के मध्य में स्थित निरीक्षण-चौकी-प्रक्षेत्र (checkpost area) में, मुख्यतम राजमार्ग से जुड़े होते हैं। वास्तव में तो देश के सभी अंदरूनी राजमार्ग उसी स्थान पर , किसी न किसी शाखा के माध्यम से जुड़े होते हैं। पहले तो उन चौकियों से बहुत से, गति-अवरोधक (speed breaker) वाले छोटे-२ मार्ग देश के अन्दर की ओर निकलते हैं, ताकि बाहर से प्रविष्ट कोई भी उग्रपंथी उन पर तेज रफ़्तार से गाड़ी चलाते हुए भाग न पाए। फिर वे छोटे-२ मार्ग, आगे से आगे, आपस में मिलते हुए व वे फिर अन्य राजमार्गों से मिलते हुए, एक चौड़ा मुख्य राजमार्ग बना लेते हैं; जो फिर यातायात-मुख्यालय में प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ पर मुख्यतम राजमार्ग से लाए हुए कुछ सामान को उल्टा दिया जाता है, और गाड़ियों में तेल आदि भरा जा कर, साथ में उनकी यथावश्यक ठोक-मुरम्मत की जाती है। साथ में, गाड़ियां वहाँ पर, उसके बदले में नए सामान को भरकर, सुमेरु पर्वत की ओर निकल पड़ती हैं। ऊपर की ओर जाता हुआ चौड़ा मुख्यमार्ग, धीरे-२ करके, क्षेत्रीय मार्गों में विभक्त होता जाता है, जिससे वह अधिक से अधिक संकरा होता जाता है, फिर भी सुमेरु पर्वत की ओर जाने वाला मार्ग काफी चौड़ा व विशिष्ट होता है, क्योंकि वहाँ पर राष्ट्रीय राजधानी स्थित होती है। बीच में निकले हुए वे क्षेत्रीय मार्ग आसपास के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी सेवाएं उपलब्ध करवाते हैं। दूसरी ओर, पूर्वोक्त व बाधित मुख्यतम राजमार्ग सदैव विश्व के लिए खुला रहता है , यद्यपि उसके दोनों, आदि-अंत के किनारों पर पक्के व स्वर्णिम राजद्वार लगे होते हैं, जो आवश्यकतानुसार खोले व बंद किए जाते रहते हैं। उस पूरे राजमार्ग पर, देश की बेहतरीन सुरक्षा व्यवस्था का पहरा लगा रहता है। पूर्वोक्तानुसार वह भी देश के भीतरी राजमार्गों के जाल के साथ जुड़ा हुआ होता है , यद्यपि सीधे तौर पर नहीं। उसके व भीतरी राजमार्गों के बीच में बहुत सी निरीक्षण -चौकियां (checkposts) होती हैं। इस कारण से, उग्रपंथियों का उनसे बचकर निकलना व उनका भीतरी

मार्गों में प्रविष्ट होना, लगभग असंभव सा ही होता है। यदि कभी वातावरणीय विघ्नों से या अत्यंत कुटिल शत्रुओं की चालबाजियों से , वे चौकियां क्षतिग्रस्त हो जाएं, तो कुछ शत्रु अन्दर प्रविष्ट भी हो सकते हैं, यद्यपि शीघ्र ही पकड़ भी लिए जाते हैं। विरले मामलों में ही, वे गंभीर स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं, क्योंकि शीघ्र ही वे क्षतिग्रस्त चौकियां दुरस्त (repair) कर दी जाती हैं। कई बार, यदि युद्धादि के या वातावरणीय प्रकार के गहरे आघातों से, मुख्यतम राजमार्ग के दोनों ओर की, उसकी चौड़ाई को निर्धारित करने वाली सीमा-दीवारों को अपेक्षाकृत रूप से अधिक क्षति पहुँच जाए, तभी देहदेश के ऊपर भयंकर संकट उत्पन्न होता है, क्योंकि फिर राजमार्ग पर घात लगा कर शिकार ढूँढते हुए असंख्य व विभिन्न प्रकार के घुसपैठियों के साथ ढोई जा रही विभिन्न जहरीली रासायनिक वस्तुएँ, एकदम से देश के अन्दर घुस कर जम के तबाही मचा देती हैं। फिर देहदेश के भोले-भाले वाहन चालकों के द्वारा, वे घुसपैठिए उन जहरीली वस्तुओं के साथ पूरे देश में शीघ्रता से फैला दिए जाते हैं। वैसी स्थिति में , पूर्वोक्तानुसार तीव्र कार्यवाही करते हुए, उन शत्रुओं को घातक व आधुनिक अस्त्रों से नष्ट करना पड़ता है, और जहरीली वस्तुओं को तेजी से बाहर निकलवाना पड़ता है, ताकि जनता की सेहत पर कम से कम दुष्प्रभाव पड़े। इसके लिए, पूरे देश में शुद्ध जल की आपूर्ति एकदम से बढ़वा दी जाती है, और लोगों को अधिक से अधिक जल पीने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि वह विष जल में घुल कर, उनके शरीर से निकल कर, विभिन्न नालों-नदियों से होता हुआ, देश के बाहर स्थित महासागर में पहुँच कर नष्ट हो जाए। मुख्यतम राजमार्ग (मध्यमार्ग) पर स्थित प्रवेशद्वार के निकट ही, उस पूर्वोक्त वात-गुहा (stormy-cave) का द्वार भी खुलता है, जिसमें बहने वाली वह दक्खनी (दक्षिण दिशा की ओर बहने वाली), सुगन्धित व अमृतमयी हवा, पूरे देश को तरोताजा व संजीदा कर देती है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से लदी हुईं विभिन्न प्रकार की गाड़ियां , उस मुख्यतम राजमार्ग के उत्तरी मुख्यद्वार से दक्षिणी मुख्यद्वार की ओर पलायन करती रहती हैं। आगे बढ़ते हुए, वे अपना सारा आयातित सामान, देश के विभिन्न क्षेत्रों के उद्योगपतियों व किसानों के , उस राजमार्ग पर प्रतीक्षा कर रहे प्रतिनिधियों के बीच में , आवश्यकतानुसार बाँटते हुए, उस राजमार्ग के दक्षिणी छोर पर पूर्णतया खाली होकर , वहाँ पर स्थित निकासीद्वार (exit door) से बाहर निकल जाती हैं। उन गाड़ियों का गमन इकलौते-उपमार्ग (single lane) में, एक ही दिशा में होता रहता है, अर्थात वे गाड़ियां वापिस नहीं मुड़तीं, और न ही दक्षिणी मुख्यद्वार से किसी भी गाड़ी को अन्दर प्रविष्ट होने दिया जाता है। उससे, गाड़ियों की यात्रा में, उनकी गति में व उनसे सामान की चढ़ाई-उतराई (loading-unloading) में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता।

प्रेमयोगी वज्र को कुण्डलिनीजागरण से सर्वाधिक व त्वरित लाभ यह हुआ कि उसका पीछा प्रथम देवीरानी के रूप की मानसिक कुण्डलिनी से छूट गया, क्योंकि उसके स्थान पर तब, उसके गुरु के रूप की कुण्डलिनी प्रतिष्ठित होने लग गई थी। वैसे यह जागरण के बहुत पहले से ही होना प्रारम्भ हो गया था, जागरण के बाद तो उसमें एकाएक वृद्धि, उसके प्रति विश्वास में वृद्धि व उस सम्बन्ध में आत्मसंतुष्टि ही अनुभव की गई। उसकी नई कुण्डलिनी (वृद्धाध्यात्मिकपुरुष) का जागरण तभी हुआ, जब उसकी पुरानी कुण्डलिनी (प्रथम देवीरानी), समय के थपेड़ों के साथ-२, बहुत क्षीण हो गई थी। इसका अर्थ यह है कि कुण्डलिनीजागरण एक सतत व धीरे-२ संचित होने वाली (cumulative) प्रक्रिया है, एकदम से (instant) या अचानक से होने वाली प्रक्रिया (on-off system) नहीं है। पूर्व में तो प्रेमयोगी वज्र को ऐसा लगता था कि यह स्त्री-स्वभाव ही है, जिससे वह अपने प्रेमी से बहुत प्रेम व उसकी बहुत सेवा करती है, तभी देवीरानी का मानसिकचित्र उसका हर प्रकार से भला कर रहा था। वह यह बात नहीं समझ पा रहा था कि ऐसा करना किसी भी कुण्डलिनी का स्वभाव है, केवल स्त्रीविशेष-सम्बंधित कुण्डलिनी का ही नहीं। यद्यपि यह बात अलग है कि पुरुष-स्त्री के बीच में स्वाभाविक यौनाकर्षण के कारण, स्त्री के भौतिकरूप की मानसिक कुण्डलिनी , पुरुष के मन में बहुत बलवान होती है। वह सोचता था कि जब किसी का मानसिकचित्र, उसका उतना अधिक भला कर रहा था, तब तो उसका वास्तविक भौतिकरूप और भी अधिक भला करता। इसीलिए वह देवीरानी के भौतिकरूप के प्रति भी बीच-२ में ललायित हो जाता था। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। ऐसा सर्वोच्चकोटि का भला केवल कुण्डलिनी ही कर सकती है, कोई भौतिकरूप नहीं। इसी सिद्धान्त से अनभिज्ञ होने के कारण , वह अपनी द्वितीय देवीरानी के भौतिकरूप की तरफ से , अपनी प्रथम देवीरानी की कुण्डलिनी से भी अधिक सहयोग की अपेक्षा रखने लगा था , और वैसा न होने पर बार-२ क्रोधित भी हो जाया करता था। बाद में, जब द्वितीय देवीरानी के भौतिकरूप ने अप्रत्यक्षरूप से उसकी गुरु-कुण्डलिनी के जागृत होने में सहयोग किया, तब जाकर सारी बात उसकी समझ में आई। फिर उसने देखा कि उसकी गुरु-कुण्डलिनी तो उसकी पूर्व की देवीरानी-कुण्डलिनी से भी अधिक, उसका भला कर रही थी, क्योंकि वह गुरु-कुण्डलिनी, देवीरानी-कुण्डलिनी की तरह उत्तेजना भी उत्पन्न नहीं कर रही थी , तथा उसकी तरह असामाजिक भी नहीं थी। वास्तव में स्त्री के भौतिकरूप को इसीलिए महत्ता देते हुए, उसे प्रेम, हितैषिता, सद्प्रेरणा आदि प्रदान करने वाली देवी के रूप में मानकर, उसे मानसिक कुण्डलिनी की समकक्षता दी गई है, क्योंकि उसका वास्तविक भौतिक स्वभाव भी कुण्डलिनी से मिलता जुलता ही है, और कुण्डलिनी-जागरण में सर्वाधिक सहयोग भी करता है।

वास्तव में उपरोक्त मुख्य राजमार्ग, जो अपने दक्षिणी भाग के किसान-क्षेत्रों में, मुख्यतम राजमार्ग या मध्यमार्ग से जुड़ा होता है, वह परिष्करण-मार्ग के नाम से भी प्रसिद्ध होता है, क्योंकि सर्वप्रथम वह देश के पूर्वोक्त विशालतम परिष्करण एवं भंडारण उद्योग से होकर ही गुजरता है। उस उद्योग में सभी कच्चे उत्पाद, परिष्कृत व डिब्बाबंद कर दिए जाते हैं, और आवश्यकता से अधिक परिष्कृत उत्पादों को भंडारित कर दिया जाता है। फिर वह परिष्करण-मार्ग आगे जाकर मुख्य आतंरिक राजमार्ग (मुख्य वनकमार्ग) के मध्य भाग के आसपास जुड़ जाता है। उसी राजमार्ग से होते हुए, परिष्कृत व डिब्बाबंद वस्तुएँ, अंतर्मिश्रित सड़क-जालों (interconnected road-networks) से ढोई जाती हुई, पूरे देश में उपभोग के लिए पहुंचा दी जाती हैं। मध्यमार्ग के उपरोक्त मध्य-दक्षिणी भाग के किनारों पर, किसानों के बड़े-२ खेत-खलिहान होते हैं। वहाँ के किसान, उस मध्य-मार्ग से, विदेशों से आयातित की गई वस्तुओं को उठवाते हैं, और उनसे विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन करते हैं। फिर वे अपने उत्पादों के साथ उसी मध्यमार्ग के, मध्य भाग से थोड़ा सा दक्षिण की ओर के किनारों पर स्थित मंडियों में पहुँच जाते हैं। वहाँ पर वे अपने उत्पादों का मूल्य लेकर, वापिस अपने घर चले जाते हैं। उन व्यापारिक मंडियों के दुकानदार उन कृषि-उत्पादों को, विभिन्न आढ़तियों को, अधिकतम बोली पर बेच देते हैं। फिर वे आढ़ती उन उत्पादों को, सुरक्षा-चौकियों के दूसरी ओर, अंदरूनी भाग में प्रतीक्षा कर रहे परिवाहकों (transporters) को बेच देते हैं। अपने उत्पादों का सौदा वे आढ़ती दूरभाष यंत्र से या ऑनलाईन वीडियोग्राफी (online videography) से, वहीं से, मंडियों में बैठकर ही कर लेते हैं। परिवाहक लोग भी, अत्याधुनिक दूरबीनों से उन उत्पादों की गुणवत्ता को वहीँ से, अंदरूनी भाग से ही देख-परख लेते हैं। फिर उत्पादों से संतुष्ट होने पर, वे परिवाहक, सुरक्षा-चौकियों को लांघकर, मंडियों से उनको अपनी-२ गाड़ियों में उठाते हैं, और वापसी के दौरान उन चौकियों में अपनी व अपनी गाड़ियों की गहन सुरक्षा-जांच करवाने के बाद ही, परिष्करण-मार्ग से होते हुए, वापिस अन्दर प्रविष्ट हो पाते हैं। उन मंडियों तक तो वे अंतर्मिश्रित निर्यातक/उपभोगपरक/स्वच्छतापूर्ण सड़क-जाल (निम्नोक्त अरहटमार्ग) से पहुंचे होते हैं, परन्तु वापसी वे परिष्करण-मार्ग से ही करते हैं, यद्यपि वह मार्ग भी परिष्करण-उद्योग के बाद, अंतर्मिश्रित आयातक/भंडारणपरक/अस्वच्छतायुक्त सड़क-जाल (निम्नोक्त मुख्य वनकमार्ग) से ही जुड़ जाता है। निर्दिष्ट स्थानों पर सभी सड़कें, इधर-उधर के क्षेत्रों/कार्यालयों को बार-२ विभक्त होने से, बहुत संकरी रह जाती हैं, जिससे उपरोक्त व अन्य विभिन्न प्रकार के लोगों को सड़क से बाहर निकलकर, अपने-२ कार्यस्थानों पर पहुँचने में आसानी हो जाती है। इसी तरह, उनको अपने-२ कार्यस्थलों से, अत्यंत संकरे परिष्करण-मार्गों के अन्दर घुसना पड़ता है, जहाँ से आगे जाते हुए, उसमें आसपास के क्षेत्रों के संकरे परिष्करण-मार्ग भी जुड़ते रहते हैं, जिससे मुख्य परिष्करण-मार्ग चौड़े से चौड़ा होता चला जाता है, और कुछ दूरी के बाद, लगभग छोटे राजमार्ग के जितना चौड़ा हो जाता है, जो सीधा ही परिष्करण-उद्योग के परिसर में प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ पर गाड़ियों से सामान उतारने के लिए, बहुत से श्रमभोगी लदानिए काम में जुटे होते हैं। पहले तो विभिन्न वस्तुओं को भिन्न-२ आकार-प्रकार के अनुसार, भिन्न-२ समूहों में, अल्पकाल के लिए अस्थायी रूप से भंडारित किया जाता है। फिर जब उद्योग के अन्दर से कच्चे माल (raw material) की मांग पहुंचती है, तब उस अस्थायीभंडारगृह में नियुक्त लिपिक (clerks), बहीखातों में माल का इन्द्राज करके, निर्दिष्ट माल को अन्दर भेजते हैं। ऐसी ही प्रक्रिया तैयार माल (finished product) के मामले में भी अपनाई जाती है। तैयार माल को भी भिन्न प्रकार के भण्डारगृहों में अस्थायी तौर पर भंडारित कर दिया जाता है। जब देश के खाद्य एवं आपूर्ति मंत्रालय से किसी भी वस्तु के लिए मांग उपलब्ध होती है, तो वह निर्दिष्ट वस्तु, यथावश्यक मात्रा में भण्डारगृह से निकाली जाकर, गाड़ी में भर दी जाती है, और फिर वह भारपूर्ण गाड़ी (loaded cargo vehicle), उपरोक्त सड़क-जाल (वनकमार्ग) की दिशा में भेज दी जाती है। इस तरह से, वहाँ पर विभिन्न प्रकार की असंख्य औद्योगिक प्रक्रियाएं प्रतिक्षण चलती रहती हैं।

अद्वैत से कर्म की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। अद्वैत से व्यर्थ की चित्तवृत्तियों पर स्वतः ही लगाम लगती है। अतः इससे जिस मानसिक शक्ति की बचत होती है, वह कर्म की गुणवत्ता को बढ़ाने में स्वतः ही उपयुक्त होती रहती है। साथ में, कुण्डलिनी भी पुष्ट होती रहती है। यह तो वैसे ही हुआ जैसे, “एक पंथ दो काज”।

पूर्वोक्त मुख्यान्तरिक राजमार्ग को भी दो हिस्सों में, काल्पनिक रूप से बांटा गया है। वास्तव में तो सभी आतंरिक मार्ग आपस में जुड़े होते हैं। एक उसकी दक्षिणी शाखा होती है, और एक उत्तरी। पूर्व व पश्चिम को भी एक-२ राजमार्ग जाता है, यद्यपि वे अपेक्षाकृत बहुत छोटे होते हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि देश के उत्तरी छोर से लेकर देश के दक्षिणी छोर तक का क्षेत्रफल पूर्व-पश्चिम में फैले क्षेत्रफल से बहुत अधिक होता है। सभी राजमार्ग अपनी-२ दिशाओं से सम्बंधित क्षेत्रों की सेवा में लगे रहते हैं। दोनों ही मुख्यान्तरिक राजमार्ग भी दो -२ भागों में विभक्त हुए होते हैं। एक भाग में गाड़ियों का आना होता है, और दूसरे भाग में जाना। इसका सीधा सा अर्थ है कि वे राजमार्ग एकराही (one way) होते हैं। वास्तव में पूरे देश की सभी सड़कें एकराही (one way) ही होती हैं। जो मुख्यान्तरिक राजमार्ग, जाने के लिए निर्धारित होता है, उसे उत्तरी व दक्षिणी, मुख्य अरहटमार्ग कहते हैं।

उस मार्ग में विभिन्न उत्पादों से भरी हुई गाड़ियां दौड़ती रहती हैं। उन उत्पादों में मुख्य होते हैं ; परिष्कृत भोजन-पानी, वस्त्रादि, निर्माण-सामग्रियां, पाचक वात (cooking gas) से भरे हुए बेलनाकार संदूक (cylinders) आदि-२। इस तरह से, ये और अन्य भी विभिन्न प्रकार के असंख्य उत्पाद, उस मार्ग से ढोए जाते रहते हैं, जो पूरे देश के लोगों में बांटे जाते रहते हैं, और अतिरिक्त/लोगों द्वारा न उठाई गई आपूर्ति को वनक-मार्गों से भेजा जाकर, भंडारण के लिए वापिस लौटाया जाता रहता है। विभिन्न निरीक्षक -दल, वनक-मार्ग में उपस्थित अतिरिक्त वस्तुओं का पता लगा लेते हैं , और उन्हें भंडारित करवा देते हैं। दूसरा मुख्यान्तरिक राजमार्ग, जो मुख्य वनकमार्ग के नाम से भी विख्यात है, वह पूरे देश से वापिस आने वाली गाड़ियों के लिए बना होता है। उस मार्ग से , औद्योगिक क्षेत्रों के औद्योगिक उत्पाद भी लाए जाते रहते हैं , और भण्डारणोपरांत, आवश्यकतानुसार अरहटमार्ग तक पहुंचाए जाते रहते हैं, उदाहरण के लिए पूर्वोक्त मुख्य परिष्करण-मार्ग। वह परिष्करण-मार्ग यद्यपि अलग सा दिखता है, परन्तु वह भी वनक-मार्गजाल का ही एक हिस्सा होता है। वनक-मार्ग से पूरे देश का व्यर्थ का कूड़ा-कचरा, अपशिष्ट पदार्थ व नागरिकों के घरों की नालियों का गंदा जल भी ढोया जाता रहता है। वे अपशिष्ट पदार्थ फिर पूर्वोक्त व विशालतम जलशोधन संयंत्र में शोधित कर लिए जाते हैं। उनके विषैले तत्त्व छान लिए जाते हैं , और निकट में ही स्थित व सीधी समुद्र को जाने वाली गन्दी नदी में बहा दिए जाते हैं। सफाई के बाद शेष बचे हुए आवश्यक पदार्थ , पुनः उन वनमार्ग-जालों में दौड़ रही गाड़ियों में भर दिए जाते हैं। वे स्वच्छ पदार्थ फिर इसी तरह से , उत्तरोत्तर रूप से प्रयोग में लाए जाते रहते हैं, जब तक कि पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाते। वनकमार्गों में पाचकवायु (cooking gas) के खाली संदूकों (empty cylinders) से भरी हुई गाड़ियां भी दौड़ती रहती हैं। एक अन्य प्रकार का आतंरिक सड़क-जाल भी देहदेश में विद्यमान होता है, जिसे लीलावत-मार्ग भी कहते हैं। वह वास्तव में वनकजाल का ही सहायक होता है। कई बार देश के सुदूर, सीमान्त व पिछड़े हुए क्षेत्रों से, भारी वस्तुओं को वनकमार्ग तक, पीठ पर ढोकर नहीं पहुँचाया जा सकता। अतः देश के प्रत्येक घर तक, लीलावत सड़कें भी बिछाई गई होती हैं। वे सड़कें कच्ची व संकरी होती हैं , अतः उनके ऊपर गाड़ियों की गति बहुत धीमी होती है। उनके ऊपर दौड़ने वाली गाड़ियाँ भी छोटी होती हैं , और उनके अन्दर अतिरिक्त माल का भराव भी नहीं किया जाता। उन सड़कों पर बहुत से गति - अवरोधक (speed breakers) लगे होते हैं, जिनसे गाड़ियों की तेज गति पर भी लगाम लगी रहती है, और जान-माल की हानि पर भी। उन मार्गों से, खुले घूम रहे, बंदी बनाए गए व मारे गए शत्रुओं को भी ढोया जाता रहता है। इसीलिए उन मार्गों के बीच में , स्थान-२ पर बहुत सी सुरक्षा-चौकियां बनी होती हैं। इस प्रकार का उन्नत प्रबंध, देश के मुख्य मार्गों व मुख्य भूभागों को शत्रुओं आदि से होने वाली संभावित हानि से बचाने के लिए ही किया गया होता है। आगे चलकर, वे सड़कें भी बड़ी से बड़ी होती जाती हैं , और उपयुक्त स्थान पर, मुख्य वनकमार्ग में मिल जाती हैं। पूरे देश की सड़कों के किनारों पर विद्युत् विभाग, सूचना-प्रसारण विभाग एवं अन्य संचार-संबंधी विभागों के स्तम्भ भी, थोड़ी-२ दूरी पर गाढ़े गए होते हैं, जिनके ऊपर सूचना-तारें (communication-cables) व विद्युत-आपूर्ति की तारें बाँधी गई होती हैं। कई स्थानों पर , जहाँ जमीन नरम होती है, व खुदाई के अनुकूल होती है, वहाँ पर वे तारें सड़क के साथ-२, उसके किनारों पर गढ़ी हुई होती हैं। उस सूचनातंत्र व ऊर्जा-तंत्र को स्थापित करने के लिए, सड़कों के किनारों को इसलिए चुना जाता है, क्योंकि वहाँ पर पहले से ही सड़क के लिए जमीन खुदी हुई होती है, जिससे अलग से जमीन को तैयार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। साथ में, सड़क उपलब्ध होने के कारण, तारों, खम्भों आदि विभिन्न वस्तुओं को और कामगारों को लाने-ले जाने में भी कठिनाई नहीं आती। इससे बड़े भारी श्रम (labour) व धन की बचत हो जाती है।

कभी-२ लेखक को लगता है कि यह संसार आत्मज्ञानियों की इच्छा से भी चलता है। जब किसी विशेष परिवर्तन की आवश्यकता होती है , तब सनातन प्रकृतिदेवी अपनी शक्ति से अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करके, किसी तद्योग्य व्यक्ति को आत्मज्ञानसंपन्न कर देती है। क्योंकि आत्मज्ञानी व्यक्ति तो आप्तकाम व पूर्णकाम हो जाता है, अतः उसे वह देवी, जगहितकारी कामना करने के लिए , अनेक प्रकार से बाध्य करती है। वह उसके जीवन में आभासिक कष्ट, दुःख, पीड़ाएँ व मुसीबतें आदि उत्पन्न कर देती है; जिससे वह बिना मानसिक विकारों के ही, जगत के कल्याण के लिए, इच्छा करने के लिए बाध्य हो जाता है। प्रकृति फिर उसकी उस इच्छा को पूरा करने का अभियान छेड़ देती है। शास्त्रों में जो कहा है कि ब्रम्ह की इच्छा से ही संसार चल रहा है, वह संभवतः ब्रम्हज्ञानियों की इच्छा को भी दर्शाता है। यह भी कह सकते हैं कि ब्रम्ह अपनी इच्छा को ब्रम्हज्ञानियों के माध्यम से भी प्रकट करवाते हैं।

अब देहदेश की पर्वतश्रृंखला के बारे में कहते हैं। देश के उत्तरी छोर पर स्थित , पूर्वोक्त सुमेरु पर्वत तो सबसे ऊंची पर्वतश्रृंखला का सबसे ऊंचा पर्वत होता है। वह सर्वोच्च पर्वतश्रृंखला 'हस्तीफल' नाम से भी विख्यात होती है। उसमें बहुत घने जंगल होते हैं , जिनमें विभिन्न प्रकार के असंख्य जीव-जंतु निवास करते हैं। उन जंगलों में कई बार हिंसक जंतुओं की संख्या अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। फिर भोजन की कमी से परेशान होकर , वे जंतु अक्सर देश के तराई वाले क्षेत्रों में उतरकर उत्पात मचाते रहते हैं। अतः राजा उससे दुखी होकर , जंगल की सफाई करवाता है। उसकी कंटीली, घनी व लम्बी

झाड़ियाँ नष्ट करवा दी जाती हैं, जिनमें बहुत से हिंसक जीव छिपे होते हैं। उन आदमखोर व फसलों को हानि पहुंचाने वाले जीवों को देखते ही शिकार करने का आदेश, परेशान राजा से पहले ही मिला होता है। हस्तीफल के निचले भागों में कम घने जंगल होते हैं , क्योंकि वहाँ के लोग अपने निवास व खेती के लिए, उन जंगलों को बारम्बार काटते रहते हैं। वस्तुतः वहाँ के लोग बहुत मेहनती होते हैं, और देश की अर्थव्यवस्था में अपना बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहते हैं। उस पर्वतश्रृंखला में बहुत सी चित्र-विचित्र गुफाएँ व कन्दराएँ भी होती हैं। कई गुफाओं में तो गन्धर्वों , किन्नरों व अप्सराओं की टोलियाँ, दिन-रात गाने-बजाने व नाचने में व्यस्त रहती हैं। उनके मधुर संगीत की आवाज दूर-२ तक सुनाई देती रहती है। आसपास के गाँवों के लोग तो उस शब्दामृत का पान, अपने कर्णमुखों से करते हुए थकते ही नहीं। वे ग्रामवासी रात-दिन उस संगीत का आनंद उठाते रहते हैं। कई कंदराओं में तो भयानक राक्षस भी रहते हैं, जो भूल से भी अन्दर घुसने वाले को काट-पीट कर खा जाने में जरा भी देर नहीं लगाते। इसलिए लोग उन कंदराओं के आसपास जाने से भी कतराते हैं। परन्तु बहुत से भोले-भाले जीव-जंतु, अनजाने में ही अन्दर घुसते रहते हैं, जिनको खाकर वे महोदर अपना पेट भरते रहते हैं। बहुत सी कंदराओं में तो चमचमाते जुगनुओं की बड़ी-२ व असंख्य बस्तियों का डेरा होता है, इसलिए वे कन्दराएँ रात-दिन चमकती रहती हैं। रात को तो वे किसी विशाल दानव की, क्रोध से भरी हुई लाल आँखों सी भयानक जान पड़ती हैं। जो कोई भी , भूल से या उनके प्रकाश से आकर्षित होकर, उनके अन्दर घुसता है, वह वहाँ की तेज रौशनी से अंधा होकर रास्ता ही भटक जाता है, और अधिकाँशतः बाहर ही नहीं निकल पाता। बाद में कई बार, गुफाओं से बाहर निकलने वाले, चश्मों के पानी में, उनके गले-सड़े शरीर देखने को मिल जाते हैं। कई गुफाओं में बड़ी तेज हवाएँ बहती रहती हैं। उन तूफानी हवाओं का शोर दूर-२ तक सुनाई देता रहता है। कई बार तो बड़े-२ पक्षी भी उन हवाओं के खिंचाव के प्रभाव में आकर, उन गुफाओं के अन्दर घुस जाते हैं। यदि वे गुफाओं में अधिक अन्दर तक न चले जाएं, तब तो वे हवा के थपेड़ों से कई बार स्वयं ही बाहर निकल भी जाते हैं। परन्तु कई बार वे थक-हार कर गुफाओं के अन्दर ही, हवा से जमीन पर गिर जाते हैं, जहाँ पर अन्धक नाम के अन्धकारप्रेमी प्राणी उनका भक्षण कर लेते हैं। कई कंदराओं में राजा के गुप्तचर छिपे हुए होते हैं, जो इधर-उधर से सूचना इकट्ठी करके, राजा को देते रहते हैं। उनके पास उन्नत प्रकार के खोजी-यंत्र (detective gadgets) भी होते हैं, जो अदृश्य किरणों व विकिरणों के माध्यम से भी, देश के बाहर की सूचनाएँ इकट्ठी कर लेते हैं। इस पर्वत श्रृंखला की विभिन्न कंदराओं से बहुत सी नदियाँ निकलती हैं, जिनमें से कुछ तो देश के अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं, और देश के बहुत बड़े भूभाग को सिंचित करती हैं। कुछ नदियाँ देश से बाहर निकलकर, बीहड़ों में चली जाती हैं। देश के अन्दर को जाने वाली नदियों में आगे से आगे , छोटे-बड़े नदी-नाले जुड़ते जाते हैं, जिससे आगे जाकर वे नदियाँ बहुत चौड़ी हो जाती हैं , जो लगभग पूरे देश की कृषियोग्य भूमि को सिंचित करती रहती हैं। सुमेरु पर्वतश्रृंखला के नीचे, वह पूर्वोक्त व बीच में से उठी हुई संकरी घाटी विद्यमान होती है, जिसमें ठंडी-२, सुगन्धित व प्राणों से भरी हुई अमृतमयी समीर निरंतर चलती रहती है। उस हवा से वहाँ पर उगे हुए दिव्य वृक्षों के स्वर्णिम पल्लव निरंतर हिलते रहते हैं , जिससे एक बहुत ही मधुर ध्वनि उत्पन्न होती रहती है। वहाँ पर एक भव्य शिवमंदिर भी होता है, जहाँ पर शिवगण, गन्धर्व, अप्सरागण व किन्नर आदि दिव्यपुरुष सदैव गाते-बजाते व नाचते रहते हैं। उस मधुर संगीत से आकृष्ट होकर, दूर-२ के रहने वाले लोग भी वहाँ इकट्ठे होते रहते हैं , जिससे वहाँ पर सदैव एक उत्सव के जैसा माहौल होता है। उसी दिव्य शिवमंदिर के कारण ही उसका दूसरा नाम शिवघाटी भी है। शिवघाटी से दक्षिण की ओर जाने पर, एक लम्बा-चौड़ा भूभाग दिखाई देता है। एक मध्यम आकार के, देश की चौड़ाई में स्थित पर्वत के बाद, बहुत सी छोटी-२ पर्वतमालाएं, पूर्व से पश्चिम की ओर, समानांतर रूप से फैली होती हैं। उनके बीच में बहुत सुन्दर व उपजाऊ घाटियाँ होती हैं। उन्हें पुष्प-घाटियाँ भी कहते हैं, क्योंकि उन घाटियों में सदैव असंख्य प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प खिले रहते हैं। उनके ऊपर सदैव भंवरे गुंजायमान रहते हैं। विविध प्रकार की रंग-बिरंगी तितलियों के लिए तो वे घाटियाँ किसी जन्नत से कम नहीं हैं। उन घाटियों को मधुलोक भी कहते हैं, क्योंकि पूरे देश के मधुपालक, वहाँ पर इकट्ठे होकर, मनचाहा मधु इकट्ठा करके, उसके विपणन के लिए दक्षिण की ओर चले जाते हैं। किसान लोग भी उन घाटियों में बहुत सी फसलों को उगाते हैं, जिनसे देश की अधिकाँश आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। उस क्षेत्र से, पूर्व व पश्चिम की ओर भी एक-२ विशाल पर्वतमाला निकलती है, जो देश के क्षेत्रीय विस्तार को बहुत अधिक बढ़ा देती हैं। उन पर्वतमालाओं में हंथ नाम की, बहुत परिश्रमी लोगों की एक जनजाति निवास करती है। यद्यपि वहाँ पर उपयुक्त जमीन की कमी के कारण, वे लोग मेहनत-मजदूरी के लिए, पूरे देश में और यहाँ तक कि विदेशों में भी पलायन करते रहते हैं। देश की अर्थव्यवस्था में उन लोगों का बहुत बड़ा हाथ होता है। उन्हीं घाटियों के पश्चिम की ओर, वह पूर्वोक्त वायुपूर्ण व विशाल जलाशय भी विद्यमान होता है, जिसका जल तेज हवा के थपेड़ों से ऊंचे-२ हिलोरे खाता रहता है। उस जलाशय के निकट ही वह पूर्वोक्त विशाल जलधक्कायंत्र (water pump) भी उपस्थापित (install) किया गया होता है। निकटस्थ जलाशय की ठंडक से, उस यंत्र का तापमान भी स्थिर बना रहता है। उस यन्त्र के लगाए गए बलशाली धक्कों व उपरोक्त /निकटस्थ जलाशय के, आसमान की ओर उछलते हुए जल से, आसपास के भूखंड भी थरथराते हुए से प्रतीत होते हैं, परन्तु चारों ओर की सुदृढ़ पर्वतश्रृंखलाओं की जकड़न में वे सुरक्षित स्थित रहते हैं।

उन विशाल संरचनाओं के दक्षिणी किनारों पर, बहुत ऊंचा, सीधा खड़ा व अपेक्षाकृत रूप से कम चौड़ाई वाला एक पर्वत विद्यमान होता है। वह पर्वत उस उत्तेजित भूभाग (disturbed land) से देश के मध्य भाग के मैदानी क्षेत्रों को अलग करके, उन्हें सुरक्षित कर देता है। वह पर्वत पूरे देश की चौड़ाई में फैला होता है, और देश को विभाजित सा करता हुआ प्रतीत होता है। पश्चिम दिशा में, सीमा के निकट, उपरोक्त संवेदनशील संरचना-भूमियों (sensitive lands) को अतिरिक्त सुरक्षा देने के लिए, देश की पूरी चौड़ाई के माप के क्षेत्र के लगभग बीच में, उसके उत्तरी छोर के निकट से लेकर दक्षिणी छोर के निकट तक, एक अद्भुत व अंतर्मिश्रित/अंतर्युग्मित (interconnected) पर्वत श्रृंखला गुजरती है। वास्तव में वह सुमेरु पर्वत के आधार से लेकर, दक्षिण में समुद्र तट तक फैली होकर, लगभग पूरे ही देश से होकर गुजरती है। उस श्रृंखला में चित्र -विचित्र संरचनाएँ, आकृतियाँ, कन्दराएँ, चट्टानें, जीव-जंतु व वृक्षादि होते हैं। उस पर्वतश्रृंखला में बसने वाले पहाड़ी लोग बहुत बुद्धिमान होते हैं , जो समय-२ पर देश के काम-काज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहते हैं। उस श्रृंखला के पर्वत आपस में कलापूर्ण ढंग से जुड़े होते हैं , और ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो जैसे बहुत से विशालकाय महामानव एक-दूसरे का हाथ, कलापूर्ण ढंग से पकड़कर, एकपंक्ति में खड़े होकर, हास्यमुद्रा में लयबद्ध नृत्य कर रहे हों। उस पर्वतश्रृंखला के आसपास की वायु उच्च दबाव के साथ ऊपर उठती रहती है, जिससे वहाँ पर वायुयानों को उड़ान भरने में बहुत सहायता मिलती है। इसीलिए उस श्रृंखला के आसपास बहुत से विमानपत्तन (airports) बने होते हैं। उससे देश की आतंरिक व बाह्य परिवहन-प्रणालियों (transport systems) को बहुत बल मिलता है, जिससे पूरे देश की आवश्यकताओं को त्वरित रूप से व कम खर्चे के साथ पूरा करने में बहुत सहायता प्राप्त होती है। वह श्रृंखला पूरे देश को बाहरी आक्रमणों से भी बचाती है। देश का मध्य भाग पठारी होता है। वहाँ के भूभाग में खनिजों के अपार भण्डार होते हैं। वह भाग देश का औद्योगिक क्षेत्र (industrial area) भी होता है। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के उद्योग होते हैं। देश का पूर्वोक्त विशाल परिष्करण-यंत्र भी तो उसी भाग में स्थित होता है। वहाँ पर कृषि-आधारित उद्योग भी बहुतायत में होते हैं। वहाँ पर कृषि -व्यवसाय का भी काफी बोलबाला होता है, यद्यपि देश के वास्तविक कृषिक्षेत्र तो दक्षिणी भूभाग के प्रारम्भ में ही स्थित हैं; पूर्वोक्तानुसार, जहाँ से कच्चे माल को मध्यवर्ती भूभाग के औद्योगिक क्षेत्रों तक पहुँचाने के लिए, सड़कों का एक जटिल जाल बिछा होता है। दक्षिणी भूभाग तो पूर्णतया मैदानी होता है। वहाँ पर विभिन्न फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायु व बहुत ही उपजाऊ भूमि होती है। उत्तरी व मध्य भूभाग से आने वाली नदियाँ, वहाँ पहुंचकर, निःस्वार्थ परसेवा करके समृद्ध हो जाती हैं। उन नदियों के जल में खनिजों व अन्य पोषक तत्त्वों की भी भरमार होती है। उस जल से सिंचित, वहाँ की भूमि सोना उगलती है। उस कृषियोग्य भूभाग से और नीचे, दक्षिण की ओर मंडी-स्थान (market place) होता है, जहाँ पर कृषि-उत्पाद इकट्ठे किए जाते हैं, और इधर-उधर खरीदे-बेचे जाते हैं। उसके और अधिक दक्षिण की ओर, कृषि-उपोत्पाद परिष्करण क्षेत्र (agro byproducts purifying area) होता है। वहाँ पर फसलों के अतिरिक्त भागों, जैसे कि उनके डंठलों, पत्तों आदि को साफ किया जाता है, और उनके खाने-योग्य भागों को भंडारित कर दिया जाता है। वहाँ से, दूर-२ से आए हुए पशु-पालक, उस पशु-चारे को ले जाते हैं, और अपने पशुओं को खिलाकर, उनसे बड़ी मात्रा में दूध, घी, ऊन, माँस, अंडा आदि पशु-उत्पादों (animal products) को बहुतायत में पैदा करते हैं। फसलों के उन अंशों को, जिन्हें पशु भी नहीं खा सकते, उन्हें मध्यमार्ग तक ले जाया जाता है, और उस पर दौड़ रही खाली गाड़ियों में भर दिया जाता है। वे फिर देशीय -सीमा के बाहर, बीहड़ों में फेंक दिए जाते हैं, जहाँ पर सड़-गल कर वे स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। दक्षिणी भूभाग के पश्चिमी भाग में, समुद्र के निकट ही वह पूर्वोक्त विशाल जलशोधन यंत्र भी स्थापित किया गया होता है। वहीँ पर उसके दक्षिण व पूर्व की ओर, मुख्यराजद्वार के निकट व सीमा से सटा हुआ, नवदेशनिर्माणविभाग का पूर्वोक्त क्षेत्रीय कार्यालय व नवदेशगर्भक बीहड़स्थल भी विद्यमान होता है। फिर दक्षिण की ओर उत्तरोत्तर आगे बढ़ते हुए, मध्यमार्ग समाप्त होता हुआ दिखाई देता है, जिसके सीमाबद्ध मुख्यराजद्वार के बाहर अंतरदेशीय बीहड़ क्षेत्र व उसके और आगे समुद्र भी दिखाई पड़ता है। दक्षिणी सीमा के निकट, दो लम्बी पर्वत मालाएं भी निकलती हैं। उनमें से एक पूर्व की ओर फैली होती है, और दूसरी पश्चिम की ओर। उनमें समुद्रतटीय वन पाए जाते हैं। वहाँ पर देश के प्रमुख विदेशव्यापारिक केंद्र बने होते हैं। क्योंकि वे क्षेत्र समुद्र के निकट बने होते हैं, अतः विदेशों से व्यापार में सहायक होते हैं। उसके लिए, उनकी समुद्र से लगती तलहटियों में बहुत सी बंदरगाहें बनी होती हैं।

लेखकः अनुभवति यत् संभवतः वज्रस्य आकारप्रकाराभ्यामेव कुण्डलिनीनामजन्म। यदैव वज्रः प्रसारितः लम्बितः च , तदैव कुण्डलिनी तदोपरि आरोपिता। यदैव वज्रः संकुचितः किञ्चिच्च कुण्डलितः, तदैव कुण्डलिनी तत्रतः निस्सृता बन्धैः च मस्तिष्के प्रकटिता। चेत् कदापि लोलुपतया यौनता अनुभूयात्, तर्हि अपि उत्साहं न त्यक्तव्यं। अग्रसरः पुरुषः अधः अपि स्खलति , पुनः उत्तिष्ठति अपि। सदैव मनसि यौनयोगनिष्ठा निर्मितव्या आत्मानम् उत्तिष्ठितुं च प्रयतितव्यं। यह लोकोक्ति कुण्डलिनी के एकाग्र ध्यान के परिपेक्ष्य में ही बनी हुई प्रतीत होती है कि "एके साधे सब सधे , सब साधे सब जाए"। स्त्रीलिंग में 'कुण्डलिनी' नाम, इसीलिए रखा गया प्रतीत होता है, क्योंकि यौनाकर्षण ही सर्वोत्तम समाधिकारक बल है, जिसके कारण स्त्री का

समाधि-कुण्डलिनी बन जाना, सर्वाधिक संभावित है, जैसे कि प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी के रूप में प्रथम देवीरानी , सरलता, सहजता व दृढ़ता से प्रतिष्ठित हो गई थी।

जो छोटे-२ व निम्न श्रेणी के देश, नए-२ बने होकर, विकास की प्रारंभिक अवस्था में होते हैं, उनमें सभी प्रकार के गुणवान अधिकारी उपलब्ध हो जाते हैं। इसलिए बड़े देश उनसे मित्रता करने के प्रयास में लगे रहते हैं। वास्तव में उन बड़े देशों को सभी प्रकार के गुणवान अधिकारियों की आवश्यकता, अपने विकास के लिए पड़ी होती है, परन्तु वे बड़े देश उनको उनसे छीन लेते हैं, जिससे उन छोटे देशों का विघटन हो जाता है। यद्यपि वे बड़े देश स्वार्थवश, पुनः-२ उन छोटे-२ देशों को संगठित करते रहते हैं, और उनके अन्दर विकास की मशाल जलाते रहते हैं, ताकि उन बड़े देशों की अपनी आवश्यकता लम्बे समय तक पूरी होती रहे।

आत्मज्ञानी श्री रमन महर्षि के बारे में कहा जाता है कि एक बार उन्होंने बिना किसी दर्दरोधी दवा (anaesthetic) के अपना दांत निकलवाया था, जिसमें भयंकर दर्द होना स्वाभाविक था, परन्तु उन्हें दर्द का आभास नहीं हुआ। प्रेमयोगी वज्र को भी वैसा ही एक अनुभव हुआ था। वह उस समय आत्मज्ञान के पूर्ण प्रभाव में था, क्योंकि उस समय उसे आत्मज्ञान को अनुभव किए हुए, ३ वर्षों (आत्मज्ञान का पूर्णप्रभावकाल) से कम समय ही बीता था। उसमें भी दवाई का असर नहीं हुआ था, जिससे दांत उखाड़ते समय उसे भयंकर दर्द हुआ था। दन्तचिकित्सक (dentist) ने उसको जोर से दबाकर व उसकी चिल्लाहट को नजरअंदाज करके, उसका दांत बलपूर्वक निकाल दिया। परन्तु उस दर्द से , उसे अपने अन्दर क्रोध आदि कोई भी विकार , लेशमात्र भी अनुभव नहीं हुआ। उसे वह दर्द भी दर्द की तरह नहीं लगा , अपितु अन्य अनुभूतियों के जैसी ही एक सामान्य अनुभूति की तरह लगा। उससे उसके अन्दर अद्वैत छा गया, और उसके मन में आत्मज्ञान के स्मरण की स्पष्टता भी कुछ बढ़ सी गई। साथ में, उसकी समाधि भी अधिक सुदृढ़ हो गई। यद्यपि ये सभी अतिरिक्त सुधार थोड़े समय के लिए ही थे।

गरमदल के सदस्यों में, कलिक उपनाम के आप्रवासी सबसे महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये कठोर इरादों वाले होते हैं, और देहदेश में बसते ही, वहाँ के सुरक्षा ढाँचे को सुदृढ़ करने लग जाते हैं। देश के महत्त्वपूर्ण ठिकानों के चारों ओर, ये कठोर सुरक्षाकवच का निर्माण कर देते हैं, जिन्हें बड़े से बड़े आग्नेयास्त्र भी आसानी से नहीं भेद पाते। इसी तरह से, ये बड़े-२ उद्योगों के कठोर पिष्टकों (grinders) का निर्माण भी करते हैं, जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को पीसकर, उनसे विभिन्न संरचनाओं के निर्माण में सहायता करते हैं। ये टूटे हुए मार्गावरणों (parafits) को जोड़ने में भी सहायता करते हैं। साथ में, ये विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न प्रकार की जल-नलिकाओं का भी, रिसाव आदि ढूँढने के लिए निरीक्षण करते रहते हैं, व यदि कहीं हो, तो उसे रोकते रहते हैं। लोग इनके माध्यम से, आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। ये लोगों का बल व उत्साह भी बढ़ाते रहते हैं। ये अच्छे पाचक भी होते हैं , और स्वादिष्ट व पौष्टिक भोजन बनाकर, विभिन्न समारोहों में लोगों को खिलाते रहते हैं, जिससे वे लोग भोजन को पर्याप्त मात्रा में खाकर, स्वस्थ बने रहते हैं। देश के विशाल धक्का-यंत्र को नियमित व नियंत्रित रखने में भी ये महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं , अतः अप्रत्यक्षरूप में, आपूर्तिनलिकाओं के अन्दर के दबाव को भी नियंत्रण में रखते हैं। इसके साथ, ये सड़कों पर वाहनों की संख्या को भी नियंत्रित करते हैं, ताकि उनकी अधिक संख्या से व भारी वाहनों से, सड़कें क्षतिग्रस्त न हो जाएं। ये कई गुटों के विद्रोह को शाँत करने में भी भूमिका निभाते रहते हैं , विशेषतः देश के दक्षिणी भाग में, मध्यमार्ग के किनारों के निकट बसे हुए लोगों के विद्रोह को। ये अधिकारी भी यदि अधिक संख्या में , विशेषतः बीहड़ों से बुलाए जाएं , तो पूर्वोक्त उपस्कर अधिकारियों की तरह ही, विशाल जलशोधक-संयंत्र में बवाल मचवा कर, आँशिक चक्काजाम करवा सकते हैं। गरमदल के सदस्यों का स्वभाव गरम होता है, इसलिए वे एक-दूसरे को अधिक भी सहन नहीं करते, विशेषतः भिन्न उपनाम वालों को। इसलिए यदि इनको पृथक-२ रूप से आमंत्रित किया जाए, तो अधिक ठीक रहता है।

संभवतः प्रेमयोगी वज्र २० वर्षों के लम्बे समय में भी , अपने कुण्डलिनीजागरण में इसीलिए सफल हो सका, क्योंकि वह एक पशुचिकित्सक था, और उन २० वर्षों तक निरंतर रूप से लोगों के घर-२ जाकर, उनके पशुओं से सम्बंधित विभिन्न मामलों में उन्हें अपनी सेवाएं देता रहा। उससे वह सदैव ही उच्चतम व्यावहारिकता में स्थित रहा , क्योंकि उससे उसकी विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से अत्यधिक निकटता बनी रही। शरीर से सम्बंधित व्यवसाय होने के कारण, उसके मन में शविद स्वयं ही निरंतर रूप से व दृढ़ता से प्रतिष्ठित रहा। इस तरह से हम देख सकते हैं कि कुण्डलिनीजागरण के लिए कितने अधिक महान मानसिक बल की आवश्यकता होती है। इस तरह से , अपने व्यवसाय के अनुसार, कोई भी अपना निजी अद्वैत-दर्शन बना सकता है। क्योंकि शरीर को तो सभी धारण करते हैं, इसलिए शविद तो सभी के लिए ही निजीदर्शन प्रतीत होता है।

मागधम उपनाम के गरमदल-अधिकारी, देश के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं , और लगभग ३०० प्रकार के छोटे-बड़े, विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्व संभालते हैं। ये कलिक-अधिकारियों के आप्रवास, उनकी नियुक्ति व उनको सुरक्षा उपलब्ध करवाने में भी सहायता करते हैं। ये ताकतवर

श्रमिकों के उत्पात से भी देश को बचाते हैं। मुख्य कामों में , ये श्रमिकों के लिए निपुण मालिशियों का इंतजाम करवाते हैं , जो उनकी माँसपेशियों की थकान को मिटाते रहते हैं , और उन्हें चुस्त-दुरुस्त, बलवान व तरोताजा बना कर रखते हैं। ऊर्जाविभाग व वस्तुनिर्माणविभाग में भी ये सहकारी भूमिका निभाते हैं। ये अधिकारी भी हरितपुर आदि बहुत से छोटे देशों में पाए जाते हैं। हरितपुर नाम इसलिए पड़ा है , क्योंकि इस देश के पेड़-पौधे, पूरे वर्षभर हरे-भरे रहते हैं।

कुण्डलिनी से अद्वैत इसलिए उत्पन्न होता है, क्योंकि जब हम कुण्डलिनी का ध्यान करते हैं, तब वह हमारी अंधकारमय आत्मा को अपने प्रकाश से भर देती है। उससे हमें अपने आप (आत्मा/स्वभावतः अन्धकाररूप/अभावरूप) व जगत (चित्तवृत्तियाँ/प्रकाशरूप/भावरूप) के बीच में अंतर महसूस नहीं होता, या कम अंतर महसूस होता है। इस तरह से, जब हमें अन्धकार व प्रकाश भी एक जैसे ही प्रकाशरूप लगने लगते हैं , तब विभिन्न प्रकाशों (चित्तवृत्तियों/भावों) के बीच में कैसे अंतर अनुभव हो सकता है। इसी तरह से , उस उत्पन्न अद्वैत से, जब भाव-अभाव आदि सभी कुछ एक जैसा ही प्रतीत होने लगता है, तब किसी विशेष वस्तु-भाव या अभाव के प्रति भी, क्योंकर विशेष लगाव या आसक्ति होगी।

स्फटिक उपनाम के अधिकारी, कलिक-अधिकारियों की सहायता, उनके द्वारा विभिन्न सुरक्षा -कवचों के निर्माण में करते हैं। ये दोनों आपस में मिलकर, अपने आप्रवासक देश की विभिन्न मुलायम संरचनाओं (software) को ढांचागत आधार प्रदान करने के लिए, कठोर वस्तुओं (hardware), जैसे कि चित्र-विचित्र डब्बों, बोतलों, तख्तों, आवरणों आदि का निर्माण करवाते रहते हैं, इसलिए निर्माणाधीन नवदेश में व विकसित हो रहे पुराने देश में तो ये निर्णायक भूमिका निभाते हैं। जब किन्हीं-२, विशेषकर कमजोर व पुराने देशों में, पूर्वोक्त अस्त्रज्ञानी के बहुत से पिछले कुकर्मों से नाराज होकर, देश का प्रशासन उसे पक्के तौर पर निकाल देता है, और उसके स्थान पर नई नियुक्ति भी नहीं करवाता है; तब उन कठोर आवरणों का क्षरण होने लगता है, क्योंकि वही उद्दंड अधिकारी तो लोगों को दंड आदि का भय दिखाकर , उनसे राष्ट्रीय संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करवाता था। वैसी अवस्था में , कलिक व स्फटिक, दोनों वर्गों के अधिकारी, अत्यावश्यक व निर्णायक हो जाते हैं, ताकि ये उन कठोर आवरणों का शीघ्रता से नवनिर्माण करवाते रहें , और पुराने आवरणों को बदलवाते रहें। स्फटिक-अधिकारी, लोगों के घरों का निर्माण करने वाले (house builders) संगठनों व वस्त्र-जूते (apparel industries) आदि बनाने वाले उद्योगों को भी अपना सहयोग उपलब्ध करवाते हैं। इनके द्वारा बनवाए गए मकान वातानुकूलित व भूकंपरोधी होते हैं। यहाँ तक कि ये वस्त्रों-जूतों आदि को भी वातानुकूलित ही बनवाते हैं। ये भवनों का निर्माण कुछ इस तरह से करवाते हैं कि उनमें रहने वाले लोगों को हवा व धूप की कमी से भी न जूझना पड़े। राजधानी के विशिष्ट लोगों के बीच में भी ये आपसी संवाद बना कर रखते हैं। ये अधिकारी , देश के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण व उत्तम श्रेणी के कागज़ का निर्माण भी करवाते हैं , जिनके ऊपर ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न पुस्तकों, विशेषतः संविधान की छपाई की जाती है। इस वर्ग के लोग, देश में विद्यमान विभिन्न विचारधाराओं के बीच में, संतुलन बनाए रखने का काम भी करते हैं, जो देश की स्थिरता के लिए बहुत आवश्यक है।

कुण्डलिनी गुप्ताङ्गेषु सर्वाधिकबलशालिनी। तदैव तु यौनयोगे शरीरस्य प्रत्येकसंवेदनासु , विशेषतः गुप्तसंवेदनासु कुण्डलिनी आरोपिता ध्यायिता च। यौनाकर्षणे अपि गुप्ताङ्गेषु एव कुण्डलिनी सर्वाधिकप्रकटिता। एवमेव कुण्डलिनीयोगः एकः कृत्रिमः वा मानवनिर्मितः वा अल्पतरशक्तिशाली यौनयोगः एव।

देहदेश ने अपने चारों ओर भी एक अतिरिक्त सुरक्षा-घेरा बनाया होता है, जिससे अंतरिक्ष से आने वाले विशालकाय उल्कापिंडों या शत्रुओं के द्वारा दागे गए आग्नेयास्त्रों (missiles) से भी उसके नागरिकों की सुरक्षा हो जाती है। कई बार बहुत से देश आपस में इकट्ठे होकर भी , संयुक्तरूप से अपने चारों ओर एक सुरक्षा-चक्र का निर्माण कर लेते हैं। वह एक प्रकार से उन परस्पर सम्बंधित विशालकाय देशों का एक अति विशालकाय घर ही होता है।

उपरोक्त तीनों गरमदल-अधिकारियों के अतिरिक्त, सदम व कलम उपनाम के अधिकारी भी होते हैं , जो भी इन्हीं की तरह ही अधिक संख्या में चाहिए होते हैं, क्योंकि ये भी बहुत सी बड़ी -२ परियोजनाओं (big projects) को शुरु करवाते हैं , या उनमें बड़ी-२ भूमिकाएं निभाते हैं। परन्तु तुलनात्मक रूप से ये प्रत्येक छोटे देश में, यहाँ तक कि बीहड़ों में भी, सबसे अधिक संख्या में पाए जाते हैं, इसलिए इन अधिकारियों की कमी से कभी नहीं जूझना पड़ता।

आध्यात्मिक सफलता के लिए बहुत अधिक दृढ़ निश्चय, लगन, उत्साह, संयम आदि सात्विक व दिव्य गुण चाहिए होते हैं; वैसे ही, जैसे बहुत बड़े लौकिक उद्योग को स्थापित करने के लिए, ये गुण चाहिए होते हैं। इसलिए लौकिक उपलब्धियों पर भी ध्यान होना चाहिए , क्योंकि उनसे ये गुण विकसित हो जाते हैं, जिनसे भविष्य में आध्यात्मिक सफलता मिलने में बहुत सहायता मिलती है।

गरमदल की बीसियों किस्म की बिरादरियाँ ऐसी भी हैं , जिनके अधिकारी लोग, अपेक्षाकृत रूप से कम संख्या में ही चाहिए होते हैं , क्योंकि वे विभिन्न कामों के अंतर्गत , छोटी-२ सी ही, यद्यपि बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनमें प्रथम वर्ग इस्पत उपनाम के लोगों का आता है। वे वस्तुनिर्माण में माहिर होते हैं। वे वात-घट (gas cylinders) ढोने वाले लोगों के वात-घटों का व अन्य आवश्यक उपकरणों का निर्माण करवाते हैं। वे देश के विभिन्न भागों में, विशेषतः औद्योगिक क्षेत्रों में, अस्थायी/अतिरिक्त रूप से सहयोगात्मक वात-भण्डारगृहों (temporary gas-storehouses) का निर्माण भी करवाते हैं। वे सुरक्षाविभाग को भी मजबूती प्रदान करते हैं , और संविधान-पुस्तक की छपाई में भी सहयोग करते हैं। वे भी सबनदेश , पत्रदेश व पालकीवहदेश नामक छोटे-२ देशों में अधिकाँश रूप से बसे होते हैं। पालकीवह नाम इसलिए पड़ा है , क्योंकि उस देश के लोग, पूरे विश्वभर के लिए पालकी उठाने वालों को तैयार करते रहते हैं।

योग के बीच-२ में, मन को इधर-उधर (विभिन्न शोर-शराबों,गानों व बातों आदि की ओर) थोड़ा-२ भागने देना चाहिए, परन्तु प्राणों का बल कुण्डलिनी पर ही रहना चाहिए। इससे, मन बाहर भागने से पैदा हुई शक्ति को अपने साथ लेकर, एकदम से कुण्डलिनी के ऊपर गिर जाता है, और उसे चमका देता है।

प्रेमयोगी वज्र को जब व्यावहारिक अद्वैत का आचरण करते हुए , स्वयं ही लम्बा समय बीत गया, तब वह रूपांतरित जैसा हो गया, और उसका व्यावहारिक अद्वैत भी अव्यावहारिक या प्रगाढ़ अद्वैत में स्वतः ही रूपांतरित हो गया। उससे, पहले तो वह अध्ययनशील बना, जिसमें उसने योग आदि से सम्बंधित पुस्तकें ही पढ़ीं। फिर संतुष्ट होकर , वह योगसाधना में प्रवृत्त हो गया। उसके बीच में , यौनयोग की ओर वह स्वतः ही आकृष्ट हुआ , और उससे सम्बंधित विषय पढ़ने लगा। फिर उन पुस्तकों में पढ़े हुए सर्वोपयुक्त विषयों को व्यवहार में ढालते हुए , वह यौनयोगमिश्रित कुण्डलिनीयोग में प्रवीण हो गया। उसी बीच उसका कुण्डलिनीजागरण भी हो गया।

अन्य लघुसंख्यक गरमदल-अधिकारियों का वर्ग उडन्त उपनाम वालों का है। वास्तव में ये , देश के अतिमहत्त्वपूर्ण अधिकारी, थारमन के हितैषी, सेवक, भक्त व पोषक होते हैं। थारमन मुख्यतः इन्हीं लोगों के कारण ही तो पूरे देश का राजगुरु होता है। वास्तव में यदि ये थारमन का अप्रत्याशित रूप से समर्थन करना छोड़ दें, तो थारमन अपने तेज को व अपनी प्रतिष्ठा को शीघ्र ही खो दे , जिससे उसे कोई न पूछे। ये अधिकारी भी बहुत से छोटे देशों में पाए जाते हैं, जिनमें मुख्य हैं, डुगपुर, अन्डमानपुर व सगरपुर। सगरपुर नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि इस देश के निवासी, सागर के पुजारी होते हैं, और उसके आसपास रहना पसंद करते हैं।

लेखक ने पहले भी इस पुस्तक में , प्रेमयोगी वज्र के अनुभव से यह सिद्ध किया है कि अद्वैत व कुण्डलिनी साथ -२ रहते हैं, इसलिए कभी भी कुण्डलिनी का ध्यान करने से, अद्वैत स्वयं ही उत्पन्न हो जाता है। अद्वैत को उत्पन्न करने की या मन को बांधने की यह ऐसी ही एक सरल व अप्रत्यक्ष युक्ति है, जैसी कि पूरे हाथी को न बांधकर, उसकी टांग को ही बांधने की, जिससे पूरा हाथी स्वयं ही आसानी से बंध जाता है। इसलिए योगसाधना से , प्रतिदिन कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए।

गरमदल के अल्पसंख्यकवर्ग के अन्य सदस्य हैं, 'फलकराज' उपनाम के लोग। ये भी विभिन्न उद्योगों में पिष्टक-चक्रों (पीसने वाले चक्कों) की मुरम्मत व उनका रखरखाव करते रहते हैं। साथ में, ये वृक्षारोपण करवा कर, मृदाक्षरण को भी रोकते रहते हैं। ये विभिन्न संरचनाओं के आधारभूत ढाँचों (like hardwares) का निर्माण व उपद्रवियों, आन्दोलनकारियों आदि से उनका रक्षण भी करवाते रहते हैं। ये कटकदेश में, मूलरूप से बसे होते हैं।

यदि कुण्डलिनी, चक्र से इधर-उधर भड़क रही हो, तो उसे उस चक्रस्थित कुण्डलिनी-अग्नि की ज्वाला समझना चाहिए, बेशक वह ज्वाला नीचे की ओर ही क्यों न हो, और चाहे वह ऊपर की ओर, सिर तक ही क्यों न पहुँच जाए। क्योंकि थोड़े ही समय में कुण्डलिनी स्वयं ही अपनी ज्वाला के मूलस्थान अर्थात उस आधारभूत चक्र (जहाँ पर उस समय उसका ध्यान किया जा रहा हो) पर पहुँच जाती है। योगासन के समय, शरीर के जोड़ों को, अपने फेफड़ों के अन्दर साँस भरते हुए, शरीर के जोड़ों को ऐसे थोड़ा गतिशील अनुभव कर सकते हैं, जैसे कि वे जोड़ अपने अन्दर को साँस खींच रहे हों, और वहाँ पर ध्यायित की जाती हुई कुण्डलिनी को प्रदान कर रहे हों , विशेषकर यदि ध्यान लगाने में कठिनाई आ रही हो। जब कुण्डलिनीयोग करते हुए, योगियों को १-१.५ वर्ष का अभ्यास हो जाता है, तब कई बार वे योगी खड़े होते हुए, बैठते हुए व सोते हुए भी अनायास ही अपने शरीर की वैसी स्थिति बनाते रहते हैं, जिससे विभिन्न जोड़ों में से कोई भी, विशेषकर कमर का जोड़ (स्वाधिष्ठान चक्र के ठीक विपरीत, पीठ में) अधिक से अधिक स्पष्ट हो जाए, और साथ में, उस पर स्थित चक्रासना कुण्डलिनी भी। उस जोड़ की स्पष्टता से व साँसों की बदलती स्थिति से उसी जोड़ के बदलते दबाव/गति से, वे साँसे भी वहाँ पर आसानी से टकराती रहती हैं, जिससे वे साँसें भी कुण्डलिनी को भड़काती रहती हैं। क्योंकि रक्तवाहिनियाँ (blood vessels) एवं संवेदना-वाहिनियाँ (nerves) साथ-२ होती हैं, इसलिए स्वाभाविक है कि जोड़ों के मुड़ने से या उनकी हलचल से , जब संवेदना-

वाहिनियाँ दबाव आदि से क्रियाशील हो जाती हैं, तब रक्तवाहिनियाँ भी क्रियाशील हो जाती हैं। उन्हीं रक्तवाहिनियों से प्रवाहित होता हुआ प्राण, उस संवेदना के साथ-२, संवेदना-स्थान (चक्र आदि) पर स्थित कुण्डलिनी को भी पुष्ट कर देता है, वैसे ही जैसे दूब-घास की सिंचाई करने से, उसके ऊपर स्थित कीट की भी सिंचाई खुद ही हो जाती है। योगासन के समय मुख्य ध्येय तो केवल कुण्डलिनी के ध्यान का ही होना चाहिए, भौतिक व्यायाम का नहीं। इसलिए आसन को सर्वोत्तम बनाने की अपेक्षा कुण्डलिनी पर ही ध्यान देना चाहिए। आसन की गुणवत्ता कुण्डलिनी की गुणवत्ता के साथ-२ स्वयं ही बढ़ती रहती है। आसन की गुणवत्ता पर भी ध्यान दिया जा सकता है, यद्यपि कुण्डलिनी के साथ-२, कुण्डलिनी की गुणवत्ता की कीमत पर नहीं। प्रेमयोगी वज्र तो योग के रूप में बहुत साधारण प्रकार के भौतिक व्यायाम भी करता था। वास्तव में, कोई भी भौतिक व्यायाम (विशेषतः खिंचाव-भरे, streching exercises) यदि योग के रूप में किया जाए, तो वह योग ही बन जाता है। शाम को कुण्डलिनीयोग करके, दिन भर का तनाव शाँत हो जाता है। उसके बाद खाना-पीना आदि कर लेना चाहिए, व उसके बाद हल्के-फुल्के मनोरंजन के लिए, संगीत सुन लेना चाहिए या दूरदर्शन (समाचार) आदि देख लेना चाहिए। यदि योग के बाद पुनः अधिक तनावयुक्त कार्य न किए जाएं, तो पूरी रात शान्ति से व आनंद के साथ व्यतीत हो जाती है।

उपरोक्त कड़ी में अगला वर्ग है, 'कपूरवास' उपनाम के लोगों का। उनका यह उपनाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि वे लोग कपूर को बहुत पसंद करते हैं, और अधिकाँश अवसरों पर, उसकी खुशबू का प्रयोग करते रहते हैं। वे भी फकरदिन -विद्रोहियों से देश को बचाने के लिए, टगर-लोगों की सहायता करते रहते हैं। वे देश के तापविद्युतघरों में कोयले को जलवा कर, देश के लिए विद्युत-उत्पादन में सहायता करते हैं। उनके पास एक वैसी तकनीक होती है, जिससे वे सड़े-गले गोबर व घास-पत्तों से भी तेल (petrol) बना लेते हैं, जो देश की अर्थव्यवस्था में बहुत काम आता है। वे भी आधारभूत संरचनाओं के निर्माण में, फलकराज-लोगों की सहायता करते हैं। वे वात -पेटिकाओं (gas cylinders) को ढोने वाले लोगों की नियुक्ति व उनका प्रशिक्षण भी करवाते हैं। वे शिशुपुर, मसीपुर, व अन्नजपुर आदि देशों के स्थायी निवासी होते हैं, यद्यपि वे अन्य देशों में भी बिखरे हुए मिल जाते हैं। 'शिशुपुर' नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि उस देश के लोगों को बालकों से बहुत लगाव व प्रेम होता है।

यदि किसी प्रिय व्यक्ति या देवता के मनुष्याकृत रूप को कुण्डलिनी का रूप देकर, उसका एकाग्र रूप से ध्यान न किया जाए, तब विभिन्न मानवीय हाव-भावों व मनोस्थितियों को, कुण्डलिनी के ऊपर कैसे आरोपित किया जा सकता है? यदि कुण्डलिनी के ऊपर ऐसा आरोपण नहीं किया जाएगा, तब कुण्डलिनी कैसे उत्तरोत्तर रूप से सुदृढ़ होगी? वास्तव में क्रोधभाव के समय, वह मनुष्याकृत कुण्डलिनी भी क्रोधित मनुष्य की तरह ही दिखाई देती है। उससे साधक को अपने क्रोध का पता चल जाता है, और वह उसे फिर नियंत्रित भी कर लेता है। ऐसा ही अन्य भावों के साथ भी समझ लेना चाहिए। इसी तरह से, निरंतर ध्यान तो मनुष्याकृत कुण्डलिनी का ही संभव या सुलभ प्रतीत होता है, क्योंकि वैसा ध्यान समाज में भी स्वीकार्य है, अतः उसे अप्रत्यक्ष सामाजिक-बल (मान्यता का बल) भी मिलता है। यदि कोई अपने मन में, निरंतर रूप से किसी प्रकाशमान बिंदु का या चमकीली घंटी का ध्यान करता है, तो समाज उसे कहाँ स्वीकृति देगा? प्रेमयोगी वज्र की, प्रथम देवीरानी के रूप से बनी कुण्डलिनी को, इक्के-दुक्के; कट्टरता, ईर्ष्या, अहंकार, द्वैत व आसक्ति की मोहमाया में फंसे वर्ग को छोड़कर, लगभग पूरे समाज ने सहर्ष स्वीकार किया। यदि वह चमकीली चट्टान के रूप की कुण्डलिनी को सिद्ध करता, तो अधिकाँश समाज उसे कैसे स्वीकार करता? इससे यह प्रतीत होता है कि मानवता-प्रेम ही सब कुछ है।

अगला वर्ग है, 'जनकदास' उपनाम के आप्रवासित आधिकारियों का। ये अधिकारी देश के रक्षाविभाग को अपनी सेवाएं उपलब्ध करवाते हैं। ये विभिन्न प्रकार के, खेती के अत्याधुनिक उपकरणों व अन्य भी विभिन्न क्षेत्रों से सम्बंधित अत्याधुनिक उपकरणों का निर्माण करवाते हैं, जिनसे विभिन्न कार्यों को करने में बहुत आसानी हो जाती है, और कार्यों को पूरा करने में समय भी बहुत कम लगता है। ये सड़कों की दशा को भी सुधारते रहते हैं, जिससे उन पर दौड़ रहे वाहनों की संख्या व उनकी रफ्तार (speed limit) में, सुरक्षित रूप से काफी इजाफा हो जाता है। ये अंतरराष्ट्रीय सीमा-भित्ति की भी देखरेख व मुरम्मत करवाते रहते हैं। साथ में, उसको रंग-रोगन करवाके, उसे चमका देते हैं, जिससे अंतरराष्ट्रीय जगत में देश को बहुत ख्याति प्राप्त होती है। देश की वृद्धि व विकास में ये अहम भूमिका निभाते हैं। ये मसीदेश, सगरदेश, अंडमानदेश व अन्नजदेश के मूलनिवासी होते हैं।

जब प्राणों पर महारत हासिल हो जाती है, तब ऐसा प्रतीत होता है कि कुण्डलिनी का ध्यान मन नहीं, अपितु प्राण कर रहा है। अर्थात मन को लगाने का बोझ कुछ हल्का सा हो जाता है, और पहले की तरह, उसे बलपूर्वक लगाने की आवश्यकता नहीं रहती।

'कर्मबंधु' उपनाम के लोगों का एक अन्य गरमदल-वर्ग है, जिसका मुख्य काम देश की सड़कों पर दौड़ रहे वाहनों के ऊपर से अतिरिक्त वस्तुओं को उठवाकर, उन्हें भंडारगृहों में सुरक्षित रखवाना होता है। ये लोग कपूरवास -लोगों की भी, कई कामों में बहुत सहायता करते हैं। ये भी मसीपुर, अन्नजपुर, गोपुर व नटपुर नामक देशों के मूलनिवासी होते हैं। 'गोपुर' नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि उस देश के निवासी गो-प्रेमी होते हैं, और

अधिकाँशतः गाय के साथ रहना पसंद करते हैं। 'नटपुर' नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि उस देश के निवासी घुमंतू व चलता-फिरता जीवन जीना पसंद करते हैं, तथा वैसा जीवन जीने वाले लोगों के साथ ही रहना पसंद करते हैं।

प्रेमयोगी वज्र एक खोजी-वैज्ञानिक प्रकार का व्यक्ति भी था। एक बार उसने जानना चाहा कि क्या केवलमात्र आत्मज्ञान की सहायता से ही , कर्मबंधन से बचाव हो सकता है? उसकी खोज करने के लिए, वह सत्संगति को छोड़कर तथा आसक्तिभाव-द्वैतभाव को साथ लेकर, इस गहन संसार-सागर में कूद पड़ा, यद्यपि शविद का अप्रत्यक्ष व हल्का सा प्रभाव तो, बलपूर्वक उसकी सहायता कर ही रहा था। वैसे भी, उस समय उसे आत्मज्ञान को अनुभव किए हुए, लगभग आठ वर्षों का समय बीत चुका था, और उसके चित्त में आत्मज्ञान की स्मृति भी बहुत धुंधली या नष्टप्राय ही हो चुकी थी। इस तरह, अनासक्ति व अद्वैत के जीवनसहायक आवरण (life supporting jacket) के बिना वह ३ वर्षों में ही आत्मभ्रमित होकर, संसारसागर में डूबने-इतराने लगा। वह आत्मज्ञान को लगभग पूरी तरह से भूल गया था। वह समझ गया था कि आत्मज्ञान अकेला कुछ नहीं कर सकता है , यदि अद्वैत व अनासक्ति को बलपूर्वक त्याग दिया जाए। अतः ऐसा जानकर, वह शविद की प्रत्यक्ष सहायता लेकर, उस अंधमहासागर से बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा। उस सद्प्रयास की सहायता से, उसे पूरी तरह से निकलने के लिए योग्य बनने में, शविदप्रदर्शित तांत्रिक-कर्मयोग के लगभग १२ वर्ष लग गए। इतने वर्षों के बाद, जब वह तांत्रिक कर्मयोग की थकान से परेशान होकर, एकांतवास के लिए चला गया; तब धीरे-२, साल-छः महीने में ही, उसके मन पर जमी हुई हल्के भ्रम की धूल, काफी हद तक साफ हो गई। आत्म-भ्रम की धूल तो कर्म से अवश्य ही जमती है, बेशक वह कर्म, तांत्रिक-कर्मयोग विधि के साथ ही क्यों न किया जाए, यद्यपि वह धूल अपेक्षाकृत रूप से बहुत पतली होती है, और शीघ्र ही धूल भी जाती है। फिर उसे वैसी ही मुक्ति (liberation) का अहसास पुनः होने लगा, जैसा अहसास उसे क्षणिकात्मज्ञान के बाद हुआ था, यद्यपि आत्मज्ञान उसे जरा भी याद नहीं रहा था। साथ में, उसे कुण्डलिनीजागरण का अनुभव भी हुआ। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मज्ञान अकेला कुछ नहीं कर सकता, अपितु साथ में अद्वैत व अनासक्ति का होना भी आवश्यक है। आत्मज्ञान तो केवल अद्वैत व अनासक्ति को अपनाने का मोक्षरूपी लाभ बताकर, उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित ही करता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि आत्मज्ञान से अधिक महत्त्वपूर्ण तो अनासक्ति व अद्वैत को निरंतर बना कर रखना है , और यदि आत्मज्ञान के बिना भी अद्वैत व अनासक्ति को धारण किया जाए, तब भी मुक्ति संभव प्रतीत होती है। इसी तरह, जो यह कहा जाता है कि पत्नी को पति की सेवा करने से मुक्ति का फल स्वयं ही मिल जाता है , उसका भी यही अर्थ है कि मुक्ति के लिए आत्मज्ञान की आवश्यकता नहीं , अपितु अद्वैतमयी दृष्टिकोण की ही आवश्यकता होती है। वह दृष्टिकोण एक पतिव्रता स्त्री को अपने पति की संगति से स्वयं ही मिल जाता है।

'सुतलानी' उपनाम के अल्पसंख्यक गरमदल-अधिकारी, टगर-अधिकारियों के घनिष्ट मित्र होते हैं। दोनों सदैव साथ-२ रहते हैं, और साथ मिलकर ही काम करते हैं। दोनों साथ मिलकर, फकरदिन सहित कई प्रकार के विद्रोहियों से देश के लोगों की रक्षा करते रहते हैं। ये अन्य अधिकारियों के साथ मिलकर, सीमा-भित्तियों का रखरखाव भी करते हैं। ये थारमन गुरु के समर्थक भी होते हैं। सुतलानी -लोग भी सगरपुर, नया अंडमानपुर, नटपुर, मसीपुर व अन्नजपुर आदि छोटे-२ देशों में बहुतायत में पाए जाते हैं। अंडमानपुर देश के दो भाग हैं। पुराना अंडमानपुर व नया अंडमानपुर। नया अंडमानपुर आधुनिक व अत्युन्नत प्रकार से विकसित किया गया क्षेत्र है। उसे बने हुए थोड़ा सा ही समय हुआ है। पुराना अंडमानपुर बहुत समय पहले अस्तित्व में आया था। वह बहुत धीरे-२ विकसित हुआ, और आज भी लगभग उसी पुरानी शैली में स्थित है। बड़ी गहराई से देखने पर ही, वह पहले की अपेक्षा नगण्य से अंतर के साथ दिखाई देता है। परन्तु नया अंडमानपुर तो एकाएक अस्तित्व में आया, और बड़े व विकसित देशों के सहयोग से, उसने विकास की सारी सीमाएं शीघ्र ही लांघ दीं। वास्तव में विकसित देशों ने उसे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही विकसित किया। उन्होंने उस देश में बहुत से प्रशिक्षण केंद्र खुलवाए, जिनमें विभिन्न प्रकार के अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाने लगा , विशेषतः उनको, जिनकी कमी से विकसित देशों को अक्सर जूझना पड़ता था। फिर वे उन अधिकारियों को उत्तम सुविधाओं का लालच देकर , अपने देशों के अन्दर आप्रवासित करने लगे। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जब बड़े व विकसित देश, छोटे-२ देशों को अपनी सुविधा के अनुसार विकसित कर देते हैं, और फिर उन्हें कठपुतलियों की तरह नचाते रहते हैं।

गीता में भी मुख्यतः अनासक्ति का ही गुणगान गाया गया है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् , मा कर्मफलहेतुर्भूः मा संगो ऽ त्वकर्मणि। 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते' व 'मा कर्मफलहेतुर्भूः', दोनों को मिलाकर, सीधा सा अर्थ है कि काम भी करते रहना है , और अपने को कर्मफल का हेतु अर्थात कर्ता भी नहीं मानना है। ऐसी स्थिति तो तभी संभव है, यदि अनासक्ति के साथ कर्म किया जाए। 'मा संगो ऽ त्वकर्मणि', इसका अर्थ है कि यदि कर्मों के बीच में, विश्राम आदि के कारण, कर्महीन अवस्थाएँ भी आएं, तो भी उनसे आसक्ति नहीं करनी है। यदि गहराई में जाएं, तो पूरे श्लोक का तात्पर्य यह है कि फल का चिन्तन इसलिए नहीं छोड़ना है कि कर्म दुष्प्रभावित होए, अपितु इसलिए छोड़ना है कि कर्म दुष्प्रभावित न होए। यह तभी संभव है, यदि

अनासक्ति के साथ फल का विचार या उसका उपभोग किया जाए। कर्म करते हुए, फल का विचार तो मन में आएगा ही। यदि कोई किसान अनार का बगीचा लगाता है, तो उसके मन में उससे उत्पन्न होने वाले अनारों , उनके विपणन-मूल्यों व उनसे प्राप्त लाभांश से सम्बंधित विचार तो आएँगे ही। वास्तव में वह फल-लाभ से प्रेरित होकर ही बगीचा लगाएगा। यदि वह फल के बारे में विचार-विमर्श नहीं करेगा, तो हानि ही उठाएगा। इसलिए इस श्लोक का भावार्थ यहाँ पर फल के विचारों का त्याग करना नहीं , अपितु फल के विचारों के प्रति अनासक्तिभाव को धारण करना ही प्रतीत होता है। फल के बारे में अधिकार न होने की जो बात कही है, वह फल के प्रति अनासक्ति को उत्पन्न करने के लिए ही कही है। साथ में , यदि वह फल का कोई विचार नहीं करेगा, तब तो ठीक ढंग से काम भी नहीं कर पाएगा, जिससे दूसरा गद्यांश, "मा संगोऽ त्वकर्मणि" खंडित हो जाएगा, क्योंकि फिर उसका लगाव अकर्मण्यता से हो जाएगा। यदि अकर्मण्यता से आसक्ति होगी, तब कर्म नहीं हो पाएंगे, या वे दुष्प्रभावित हो जाएंगे, जिससे 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' गद्यान्श का भी खण्डन हो जाएगा। "मा कर्मफलहेतुर्भूः" का अर्थ है कि तू अपने आप को कर्मफल का हेतु (कारण) या उसको उत्पन्न करने वाला या कर्म का कर्ता न समझ। इसका भी यह भावार्थ प्रतीत नहीं होता कि तू अपने को कर्ता न समझ, अपितु यह प्रतीत होता है कि तू अपने को अनासक्ति के साथ कर्ता समझ। क्योंकि यदि वह अपने को कर्ता ही नहीं समझेगा, तो मन लगाकर गुणवत्तायुक्त कर्म भी नहीं कर पाएगा, जिससे उपरोक्त गद्यांश फिर से खंडित हो जाएगा। वास्तव में अनासक्ति के साथ किए गए व विचारे गए सभी कर्म स्वयं ही भस्म हो जाते हैं , अर्थात वे कर्म होते हुए भी कर्म नहीं रहते। इसी तरह से, अनासक्ति के साथ विचारे या भोगे गए फल भी फल नहीं रहते। यदि वह समझेगा कि केवल अद्वैतवान प्रकृति ही कर्ता है, मैं नहीं, तब तो वह काम ही नहीं करेगा, और प्रकृति के सहारे ही बैठा रहेगा। अनासक्ति से यह लाभ होता है कि यदि किन्हीं कारणों से उसे फल न भी मिले, तो भी उसे बंधनकारी दुःख प्राप्त नहीं होता , अर्थात उसका अद्वैतभाव नहीं टूटता, क्योंकि अपने अनासक्तिभाव के कारण, न तो उसने कर्म किए, और इसलिए न ही फल भोगने थे, क्योंकि बिना कर्म के फल कैसे। यदि फल मिल भी जाए, तो भी अनासक्ति से भोगे जाने पर निष्फल ही हुए, अर्थात दोनों अवस्थाओं में एकसमान अद्वैतभाव। फल भोगे, तो भी निष्फल, और यदि नहीं भोगे, तो भी निष्फल। वैसे भी, अद्वैतभाव व अनासक्तिभाव तो सदैव साथ-२ रहते हैं। उदाहरण के लिए, देहदेश के किसान निरंतर कर्म करते रहते हैं। कई बार उन्हें उचित फल मिलता है , और कई बार उनकी उपज जंगली जानवरों, उग्रपंथियों, प्राकृतिक आपदाओं व विद्रोहियों की भेंट चढ़ जाती है। उन्हें द्वैत से उत्पन्न बंधनकारी दुःख होता ही नहीं, क्योंकि वे सदैव अद्वैतशील रहे, और उन्होंने कभी आसक्ति की ही नहीं। बिना फल के तो कोई कर्म होता ही नहीं है। कम से कम मानवता के रूप में तो कर्म का फल मिलता ही है। यदि किसी ने आसक्ति करनी है, तो वह मानवतारूपी फल (स्वस्थ शरीर की प्राप्ति, उसका रखरखाव व आधारभूत क्रियाकलाप) में भी करेगा। यदि किसी ने आसक्ति नहीं करनी है , तो वह बड़े से बड़े फल में भी नहीं करेगा। यह सब दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। उपरोक्त विवरण केवलमात्र पुस्तकीय नहीं है, अपितु प्रेमयोगी वज्र ने सभी कुछ स्वयं अनुभव किया था।

अगला वर्ग है 'मंगत' उपनाम के लोगों का। ये भी टगर-लोगों व सुतलानी-लोगों के साथ मिलकर, विद्रोहियों से निपटने में, उनकी सहायता करते रहते हैं। ये लोग प्रसार-शिक्षा (extension education) में भी माहिर होते हैं। पूरे देश में , स्थान-२ पर, ये प्रसार-शिविर (extension-camps) लगाते रहते हैं, और उनमें जनता को जागरूक करते रहते हैं। इनसे प्रेरणा लेकर, लोग अपनी क्रियाशीलता को बढ़ा देते हैं, और अपने स्वास्थ्य के साथ-२, राष्ट्र के स्वास्थ्य पर भी, पहले से अधिक ध्यान देने लग जाते हैं। विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में भी इनका हाथ होता है। आधारभूत संरचनाओं को भी ये बढ़ावा देते हैं। ये अन्नसपुर, नटपुर व अन्नजपुर देश के मूलनिवासी होते हैं। 'अन्नजपुर' नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि उस देश के लोगों को अनाजों से विशेष लगाव होता है। वे केवल अनाज का ही उत्पादन करते हैं। अनाज से ही उस देश की अर्थव्यवस्था चलती है। अनाज का निर्यात करके, वे अपने लिए आवश्यक, विभिन्न वस्तुओं का आयात करते हैं। यहाँ तक कि वे सब्जियां, दालें आदि भी, बाहर से ही मंगवाते हैं।

प्रातः-साँय के निरंतर अभ्यास से पुष्ट की गई कुण्डलिनी, एक संतुलक (balancer/buffer) का काम करती है, जो साधक की परिवर्तन/द्वैत के झटकों से, शविद की तरह रक्षा करती है। ये द्वैतमयी झटके आत्मा को क्षति पहुंचाते रहते हैं।

'मेदनी' उपनाम के लोगों का, एक अन्य वर्ग होता है। इस वर्ग के लोग लगामपुर , अन्नजपुर, डुगपुर व नटपुर में बहुतायत से पाए जाते हैं। 'लगामपुर' नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि उस देश के लोगों को घोड़ों से विशेष प्यार होता है। वे चित्र-विचित्र घोड़ों को पालने का शौक रखते हैं, और घुड़सवारियों का आनंद उठाते रहते हैं। अक्सर वे रंग -बिरंगे व रमणीक स्थानों पर, अपने घोड़ों के साथ दिखते रहते हैं। मेदनी -अधिकारी अपने आप्रवासक देश के लोगों की रोज-२ की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते रहते हैं, जिससे वे पूरे तन-मन से अपना काम कर पाते हैं। कुछ आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में भी उनका हाथ होता है। देश की विभिन्न संरचनाओं की ठोक-मुरम्मत करने वाले विभिन्न लोगों का भी वे निरीक्षण करते रहते हैं, और उनसे शीघ्रता से अपने काम पूरे करवाते हैं, ताकि कहीं किन्हीं खराब पड़ी वस्तुओं से, कोई नई समस्या न उत्पन्न हो जाए।

महान लोग धार्मिक, साँस्कृतिक, भौमिक व नस्लीय सीमाओं से नहीं बंधे होते हैं। वे वैश्विक व यहाँ तक कि सार्वभौमिक (सम्पूर्णसृष्टिगत) होते हैं। इसलिए उनका संरक्षण होना चाहिए। उनकी कृतियों व रचनाओं का भी संरक्षण किया जाना चाहिए। वे किसी भी क्षेत्र से सम्बंधित हो सकते हैं। वे वैज्ञानिक, योगी, तांत्रिक, दार्शनिक, कलाकार आदि, कुछ भी हो सकते हैं। जिस तरह से विज्ञान ने प्रेमयोगी वज्र को आत्मज्ञान की ओर बढ़ने का बल दिया, उसी तरह से वह औरों को व आने वाली पीढ़ियों को भी दे सकता है। जिस तरह उसे विज्ञान में दर्शन दिखा , उसी तरह औरों को व आने वाली पीढ़ियों को भी दिख सकता है। जिस तरह प्रेमयोगी वज्र को पुस्तकों व ई -पुस्तकों से तंत्रयोग सीखने का, और उससे कुण्डलिनी को जागृत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, उसी तरह उसकी पुस्तक से औरों को व आने वाली पीढ़ियों को भी प्राप्त हो सकता है। जिस तरह उसे विभिन्न ई -सामाजिक स्थानों (e-social sites), फोरमों (forums) व ब्लोगों (blogs) से सहायता मिली, उसी तरह औरों को व आने वाली पीढ़ियों को भी मिल सकती है। इसलिए सभी विद्याएँ व तकनीकें, भविष्य के लिए संरक्षित (conserved) की जानी चाहिए।

'कबालिक' उपनाम के अधिकारियों की भूमिका भी किसी से कम नहीं होती। वास्तव में 'जनकदास' वर्ग व 'कबालिक' वर्ग , दोनों एक-दूसरे के, पुराने समय के रिश्तेदार होते हैं, अतः दोनों के बीच में सर्वाधिक निकटता होना तो स्वाभाविक ही है। कबालिक -लोग, जनकदास-लोगों के वंशानुगत कार्यों को भी कर सकते हैं। इसीलिए जब देश में जनकदास-अधिकारियों की कमी होती है, या जब वे छुट्टियों पर चले जाते हैं, तब कबालिक-अधिकारी ही उनके कार्यभारों को संभालते हैं। वे बाबादास नामक पूर्वोक्त नरमदल अधिकारियों को भी देश के अन्दर आप्रवासित करने में सहायता करते हैं, और उनके उच्चतर प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करवाते हैं। सुरक्षा-विभाग में भी वे सैनिकों के साथ मिलकर, शत्रुओं को खदेड़ने में उनकी सहायता करते हैं। वे गुरु थारमन के कार्यों में भी सहयोग करते हैं। पूरे देश को समस्यारहित रखने में, वे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जिस तरह गुब्बारे के अन्दर की गर्म हवा, जो उस गुब्बारे को आकाश की ऊँचाइयों तक उठा देती है , वह उसके सिवाय किसी को महसूस नहीं होती; उसी तरह एक आदमी के मन में बसी हुई कुण्डलिनी को भी उस आदमी के अतिरिक्त कोई नहीं जान पाता, जो उसे भौतिक प्रगति के रास्ते से ले जाते हुए, आध्यात्मिक शिखर तक पहुंचा देती है।

कुण्डलिनी को तनाव के समय, अवसाद के समय, थकान के समय, या खाली समय की किसी भी अवस्था में , एक घुमाव (rotation) दिया जा सकता है। उससे मन एकदम से तरोताजा हो जाता है , और मानसिक दोष भी समाप्त हो जाते हैं। उसके लिए , पहले तो स्वाधिष्ठान व मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान करके, उसे प्राणों से कुछ भड़काया जाता है। फिर साँस रोककर, मूलबंध व उड्डीयान बंध लगाया जाता है। उन बंधों से कुण्डलिनी स्वयं ही उठकर, मस्तिष्क/सहस्रार में पहुँच जाती है। फिर नियमित श्वास लेते हुए, मस्तिष्क में उसका कुछ देर तक ध्यान, श्वासों की कुछ सहायता लेकर किया जाता है। फिर जब मस्तिष्क अधिक भारी जैसा लगने लगता है, तब कुण्डलिनी को आगे के चक्रों से नीचे ले जाते हुए (एकदम से या ध्यान करते हुए, जैसे सुगम लगे), नाभिचक्र तक उतारा जाता है। तब सभी दोष शाँत हो जाते हैं, और व्यक्ति एकदम से तरोताजा हो जाता है। वास्तव में व्यावहारिक कुण्डलिनीयोग की एक कमी को, उस पर आधारित ताओ-निर्दिष्ट माईक्रोकोस्मिक ऑर्बिट (microcosmic orbit of tao) ने पूरा किया है। योग में कुण्डलिनी को सहस्रार से नीचे उतारने को नहीं कहा गया है। संभवतः यह नैष्ठिक योगी के लिए ठीक ही था, क्योंकि उसने लोक-व्यवहार से दूर रहते हुए, केवल कुण्डलिनीजागरण को ही शीघ्रता से सिद्ध करना होता था। यद्यपि लोकव्यावहारिक व्यक्ति को बहुत सी बातों का ध्यान रखना पड़ता है। वह मस्तिष्क के दबाव को, निरंतर रूप से सहन नहीं कर सकता।

देहदेश के भिन्न-२ स्थानों पर, स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, भिन्न-२ उद्योग स्थापित किए गए होते हैं। इससे सामान को इधर-उधर लाने-ले जाने की परेशानियों से कम ही जूझना पड़ता है। उदाहरण के लिए, खेती के उपकरण बनाने वाले उद्योग, कृषि-क्षेत्रों के आसपास होते हैं। इसी तरह से, विभिन्न अधिकारियों को, अपने विभिन्न कार्यों को अमलीजामा पहनाने के लिए , भिन्न-२ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है ; जो उन सम्बंधित अधिकारियों के कार्यालयों के आसपास स्थित उद्योगों से पूरी की जाती है। उदाहरण के लिए , गुरु थारमन को बहुत अधिक संख्या में शिष्यगण व कार्यकर्ता आदि चाहिए होते हैं। वे तो दूसरे स्थानों से भी बुला लिए जाते हैं , परन्तु उन्हें विशेष प्रकार के वस्त्रों (वर्दी), जूतों, खाने-पीने, ठहरने व प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता होती है। उनके विशेष वस्त्रों आदि को व उनकी प्रशिक्षित चाल-ढाल को देखकर ही पूरे देश के नागरिक समझ जाते हैं कि वे गुरु थारमन के चेले हैं, इसलिए वे अपने सम्माननीय गुरु के द्वारा भेजे गए उपदेशकों को सुनने के लिए तैयार होकर , इकट्ठे हो जाते हैं। गुरु थारमन की शिष्य-मंडलियों की अन्य दैनिकोपयोगी व विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी, गुरु के विशाल परिसर (campus) में ही विशिष्ट उद्योग लगे होते हैं। जो सामान्य उद्योग होते हैं, वे तो पूरे देश में बिखरे होते हैं। उन सामान्य उद्योगों को हम लघु या कुटीर उद्योग भी कह सकते हैं, क्योंकि वे छोटे-२ होते हैं, और आसपास की छोटी-मोटी आवश्यकताओं को पूरा करते रहते हैं। उदाहरण के तौर पर , रहने के लिए घर व

पहनने के लिए वस्त्र, हर स्थान पर चाहिए होते हैं। इसी तरह, चलने के लिए सड़कें भी हर जगह चाहिए होती हैं। इसलिए ऐसी अहम जरूरतों से सम्बंधित वस्तु-निर्माण के उद्योग लगभग प्रत्येक क्षेत्र में, आवश्यकतानुसार लगे होते हैं। यदि आवश्यकता न हो या कम आवश्यकता हो, तो कुछ उद्योग बंद भी करवा दिए जाते हैं। विभिन्न यंत्रों के कलपुर्जों के उद्योग भी प्रत्येक क्षेत्र में होते हैं। सीमाभित्तियों के निर्माण में काम आने वाली वस्तुओं के उद्योग सीमाक्षेत्रों में होते हैं। मुख्यायात द्वार /मध्यमार्ग-प्रवेशद्वार पर लगे हुए, कांट-छाँट व घिसाई-पिटाई करने वाले प्राथमिक परिष्करणयंत्रों को उनके कलपुर्जों के साथ बनाने वाले उद्योग, उस आयातद्वार के निकट ही स्थापित किए गए होते हैं। हथियारों व अन्य सुरक्षा-उपकरणों को बनाने वाले उद्योग भी रक्षाविभाग के कार्यालयों के आसपास ही होते हैं। परन्तु देहदेश की रक्षाप्रणाली तो सर्वोत्तम होनी चाहिए, क्योंकि बीहड़ों में घात लगाकर बैठे हुए शत्रु, सँभलने का अवसर ही नहीं देते। इसलिए चलायमान रक्षा-उद्योगों (portable defence-industries) का प्रचलन भी वहाँ पर बहुत अधिक है। उस चलायमान प्रणाली में छोटे-२ चल-उद्योग होते हैं, जो पूरे देश में दौड़ते रहते हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर , अपने किसी भी वर्तमान स्थान पर ही, हथियारों का जखीरा निर्मित कर देते हैं। इस तरह से, उन्हें हथियारों को हमेशा ही अपने साथ उठाकर नहीं घूमना पड़ता। उन हथियारों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला कच्चा माल भी सभी प्रकार के उद्योगों को आसानी से व हर स्थान पर उपलब्ध हो जाता है , क्योंकि कच्चे माल को ढोती हुई गाड़ियां पूरे देश की सड़कों पर घूम रही होती हैं। यद्यपि कुछ माल स्थानीय भी होता है , जो वहीं पर, आसपास में मिल जाता है। परन्तु स्थानीय माल अधिकाँशतः तभी प्रयुक्त होता है, जब बाहर से माल की आपूर्ति कम हो रही हो, क्योंकि स्थानीय क्षेत्रों के दोहन से, वहाँ का पर्यावरण दुष्प्रभावित हो सकता है। इसी तरह से, विभिन्न वस्तुओं को रखने के लिए, जिन छोटे-२ डिब्बों व बोतलों आदि की आवश्यकता पड़ती रहती है , वे भी सम्बंधित भण्डारगृह-परिसरों (storehouse-campuses) में स्थापित किए गए उद्योगों में ही बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए , नवदेश के लिए भेजी जाने वाली वस्तुओं को, सीमाक्षेत्रस्थित भण्डारगृहों में ही अंतिम रूप से परिष्कृत (final refining) व लिफाफाबंद (packing) किया जाता है, जिसके लिए उन भण्डारगृह-परिसरों में ही छोटे-२ उद्योग लगे होते हैं। वात-परिवहन (gas transport) से सम्बंधित वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्योग भी विशिष्ट प्रकार के होते हैं। वास्तव में वात -पेटिकाओं (gas cylinders) को ढोने वाले कर्मचारियों को ही सूक्ष्म औद्योगिक -इकाइयाँ (micro industry-kits) उपलब्ध करवाई गई होती हैं, जिनसे वे चलते-२ ही अपनी वात-पेटिकाओं के टूटे-फूटे सामान बनाते रहते हैं, और उन्हें पुनः-२ उसी तरह से अपनी वात-पेटिकाओं में जोड़ते रहते हैं। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को ढोने वाली गाड़ियों का निर्माण केन्द्रीय उद्योग में होता है , जो देश के लगभग बीचोंबीच, विशाल परिष्करण-उद्योग के साथ ही जुड़ा होता है। कई अत्यधिक क्रियाशील लोगों की बस्तियों में जो वात -भंडारणकक्ष (gas storage tanks) होते हैं, उनका निर्माण करने वाले उद्योग भी वहीँ पर स्थित होते हैं। इस विकेंद्रीकृत औद्योगिक-प्रणाली से, पूरे देश का समानरूप से औद्योगिक विकास सुनिश्चित होता है।

प्रथम देवीरानी से शुद्ध मानसिकप्रेम के समय, जब उसके रूप की कुण्डलिनी, निरंतर रूप से प्रेमयोगी वज्र के मन में, पूर्ण प्रचंडता के साथ प्रज्वलित हो रही थी, उस समय भी वह रूपांतरण (traansformation) के दौर से गुजर रहा था। उसके मन में पिछली सभी बातें व घटनाएँ शिथिल पड़ रही थीं। उसका उनके प्रति आसक्तिभाव व अहंकारभाव भी क्षीण हो रहा था। ऐसा लग रहा था, जैसे कि वे सभी दूर से दूर जा रही थीं। वे होते हुए भी, न होने की तरह लग रही थीं। ऐसा लग रहा था, जैसे कि वे कभी भौतिक थीं ही नहीं, अपितु शुद्ध मानसिक ही थीं। वे सभी, एक दिव्य आनंद के साथ मन में प्रकट होती जा रही थीं, और उत्तरोत्तर क्षीण भी होती जा रही थीं। उन सभी के ऊपर उस प्रथम देवीरानी की कुण्डलिनी हावी होती जा रही थी। वे सभी, उस प्रज्वलित कुण्डलिनी के आगे वैसे ही गौण हो रही थीं , जैसे कि सूर्य के आगे दीपक गौण हो जाता है। उन सभी के साथ , वह कुण्डलिनी चिपकती जा रही थी। प्रेमयोगी वज्र को ऐसा लग रहा था , जैसे कि वे सभी पिछली बातें व घटनाएँ उसके किसी पूर्वजन्म की थीं , जब उसने एक आध्यात्मिक परिवार में जन्म लिया था, परन्तु फिर उसका पुनर्जन्म उस देवीरानी से सम्बंधित किसी वैज्ञानिक परिवार में हो गया हो , जिससे वह बहुत से लोगों को, विशेषतः अध्ययन से सम्बंधित क्षेत्र वालों को, विचित्र जैसा भी लगता था। अतः वह पुराना जीवन भूलकर, जी-जान से विज्ञान का अध्ययन करने लगा, जिससे उसे कई सफलताएं भी मिलीं। संभवतः इसे ही आत्म-रूपांतरण (self transformation) या द्विजरूपता (द्वि-द्वितीय, ज-जन्म/second birth) कहते हैं। फिर लगभग २० वर्षों के बाद, उसका त्रितीय जन्म हुआ, जब उसके मन में, उसके गुरु की कुण्डलिनी जागृत हुई। उसमें, उसके मन की प्रथम कुण्डलिनी (प्रथम देवीरानी) को प्रतिस्थापित (replace) करने के लिए, उसकी द्वितीय कुण्डलिनी (गुरु) आ गई थी, क्योंकि वह द्वितीय कुण्डलिनी जागृत होकर, प्रथम कुण्डलिनी से भी अधिक शक्तिशाली बन गई थी।

पूर्वोक्त कलिक-अधिकारी, मध्यमार्ग पर दौड़ रहे सार्वजनिक-वाहनों (public transport) से अपने निर्दिष्ट वाहनरोकस्थानों (bus stops) पर पहुंचते हैं, परन्तु वहाँ से देश के भीतर प्रविष्ट होने के लिए, विशेष रूप से निर्मित व्यावसायिक गाड़ियों (luxary taxis) की मांग करते हैं। वे गाड़ियां

भी देश के पूर्वोक्त केन्द्रीय उद्योग में ही निर्मित होती हैं। वैसे तो उनमें से कुछ अधिकारी सार्वजनिक वाहनों से भी चले जाते हैं, यद्यपि मन मसोस कर ही। बहुत से अधिकारी तो अपनी पसंद की गाड़ी को न देखकर, आगे जाने वाली बसों में पुनः सवार होकर, आगे जाते रहते हैं, और नाराज जैसे होकर, देश से बाहर निकल जाते हैं।

पूर्वोक्त प्रकरण में, जिस तरह से प्रेमयोगी वज्र को अपने गुरु का मानसिक रूप, उनके भौतिक रूप से भी अधिक सत्य व प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ, उसी तरह से किसी भी मानसिक अनुभव को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। इसका यह अर्थ है कि सभी मानसिक अनुभव सत्य होते हैं। इसका यह अर्थ भी है कि शिव, विष्णु, कृष्ण, राम, दुर्गा आदि देवी-देवताओं के सभी रूप सत्य हैं, और योगी लोग उन्हें प्राचीन काल से लेकर, प्रत्यक्षरूप से अनुभव करते आए हैं। प्रेमयोगी वज्र को जिस समय (कुण्डलिनीजागरण के समय) अपने मन में स्थित गुरु का रूप प्रत्यक्ष हुआ, उस समय स्वाभाविक रूप से, अपने सामने का प्रत्यक्ष दृश्य भी उसे अपने मन में ही अनुभव हुआ; क्योंकि पूर्णतया एकसमान दो अनुभवों को इस तरह से विभक्त नहीं किया जा सकता कि एक बाहरी है, और एक भीतरी। वास्तव में भीतरी अनुभव हम उन्हीं को बोलते हैं, जो बाहरी अनुभवों की अपेक्षा गौण व कम तीव्रता (low intensity) वाले होते हैं। इस परिपेक्ष्य से उसे बाहरी व भीतरी, दोनों अनुभव अपने भीतर ही प्रतीत हुए, क्योंकि अपने उन गुरु के मानसिक रूप को तो वह बाहरी नहीं मान सकता था, जो वहाँ पर थे भी नहीं, और लगभग २० वर्ष पहले ही दिव्यपरलोकवासी भी बन गए थे। उस अनुभवयुक्त स्थान पर हो रही आवाजें आदि तो जैसे उसके अनुभव-पटल पर आई ही नहीं, सिवाय मस्तिष्क के भीतर के विचित्र शोर के, जैसा कि पहले भी वर्णन किया जा चुका है। संभवतः मस्तिष्क की प्राथमिकता तो दृश्य को बना कर रखने की ही होती है, आवाज की बारी तो उसके बाद ही आती है। उस विशाल अनुभव के समय, मस्तिष्क की सारी शक्ति तो उस शक्तिशाली, भौतिक/दृश्यात्मक जैसे अनुभव को बना कर रखने में व्यय हो रही थी, और यहाँ तक कि उसके लिए भी कम पड़ रही थी। संभवतः मस्तिष्क में नाड़ी-रसायनों की बाढ़ (neurochemicals' flood) के कारण ही, वह पूर्वोक्त गन्नाटे के जैसा शोर उत्पन्न हो रहा था।

देहदेश के अधिकाँश कर्मचारियों के पास चल-दूरभाषयंत्र (mobile phones) भी होते हैं। उन पर वे जहाँ कहीं पर भी उपस्थित रहते हुए, उच्चादेशों को सुनते हैं, और फिर आसपास के, उस निर्दिष्ट समूह के सभी लोग इकट्ठे होकर, सामूहिक रूप से उस दूरभाष-निर्दिष्ट काम में जुट जाते हैं। इसी तरह से सामूहिक प्रयास करके, वे काम को शीघ्रता से निष्पन्न कर देते हैं। उन चल-दूरभाषयंत्रों को बनाने के लिए, छोटी-२ औद्योगिक इकाइयाँ सभी के पास होती हैं। उनसे सभी लोग उनको स्वयं ही बनाते रहते हैं, और उनकी मुरम्मत भी करते रहते हैं। अन्य सभी देहदेशीय यंत्रों की तरह, वे यंत्र भी पर्यावरण-हितैषी (environment friendly) व जैवविघटनशील (biodegradable) भी होते हैं।

प्रेमयोगी वज्र के पैरों के अंगूठों से कभी-कभार नाखून भी उखड़ जाया करते थे। न कोई दर्द, न कोई रोग। पूरा नाखून धीरे-२ सफेद हो जाया करता था, और ऊपर से उखड़ा हुआ सा रहता था, जिससे उसे काटना पड़ता था। कई बार, कहीं पर उसका थोड़ा सा भाग चिपका रहता था, जिसमें जीवन की लाली होती थी। उस भाग को वैसे ही, बिना काटे छोड़ना पड़ता था। कई स्थानों पर वर्णन आता है कि योग से या क्रियाशील कुण्डलिनी से शरीर में, विशेषकर पैरों के अंगूठों में गर्मी बढ़ जाती है, जिससे ऐसा होता है। संभवतः तभी तो शास्त्रों में गुरु के पैरों के अंगूठों को स्पर्श करने को कहा जाता है, क्योंकि वहाँ से कुण्डलिनी की शक्ति, आसानी से प्राप्त हो जाती है।

देहदेश के मेहनतकश लोगों को काम करने के लिए, विभिन्न प्रकार की रस्सियाँ, डोरियाँ, कीलें, पेच आदि सामान्य वस्तुएँ और कार्यानुसार विशिष्ट उपकरण भी चाहिए होते हैं। उनको बनाने का प्रशिक्षण लगभग सभी लोगों को दिया गया होता है, और लगभग सभी, अपने स्तर पर ही, सड़कों पर दौड़ती हुई गाड़ियों से कच्चे माल को उठवाकर, अपने स्तर पर ही उनका निर्माण कर लेते हैं। कुछेक विशेष सामग्रियों के निर्माण के लिए, विशेष उद्योगों की आवश्यकता भी पड़ जाती है, जो सम्बंधित क्षेत्रों में, आसपास में ही स्थित होते हैं।

पूर्वोक्त क्षणिकात्मज्ञान के बाद, संभवतः प्रेमयोगी वज्र को अद्वैत का बल नहीं मिल रहा था, क्योंकि उस समय उसके पास काम की भी कमी थी। वह अपने घर से दूर, एक निर्वासित सा जीवन जी रहा था। वहाँ पर, उस ग्रामाभ्यस्त प्रेमयोगी को खेत-खलिहान आदि में काम करने का अवसर नहीं मिला। उस समय भिन्न-२ पुस्तकों को पढ़ने का प्रचलन भी नहीं था। न ही उस समय ई-पुस्तकें, इंटरनेट आदि अत्याधुनिक सुविधाएँ ही आई थीं। वास्तव में अद्वैत/द्वैताद्वैत तो कर्मों से, विशेषकर शारीरिक श्रम वाले कर्मों से और सर्वोत्तम रूप से उन कर्मों से, जिनमें मस्तिष्क व शरीर, दोनों का बराबर इस्तेमाल होता हो, उनसे पैदा होता है। अद्वैत से ही कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है, जिससे सर्वोत्तम स्थिरता प्राप्त होती है। यदि तीव्रता व निरंतरता के साथ अद्वैतमयी कर्म उपलब्ध न हों, तो कुण्डलिनी को अद्वैत का पर्याप्त बल नहीं मिलता। इससे वह मन में निरंतर रूप से नहीं बनी रह पाती, जो आत्मज्ञान या कुण्डलिनीजागरण की अत्युच्च मानसिकता के बाद पीड़ादायक होता है। यदि काम भी बहुत हों, परन्तु अद्वैत को साथ में धारण

न किया जाए, तब भी पूरा लाभ नहीं मिलता, यद्यपि थोड़ा-बहुत अद्वैतभाव तो प्रेमपूर्ण व भावपूर्ण समाज में स्वयं ही मिल जाता है। अद्वैत की कमी से, अभाव (absence/zero) वाली स्थिति में कुण्डलिनी एकदम से गायब हो जाती है , जो पूर्णताप्राप्त योगी के लिए असहनीय हो जाता है। उस स्थिति को ही कुण्डलिनी का पिंगला में प्रविष्ट होना कहा जाता है। वैसी स्थिति में योगी कर्मलोभी जैसा बनकर , अवसाद में जैसा डूबने लगता है , जिससे सर्वसामान्य सामाजिक व्यवहार व कार्य दुष्प्रभावित हो जाते हैं। इसी तरह भाव (presence/non zero) की स्थिति में कुण्डलिनी बहुत अधिक प्रचंड हो जाती है। उसे कुण्डलिनी का इड़ा नाड़ी (अनुभवात्मक) में प्रविष्ट होना कहा जाता है। वैसी स्थिति में भी मन पूरी तरह से कुण्डलिनी का दास बन कर, कुण्डलिनी के आनंद में डूबा रहता है, और सामाजिक व्यवहारों व दायित्वों पर समुचित ध्यान नहीं दे पाता। अद्वैतभाव से कुण्डलिनी, भावों व अभावों में, लगभग समान रूप से विद्यमान रहती है, जिससे द्वैत के शक्तिशाली झटकों से सुरक्षा हो जाती है। किसी भी स्तर के द्वैत से झटके तो लगते ही हैं, यद्यपि कुण्डलिनीयुक्त द्वैत से तो वे झटके विवृद्ध (amplify) हो जाते हैं, जिससे हानि होने की संभावना भी बढ़ जाती है। कुण्डलिनी से अद्वैत भी विवृद्ध हो जाता है, यदि अद्वैतभाव बना कर रखा जाए। अद्वैत से जब कुण्डलिनी सभी अवस्थाओं में लगभग एकसमान जैसी स्थिति में रहती है, तब उसे कुण्डलिनी का सुषुम्ना नाड़ी में स्थित होना कहा जाता है। वास्तव में , अभाव में तो कुछ भी विद्यमान नहीं रहता, परन्तु फिर भी, अद्वैत से वह अभाव कष्टदायक नहीं बनता, और न ही लम्बे समय तक रहता है, क्योंकि कुण्डलिनी शीघ्र ही चित्र-विचित्र भावों के साथ वहाँ पहुँच जाती है। कुण्डलिनी का वह भाव भी साधारण भाव की तरह ही आसक्तिकारक होता है , यद्यपि अद्वैत की सहायता से वह भाव स्वप्नवत या उस प्रकार से अनुभव होता है, जिस प्रकार के अनुभव से, अभाव होने पर झटका न लगे। साथ में, वह भाव भी लम्बे समय तक नहीं बना रहता, अपितु शीघ्र ही वहाँ पर अभाव पहुँच जाता है। इस तरह से, भाव व अभाव शीघ्र-२ आते-जाते रहते हैं, जिससे आसक्ति होने के लिए पर्याप्त समय ही नहीं मिल पाता, अतः आसक्तिजन्य द्वैत से रक्षा होती रहती है। अब तो विज्ञान से भी सिद्ध हो गया है कि मस्तिष्क का आधा भाग भाव में व आधा भाग अभाव में बलवान रहता है। आधे भाग को इड़ा नाड़ी नियंत्रित करती है, और आधे भाग को पिंगला नाड़ी। जब इड़ा व पिंगला, दोनों नाड़ियाँ समान प्रभाव की होती हैं, तब सुषुम्ना नाड़ी का प्रभावी होना कहा जाता है। एक नासिका -छिद्र से इड़ा का सम्बन्ध होता है , और एक से पिंगला का। दोनों नासिका-छिद्रों के समान रूप से खुले रहने से ही सुषुम्ना प्रभावी हो जाती है। वैसे भी शविद के अद्वैत से , दोनों नासिका-छिद्र स्वयं ही अधिकाँश समय खुले रहते हैं, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र ने अनुभव किया था। उससे आदमी की सुन्दरता, सामाजिकता, दायित्व-निर्वहन व रचनात्मकता आदि विशेषताओं में भी वृद्धि होती है। व्यावहारिक रूप से भी देखा जाता है कि एक नासिका -छिद्र से साँस लेते हुए, दूसरे छिद्र से रुकावट की आवाज या रुकावट का संकेत भी करने वाला व्यक्ति, कुछ विचित्र सा लगता है। अधिकाँशतः किसी के असमान नासिका -छिद्रों का पता तो स्वयं ही , किसी दिव्य संकेत (intution)/उसके द्वैतभाव से लग जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि अद्वैतपूर्ण व्यक्ति ही अधिक सुन्दर व आकर्षक होते हैं। स्वर-विज्ञान के अनुसार, नासिका छिद्रों का सम्बन्ध स्वास्थ्य से होता है। लेखक ने भी इसे सही पाया, जब छोटे-मोटे मानसिक/शारीरिक रोगों से व टीकाकरण से उसके नासिका छिद्रों की चाल कुछ दिनों के लिए बदल जैसी जाती थी। यह भी कहा जाता है कि कुछ दिनों तक यदि दोनों नासिका -छिद्र निरंतर रूप से बराबर खुले रहें , तो आत्मज्ञान हो जाता है। वास्तव में ऐसा तभी होता है, जब बारम्बार के अभ्यास से अद्वैत बहुत दृढ़ हो जाता है, किसी चमत्कार आदि से नासिका-छिद्र स्वयं नहीं खुल जाते। कृत्रिम विधियों से, जैसे कि योग आदि से भी नासिका-छिद्रों को खोलकर, कुछ अद्वैतभाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु वास्तविक व दृढ़ अद्वैत तो शविद-पुराण आदि अद्वैतशास्त्रों व कर्मों की मिश्रित सहायता से, मन के माध्यम से ही उत्पन्न होता है।

आह्लादाशीष नामक अधिकारी, देहदेश का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है। वह देश के बहुत से अत्यावश्यक कार्यों को संपन्न करवाता है। उस पूरे देश की सड़कों पर, खाद्यान्नों से भरे हुए वाहन दौड़ते रहते हैं। परन्तु अधिकाँश नागरिक , अपने लिए आवश्यक खाद्यान्नों को, उन वाहनों से नहीं उठाते। वैसे भी देहपुरुष नैतिकता व आदर्शवाद के धनी होते हैं। वे वस्तुस्वामी की आधिकारिक स्वीकृति के बिना , किसी भी पराई वस्तु को , विशेषकर मुख्य खाद्यान्न को छूने तक को चोरी या पाप समझते हैं। अनाज को , विशेषकर मोटे व मुख्य अनाज को तो वे भगवान का रूप समझते हैं , और बिना उसके मालिक की स्वीकृति के उसे हड़पने को भगवान का अपमान समझते हैं। संभवतः उन्हें खाद्यान्न में विष होने की संभावना से उत्पन्न भय भी सताता रहता है। इसीलिए आह्लादाशीष अधिकारी की नियुक्ति की गई होती है , ताकि वह उन विशिष्ट खाद्यान्नों को ग्रहण करने के लिए , जनता को आधिकारिक स्वीकृति प्रदान करवाता रहे। साथ में वह अतिरिक्त अन्न का भंडारण भी करवाता रहता है। उसका कार्यालय पूर्वोक्त केन्द्रीय उद्योग के निकट ही, एक अतिसुन्दर स्थान पर बना होता है। वह स्थान पूर्वोक्त मुख्य वनकमार्ग के सामने ही होता है। उक्त स्थान पर , उसके छोटे-२, और भी बहुत से अधीनस्थ कार्यालय, थोड़ी-२ दूरी पर बने हुए होते हैं। आह्लादाशीष के अधीनस्थ कर्मचारी पूरे देश में दौड़ते रहते हैं, और नागरिकों को खाद्यान्न उठाने की स्वीकृति देते रहते हैं। साथ में, नागरिकों की तत्संबंधित शंकाओं को भी वे दूर करते रहते हैं। कई देशों में, उनके निर्माण से लेकर

ही, वह खाद्यान्नस्वीकृति-विभाग बना ही नहीं होता है, या यदि बना होता है, तो बहुत ही निम्न व नकारा दर्जे का। वैसी हालत में, देश को सदा के लिए आप्रवासित आह्लादाशीष-कर्मचारियों के आश्रित रहना पड़ता है। उस देश ने वास्तव में उस विभाग को स्थापित करना ही नहीं सीखा होता है। दूसरे देश भी उसे वैसा नहीं सिखाते, क्योंकि वे चाहते हैं कि प्रभावित देश सदा के लिए उनके आश्रित रहकर, उनकी अर्थव्यवस्था को संबल प्रदान करता रहे। कई बार, देश के आम नागरिकों को आह्लादाशीष-कर्मचारियों के ऊपर विश्वास ही नहीं होता, जिससे वे उनके द्वारा प्रदत्त स्वीकृति को अनसुना कर देते हैं। वैसे में, आह्लादाशीष अधिकारी को अपने कर्मचारियों की संख्या व अपने प्रशासन की जटिलता बढ़ानी पड़ती है। फिर जब उनमें से बहुत सारे कर्मचारी इकट्ठे होकर, लोगों की शंकाओं व प्रश्नों को सुनते हुए, अपना पूरा जोर लगाकर व अपने विभागीय प्रशासन की जटिलता को दिखाकर, उनका समाधान करते हैं, तब कहीं जाकर लोग उनके ऊपर विश्वास करने लगते हैं, और फिर उनकी दी हुई स्वीकृति को स्वीकार कर लेते हैं। इस तरह से बहुत सा समय निकल जाता है। परन्तु जनता को इतनी अधिक अहमियत देने से, वह ज्यादा ही भाव खाने लग जाती है, और उसमें अहंकार भी भर जाता है। वैसी हालत में, उक्त अधिकारी को अपने कर्मचारियों व अन्य प्रशासनिक कार्यप्रणालियों को निरंतर ही बढ़ाते रहना पड़ता है। अंत में उसके हाथ भी खड़े हो जाते हैं। उसके सभी कर्मचारी नौकरी छोड़कर भाग जाते हैं, जिससे सम्बंधित प्रशासनिक कार्यप्रणालियाँ भी क्षीण हो जाती हैं। उससे वह अधिकारी भी हताश होकर, अपने छोटे से व साधारण से कार्यालय में, चुपचाप होकर बैठ जाता है, फिर वही पूर्वोक्त सिलसिला शुरु हो जाता है, अर्थात प्रभावित देश को विदेशी प्रणाली पर ही ताउम्र आश्रित होकर रहना पड़ता है।

प्रेमयोगी वज्र ने कुण्डलिनीजागरण के समय अनुभव किया था कि वह पूर्णतः कुण्डलिनी-अस्मिता (kundalini-ego) बन गया था। उसके साथ जो सामने के दृश्य थे, वे भी उस कुण्डलिनी-अस्मिता के साथ जुड़ गए थे। इसका अर्थ यह है कि उस समय का जो भी अनुभवात्मक वस्तुभाव-पुंज था, वह प्रेमयोगी वज्र को अपना रूप लग रहा था, बाहर-भीतर अदि का कोई भेद नहीं था। एक बात और है। यदि वह पहले से ही मन में बैठा कर रखता कि वह कुण्डलिनीजागरण के समय ऐसा करेगा या वैसा करेगा, तब संभवतः कुण्डलिनीजागरण होता ही न, क्योंकि वह तभी होता है, जब उसके होने के बारे में कोई भी संभावना मन में न हो, तथा उसके लिए कोई तैयारी न करके रखी गई हो। अर्थात वह अचानक होता है। इसका अर्थ है कि कुण्डलिनीजागरण के समय साधक जो कुछ भी करेगा, स्वभाववश व बिना विचार के ही करेगा। संभवतः अद्वैतमयी स्वभाव के परिपक्व होने पर ही, कुण्डलिनी को पूरी तरह से सहा जा सकता है।

आह्लादाशीष-कार्यालय के निकट ही गोलोकजन नामक अधिकारी का कार्यालय भी होता है। उसका गोलोकजन नाम इसलिए पड़ा है, क्योंकि वह दुग्धप्रेमी होता है, और खाद्यान्नों-पेयों में दूध की उपलब्धता को बढ़ावा देते हुए, दूध को सर्वाधिक प्राथमिकता देता है। देहदेशनागरिक भी दूध पीकर सर्वाधिक प्रसन्न रहते हैं। वास्तव में ये दोनों अधिकारी एक-दूसरे के व्यावसायिक सहयोगी ही होते हैं। जब देशवासी, आह्लादाशीष के इशारे पर बहुत सा खाद्यान्न उठाकर अपने-२ घरों के अन्दर भर देते हैं, तब देश की सड़कों पर दौड़ती हुई खाली मालवाहक गाड़ियों की भरमार हो जाती है। जरूरतमंद लोगों के, विशेषकर मेहनतकश लोगों के सामने तो भुखमरी के जैसे हालात पैदा हो जाते हैं, क्योंकि वे लोग तो सीधे-साधे कर्मयोगी होते हैं, जो अपने पास भविष्य के लिए कुछ भी संचित करके नहीं रखते। वे तो रोज का कमाने वाले व रोज का खाने वाले लोग होते हैं। उन साधुस्वभाव लोगों को बचाने के लिए, उपरोक्त गोलोकजन-अधिकारी हरकत में आ जाता है। वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को पूरे देश में फैला देता है। फिर वे कर्मचारी, पूरे देश में स्थान-२ पर बने हुए भंडारघरों से, खाद्यान्नों को बाहर निकलवाकर, उन्हें मालवाहक गाड़ियों पर लदवाते हैं। उन लदी हुई मालगाड़ियों को फिर वे भण्डारघर-परिसरों से पीछे हटवा कर, उन्हें देश के अंतर्बद्ध (interconnected) सड़कजाल (road network) के अन्दर प्रविष्ट करवा देते हैं। फिर वे गाड़ियां पूरे देश में घूमते हुए, आवश्यक खाद्यान्नों को सभी नागरिकों के लिए उपलब्ध करवाती रहती हैं। यदि खाद्यान्नों से भरी हुई गाड़ियां आवश्यकता से अधिक हो जाएं, तब आह्लादाशीष पुनः सक्रिय हो जाता है, और खाद्यान्नों के अधिकतम उपयोग के लिए, नागरिकों को प्रेरित करवाने लग जाता है। यदि फिर भी खाद्यान्नों की मात्रा, एक अधिकतम सुरक्षितसीमा से ऊपर रहे, तब वे कर्मचारी उनको पुनः भंडारित करवा देते हैं। ऐसा करना इसलिए जरूरी होता है, क्योंकि आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न, कई दिनों तक खुले में घूमता रहने से, वर्षा आदि पर्यावरणीय विघ्नों से भीग कर सड़ता रहता है, और देश के विभिन्न भागों में गन्दगी व बीमारियाँ आदि फैलाता रहता है। जब अकाल, बेमौसम आदि के कारण, खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता है, तब भी यह अधिकारी क्रियाशील हो जाता है। उस समय यह अधिकारी छोटे तबके के लोगों को मछलियाँ, माँस, अंडा आदि खाने के लिए भी प्रेरित करता है, ताकि उच्चकोटि के शाकाहारीप्रिय-खाद्यान्न, उच्च तबके के लोगों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकें, और वे कहीं नाराज होकर देश को संकट में न डाल दें। कई बार, गंभीर खाद्यान्न-संकट पैदा होने पर, वह निम्नकोटि के खाद्यान्नों, अण्डों व मत्स्यादि को रूपांतरित करवा के, उन्हें उच्चकोटि के स्वादिष्ट, पौष्टिक व डिब्बाबंद खाद्यान्न (nutrient supplements) के रूप में परिवर्तित

करवा देता है। फिर वह उन्हें अच्छी तरह से सजवा कर, उन्हें पूरे देश में वितरित करवा देता है। कुछ समय के लिए, उससे भी समस्त जनता काफी हद तक संतुष्ट हो जाती है, परन्तु फिर भी, खाद्यान्न तो खाद्यान्न ही होता है। विशेषतः उच्च तबके के विद्वान लोग तो उस रूपांतरित तामसिक-अन्न से लम्बे समय तक अपना गुजारा नहीं चला पाते।

सभी की मानसिक धारणाएं व जीवन-पद्धतियाँ भिन्न-२ होती हैं। इसलिए सभी के लिए, एक जैसी साधना-पद्धति, अधिक प्रभावशाली नहीं होती। वेद-पुराण सबके लिए सर्वसामान्य हैं, और लगभग सभी धारणाओं व जीवन-वृत्तियों से सम्बंधित हैं, परन्तु फिर भी उन्हें विशिष्ट जीवन -पद्धति के लिए, उससे सम्बंधित विशिष्ट अद्वैत-पद्धति से भी समृद्ध (enrich) करना अधिक प्रभावशाली होता है। ऐसा ही प्रेमयोगी वज्र ने भी किया था , जिससे उसे शीघ्र ही सफलता मिल पाई थी। व्यवसाय के अनुसार, निजी अद्वैतशास्त्र भी बनाया जा सकता है। भिन्न-२ व्यवसायों के अनुसार, भिन्न-२ अद्वैत-धारणाओं को मन में बना कर रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए , यदि किसी का व्यवसाय व्यावहारिकता, साँसारिकता आदि से भरा हुआ हो; तो उसे तंत्र से व उसके साथ, उस व्यवसाय पर आधारित अद्वैतशास्त्र से सर्वाधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। शविद तो सभी व्यवसायों को अपने अन्दर समाहित करता है, इसलिए यह अद्वैतशास्त्र प्रत्येक मामले में लाभकारी सिद्ध हो सकता है। यदि किसी के व्यवसाय या जीवन-पद्धति में यौनता का अंश अधिक हो, तो उसे शविद के साथ यौनयोग से अधिक लाभ मिल सकता है। यदि किसी का व्यवसाय आदर्शवाद , नीतिवाद, नियमबद्धता, अनुशासन, तपस्या, इन्द्रिय-नियंत्रण आदि से भरा हो; तो शविद के साथ साधारण योग, भक्ति, ज्ञानयोग आदि उसके लिए अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। फिर भी, रुचि के अनुसार, किसी भी साधना-पद्धति या अद्वैतशास्त्र की सहायता ली जा सकती है। दृष्टिकोण पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। प्रेमयोगी वज्र का दृष्टिकोण किशोरावस्था में ही शविद -सम्मत, तंत्र-सम्मत व यौनयोग-सम्मत बन गया था, तभी उसे बाद के वर्षों में, इन्हीं साधना-पद्धतियों से कुण्डलिनीजागरण का अनुभव हुआ। इससे सिद्ध होता है कि जीवन में जितनी शीघ्रता से आध्यात्मिक -दृष्टिकोण की नींव डाल दी जाए, तथा उस दृष्टिकोण से सम्बंधित साधना को बढ़ाते रहने का निरंतर प्रयत्न किया जाए, भविष्य में उतनी ही शीघ्रता से व उतना ही अधिक लाभ मिलता है। तंत्र, यौनयोग व शविद के दृष्टिकोण से प्रेमयोगी वज्र को २० वर्षों में ही कुण्डलिनीजागरण प्राप्त हो गया , वह भी उच्च गुणवत्ता के कर्मों , जीवनचर्याओं, सुविधाओं, साँसारिकताओं व व्यावहारिकताओं के साथ। तो फिर इससे बढ़िया दृष्टिकोण तो कहीं भी दृष्टिपथ में नहीं आता। उसे केवलमात्र एक वर्ष के नियमित कुण्डलिनीयोग और अंतिम दौर के, अतिरिक्त एक माह के यौनयोग से कुण्डलिनीजागरण का अनुभव हो गया। यह एक आश्चर्य है, क्योंकि कहते हैं कि योग के नियमित अभ्यास से भी बहुत वर्ष लग जाते हैं। श्री गोपीकृष्ण को १७ वर्ष लगे थे। प्रेमयोगी वज्र को संभवतः इसीलिए शीघ्रता से हुआ, क्योंकि उसका आधारभूत साधनामय दृष्टिकोण (अद्वैत) बहुत पुराना था, व उसने शविद की भरपूर सहायता ली थी।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम के बाद, यदि थोड़े समय तक (लगभग १५-२० मिनट तक) प्रतीक्षा की जाए, तो बंद नासिका-छिद्र स्वयं ही खुल जाता है, और दोनों नासिका-छिद्रों से, समान रूप से वायु प्रवाहित होने लगती है। उस समय योग करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। इसलिए शेष बचे हुए योग को दूसरी बैठक में भी पूरा किया जा सकता है।

लेखक को एक घटना याद आती है। एक प्रख्यात व सिद्ध तांत्रिक, प्रतिवर्ष उस इलाके का दौरा करता रहता था। एक बार वह वहां की बस्ती की गलियों में घूम रहा था। सभी लोगों ने , विशेषकर स्त्रियों ने डर के मारे घर के दरवाजे अन्दर से बंद कर दिए थे , क्योंकि वह सम्मोहन-विद्या जानता था। एक असावधान पुरुष ने, खिड़की से उस तांत्रिक की आँखों में झाँक लिया। वह अपना पर्स उठाकर व दरवाजे की कुण्डी खोलकर बाहर निकल गया, और उसने अपना पर्स उस तांत्रिक को दे दिया। जब वह वापिस अन्दर आया , तो उसकी पत्नी ने उसे बहुत डांटा , परन्तु वह सम्मोहित हो चुका था। अतः उसकी पत्नी स्वयं बाहर निकली, व उस तांत्रिक की आँखों की ओर देखे बिना ही, उसने वह पर्स (purse) छुड़ा लिया, और फिर अपने कमरे के अन्दर भागकर, दरवाजे की कुण्डी पुनः लगा दी। वह तांत्रिक जोर -२ से व प्यार से, बेटा-बेटी आदि संबोधन से पुकारने लगा। उससे उसका सम्मोहित पति फिर बाहर निकल गया। ततः तान्त्रिकः स्वाधोवस्त्रं उत्थाप्य, तं स्ववज्रं दर्शितवान्। ततः सः तं एकाभिमन्त्रितसूत्रं दत्वा, तद्सूत्रं तद्वज्रे बद्ंधु उपदिष्टवान्। वास्तव में यौनसम्बन्ध के प्रति आम लोगों का दृष्टिकोण भौतिक होता है , जबकि तांत्रिकों का दृष्टिकोण आध्यात्मिक होता है। उस बस्ती का कोई भी आदमी उस तांत्रिक से नाराज नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें पता था कि तांत्रिक वैसे ही होते हैं। निस्संदेह, तांत्रिक संसार की दृष्टि में गलत हों, परन्तु उनकी अपनी व ईश्वरीय-सत्य की दृष्टि में वे ठीक होते हैं।

मानसिक-कुण्डलिनीजागरण से आनंद-प्राप्ति का अर्थ है कि आनंद (bliss) मस्तिष्क के अन्दर स्थित जगत में ही निहित होता है, बाहर के स्थूल जगत में नहीं। तभी तो वेद-पुराण आदि, मनोरंजक कथाओं के रूप में बने हैं।

कहा जाता है कि प्यार को बलपूर्वक उत्पन्न नहीं किया जा सकता , परन्तु प्रेमयोगी वज्र का अनुभव कहता है कि तंत्र में प्यार को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। प्रथम देवीरानी के साथ पूर्वोक्त तांत्रिक -सम्बन्ध के बल से, प्रेमयोगी वज्र के मन में अपने गुरु , उन वृद्धाध्यात्मिकपुरुष के प्रति प्यार उत्पन्न हो गया था , जो उसके साथ रहते थे। वैसे आमतौर पर देखा जाता है कि वृद्ध को अधिकाँश लोग ज्यादा पसंद नहीं करते , परन्तु तंत्र ने उस महान रुचि-प्रतिरोध (interest barrier) को भी ध्वस्त कर दिया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुण्डलिनीजागरण का अनुभव जितना अधिक तीव्र, बलशाली, झकझोरने वाला, आनंदमयी व अनुभवात्मक होता है; उतना ही अधिक उससे लाभ प्राप्त होता है; क्योंकि वास्तव में, वह कुण्डलिनीचित्र निरंतररूप से मन में बस जाना चाहिए, और जगत में यह प्रायः देखा जाता है कि जो अनुभव जितना अधिक बलवान होता है, वह उतना ही अधिक मन में बस जाता है।

शक्तिपीठ, भगवती व देवीमाता आदि की अर्चना-अराधना का जो प्रचलन है, वह भी तंत्र-सम्मत ही है। यह प्रचलन अप्रत्यक्षविधि से तंत्रभाव को धारण करना सिखाता है, क्योंकि शिष्ट समाज में सीधे तौर पर तंत्र के बारे में बात करने को अशिष्ट माना जाता है। वास्तव में भगवती माता की अराधना से स्त्रीजाति के प्रति आदरभाव जागता है। स्त्री के प्रति सम्मानभाव से तंत्रभाव पुष्ट होता है , क्योंकि तंत्रसम्मत दाम्पत्यजीवन के बिना, शरीर की कुण्डलिनीवर्धक शक्ति का दुरुपयोग होने लगता है, जिससे पत्नी, माता की सर्वपुष्टिकरा-भूमिका से च्युत जैसी हो जाती है, जिससे अपनी हानि को देखकर, पति का उसके प्रति सम्मानभाव घटने लगता है। फिर धर्म -रीति के अनुसार, पत्नी के प्रति सम्मानभाव को पुनः जागृत करने के लिए , दंपत्ति, विशेषतः पति स्वतः ही तंत्रभाव की ओर अग्रसर होने लगता है।

कहते हैं कि ब्रम्हचर्य से ज्ञान मिलता है। वास्तव में अधिकाँश लोगों को वास्तविक ब्रम्हचर्य का ज्ञान ही नहीं होता , क्योंकि वास्तविक ब्रम्हचर्य तो तंत्र में ही निहित है, परन्तु वे उल्टा समझते हैं। यदि यौनविमुखता से ही ज्ञान मिलता, तब तो बच्चे व यौनाक्षम, परमज्ञानी होते। यदि यौनविमुखता से ही ज्ञान मिलता, तब तो यौनयोगियों को कतई नहीं मिलता, परन्तु वास्तविकता यह है कि यौनयोग ही ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ साधन है। वास्तव में जितना अधिक यौनद्रव्य का उत्पादन व जितना अधिक उसका संरक्षण, दोनों मिलकर होंगे, उतना ही अधिक बलवान ब्रम्हचर्य माना जाएगा। इससे सिद्ध होता है कि यौनद्रव्योत्पादन की पराकाष्ठा व यौनद्रव्यसंरक्षण की पराकाष्ठा, दोनों मिलकर, ब्रम्हचर्य की पराकाष्ठा बन जाते हैं। यदि उसके साथ कुण्डलिनी भी सम्मिलित हो जाए, तब वह योग की पराकाष्ठा बन जाता है।

जब चक्र पर कुण्डलिनी प्रकट हो जाए, तब उसे ही सीधे रूप में, प्राणों से पुष्ट करते रहना चाहिए। वैसे तो चक्रबिंदु पर साँसों के आघात के ध्यान से भी कुण्डलिनी स्वयं ही वहां पर प्रकट हो जाती है। कुण्डलिनी के ध्यान के साथ-२, बीच-२ में स्वस्थ व बलवान साँसों पर भी ध्यान दिया जाता रहना चाहिए। उससे कुण्डलिनी स्वतः ही, और अधिक चमक जाती है। परन्तु कई बार, कुण्डलिनी को छोड़कर, चक्र-बिंदु पर ध्यान देने से, वह कुण्डलिनी ओझल भी होती रहती है। यद्यपि यदि वह अप्रकट है, तो चक्र-बिन्दु पर ध्यान लगाने से वह प्रकट भी हो जाती है। आसनों या प्राणायामों की विधियों के सम्बन्ध में, बहुत गहराई में नहीं जाना चाहिए। मुख्य ध्येय तो अनुकूल चक्रों पर , कुण्डलिनी के ध्यान का ही होना चाहिए। काम के बीच -२ में, कुण्डलिनीयोग को करते रहने से भी कुण्डलिनी को बहुत बल मिलता है। उससे, काम से अर्जित मानसिक ऊर्जा (mental energy) कुण्डलिनी को लग कर, उसे पुष्ट करती रहती है। यदि एक बार अपनी साँसों को कुण्डलिनी के ऊपर लक्ष्याँकित (focus/target) करके, उन अपनी गहरी साँसों पर ध्यान देते हुए उन्हें पुष्ट करें, तो वे साँसें स्वयं ही कुण्डलिनी को लगती रहती हैं। यदि कोई व्यक्ति बहुत थका हुआ हो, और वह जल्दी-२, लम्बी-२ साँसों को लेते हुए (कपालभाति की तरह), मूलाधार पर कुण्डलिनी का ध्यान करता है, तो वह कुण्डलिनी प्रारम्भ में धुंधली प्रतीत होती है। उसका यह अर्थ होता है कि अभी शरीर में प्राणवायु की कमी है। फिर धीरे -२ कुण्डलिनी की स्पष्टता बढ़ती जाती है , जिसका अर्थ होता है कि शरीर में प्राणवायु की कमी पूरी हो रही है। अंत में वह कुण्डलिनी आनंद के साथ चमकदार व स्पष्ट हो जाती है, जिसका अर्थ है कि शरीर में प्राणवायु की कमी पूरी हो गई है। फिर साँस भी धीरे-२ चलने लगती है, और उथली भी हो जाती है। इस प्रकार से , कुण्डलिनी प्राणवायु की उपलब्ध मात्रा का दर्पण भी है। वैसे , गहरी मानसिक थकान के बाद, यदि कुण्डलिनी का ध्यान किया जाता है, तो एकदम से कुण्डलिनी भड़क जाती है, थकान समाप्त हो जाती है, तनाव क्षीण हो जाता है, प्राणवायु की कमी महसूस नहीं होती, और साँस अत्यंत धीमी होकर रुक जैसी जाती है। इसका अर्थ है कि उस समय की मानसिक थकान व उससे उत्पन्न शारीरिक तनाव के लिए, प्राणवायु की कमी से अधिक उत्तरदायी तो कुण्डलिनी का अभाव ही है।

कुण्डलिनीजागरण कोई चमत्कार या कोई विशेष वस्तु-भाव नहीं है। यह तो केवलमात्र किसी प्रिय या चिरपरिचित को याद करना भर ही है। जब उस आनंदमयी स्मरण की गहराई एक निश्चित सीमा को पार कर जाती है, तब वही स्मरण कुण्डलिनीजागरण बन जाता है। वास्तव में स्मरण किया गया व्यक्ति, देव आदि ही कुण्डलिनी बन जाता है। वस्तुतः स्मरण व कुण्डलिनीजागरण के बीच में कुछ भी अंतर नहीं है ; बस केवल गहराई, आनंद व

भाव की मात्रा में ही भिन्नता है। कुण्डलिनीजागरण में स्मरण की गहराई, आनंद व अद्वैत की मात्रा लगभग पूर्ण होती है; जबकि साधारण स्मरण में ये तीनों गुण अल्प मात्रा में होते हैं। एक बार के प्रयास से, कोई भी व्यक्ति स्मरण की उस गहराई तक नहीं पहुँच पाता, जिस गहराई पर वह स्मरण, कुण्डलिनीजागरण बन जाए। इसीलिए कुण्डलिनीयोगसाधना को बनाया गया है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्तिविशेष या देवविशेष को पुनः -२ स्मरण किया जाता रहे। कालान्तर में, लम्बे समय से किए जा रहे सभी प्रयासों का फल , किसी भी समय, एकसाथ प्रकट हो सकता है, कुण्डलिनीजागरण के रूप में। कुण्डलिनी-जल धीरे-२ गर्म होता है, और अंत में उबल कर, कुण्डलिनीजागरण के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। उसके बाद वह कुण्डलिनीजल फिर से ठंडा हो जाता है, और पुनः उबाल खाने के लिए, बहुत समय ले लेता है। जिस तरह से जल एकदम से व सीधा नहीं उबलता, उसी तरह कुण्डलिनीजागरण भी पूर्व की तैयारी के बिना, एकदम से या अचानक नहीं होता।

प्रेमयोगी वज्र के जीवन का बहुत बड़ा भाग पहाड़ों की रम्यता में ही बीता था। पहाड़ों में अधिकाँशतः मौसम के बहुत तीखे झटके लगते रहते हैं , जिसे हम आम भाषा में सर्द-गर्म लगना भी कहते हैं। दिन की धुप में अत्यधिक गर्मी व रात्रिकाल में अत्यधिक ठण्ड पड़ना तो जैसे वहाँ की एक आम बात है। उससे भी, संवेदनशील प्रेमयोगी वज्र को बहुत मानसिक आघात लगता था। परन्तु शविद के बलवान अद्वैत का आश्रय लेने के बाद , उसकी परेशानी बहुत कम हो गई थी, और साथ में, उससे उसकी कुण्डलिनी भी पुष्ट हो रही थी। ऐसी बदलती परिस्थितियों में तो शविद , बड़ी शीघ्रता के साथ, द्वैतरोग के लिए रामबाण का काम करता है, क्योंकि यह तो सिद्ध ही है कि द्वैताद्वैत ही वास्तविक अद्वैत है, और यह भी कि जितना अधिक द्वैत होता है, उतना ही अधिक लाभ शविद के अद्वैत से मिलता है। पहाड़ों में, इस प्रकार के व अन्य प्रकारों के भी, द्वैत के बहुत से झटके (duality-shocks) लगते रहते हैं, तभी तो वहाँ पर अद्वैतभाव से, अतिशीघ्र फल मिलता है। संभवतः इसीलिए पहाड़ों को तपोभूमि कहा जाता है। यद्यपि अंत में, द्वैत को पूर्णतया छोड़कर, शान्ति को अपनाकर, पूर्णनिष्ठा से योगसाधना में तो जुटना ही पड़ता है, तभी कुण्डलिनीजागरण होता है। वास्तव में ऐसा स्वयं ही हो जाता है।

कुण्डलिनीसाधना से योगी अनासक्ति भी सीख जाता है। कोई देवविशेष या व्यक्तिविशेष, साधक की कुण्डलिनी के रूप में तभी प्रतिष्ठित होता है, यदि उसके प्रति आसक्ति न हो। आसक्तियुक्त चिंतन से, शरीर की कार्यप्रणालियाँ दुष्प्रभावित होती हैं, अतः किसी चित्र का ध्यान, उसके प्रति आसक्ति के साथ, अपने मन में निरंतर रूप से नहीं किया जा सकता। इसी तरह, कुण्डलिनीचित्र के बलपूर्वक व निरंतर ध्यान से, उसके प्रति आसक्ति स्वयं ही नष्ट हो जाती है, ताकि शरीर आसक्तिजन्य दुष्प्रभाव से बचा रह सके। साथ में, क्योंकि कुण्डलिनीचित्र के रूप में अधिकाँशतः देव, गुरु आदि इन्द्रियातीत पुरुष ही होते हैं, इसलिए उनके प्रति अनासक्ति होना तो स्वाभाविक ही है। इससे साधक को दैनिक जीवन में भी आसक्ति के महत्त्व का पता चलता है , और वह उसे स्वतः ही अपनाने लगता है।

रोचक पुस्तकों को, विशेषतः पुराणों आदि की तरह रोचक, काल्पनिक व आध्यात्मिक पुस्तकों को पढ़ने से मन का कुण्डलिनीचित्र उनके कथा - प्रसंगों आदि के ऊपर आरोपित होता रहता है। उससे कुण्डलिनी निरंतर रूप से पुष्ट होती रहती है। यदि दूरदर्शन , आकाशवाणी आदि पर वैसे प्रसंगों को वास्तविक दृष्यरूप में देखा-सुना जाए, तब वैसा नहीं होता, क्योंकि तब प्रत्यक्ष देखे जाने वाले चित्र मन के कुण्डलिनीचित्र के ऊपर हावी हो जाते हैं, जिससे कुण्डलिनी मन से ओझल हो जाती है।

इस पुस्तक में वर्णित की गई सभी बातें व घटनाएँ प्रेमयोगी वज्र को वास्तविक भी लगती हैं , व काल्पनिक भी। इसी तरह, उसे कभी-२ ये वास्तविक प्रतीत होती हैं; तो कभी-२ स्वप्न की तरह काल्पनिक, काल्पनिक विशेषतः भौतिक परिवेश व भौतिकवादी/द्वैतयुक्त मनःस्थिति में । यहाँ तक कि इन तथ्यों व घटनाओं से जुड़े हुए अधिकाँश लोग भी इन्हें कोरी कल्पनाएँ ही ठहरा सकते हैं। वे संभवतः वही लोग होंगे , जो मन के अपार साम्राज्य को नहीं समझते, और स्थूल भौतिकता को ही सब कुछ मानते हैं। ऐसे लोगों की तो आजकल भरमार है। मन की गहराइयों में झाँकने वाले लोग तो आजकल विरले ही हैं। भौतिकरूप से भी अधिक उज्जवल, स्पष्ट व वास्तविक यह सारा मानसिक घटनाक्रम, गुरु कृपा व देहपुरुष-चिंतन से प्राप्त द्वैताद्वैत व अनासक्ति का ही परिणाम है।

द्वैताद्वैत-दृष्टिकोण ही देहपुरुष का दृष्टिकोण होता है। वास्तव में द्वैताद्वैत से ही वास्तविक अद्वैत उत्पन्न होता है। द्वैताद्वैत के द्वैत का अर्थ यहाँ पर , सभी युक्तियुक्त/स्वाभाविक मानवीय भावों व कर्मों को बदलते हुए रूप में यथावत स्वीकार करना है; और अद्वैत का अर्थ, अपने को बदलते हुए भावों व कर्मों से अप्रभावित अनुभव करना है। सीधे ही रूप में अद्वैत का आचरण करने से द्वैत कायम रहता है , क्योंकि ऐच्छिक अद्वैत तो द्वैत से ही पोषण प्राप्त करता है, अर्थात एक प्रकार से द्वैत ही होता है (क्योंकि हमने शिकार-शिकारी परम्परा में सिद्ध किया है कि शिकार से ही शिकारी की देह बनी होती है, अर्थात शिकारी और कोई नहीं अपितु शिकारस्वरूप ही होता है)। देहपुरुष की तरह द्वैत व अद्वैत, दोनों को एकसाथ अपनाना चाहिए, क्योंकि

इससे दोनों नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही, जैसे +१ व -१ को मिलाने से दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। इससे स्वतोसिद्ध , स्वाभाविक, अनिर्वचनीय व आनंदमयी अद्वैत स्वयं ही उत्पन्न हो जाता है। यदि द्वैत व अद्वैत दोनों को ही नकारा जाएगा , तब तो पुरुष देहपुरुष के स्वभाव के विपरीत जड़वत हो जाएगा , क्योंकि देहपुरुष की तरह साँसारिक कर्म-व्यवहार के लिए द्वैत भी आवश्यक होता है, व अद्वैत भी। अद्वैत तो देहपुरुष के साथ-२ सम्पूर्ण प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है ही। क्योंकि देहपुरुष व अन्य सभी प्राकृतिक वस्तु -भावों के बीच में आत्मरूप से कोई भी अंतर नहीं है , अतः सिद्ध होता है कि सृष्टिगत, समस्त प्राकृतिक वस्तु-भावों का वास्तविक आत्मस्वरूप, द्वैताद्वैतस्वरूप ही है। सागर अपने जलस्तर के बदलने के साथ कभी नहीं बदलता। इसी तरह, सूर्य अपनी चमक के स्तर के बदलने के साथ कभी नहीं बदलता। सागर के जलस्तर की तरह , पुरुष का मानसिक स्तर भी निरंतर बदलता रहना चाहिए, तभी तो उसे अद्वैत को लागू करने का अवसर मिलेगा, क्योंकि कौन कहेगा कि सागर अद्वैतस्वरूप है, यदि उसका जलस्तर एकसमान रहे। यदि पुरुष अद्वैत के नाम पर, मन के दोलन को बलपूर्वक रोककर, मन को एक जैसी स्थिति में बना कर रखने की कोशिश करेगा, तो उसे देहपुरुष-चिंतन से प्राप्त अद्वैतनिष्ठा को धारण करने का सुअवसर ही नहीं मिल पाएगा, और साथ में उसके काम भी दुष्प्रभावित हो जाएंगे। वास्तविक अद्वैत वह है, जो द्वैताद्वैत के निरंतर व लम्बे काल के प्रयास के बाद स्वयं व अनायास ही , आनंदमयी शून्यता के साथ उत्पन्न हो जाए। उदाहरण के लिए , प्रेमयोगी वज्र की प्रेमिका (consort) के सखी-समूह में भिन्न-२ रूप-रंगों की देवीरानियाँ थीं। प्रेमयोगी वज्र यद्यपि सभी के मध्य के अंतर को भली भांति समझता था, परन्तु वह किसी के सामने उसे प्रकट नहीं करता था, ताकि किसी भी देवीरानी को तनिक भी आभास न हो पाता, व उनमें से किसी के भी मन को जरा भी ठेस न पहुंचती। यही तो वास्तविक अद्वैत अर्थात द्वैताद्वैत है, जिसमें द्वैत को अच्छी तरह से समझते हुए भी अद्वैतमय दृष्टिकोण अपनाया जाता है। अतः हम देख सकते हैं कि अधिकाँश लोग अद्वैत को गलत ढंग से समझते हैं।

यह शविद नामक दर्शन वैदिक-पौराणिक विषयों में भी सकारात्मक रूप से रुचि उत्पन्न करता है। पुराणों का अनुसरण तो लोग कभी -२ ही करते हैं, विशेषतः जब कोई विशेष धार्मिक आयोजन, जैसे कि साप्ताहिक पुराणयज्ञ आदि चल रहा हो। प्रतिदिन तो कोई भी पुराणों से अद्वैतलाभ की प्राप्ति नहीं करता। इस कारण से कोई विशेष आध्यात्मिक उन्नति प्रतीत नहीं होती, अपितु एकसमान जैसा आध्यात्मिक स्तर बना रहता है। यद्यपि जो लोग नित्यप्रति पुराणों का पठन-श्रवण करते हैं, उनका अद्वैत भाव सदैव विद्यमान रहता है। साप्ताहिक पुराणयज्ञों से पुराणों को नित्यप्रति पढ़ने की प्रेरणा प्राप्त होती है। अतः समाज को हर प्रकार से स्वस्थ बनाए रखने के लिए , साप्ताहिक पुराणयज्ञ होते रहने चाहिए। शविद , पुराणों से भी अधिक अद्वैतकारी प्रतीत होता है, क्योंकि इसका चिंतन व अनुसरण स्वयं ही नित्य-निरंतर होता रहता है, जिसका कारण है, इसका हमारे शरीर में ही नित्य-निरंतर स्थित रहना; इसीलिए यह कभी भी विस्मृत नहीं होता। अंत में , दोनों का मिश्रित उपयोग ही सर्वोत्तम प्रतीत होता है , क्योंकि 'यत्पिन्डे तत्ब्रम्हाण्डे' के अनुसार, पुराणों के सभी वस्तु-भाव पाठक के शरीर के ऊपर आरोपित होते रहते हैं, जिससे जीवन में सर्वोत्तम प्रकार का अद्वैत दृष्टिकोण सदैव बना रहता है। यह दर्शन एक चीज यह सिखाता है कि मानवीय प्रवृत्ति के बिना , अनासक्ति या द्वैताद्वैत का ज्यादा प्रायोगिक/व्यावहारिक महत्त्व नहीं है। यह बताता है कि देहपुरुष की तरह ही, मानवतापूर्ण प्रवृत्तियों के बीच में भी द्वैताद्वैत को कायम रखना ही परम फलप्रद व परम सुन्दर है, परम फलप्रद व परम सुन्दर है।

उठ जाग होनहार, प्रकाश हो या अन्धकार।
बाँध तरकस पीठ पर, भर तीर में फुँकार।।
झुका दे शीश दोनों का, कर न पाए फिर कभी भी वार।
उठ जाग होनहार, प्रकाश हो या अन्धकार।।

इस ई-पुस्तक को पढ़ने के लिए आपका धन्यवाद। यदि आप इस पुस्तक से पूर्ण तांत्रिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं , तो कृपया निम्नांकित जाल-स्थान (website) से इस पुस्तक के छपाई-पुस्तक संस्करण (print book version at pothi.com) को भी अवश्य प्राप्त करें। साथ में, यदि आप इस पुस्तक को पूरी तरह से समझना चाहते हैं, एक उच्च कोटि की दार्शनिक चर्चा का हिस्सा बनना चाहते हैं, और व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ इसका पूरा लाभ उठाना चाहते हैं, तो कृपया "Love story of a Yogi- what Patanjali says" पुस्तक को भी अवश्य पढ़ें, जो निम्नलिखित पुस्तक-सूचि में भी दर्शाई गई है। "शरीरविज्ञान दर्शन" पुस्तक के संस्कृत में लिखे गए रहस्यमयी व्यावहारिक-बिन्दुओं को इस अंग्रेजी में लिखित पुस्तक में खुले तौर पर सरलता के साथ लिखा गया है। इस पुस्तक में प्रेमयोगी वज्र के उस कुण्डलिनी फोरम की चर्चा लिखी गई है , जिसको करते हुए अंत में उसकी कुण्डलिनी जागृत हुई।

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) Love story of a Yogi- what Patanjali says
2) Kundalini demystified- what Premyogi vajra says
3) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान-पुस्तक 1, 2, और 3
4) The art of self publishing and website creation
5) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला
6) कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है
7) बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी
8) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट
9) My kundalini website on e-reader
10) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)
11) श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम
12) सोलन की सर्वहित साधना
13) योगोपनिषदों में राजयोग
14) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव
15) देवभूमि सोलन
16) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र
17) बघाटेश्वरी माँ शूलिनी
18) म्हारा बघाट
19) भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस
20) Kundalini science~a spiritual psychology-book 1, 2, and 3

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन , ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट ,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु।